तार का पता—"सम्मेलन" इलाहाबाद   रजिस्टर्ड नं० ए. ६२६.

भाग १२ अङ्क ८, चैत्र सं० १९८२ वि०

संपादक

वियोगी हरि

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

वार्षिक मूल्य २)   प्रत्यंक ≡)

विषय-सूची

सम्मेलन-पत्रिका के नियम

१—'पत्रिका' प्रत्येक मास की पूर्णिमा को प्रकाशित हो जाती है। यदि किसी मास की कृष्णा १० तक उस मास की पत्रिका न मिले, तो पत्र द्वारा सूचना देनी चाहिये।

२—'पत्रिका' का वर्ष भाद्रपद से प्रारम्भ होता है। वर्ष के बीच में, किसी भी मास में, ग्राहक होने पर उस वर्ष के पूर्व मासों के अंक अवश्य लेने पड़ते हैं। डाक-व्यय-सहित पत्रिका का वार्षिक मूल्य २=) है। २) मनीआर्डर द्वारा भेजने से अधिक सुभीता होता है।

३—यदि दो एक मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकखाने से प्रबन्ध कर लेना चाहिये, और यदि बहुत दिनों के लिए बदलवाना हो, तो हमें उसकी सूचना देनी चाहिए, अन्यथा 'पत्रिका' न मिलने के लिए हम उत्तरदायी न होंगे।

४—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें—"सम्पादक सम्मेलन पत्रिका, पोस्ट बाक्स नं० ११ प्रयाग" के पते से वा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र—"प्रचार-मन्त्री हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११ प्रयाग" के पते से और पत्रिका का मूल्य, विज्ञापन की छपाई आदि का द्रव्य "अर्थमंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११ प्रयाग" के पते से आना चाहिए।

५—प्राप्त कविता और लेखों के घटाने, बढ़ाने एवं प्रकाश करने वा न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है।

सम्मेलन-पत्रिका में
विज्ञापन की दर

	१ मास	६ मास	एक वर्ष
एक पृष्ठ	५)	२५)	४५)
आधा पृष्ठ	३)	१५)	२८)

आवश्यक सूचना

६—सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की बिक्री पर कमीशन की दर निम्नलिखित अनुसार होगी—

(क) १०) से नीचे की पुस्तकों पर कुछ भी कमीशन न दिया जायगा।

(ख) १०) से २५) तक की पुस्तकों पर दो आना रुपया कमीशन दिया जायगा।

(ग) २५) से ऊपर १००) तक २० रुपया सैकड़ा।

(घ) १००) से ऊपर, २५) सैकड़ा।

(ङ) ५००) या अधिक की पुस्तकें लेने पर तृतीयांश कमीशन अर्थात् ३३।–)४ दिया जायगा।

(नोट) सम्मेलन से सिर्फ़ सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें बेची जाती हैं, अतः सर्वसाधारण को चाहिए कि वे सम्मेलन से केवल सम्मेलन द्वारा प्रकाशित ही पुस्तकें मगावें। अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें हमारे यहां नहीं मिलतीं।

सुलभ-साहित्य-माला

इस माला का उद्देश्य यह है कि हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थों के सुन्दर और सस्ते संस्करण इस ढंग से निकाले जायँ कि जिससे हिन्दी-प्रेमी इन ग्रन्थ-रत्नों को सुलभता से पा सकें। यह माला प्राचीन साहित्य का विशेष रूप से उद्धार करने की चेष्टा कर रही है। इसमें प्राचीन साहित्यक, दार्शनिक, सामाजिक, राष्ट्रीय आदि उत्तमोत्तम ग्रन्थ सिद्धहस्त लेखकों को उचित पुरस्कार देकर लिखाये और प्रकाशित किये जाते हैं। अब तक इस माला में निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

पुस्तकें मिलने का पता—हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग।

१—भूषण-ग्रन्थावली (सटिप्पण)

भूषण कवि हिन्दी में वीर रस के एक मात्र कवि हैं। इनकी कविता में भाव हैं, ओज है और प्राण है। परन्तु अधिकांश छंद इतनी क्लिष्ट है कि उसका समझना कठिन हो जाता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए हिन्दी के सुपरिचित विद्वान् पं० रामनरेशजी त्रिपाठी ने क्लिष्ट स्थानों पर टिप्पणियाँ दे दी हैं और कठिन शब्दों का अर्थ भी दिया है। कविता में सूत्र रूप से वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं का भी यथास्थान स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है।

यदि भारतीय वीरता का पता चलाना हो, यदि जातीय ज्योति को जगमगाना हो, यदि साहित्यिक आनन्द लूटना हो, तो इस ग्रन्थावली को एक बार अवश्य पढ़ जाइए। इसमें अलङ्कार शास्त्र का अनुपम ग्रन्थ शिवराजभूषण, शिवा-बावनी, छत्रसाल-दशक तथा भूषण कवि के फुटकर कवित्तों का संग्रह किया गया है। पृष्ठ-संख्या १८४, मूल्य ॥-)

२—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—भा० मिश्रबन्धु

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ, उसने कौन-कौन से रूप पकड़े, किन-किन बाधाओं एवं साधनों का उसे सामना करना पड़ा, वर्त्तमान परिस्थिति क्या है आदि गम्भीर विषयों का पता इस पुस्तक से भलीभांति चलता है। अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। "मिश्रबन्धु विनोद" रूपी महासागर से मथन कर यह इतिहासामृत निकाला गया है। यह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में स्वीकृत है। पृष्ठसंख्या १८८, मूल्य ।≈)

पुस्तकें मिलने का पता—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग।

३—भारतगीत

लेखक—पं० श्रीधर पाठक

पाठकजी की रसमयी-रचना से किस सहृदय साहित्य-रसिक का हृदय रसप्लावित न होता होगा? आपकी गणना वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य के महारथियों में है। आपकी राष्ट्रीय कविता नवयुवकों में जातीय जीवन सञ्चार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक पाठकजी के उन गीतों का संग्रह है, जिन्हें उन्होंने समय-समय पर स्वदेश-भक्ति की उमंग में आकर लिखा हैं। इसकी प्रस्तावना साहित्य-मर्मज्ञ बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठसंख्या ६४, मूल्य ≡)

४—भारतवर्ष का इतिहास

(प्रथम खण्ड)

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६०० संवत् पूर्व से ५० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है। अब तक हिन्दी में भारतवर्ष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था। विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहां के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। मध्यमा परीक्षा के इतिहास विषय में यह पुस्तक निर्दिष्ट है। जिल्दवाली पुस्तक, जिसकी पृष्ठसंख्या ४०६ है, मूल्य केवल १॥)

पुस्तकें मिलने का पता—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग।

५—राष्ट्रभाषा

संपादक—श्री 'भारतीय हृदय'

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न उपस्थित किया था कि, क्या हिन्दी राष्ट्र-भाषा हो सकती है ? इसके उत्तर में भारत के प्रत्येक प्रान्त के बड़े-बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपातरहित सम्मतियाँ दी थीं, कि निःसन्देह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने योग्य है। उन्हीं सब अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इसके विरोधियों का भी यथेष्ट खण्डन हुआ है। इस विषय के व्याख्यानों का भी इसमें सङ्कलन कर दिया गया है। हिन्दीभाषा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक प्राणस्थानीय नहीं तो क्या है ? पृष्ठसंख्या २००, मूल्य ॥)

६—शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस सम्बन्धी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह। इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें। महाराष्ट्रपति शिवाजी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का यदि चित्र देखना हो, तो एक बार इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइए। शब्द एवं भाव-काठिन्य दूर करने के लिये कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलङ्कार आदि साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाली आवश्यक बातों का इसमें उल्लेख कर दिया गया है। साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है। पृष्ठसंख्या ५४, ≡)

७—सरल पिङ्गल

ले०— { श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद }

इस पुस्तक में पिङ्गल शास्त्र के गूढ़ रहस्यों को सरल और सुन्दर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छन्दों के उत्तम उदाह-

रण भी दिये गये हैं। अन्त में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्दर्शन करा दिया गया है। पृष्ठ संख्या ५८, मूल्य ।)

८—सूरपदावली

(सटिप्पण)

श्री सूरदासजी के १०० अत्युत्तम पदों का अपूर्व संग्रह, मूल्य ।)

भारतवर्ष का इतिहास

(द्वितीय खण्ड)

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

इसमें ५०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का वर्णन किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान-पतन के क्रम का पता इस पुस्तक से जैसा कुछ चलता है, यह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू-समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि जानने योग्य आवश्यक विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः प्राप्त हो सकता है। सुन्दर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठसंख्या ४४०, मूल्य २।)

पद्य-संग्रह

संपादक { श्री ब्रजराज एम. ए, बी. एस-सी., एल. एल. बी.
श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस. सी.

आधुनिक खड़ी बोली के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सुन्दर संग्रह। ये कविताएँ विद्यार्थियों के बड़े काम की हैं। संग्रह सामयिक और उपादेय है। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के साहित्य में स्वीकृत है। पृष्ठसंख्या १२८, मूल्य ।=)

पुस्तकें मिलने का पता—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग।

११—संक्षिप्त सूरसागर

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

सूरदासजी-रचित सूर-सागर से ५०० पद-रत्न चुन कर इसमें एकत्र किये गये हैं। जहाँ तक हो सका है, कई प्रतियों से पदों का पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी गयी है। इसकी प्रस्तावना हिन्दी-साहित्य के महारथी सुप्रसिद्ध विद्वान्

श्री राधाचरणजी गोस्वामी

ने लिखी है। सागर की थाह लेना सहज नहीं है। उसे पार कौन कर सकता है? तथापि बिना शोभा देखे रहा नहीं जाता। अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिये लालायित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूर कर हिन्दी-साहित्य-रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्यपरिचय जोड़ा गया है। उनकी जीवनी की मुख्य-मुख्य घटनाओं का पूरा-पूरा उल्लेख आगया है। कविता की सुन्दरता भी पर्याप्त रूप से दिखला दी गई है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएँ भी लिखी गयी हैं। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत है। एण्टिक काग़ज़ का जिल्द-दार संस्करण, पृष्ठसंख्या ४२५, मूल्य २)

१२—विहारी-संग्रह

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

कविवर विहारीलाल की सतसई से प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह छोटा सा संग्रह तैयार किया गया है। जहाँ तक सम्भव हुआ है, इसमें शृंगार रस के दोहों का समावेश नहीं किया गया है,

किन्तु ऐसे दोहों का संग्रह किया गया है, जो बिना किसी सङ्कोच के बालक-बालिकाओं को पढ़ाए जा सकते हैं। पृष्ठसंख्या ६४, मूल्य =)

१५—ब्रज-माधुरी-सार

सम्पादक—श्री वियोगी हरि—इस पुस्तक का विषय इसके नाम ही से प्रकट होता है। इसमें ब्रजभाषा की कविता का सार सङ्कलन किया गया है। इस संग्रह में चार विशेषताएँ हैं:—

(१) इसमें सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय सत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया गया है।

(२) इसमें कुछ ऐसे कवियों की रचनाओं का रसास्वादन भी कराया गया है जो अभी तक कहीं प्रकाशित नहीं हुई थीं।

(३) इस ग्रन्थ में यथेष्ट पादटिप्पणियां लगा दी गयी हैं, जिनकी सहायता से साधारण पाठक भी लाभ उठा सकते हैं।

(४) इसके प्रारम्भ में प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवनचरित और उसकी कविता की संक्षिप्त आलोचना भी की गई है।

पृष्ठसंख्या ६३२, मूल्य जिल्दवाले संस्करण का केवल २)

१६—पद्मावत (पूर्वार्द्ध)

सम्पादक—श्री लाला भगवानदीन

यह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत का पूर्वार्द्ध है। इस भाग में पहले खण्ड से लेकर ३४वें खण्ड तक समावेश हुआ है। सम्पादक महोदय ने इस ग्रन्थ में इतनी यथेष्ट पादटिप्पणी लगा दी है कि अब इस प्राचीन काव्य का रसास्वदान करना प्रत्येक कविता-प्रमी के लिए सुलभ हो गया है। अन्त में एक संक्षिप्त शब्दकोश भी जोड़ दिया गया है। पृष्ठसंख्या लगभग २००; मूल्य साधारण जिल्द का १) और जिल्दवाली का १।)

पुस्तकें मिलने का पता—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग।

भाग १२ } चैत्र, संवत् १९८२ { अङ्क ८

मधुर लुनाई !

मोर-पखा 'मतिराम' किरीट मैं, कंठ बनी बनमाल सुहाई।
मोहन की मुसक्यानि मनोहर, कुंडल लोलनि मैं छबि छाई॥
लोचन लोल बिसाल बिलोकनि, को न बिलोकि भयो बस माई ?
वा मुख की मधुराई कहा कहौं, मीठी लगै अँखियानि लुनाई॥

—मतिराम

अनुराग-वाटिका

पद

मो बौरी के ढिग मात बैठै।
हौं तौ बैठी रंग आपने, या गृह तू मति पैठै॥
कैसी लोक-लाज, कुल कैसो, कहा निगम की बानी।
भ्रमरी ह्वै हरि-बदन-कमल पै घूमत फिरति दिवानी॥
प्रान-निछावरि दै लीनीं जो प्रीतम की दृग-कोरैं।
तौ काहे यह जाति जरी सब, मोकों मिलि झकझोरैं॥
सरबस सौंपि जु चाख्यौ चखभरि पिय-छवि-आसव न्यारो।
देहि बताय नैक, काहू कौ यामें कहा इजारो॥
मो अँखियन गड़ि गई गँसीली पिय-चितवनि अनियारी।
किरकिरात पै नैन तिहारे, या मति पै बलिहारी॥
आई कहा निकासन उरतें कांटों, अरी हठीली।
चुभ्यौ रहन दै, लागति वाकी मीठी कसक चुभीली॥
जाहि, करै किन सुधा-पान तू, हौं तौ विष ही घूट्यौ।
हानि-लाभ कछु वै नहिं जानति, सब लुटाय रस लूट्यौ॥
लागी लगन नाहिं छूटैगी, भई स्याम की दासी।
नेम-सिंधु तजि प्रेम-बुंद की हौं चातकी पियासी॥ १॥

छाँड़त क्यों न, लाल, लरिकाई ?
साँचेहु ढीठ भये तुम मोहन, दिन-दिन करत ढिठाई॥
ऊपर तौ तुम सौम्य बने हौ, देखत के अति भोरे।
अंतर कपट-कुसल, छल-मूरति, उर औगुन नहिं थोरे॥
औरनि के क्यों खेल बिगारत, जद्यपि आप खिलारी।
बरजेहु मानत नहिं लालन, कैसी टेंव तुम्हारी॥
केती गारीं देहि कोउ किन, सुनत न, बहिरे जैसे।
लोक-लाज कौ कछु बिचार नहिं, भये निलज्ज तुम ऐसे॥

छेड़त हौ, भाजत क्यों इत-उत, देत न पुनि पकराई।
औरनि देत बँधाय, आपु नहिं बँधत, धन्य चतुराई॥
लाल, तुम्हारी या लीला के रसिक बहुत जग नाहीं।
धूम मचाय आय किन खेलत मो उर-आँगन माहीं॥ २॥
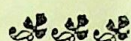
अरी, मैं वा जल की मछुरी।
ना जानों, जा अगम सिंधु तें कबकी हौं बिछुरी॥
अवगाहे केते सरिता-सर, मगन होय बिहरी।
बिषम बिषय-बिष व्यापि रह्यौ तन, भ्रमि-भ्रमि-जाल परी॥
मधुर दूध-दधि-भरित सरन में निर्भर केलि करी।
दिन-दिन तन दवारि-सी लागी, पल-पल जरा-बरी॥
बिरह-अधीर भई अब कैसेहुँ रहति न धीर-धरी।
कबधौं फेरि मिलैगी मेरी आनँद-रस-लहरी॥ ३॥
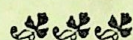
भई कछु सूरत वाकी और।
जब तें वाके हिय बिच प्रीतम करी आपनी ठौर॥
रँगे रहत नित नैन रँगीले, ढीले प्रेम-अधीर।
झूमत, झुकत मनहुँ गज माते, तोरत लाज-जँजीर॥
कली-कली-बिकसित मुख-पंकज सूचत सरस सनेह।
पिय कौ नाम लिये काँपत तन, पुलकि पसीजत देह॥
जागि रही इक जोति बदन पै, उपमा देत बनै न।
आई अरुनोदय की आभा मनहुँ बधाई दैन॥
चढ़ी रहति मादकता-सी कछु, लाग्यो कैधौं प्रेत।
उरझत जात बसन कुंजन में, पै नहिं वाकों चेत॥
छिन रोवति, छिन हँसति, गिरति, छिन गावति राग अनेक।
छिन-छिन पलटति ढँग गरबीली, जदपि चढ्यो रँग एक॥
कबहुँ जकी-सी, कबहुँ छकी-सी रहति, कबहुँ अनखाति।
बोलत नाहिं बुलाये हू कछु, मन ही मन मुसुकाति॥

प्रेम-सरोवर जदपि भर्यौ उर अंतर, प्रगट न होय।
तदपि लहर लहरति अधरन पै, सकै न ताकों गोय ॥
जब तें प्रीतम रूप-सुधा-रस कियौ दृगनि भरि पान।
जाति न पहिचानी ता दिन तें, सोई कैधौं आन ॥ ४ ॥
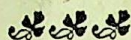
हमारी सब ही बात बनी।
बिगरी हु सब भाँति सुधारी श्रीव्रजराज धनी।
देखत ही मनि कियौ अमोलक, जद्यपि काँच-कनी।
लियौ लाय उर उमँगि प्रेम सों, जाति न पाँति गनी ॥
माया-काल-करम-गुन-संभव दुख की काटि तनी।
दियौ अभै पद सुर-दुरलभ करि दिन-दिन कृपा घनी ॥ ५ ॥

(क्रमशः)

वि० ह०

एकादश दोहरे

अंग सिँगारत ही निसा बीति गई जुग जाम।
का जानै, आये, गये, कौन समै फिरि स्याम ॥ १ ॥
आली, बनमाली लही, नई कौन ए रीति—
कमल-दले, चम्पक मले, पल्लव परसी प्रीति ? ॥ २ ॥
दई निरदई दै लई, गये रहे दिन चार।
आस उजास बगारि दै, सूने सौंध मझार ॥ ३ ॥
चित चोर्यो चितचोरहू, चंपत ह्वै चँदरात।
अब जनि कोऊ परै यहि, भूलि प्रेम की घात ॥ ४ ॥
प्रेम बेलि उलही अली ! कली भली मन माहिं।
दरसन-परसन-सीकरन, नित लहलही लखाहिं ॥ ५ ॥
सपने दरसि-परसि कियो कोउ नव नागर अंग।
दुखो दौरि जागत निठुर, रंग चढ़ाय अनंग ॥ ६ ॥

अधर सरस कोमल मधुर, निरखि बापुरी ईख ।
निज तन ग्रंथिन कठिन सों, अमित लजौहीं दीख ॥ ७ ॥
प्रेम हेत जनमी, पली, प्रेम सरोवर-कीच ।
प्रेम-पंथ बिचरति रही, मरी प्रेम के बीच ॥ ८ ॥
सोचति ही अवलोकिहौं, नयन निमेष बिहाय ।
कीन्ही आस निरास, यहि लाज गाज परिजाय ॥ ९ ॥
चपला बिचलित बारिधर बहुरि उतै नहिं जात ।
याही डर घनस्याम कों, स्यामा तजत सकात ॥ १० ॥
प्रेम-पास मैं फाँसि कैं, मन-मंदिर मों लाय ।
वा चितचोरहिं राखिहौं, सब बिधि हार हराय ॥ ११ ॥

—शम्भूदयाल सक्सेना, विशारद

---

*प्रान्तीय कविसम्मेलन, आगरा, में पुरस्कृत कविताएँ

प्रेम के पुजारी हैं

(श्री० ब्रह्मचारी भद्रजित 'भद्र', गुरुकुल, बृन्दावन)

मान के समान कुल-मान को डुबोयो नाहिं
राजपाट शक्ति हल्दी घाट में बिसारी है ।
बन-बन डोले, असि खोले, बाल भोले-भाले
प्यारे भूख-मारे नैन-तारे, साथ नारी हैं ॥

---

* श्रीनागरी प्रचारिणी सभा, आगरा, के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर गत १४ दिसम्बर को श्रीमान् पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी के सभापतित्व में प्रांतीय कवि-सम्मेलन हुआ था । प्रायः १०० कवियों की कविताएँ आई थीं । कविताओं की परीक्षा तीन सज्जनों ने की है । परीक्षकों ने एक मत होकर श्री ब्रह्मचारी भद्रजितजी 'भद्र', श्री पं० ज्योतिःप्रसादजी मिश्र 'निर्मल' और श्री पं० श्रीरत्नजी शुक्ल को एक-एक स्वर्णपदक भेंट करने का निर्णय किया है । —सं०

सीस ना झुकायो पर यवन अधीश पग,
अन्त माहिं जीती निज जन्मभूमि प्यारी है।
'भद्र' यों प्रताप से प्रतापी सिरताज धीर,
ऐसे हुए वीर देश-प्रेम के पुजारी हैं॥

गौरव के गिरि पै समोद चढ़ि जायँगे

(श्री० ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल', प्रयाग)

आता बड़ा दिन है, प्रतापी लाट साहब को
नींबू नास्पातियों की डालियां चढ़ायँगे।
भारी भक्ति भाव से सबेरे घर घेर-घेर
हाथ हम हाकिमों हुजूरों से मिलायँगे॥
'निर्मल' अमन की दुहाई दे के चारों ओर,
गोरी सरकार की सलामत मनायँगे।
पा के नये साल का ख़िताब 'राय साहिब' का,
गौरव के गिरि पै समोद चढ़ि जायँगे॥

जन्म-भूमि

(श्री० श्रीरत्न शुक्ल, काशी)

मेरी भारत माता प्यारी !
तेरी मंजुल मूर्ति मनोहर है त्रिलोक से न्यारी॥

लसित सुमन-रत्नों से अनुपम
श्यामल अंचल मंजु ,मनोरम॥

सिर पर हिममय मुकुट, हृदय पर सुरसरि-हीरा-हार।
बदनाम्बुज की सुरभि राशि से सुरभित है संसार॥

प्रथम प्रभात प्रभासित उज्वल,
तेरा सुठि शरीर शुचि निर्मल॥

राशि-राशि सौन्दर्य्य-सृष्टि की है तुझ में छविधारी।
मेरी भारत माता प्यारी॥

प्रकृति भेंट करती है तुझ को निज विभूतियाँ सारी।
वायु चमर ढरता है सादर।
पदतल धोता है रत्नाकर॥

अलकों में मोती गँथ गँथ कर निशि करती शृंगार।
सानुराग ऊषा भरती है मांग रूप आगार॥

धनदा, वरदा सुमति ज्ञानदा।
हैं सहेलियाँ रमा, शारदा॥

अष्ट सिद्धियाँ, नव निधियाँ हैं वर दासियां तुम्हारी।
मेरी भारत माता प्यारी॥

तीस कोटि, माँ! हम सब तेरे अविरत अटल पुजारी।
तू ही है तन मन धन जीवन।
तेरी रज है पावन कंचन॥

भ्रांति-प्रहारिणि, भ्रांति निवारिणि, जन-तारिणि निष्काम।
शांति-प्रदायिनि, मोक्ष विधायिनि, सुखदायिनि अभिराम॥

प्रभा सूर्य शशि तुझ से पाते।
आलोकित तव विश्व बनाते॥

तेरी महिमामयी कीर्ति की छटकी है उजियारी।
मेरी भारत माता प्यारी॥

कविवर रघुनाथप्रसादजी

आजकल हिन्दी-संसार में अन्वेषण का कार्य्य ज़ोर पकड़ रहा है। कितनी ही संस्थाएँ इस सम्बन्ध में प्रशंसनीय उद्योग कर रही हैं। यह हिन्दी के लिये सौभाग्य की बात है। अब तक कितने ही अज्ञात सत्कवियों का पता लग गया है। परन्तु फिर भी बहुत से

अज्ञात रत्न अभी ऐसी-ऐसी ग्राम-कन्दराओं में पड़े हुए हैं, जहां पर अन्वेषण का प्रकाश नहीं पहुँच सका है, और हिन्दी-जगत् उनसे बिलकुल ही अपरिचित है। हमारे विहार में तो ऐसे कवियों की संख्या और भी अधिक है, क्योंकि यहां ऐसी कोई संस्था नहीं है, जो इस काम में काफ़ी उद्योग कर रही हो। हमारे प्रांत में हिन्दी की कुछ संस्थाएँ हैं भी, तो उनका कार्य्य उनके वार्षिक एवम् अन्य अधिवेशनों तक ही परिमित है।

जहां तक मुझसे बन पड़ा है मैंने परिश्रम करके अपने प्रान्त के कुछ कवियों का पता लगाया है और उन्हीं में से एक सुकवि के विषय में कुछ ज्ञातव्य बातें लेकर आज सम्मेलन-पत्रिका के पाठकों की सेवा में उपस्थित हुआ हूं।

आज मैं जिन कवि महोदय का सम्मेलन-पत्रिका के पाठकों के सामने उपस्थित करने चला हूं उनका नाम पं० रघुनाथप्रसाद मिश्र था। आप पटना जिलान्तर्गत राघवपुर ग्राम निवासी शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। आपके पिता का नाम पं० वैद्यनाथ प्रसाद मिश्र था। आपका जन्म विक्रमीय संवत् १८२५ में हुआ था। शोक के साथ लिखना पड़ता है कि सं० १६:२ में आपका देहान्त भी हो गया। आपके तीन पुत्र अभी वर्तमान हैं, जिनमें मझले पं० अवध प्रसादजी मिश्र काव्यतीर्थ दानापुर-रेलवे-हाईस्कूल में प्रधानाध्यापक हैं। आप एक होनहार नवयुवक हैं। अन्य दो पुत्रों में एक वैद्य हैं और एक अभी विद्यार्थी अवस्था में हैं।

पं० रघुनाथप्रसादजी संस्कृत और हिन्दी, दोनों में कविता किया करते थे। आपकी कविता पुराने ढर्रे की होती थीं। आपकी रचना का अधिकांश शृंगार रसात्मक है। चित्र काव्य के आप बड़े प्रेमी थे, और उसमें कुशल भी थे। इसका पता आपके एक ग्रन्थ "आर्य्याचारादर्श" से भली भांति लगता है। आप तामिल भाषा भी जानते थे, और उसमें आपकी अच्छी जानकारी थी। साहित्य के अतिरिक्त आप ज्योतिष और वैद्यक के भी ज्ञाता थे। आप एक हँसमुख प्रकृति के तेजस्वी पुरुष थे। खेद के साथ

लिखना पड़ता है कि, प्राप्य रहने पर भी, जल्दी के कारण आप का चित्र इस परिचयात्मक नोट के साथ नहीं दिया जा सका।

आपने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना कीः—

१–आर्य्याचारादर्श २–उद्धव (चम्पू) ३–रस-मञ्जूषा ४–सूक्ति-विलास।

इनमें "आर्य्याचारादर्श" में काशी-निवासी प्रसिद्ध वेदान्ती स्व० पं० अनन्तरामजी मिश्र की जीवनी है। यह ग्रन्थ संस्कृत छन्दों में हैं। इस में चित्र-काव्य की भरमार है। संख्या २ के ग्रन्थ का विषय नाम ही से प्रकट है। "रस-मञ्जूषा" में नव रसों पर हिन्दी में कविता की गई है। इस ग्रन्थ की पद्य-संख्या पांच सौ से कुछ ऊपर है। "सूक्ति-विलास" "रस-मञ्जूषा" ही के ढंग का संस्कृत ग्रन्थ है। इसमें भी एक हज़ार से कुछ अधिक छन्द हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त आपके फुटकर छन्द और समस्या-पूर्तियाँ सैकड़ों की संख्या में विद्यमान हैं। परन्तु इनमें से "आर्य्या-चारादर्श" और "रस-मञ्जूषा" को छोड़ कर और किसी को मुद्रण सौभाग्य नहीं प्राप्त हो सका।

पाठकों के मनोरंजनार्थ आप के रचे हुए संस्कृत और हिन्दी के कुछ छन्द नीचे दिये जाते हैं—

संस्कृत

कास्त्वं दिशो गतवती नु सुहृद्धिमुक्ता
　　मुक्ता ललाम मम सम्प्रति कण्ठदेशात्।
कोण त्रये रतिगृहे मृगयाम्यहं त्वाम्
　　शोकातिरेकभयतो न पुनश्चतुर्थे ॥१॥

नीतं नन्दनकानने नववयः स्फीतं मधुस्वेच्छया
पीतं येन सुरद्रुमे सुमनसां सौरभ्यमुद्गारयन्।
सैवायं विमुखे विधौ मधुकरो हा कण्टकैरावृते,
कङ्कोली कुसुमे मनोभिरमयन् दैनं दिनं नीयते ॥२॥

यद्यसि हृदयं न कस्य पुंसः
शमयसि वा नहि शोकमान्तरीयम् ।
विकलयसि च कं न वा वियोगे
तव विषमं मदिरेक्षणे ! चरित्रम् ॥३॥

हे मदिरे ! इतिच्छेदः क्षणे-श्लेषालंकारः ।

हिन्दी

बाल उरोज को ताल कहै कोउ, कंदुक, श्रीफल, दाड़िम कोऊ,
कोउ कहै गिरि, कोउ गिरीशजू, कंचन-कुंभ कहै कवि कोऊ ।
श्री "रघुनाथ" बिचारि कहै मत, काम-करीगर सुंदर दोऊ,
कंचनचूर पियूष में सानि बनायो है मोदक होऊ न होऊ ॥३॥

कंचन के छिति पै छहरै अति सुन्दर कंचन के गिरि दोऊ,
दोऊ के ऊपर नीलम राजत, तापर धार सु जान्हवी कोऊ ।
जान्हवी-धार समीप ससी "रघुनाथ" ससी पर तीर तरोऊ,
ताहि लगे न जियै न मरै नर, पार न पाइ सके भट कोऊ ॥४॥

कैंधौं सरोज के सम्पुट ऊपर निश्चल दोऊ द्विरेफ है टीको,
कैंधौं सुवर्न मही पर है "रघुनाथ" प्रभा यह नील मनीको ।
कैंधौं जू कंचन के घट ऊपर मोहर-दाग मनोज बलीको,
कैंधौं दई चतुरानन के चतुराई सिवान पै चिन्ह सहीको ॥५॥

हाथ कमंडल, माथ जटा "रघुनाथ" जू मूँज सु मध्य कटी के,
अंग रमाए विभूति, विभूषित चन्दनमाल गले तुलसी के ।
ग्यान, विराग सिखावत आवत, आप निरेखत सुन्दर तीके,
देखो जी ! जोगी इहै कलिके, गनिकाहूके पांव पलोटत नीके ॥६॥

—गंगा शरणसिंह

विज्ञापनबाज़ी के अनर्थ

आज मैं हिन्दी-संसार का ध्यान एक ऐसे विषय की ओर खींचना चाहता हूं जिस पर बहुत कम लोगों ने ध्यान दिया है और जिन्होंने दिया है वे उसके पूरे अनर्थ और भयंकरता को या तो उनके असली रूप में देख नहीं पाये हैं या दिखा नहीं पाये हैं। वह है विज्ञापनबाज़ी से होनेवाला अनर्थ। विज्ञापनबाज़ी हमारे देश में एक नई चीज़ है, एक नई आफ़त है। अंगरेजी राज्य और पश्चिमी संस्कृति से जो-जो बुरी चीजें हमने ग्रहण की हैं उनमें एक यह भी है। यह एक सामान्य नियम है कि विजित या गुलाम देश अपने मालिक की ऊपरी और बुरी बातों को जितनी जल्दी अपना लेता है उतना उसकी अच्छी बातों को नहीं। पर देश के सौभाग्य से अब हमें आत्म-ज्ञान होता जा रहा है और हमारा सारासार-विवेक भी जाग्रत हो रहा है। अतएव मुझे आशा है कि पाठक इसे ग़ौर से पढ़ेंगे, इस पर विचार करेंगे और यदि इसमें उन्हें कुछ सार दिखाई दे तो इसके लिए यथोचित आन्दोलन भी करेंगे।

विज्ञापनबाज़ी के दो हिस्से हैं—एक विज्ञापन छपाना और दूसरा विज्ञापन छापना। पहले हिस्से में ज़्यादहतर दुकानदार लोग आते हैं, दूसरे में ज़्यादहतर अख़बारवाले। कितने ही अख़-बारवाले भी अपनी दुकानें रखते हैं, या यों कहें कि कितने ही दुकानदार भी अपने अखबार—फिर वे मासिक हों या साप्ताहिक हों, या दैनिक हों—रखते हैं। कितने ही—प्रायः सब—अखबार-वाले अपने अखबार को चलाने के लिए, बतौर एक सहायक साधन के, दुकानें रखते हैं, कितने ही दुकानदार अपनी दुकान चलाने के लिए अखबार निकालते हैं। दोनों तरह के अखबारवालों में एक बड़ा हिस्सा पुस्तक-प्रकाशकों और पुस्तक-विक्रेताओं का है और एक बहुत छोटा हिस्सा दवाइयाँ बेचनेवालों का है। पुस्तक-प्रकाशन और पत्र-संचालन दोनों से जहाँ तक संबंध है, ये दोनों संस्थाएँ एक दूसरे की पूरक हैं, और यद्यपि इन कामों को

करनेवाले कुछ व्यक्ति हमें धनाढ्य होते हुए दिखाई देते हैं तो भी इन संस्थाओं का प्रेरक हेतु साहित्य-सेवा ही है। हिन्दी के पुस्तक-प्रकाशक, विशेष कर वे जिनके पास अपना छापाखाना है और पत्र भी है, बहुतांश में अपने छापेखाने की बदौलत ही धन एकत्र कर पाये हैं। पर ये इने-गिने हैं। अधिकांश पत्र-संचालक तो बेचारे ज्यों-त्यों करके अपनी संस्थाएँ चलाते हैं, बहुतेरे तो कर्ज पर या धनी मित्रों की सहायता पर जीते रहते हैं और कितने ही तो अकाल ही में चल देते हैं! अस्तु।

मैं यह मानता हूं कि विज्ञापन एक ज़रूरी चीज़ है—प्रचारक और व्यापारी दोनों के लिए। पर साथ ही बहुत विचार के उपरान्त मेरा यह मत भी दृढ़ हुआ है कि विज्ञापनबाजी ने हमारे देश में इस समय जो स्वरूप धारण किया है, वह महा अनर्थकारी है। उसका बहुत ही दुरुपयोग हो रहा है। उससे देश की भारी असेवा हो रही है। इस कुप्रवृत्ति के प्रवाह को रोकने की सख्त ज़रूरत है। क्यों और किस तरह? आगे पढ़िये।

आजकल हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में छपनेवाले विज्ञापनों में हम मुख्यतः चार किस्म की चीज़ें देखते हैं—(१) साहित्य-कला-सम्बन्धी, यथा, पुस्तक, पत्र, चित्र, आदि (२) दवाओं के—विशेष कर, वीर्यवर्द्धक कामोद्दीपक दवाओं के (३) पेश, आराम या मनोरंजन की चीजों के, जैसे-खुशबूदार तेल, इत्र, हार्मोनियम, सरकस, खेल-तमाशे आदि और (४) स्टेशनरी आदि के, जैसे कागज, स्याही, कसरत और मर्दानी खेलों की चीज़ें आदि। विज्ञापन छपवानेवालों की दलील इन दो में से कोई एक हुआ करती है—(१) प्रचार के लिए या (२) रोजगार के लिए। छापनेवालों अर्थात् पत्र-संचालकों की (छापखाना भी विज्ञापन छापता है, पर यहां मैं अखबारों का ही जिक्र करूँगा; क्योंकि यही विज्ञापनबाजी के ज़बरदस्त अखाड़े बन रहे हैं और दूसरे सेवा करने का दावा अखबार जितना करते हैं उतना छापाखाने नहीं) दलील होती है पत्र को चलाने के लिए, जीवित रखने के लिए। विज्ञापनों का छपाना और छापना खूब

समझ में आ सकता है। पर उसके लिए न तो छपानेवाले को छपाई देने की ज़रूरत होनी चाहिए, न छापनेवाले को लेने की। 'सेवा' ही जब दोनों का दावा और हेतु है तब छपाई देकर और लेकर 'सेवा' को महँगा क्यों बनाना चाहिए? मेरी राय में जिन बातों या चीज़ों के प्रचार की ज़रूरत देश-सेवा या समाज-सेवा के लिए है उनके लिए विज्ञापन की छपाई देना और लेना दोनों, यदि अनीतियुक्त नहीं तो, अनुचित ज़रूर हैं। साहित्य और कला-संबंधी तथा अन्य ऐसी ही चीज़ों और बातों के विज्ञापनों को छपाई देना और लेना दोनों बन्द होना चाहिए। प्रचारक पत्र-संपादक से निवेदन करें और संपादक या संचालक जिस वस्तु या बात को देश के हित के लिए आवश्यक समझें उसका विज्ञापन, एक या अधिक बार, जैसा वे उचित समझें, बिना छपाई लिए छाप दें। इससे एक तो प्रचारक-संस्था की बचत होगी और दूसरे पत्र का नैतिक आधार मजबूत होगा, फलतः उसके ग्राहक भी बढ़ेंगे और उसकी घटी निकल जायगी।

अब रोजगार के लिए जो लोग विज्ञापन छपाते हैं और पत्र की पेट-पूर्ति के लिए जो विज्ञापन छापते हैं, उन्हें लीजिए। खाने-पीने, पहनने-ओढने, तनदुरुस्ती रखने, ज्ञान बढ़ाने आदि के लिए आवश्यक चीज़ों के नीति-नियम के अनुकूल व्यापार के लिए स्थान है, न हो सो बात नहीं। पर इनकी तलाश में तो ग्राहक खुद ही रहता है। जब आज के से विज्ञापन के साधन न थे, तब भी लोग ज़रूरी चीज़ों को पा लेते थे और व्यापारी का माल पड़ा न रहता था। फिर भी यदि विज्ञापन आवश्यक ही हो तो उसमें वस्तु के यथार्थ वर्णन और दर दाम तथा पते के उल्लेख के अतिरिक्त ग्राहक को फुसलानेवाली बातें न होनी चाहिए। और जो अखबार उन्हें छापें वे इतनी बातों पर ध्यान रक्खें—(१) विज्ञापन गंदी या हानिकारक चीज़ का तो नहीं है (२) ग्राहक फुसलाये तो नहीं जाते हैं (३) चीजों के दर दाम ज्यादह तो नहीं लगाये हैं और (४) वे खुद भी विज्ञापन की छपाई, कागज और छपाई आदि के

खर्च से, ज़्यादह तो नहीं ले रहे हैं। बल्कि सबसे अच्छा तरीका तो यह होगा कि अखबार दो भागों में बंट जायं (१)—सेवक और (२) विज्ञापक। 'सेवक' पत्रों में विज्ञापन कतई न रहें—जो छपें वे केवल देश-सेवक-प्रचारक संस्थाओं की तरफ से भेजे हुए हों और मुफ़्त में छपें। 'विज्ञापक' पत्र देशसेवी संस्थाओं के विज्ञापन मुफ़्त में छापें और दूसरे अच्छे और उचित विज्ञापन दाम लेकर छापें। 'सेवक' पत्र राष्ट्र की चीज़ हो और वे समाज के आश्रय के पात्र समझे जायं; समाज उनके भरण-पोषण के लिए अपने को बाध्य समझे। 'विज्ञापक' पत्र अन्य व्यापारियों की तरह समाज की सहायता पर जीवित रहने में अपमान समझें। आज 'सेवा' और 'रोज़गार की खिचड़ी हो रही है। हाल यह होता है कि एक ओर बहुत बार 'सेवा' के नाम पर रोजगार होता है और दूसरी ओर रोजगार, का साथ होने से 'सेवा' की गति कुण्ठित होती है। पाखण्ड बढ़ता है और सेवा पंगु होती है।

आज पत्र इस ख़याल से विज्ञापन छापते हैं कि पत्र जीवित रहे या कीमत कम रख सकें जिससे वह अधिक लोगों तक पहुँचे, ग्राहकों को लाभ हो। पर इस मोह में वे ऐसी-ऐसी चीज़ों के लुभावने विज्ञापन उनके सामने रखते हैं जिनके वशीभूत होकर वे अखबार के मूल्य से भी ज़्यादह रुपया बरबाद कर रहें हैं और अपनी शारीरिक और नैतिक हानि भी कर बैठते हैं। हर प्रकार वे 'सेवा' और लाभ के हेतु से अ-सेवा और हानि करने के ही साधनीभूत होते हैं। 'काम-कला-रहस्य' जैसी पुस्तकों और अनेक प्रकार की और वीर्यवर्द्धक दवाइयों, तैलों आदि के विज्ञापनों से लाभ के बजाय हानि ही सिद्ध होती है। फिर कितने ही विज्ञापनों का ढंग और भाषा भी रुचि भ्रष्ट करनेवाली होती है। खास करके वीर्यवर्द्धक दवाइयों के सामने तथा और जगह भी स्त्रियों के—विशेष कर सुन्दरियों के—भड़कीले चित्र देना तो मानों उन्हें अपने व्यापार का साधन बनाना है। हमारी माताओं और बहिनों का यह कम अपमान नहीं है।

अब इस कुप्रवृत्ति के रुकने और रोकने की आवश्यकता अपने आप सिद्ध होती है। यदि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन इसको अपने हाथ में ले तो बहुत काम हो सकता है। हमारे संपादक बन्धु स्वयं भी इसके महत्व को समझ कर इस अनर्थ को रोक सकते हैं। संभव है कि बहुतेरे संपादक इस बुराई को दूर करना चाहते हों, पर लाचार रहते हों। उनके नज़दीक पत्र के जीवन-मरण का सवाल हो। मैं उनकी कठिनाइयों को महसूस कर सकता हूं। पर इसका उपाय यही है कि एक तो वे शुद्ध जीवन को ही सच्चा जीवन समझें। और दूसरे, इस बात पर श्रद्धा रक्खें कि यदि हम समाज की शुद्ध सेवा करते हैं तो हमारे पत्र के पेट की चिन्ता हमें न होनी चाहिए। हमारी यह श्रद्धा समाज के दिल में यह भाव जाग्रत और प्रज्वलित करेगी कि 'सेवक' की सेवा करना उसके भरण-पोषण की चिन्ता रखना हमारा काम है, धर्म है। पत्रकार इस बात को भूल जाते हैं कि विज्ञापन की आमदनी का सहारा ले कर एक तो वे उसके पोषण की जिम्मेवारी अपने सिर ले लेते हैं और दूसरे समाज को उसकी तरफ से उदासीन बना देते हैं। या तो हम 'सेवक' रहें या 'व्यापारी'। 'सेवक' समाज की सेवा करता है, 'व्यापारी' अपनी। जो सेवा पाता है वह सेवक का ध्यान रखता है और उसे रखना चाहिए, न रखना अपने कर्तव्य से चूकना है, अपने को सेवा का अनधिकारी साबित करना है। अखबारों ने देश की बहुत सेवा की है, अब भी करते हैं; यदि वे इस बुराई से बच जायं तो उनके द्वारा बहुत शुद्ध और सच्ची सेवा होगी और वे संसार में पत्र-संपादन का बहुत उज्ज्वल नमूना पेश करेंगे।*

हरिभाऊ उपाध्याय

(हिन्दी-नवजीवन)

---

* श्रीहरिभाऊजी उपाध्याय का यह लेख, देश, काल और समाज के अनुकूल ही नहीं, वरन् परमोपयोगी और श्रेयस्कर है। वास्तव में, विज्ञापनबाजी ने जो अश्लील, विकृत और भीषण रूप धारण किया है, उसे देखकर लज्जा, दुःख और क्रोध

कृषि साहित्य

जिस क्रिया द्वारा धरती से प्राणियों के खाने के लिये अन्न और फल, तथा पहरने-ओढ़ने के कपड़ों के लिये तंतु पैदा किये जाते हैं उसे कृषि वा किसानी कहते हैं। जिन ग्रंथों द्वारा धरती से उत्तमोत्तम धान्य, फल और तंतु प्रचुर मात्रा में पैदा करने का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है उन के समूह को कृषि-साहित्य कहते हैं। भारत का वर्त्तमान कृषक-समाज इस बात को अपनी अज्ञता के कारण नहीं मानता कि साहित्य द्वारा कृषि की उपज की उन्नति की जाती है।

भारत में इस समय जो राजा-महाराजा, माफीदार, ज़मीनदार, मालगुजार, पटेल और गौंटिया किसानों से खेती कराकर अपने को धन-धान्य-संपन्न तथा अधिकारशाली बनाते हैं वे खेती के पास जाना अपने लिये अपमानजनक मानते हैं। जो लोग प्रत्यक्ष किसानी करते हैं उनका बड़ा भारी समूह निरक्षर अतः अज्ञानी होने के कारण कृषि जैसे महत्वपूर्ण विषय की विशालता और उपयोगिता को नहीं जानता। भारत में इस प्रकार खेती करने और करानेवालों की घोर उपेक्षा और निंद्य अवहेलना के कारण कृषि बहुत ही बुरी दशा में है। उसकी इस बुरी दशा का परिणाम भारत के सब श्रेणी के लोगों को—राजा से रंक तक को अखरता और खटकता है, पर आश्चर्य्य की बात तो यह है कि किसी का

उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। लेखक का यह कथन कि, आज 'सेवा' और 'रोजगार' की खिचड़ी हो रही है, अक्षरशः सत्य है। इस खिचड़ी का परिणाम यह हुआ है कि न तो सेवा का ही शुद्ध और पवित्र रूप रहा है और न रोजगार ही लाभकारी और उत्तरदायित्वपूर्ण। चरित्र-बल को तो जैसी कुछ इस गन्दी विज्ञापनबाजी से हानि पहुँची है, कुछ पूछिये नहीं। कभी-कभी तो अच्छे-से-अच्छे पत्र को, उसपर गन्दे विज्ञापन देखकर, फाड़कर फेंक देने को मन चाहता है। उपाध्यायजी के इन सद्विवेचनापूर्ण विचारों पर हिन्दी-साहित्य-संसार को पर्याप्त प्रकाश डालकर आन्दोलन करना चाहिए। —सम्पादक

ध्यान उसे सुधारने की ओर नहीं जाता। रुपये के छह-सात सेर घटिया गेहूँ, चार-पांच सेर चावल और दाल, सात-आठ छटाक दूषित घी, दो-तीन सेर अपवित्र दूध लेना बड़े-बड़े सज्जनों को अखरता है। ग़रीबों को वह जिस प्रकार दुख देता है उस का अनुभव करनेवाले भुक्तभोगियों की संख्या आज दिन भारत में कम नहीं है। बड़े नामी-ग्रामी कहानेवाले लोगों के प्रत्येक कुटुंबी को महीने क्या वर्षों दूध और घी यथेष्ट मात्रा में देखने को नहीं मिलता। हा भगवन्! इस से बढ़ के और कष्ट क्या हो सकता है? पुनः कहना पड़ता है कि बड़े-बड़े प्रकांड पंडित और विद्वच्चक्र-चूड़ामणि इस दुरवस्था को प्रतिदिन देखते और भोगते हैं, तो भी उन के चित्तों में, न जाने क्यों, भोज्यान्नों के कष्टों को दूर करने के उपाय सोचने और ढूँढ़ने की भावना उत्पन्न नहीं होती।

भारत के वर्त्तमान धनीमानी और ज्ञानी लोग किसानी के पास जाना पाप समझते हैं और दरिद्र किसान लोग उस के तत्वों के समझने की क्षमता नहीं रखते, अतः उसे दैवी आपत्ति मान कर —उस से रक्षा और त्राण पाने के उपाय को असंभव मानकर—वे लोग चुपचाप उसे सहते जाते हैं। यह बात निःसंदेह दोनों के लिये एक सी दुःखद है। उस में अंतर है तो यही है कि धनवानों को धन की विपुलता के कारण कष्ट अधिक नहीं अखरता, साधारणवित्त तथा ग़रीबों को वह बहुत अखरता है। जो धनवान् किसानी के विज्ञानमूलक तत्व और महत्व को बिना समझे बूझे उसे कर रहे हैं, उनकी पूंजी का भीतर के भीतर ह्रास हो रहा है, पर वे लोग इसकी परवाह नहीं करते। इस उपेक्षा के कारण एक नहीं अनेक बड़े-बड़े ज़मींदार और मालगुज़ार मिट गये। पर बलिहारी है मोह की, कि उस के मारे वर्त्तमान धनाढ्य ज़मींदार और मालगुजारों का ध्यान उस वस्तु-स्थिति की ओर अणुमात्र भी नहीं जाता।

पाश्चात्य संसार के जिन देशों में आज से सौ-पौन सौ वर्षों के पूर्व गेहूं, चावल जैसे धान्य, संतरे, बिही, अंगूर जैसे फल और

कपास के कपड़े के तंतु, रूई, और दूध मक्खन जैसे पौष्टिक पदार्थ केवल धन-कुबेरों के भोग विलास के पदार्थ थे वहां तो आज दिन कृषि-साहित्य की कृपा से वे चीज़ें अब इतनी प्रचुर मात्रा में पैदा की जाती हैं कि आज दिन वहां के श्रमजीवी तक को वे पर्य्याप्त मात्रा में मिल सकती हैं। और भारत में, जहां वे अभी पांच-पचीस वर्षों के पूर्व्व तक सब लोगों को सुगमता से मिलती थीं, वहां बड़े बड़े लोगों तक को उनका पर्य्याप्त मात्रा में मिलना कठिन हो गया है। इस दुरवस्था की ओर भारत के वर्त्तमान विद्वानों तथा धनी लोगों को अब बहुत शीघ्र ध्यान देना चाहिये। इतःपर वे यदि और भी इस गुरुतर विषय की उपेक्षा करेंगे तो उनको और उनकी वर्त्तमान तथा भावी संतति को और भी अधिक अन्नवस्त्र का कष्ट भोगना पड़ेगा।

पाश्चात्य जगत् के देशों में सन् १८६२ में जहां एक मन गेहूं की बीज की उपज चार मन से अधिक नहीं होती थी, वहां अब वह पंद्रह से तीस-बत्तीस मन तक होती है, जहां उनकी गौवें सेर दो सेर दूध देती थीं वहां अब वे पचीस-तीस सेर दूध और दो सेर तक मक्खन प्रतिदिन देती हैं। यह सब वहां क्यों हुआ है? इसका सीधा और सरल उत्तर यह है कि वहां के विद्वानों ने प्रकृति के रहस्य को जानने में बहुत समय देकर परिश्रम किया है। कृषकों में विज्ञानमूलक शिक्षा फैलाने के लिये खासा कृषि-साहित्य प्रस्तुत कर दिया है। धनवानों ने विद्वानों की खोज के ज्ञान को अपने देश के किसानों में फैला देने में मुक्तहस्त होकर धन लगाया है। तभी उक्त प्रकार की सुविधा उन देशों में पैदा की जा सकी है।

यह कोई बात नहीं है कि भारत में ऐसे विद्वान् नहीं हैं कि जो प्रकृति के रहस्य का ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ हों वा ऐसे धनवान नहीं हैं जो उनकी खोजों के ज्ञान को किसानों में फैलाने के लिये पर्य्याप्त धन नहीं लगा सकते हों। तात्पर्य्य, भारत में विद्वान् और धनवान दोनों हैं। यदि किसी बात की कमी है तो वह यही है कि उस ओर उनका ध्यान नहीं जाता।

इस क्षुद्र लेखक की यह प्रार्थना भारत के दिग्गज विद्वानों का ध्यान कृषि-साहित्य प्रस्तुत करने की ओर आकृष्ट कर सकेगी तो उसका परिश्रम सफल होगा ।

साहित्य द्वारा किसानों की उन्नति नहीं की जा सकती वा स्वराज्य प्राप्त किये बिना उसकी उन्नति नहीं की जा सकती, ऐसा जो भद्रपुरुष कहते हैं, थोथा और निःसार है। कृषि जैसे महत्वपूर्ण विषय की उन्नति के लिये स्वराज्य-प्राप्ति की बाट जोहना बड़ी भयंकर भूल है। आशा है कि हमारे षड़प्रज्ञ पाठक निम्नलिखित पद्य के गंभीर भावों पर ध्यान रखते हुए हमारे इस निवेदन पर ध्यान देने की कृपा करेंगे ।

गावश्च मातृवात्सल्यं ब्राह्मणो ज्ञानसंचयः ।
एते यत्र न हीयंते समृद्धेस्तत्र न क्षयः ॥

—गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

संवत् १९८१ वि० की प्रथमा परीक्षा की उत्तर-पुस्तकों पर परीक्षकों की सम्मतियां

प्रथमा परीक्षा

साहित्य—पहला प्रश्न-पत्र

८० फ़ी सदी परीक्षार्थी पास हैं। कोई विशेष दोष देखने में नहीं आया। लड़कों ने अच्छा लिखा है—यों तो कुछ-न-कुछ मामूली ग़लतियाँ होती ही हैं। परीक्षा-फल संतोषजनक है।

—कन्नोमल एम्० ए०

साहित्य—दूसरा प्रश्न-पत्र

कापियां दयालुता से देखी गयी हैं—क्योंकि बहुत ही ख़राब हैं। १८४ कापियाँ आयी थीं; ४६ अनुत्तीर्ण हुए हैं। [अर्थात् इस विषय का परीक्षा-फल लगभग ७६ प्रतिशत रहा।]

—गुरुप्रसाद पांडेय, एम्० ए०; एल० एल० बी०, साहित्यरत्न

साहित्य—तीसरा प्रश्न-पत्र

पिछले तीन वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष परीक्षा-फल अच्छा रहा। उत्तीर्ण परीक्षार्थियों की संख्या ८० प्रतिशत थी। मेरी सम्मति में इसका मुख्य कारण यह था कि परीक्षार्थियों के लिए आवश्यक था कि वे निबन्ध लिखने के पहले उसका ढाँचा तैयार करें। २-३

परीक्षार्थियों के निबन्ध बहुत उत्तम थे। अधिकांश परीक्षार्थियों ने 'गो० तुलसीदासजी का जीवनचरित्र और उनके ग्रन्थ' पर ही निबन्ध लिखा था। गहन विषयों को दो-चार ने ही छुआ था, यद्यपि ये विषय ऐसे थे जिनकी चर्चा हिन्दी के समाचार-पत्रों और मासिक पत्रिकाओं में होती ही रहती है। २-३ परीक्षार्थी ऐसे भी थे जो इस योग्य भी न थे कि हिन्दी की साधारण तीसरी कक्षा में भी भर्ती किये जायँ! परीक्षार्थिनियों की केवल ३ उत्तर-पुस्तकें मेरे पास आई थी, परन्तु वे तीनों ही उत्तम थीं।

पिछले तीन वर्षों से जो अशुद्धियाँ और भूलें मैं बता रहा हूं वे इस वर्ष भी थी हीं। इसलिए यहां पर उनको दुहराना मैं व्यर्थ-सा ही समझता हूं। परीक्षार्थियों की योग्यता बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि जिन केन्द्रों में उनकी संख्या अधिक है वहां एक-एक हिन्दी-विद्यापीठ अवश्य खोला जाय जिसका एक उद्देश्य सम्मेलन की परीक्षाओं के लिए परीक्षार्थी तैयार करना भी हो।

—मदनलाल जैन बी० ए०, एल० टी०,

इतिहास

प्रायः परीक्षार्थियों की इस विषय में बहुत कम योग्यता पायी गयी—विशेष रूप से हिन्दूकालीन इतिहास में। यह खेदजनक है। हस्त-लेखन अच्छा नहीं है और शब्दों में हिज्जे आदि की भी बहुत भद्दी अशुद्धियाँ हैं।

—कालीशंकर भटनागर एम० ए०

गणित तथा प्रारम्भिक विज्ञान

फल कुछ बुरा नहीं है। २० प्रतिशत परीक्षार्थी असफल रहे हैं। परन्तु खेद है कि इस वर्ष कोई परीक्षार्थी भी पूर्ण अंक प्राप्त न कर सका। विज्ञान के प्रश्नों का उत्तर जैसा होना चाहिये वैसा नहीं है। विशेष कर प्रश्न सं० १२ का उत्तर बहुत ही न्यून का ठीक है। यह प्रश्न सब से अधिक आवश्यक था। गणित विभाग में प्रश्न ६

व १० एकाध का ही ठीक है। प्रश्न ५ (आ) को किसी ने भी ठीक नहीं किया। अधिकतर उत्तर लिखने की विधि, अर्थात् प्रश्नों की व्याख्या करने की विधि, बड़ी त्रुटिपूर्ण हैं। स्पष्ट रूप से लिखकर समझाना तो बहुत-से जानते ही नहीं हैं। कोष्ट तथा 'का' के कारण प्रश्न १ में भी अनेकों ने भूल की है। निस्संदेह कई स्थानों की उत्तर-पुस्तकें अत्युत्तम हैं।

—नन्दराम वैश्य बी० ए०

विज्ञान और स्वास्थ्य-रक्षा

उत्तर-पुस्तकों के देखने से मालूम होता है कि अधिकतर विद्यार्थियों ने पाठ्य पुस्तकों को अच्छी तरह नहीं पढ़ा। कई विद्यार्थियों के उत्तर से जान पड़ता है कि उन्होंने कभी पुस्तकें देखी ही नहीं और वैसे ही परीक्षा में बैठ गये। प्रश्न ८ और १० को दो-तीन विद्यार्थियों को छोड़ किसी ने नहीं किया। शेष कोई आलोचनीय बात नहीं है।

—जगन्नाथ त्रिपाठी एम० ए०

संस्कृत

परीक्षार्थियों की संख्या तथा योग्यता पूर्वापेक्षा अधिक संतोषजनक है। नामावली से ज्ञात होता है कि ३७ ने यह विषय लिया था जिनमें १४ अनुपस्थित रहे और २३ सम्मिलित हुए। इनमें केवल ३ अनुत्तीर्ण हुए। २० उत्तीर्ण छात्रों में से एक अच्छी संख्या ऐसों की थी जिन्होंने अपनी योग्यता का पर्याप्त परिचय दिया। तथापि व्याकरण-विषयक प्रश्नों के उत्तर प्रायः अच्छे नहीं दिये, अतः इस विषय की ओर विद्यार्थियों को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

—रघुवर मिट्ठूलाल शास्त्री एम० ए०

दर्शनशास्त्र और धर्मशास्त्र

विद्यार्थी धर्म-शिक्षा और दर्शन विषय में ग्रन्थ को याद नहीं करते और उत्तर देने के अवसर पर गप्प लड़ाते हैं। धर्मशास्त्र को

धर्मशास्त्र समझ कर उसका स्मरण नहीं करते, पाठ नहीं करते और सुनी-सुनायी बातों से परीक्षा में उत्तीर्ण होना चाहते हैं। ... बालक धर्म-ग्रन्थ के तत्वभाग पर ध्यान न देकर इधर-उधर की बातों को ही तत्व समझने लगते हैं। ... परीक्षार्थी बालक प्रश्न-पत्र को ध्यान से नहीं पढ़ते, परीक्षक के प्रश्न का आशय भी नहीं समझते कि परीक्षक प्रश्न का कितना उत्तर चाहता है। परीक्षक चाहता है कि उसके प्रश्न का उत्तर एक पंक्ति में ही हो, परन्तु To the point हो; तो भी पूर्णाङ्क प्राप्त हो सकेंगे। परीक्षार्थी बालक यद्यपि दर्शन और गीता के रहस्यों को नहीं समझ सकते, तो भी उसका पाठमात्र स्मरण कर सकते हैं। परन्तु पाठ-स्मरण में आलस्य करने से वे दोनों बातों से वंचित रहते हैं। न पाठ याद करें, न तत्व ज्ञान। विद्यार्थियों को चाहिये कि वे प्रारम्भ योग्य कुछ संस्कृत का अध्ययन थोड़ा-थोड़ा किया करें और शुद्ध लेख का अभ्यास करें।

—जयदेव शर्मा, विद्यालंकार

शासन-पद्धति

१—बहुत से परीक्षार्थियों ने इस विषय की या तो कोई पुस्तक नहीं देखी, अथवा देखी भी है तो बहुत पुरानी। सेना का ख़र्च कई परीक्षार्थियों ने २, ७२ लाख पौंड लिखा है, यह तो कई वर्ष पहिले का अंक है।

२—कई परीक्षार्थियों के विचार इस विषय में बहुत भ्रमपूर्ण हैं। वे लिखते हैं कि ज़िलों में चीफ कमिश्नर या सूबा हैं अथवा होने चाहिये।

३—इस विषय के समुचित ज्ञान के लिये समयोपयोगी नये संस्करण की पुस्तकों के देखने के अतिरिक्त सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के पढ़ने की बड़ी आवश्यकता है। बहुत कम परीक्षार्थियों ने तीसरे प्रश्न का कुछ ठीक उत्तर दिया है। इस से मालूम होता है कि वे अख़बारी दुनिया से नितान्त अनभिज्ञ हैं।

४—पहिले प्रश्न का उत्तर बहुत से विद्यार्थियों ने देने का प्रयत्न किया है और बहुत कुछ वह ठीक भी हुआ है। इससे स्पष्ट है कि वे शासन-पद्धति के ज्ञान का महत्व समझते हैं। —भगवान दास केला

बुनाई

गतवर्ष की अपेक्षा इस वर्ष परीक्षार्थियों ने प्रश्नोत्तर देने में अवनति की है। ऐसा ज्ञात होता है कि पाठ्य-क्रम में निर्धारित की हुई पुस्तक को तो किसी ने पढ़ा ही नहीं, इसी कारण लगभग सब विद्यार्थी प्रश्नों के ठीक-ठीक उत्तर देने में असमर्थ रहे हैं। केवल बुनाई पर ध्यान दिया गया है; कताई-धुनाई को बिलकुल छोड़ दिया है। चर्खे के सम्बंध में जो लेख दिया गया था उसको साहित्यिक ढंग पर लिखा है, यद्यपि उसमें आर्थिक विषयों पर प्रकाश डालना चाहिये था। स्वच्छ तथा सुलेख लिखने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया गया।

इसके अतिरिक्त, मुझे परीक्षा-समिति से निवेदन करना है कि बुनाई की इस तरह की परीक्षा से कुछ अधिक लाभ न होगा, जब तक कि इसकी व्यावहारिक Practical परीक्षा न हो। यद्यपि इसमें कुछ कठिनाइयाँ अवश्य हैं, तथापि यही बुनाई की यथार्थ परीक्षा कही जा सकती है। यदि समिति इसे उचित समझेगी तो मैं इसके विवरण के सम्बंध में अपनी विनीत सम्मति फिर प्रकट करूँगा।

—लालताप्रसाद श्रीवास्तव

उर्दू

कतिपय परीक्षार्थियों ने चतुर्थ प्रश्न का उत्तर उर्दू लिपि में लिखा जो नियमविरुद्ध था। कुछ उत्तर-पुस्तकों में शुद्ध शब्दों के स्थान पर अशुद्ध शब्दों का प्रयोग अधिक था, यथा "हैं" के स्थान पर "है", वायु के स्थान पर "वायू" और "शीतल" के स्थान पर "सीतल" इत्यादि

प्रथमा परीक्षा की उत्तर-पुस्तकों पर यही सम्मतियाँ प्राप्त हुई हैं।

—रामसुन्दर त्रिपाठी

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग

रामरत्न, परीक्षामंत्री

राष्ट्रभाषा पर भाई परमानंद के विचार

[भारतीय ग्रन्थमाला के दशाब्दि-उत्सव के अवसर पर, सभापति के आसन से, श्रीयुत भाई परमानन्दजी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी के संबंध में जो विचार प्रकट किये थे, वह नीचे दिये जाते हैं—सं०]

सबसे पहले ऋषि दयानन्दजी ने ५० वर्ष हुए, देश की परिस्थिति देखकर, इस आवश्यकता का अनुभव किया कि देशोन्नति के साधनों में राष्ट्रभाषा का मुख्य स्थान है। भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है, इस परिमाण पर वह कुशाग्रबुद्धि शीघ्र ही पहुंच गया। उसकी दूरदर्शिता और उदारता का परिचय इस बात से मिलता है कि यद्यपि उसकी मातृभाषा गुजराती थी; तथापि उसने हिन्दीभाषा को अपनाया और इस प्रकार नवीन भारत के लिये पथ-प्रदर्शक का कार्य किया।

हर्ष की बात है कि भारतवर्ष के सब प्रान्तों में हिन्दीभाषा के प्रचार की ओर रुचि दिखायी दे रही है। आर्यसमाज ने भी इस भाषा के प्रचार-प्रोत्साहन में योग-दान दिया है। तथापि मुझे अपने प्रान्त के आर्यसमाज तथा सनातनधर्मी हिन्दू-समाज से यह शिकायत है कि उन्होंने इस सम्बन्ध में उतना क्रियात्मक कार्य नहीं किया जितनी उनसे आशा थी। वैदिक धर्म्म, सनातन धर्म, या हिन्दू धर्म्म, कोई नाम देलो मुझे तो इनकी रक्षा का मूल आधार संस्कृत दिखाई देती है और उसका द्वार हिन्दीभाषा है। परंतु खेद है कि आर्यसमाज आदि की स्थापित बहुत सी शिक्षा-संस्थाओं, स्कूलों, कालिजों तथा पत्र-पत्रिकाओं में उर्दू अथवा अँग्रेज़ी को ही

अधिक आदर प्रदान किया जाता है। आश्चर्य है कि वर्तमान भारत में बड़ी ज़बर्दस्त जागृति होने पर भी अभी तक बहुत से नेता भी स्वदेश भाषा का समुचित महत्व नहीं समझे हैं। वास्तव में जातियों का जीवन, स्वतन्त्रता और व्यक्तित्व उनकी अपनी भाषा होने ही से प्रकट होता है। मुझे एक घटना स्मरण करके बड़ी लज्जा आती है। जब मैं अमरीका में था, एक दिन मुझे यहां से एक पत्र मिला। उस समय एक अमरीकन लड़का बड़े कौतूहल से दौड़ता हुआ मेरे पास आया और बोला 'देखूं तुम्हारे देश की भाषा कैसी होती है ?' परन्तु वह पत्र अंग्रेज़ी में लिखा देख कर उसने मुंह मोड़ लिया और कहने लगा कि 'क्या तुम्हारे देश की कोई अपनी भाषा नहीं ?' उस लड़के के भाव की मैं प्रशंसा करता हूं, परन्तु स्वदेश की इस हीनावस्था पर बड़ा दुःख होता है।

महात्मा गांधी से पहले हमारी कांग्रेस आदि सभाओं में वही लोग नेता समझे जाते थे जो अंग्रेज़ी में धाराप्रवाह भाषण कर सकते थे। महात्माजी के प्रशंसनीय प्रयत्न पर भी अभी तक विदेशी भाषा का मोह पूर्णतया नहीं छूटा है। यह हमारा पतन ही तो है कि यदि कोई स्त्री अंगरेजी में अच्छा व्याख्यान दे सके तो उसे आसमान पर उठा लिया जाता है।

सच्चे और पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति के लिये राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार अनिवार्य है और राष्ट्रीय शिक्षा का कार्य राष्ट्रभाषा द्वारा ही सम्पादन हो सकता है। मैं तो यहां तक कहने को तैयार हूं कि सरकारी स्कूलों में यदि नीचे से लेकर ऊपर तक, सब श्रेणियों में, शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो जाय तो सरकारी शिक्षा-पद्धति होते हुए भी विशेष चिन्ता की बात नहीं। हम उसके दुष्परिणाम का निवारण सहज ही कर सकेंगे।

भारतीय राष्ट्र-निर्माण के लिये हिन्दी का विस्तार अमोघ उपाय है। इसीसे उत्तरी, दक्षिणी, बंगाली महाराष्ट्री, गुजराती और मद्रासी के प्रान्तीयता के भेद-भाव मिट सकते हैं।

इसलिये हिन्दी भाषा के प्रचार और हिन्दी-साहित्य की उन्नति या वृद्धि के सम्बन्ध में जो संस्था, समाज या व्यक्ति जितना पुरुषार्थ करता है, उतना ही वह देश की उन्नति में सहायक है। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, नागरी-प्रचारिणी सभाएँ, आर्य-समाजें, सनातनधर्मी संस्थाएँ, महात्मा गाँधी तथा अन्य हिन्दी-प्रचारक और साहित्य-सेवी जाति के धन्यवाद के पात्र हैं।

देशी भाषाओं का महत्व

[देशीभाषा-शिक्षक-सम्मेलन के अध्यक्ष श्रीमान् राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर बी. ए. ने देशी भाषाओं के महत्व पर निम्नलिखित विचार प्रकट किये हैं—]

हमारे इस देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में और कहीं-कहीं तो एक ही प्रान्त के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं। एक इतने बड़े महादेश में—भारत महादेश है इसमें सन्देह ही क्या है ?—सभी लोग एक ही भाषा लिखें-बोलें, यह तो बड़ा ही कठिन व्यापार है। शायद वह दिन आने में अभी युगों की देर है। यद्यपि इस देश में जन-संख्या के विचार से दो ही बड़ी जातियां—हिन्दू और मुसलमान—निवास करती हैं, तथापि न तो देश-भर के हिन्दुओं की भाषा हिन्दी है और न देशभर के मुसलमानों की भाषा उर्दू। पञ्जाब, युक्त-प्रदेश, बिहार, मध्यप्रान्त, महाराष्ट्र, मदरास और बङ्गाल आदि भिन्न-भिन्न प्रान्तों के हिन्दू एक ही धर्म, सभ्यता और संस्कारों के उत्तराधिकारी होते हुए भी तरह-तरह की भाषाएं व्यवहार में लाते हैं। इसी तरह सर्वत्र के मुसलमान भी उर्दू ही नहीं बोलते। नमूने के तौर पर बङ्गाल की ही बात ले लीजिये। वहां के मुसलमान, क्या घर क्या बाहर, सभी जगह बङ्गला ही लिखते-बोलते हैं। हमारे बिहार-प्रान्त में भी बोलने की भाषा हिन्दू-मुसलमान दोनों की एक ही है। हां, लिखने में अलबत्ता हमारे मुसलमान भाई उर्दू लिपि का सहारा लेते हैं। तो भी बहुत से मुसलमान

भाई हिन्दी लिखते-पढ़ते हैं और कितने ही तो हिन्दी के अच्छे लेखक भी हैं। यदि सच पूछा जाय, तो हिन्दी-उर्दू में कोई भेद नहीं है। दोनों एक ही हैं। भेद केवल लिपि का है। तो भी गत शताब्दी के अन्दर इन दोनों को दो भिन्न रूप देने का प्रयत्न बड़े ज़ोरों से होता रहा है। यह प्रयत्न केवल मुसलमानों की ही ओर से नहीं हुआ, इसमें हमारे बहुत से फ़ारसी-अरबी के पण्डित हिन्दुओं का भी हाथ है। इस समय भी उर्दू का जो रूप है, उसमें से यदि अरबी-फ़ारसी के कठिन शब्द निकाल दिये जायँ, तो हिन्दी-उर्दू में कोई भेद ही न रहे। परन्तु अब तो इस भेद को दूर करना एक कठिन व्यापार हो रहा है। उर्दू ने अपना स्वतन्त्र अस्तित्व स्थिर कर लिया है—उसका अपना निज का अच्छा-सा साहित्य हो गया है। उसपर उचित गर्व करनेवाले, न केवल मुसलमान ही बल्कि, बहुत से हिन्दू भी हैं, जो अपनी विद्या, बुद्धि और प्रतिभा से उर्दू के साहित्य का शृंगार-सम्पादन करने में लगे हैं। इस प्रकार हिन्दी हिन्दुस्तान के एक बहुत बड़े हिन्दू-जन-समुदाय की भाषा हो गयी है और उर्दू हिन्दू-मुसलमान दोनों की बोल-चाल की भाषा बन रही है। इसी प्रकार अन्यान्य प्रान्तों में भी अनेक प्रान्तीय भाषाएँ लिखी, पढ़ी और बोली जाती हैं—जैसे बँगला, गुजराती, मराठी, तेलगू, कनाडी इत्यादि। अपने-अपने प्रान्तों की इन भाषाओं की उन्नति करने का प्रयत्न वहां के मनस्वीगण बराबर करते रहते हैं और ऐसा करना उनके लिये स्वाभाविक और कर्तव्य भी है। इस प्रयत्न में उन लोगों ने बहुत कुछ साफल्य भी लाभ किया है।

इन्हीं भिन्न-भिन्न प्रान्तीय भाषाओं को देशी भाषा कहते हैं। प्रतिदिन उठते-बैठते, चलते-फिरते, काम-काज करते और चिट्ठी-पत्री लिखते हुए हमलोग इन्हीं भाषाओं से काम लेते हैं। यह हमारी मातृ-भाषाएँ हैं—हमने इन्हें अपनी माता के दूध के साथ ग्रहण किया है। इनपर हमारी ममता माता से कम नहीं है। इस ममता को हम कभी, किसी तरह, अपने दिल से दूर नहीं कर सकते। हम जितनी शीघ्रता के साथ मातृभाषा के द्वारा किसी विचार को हृदय-

क्रम कर सकते हैं, उतनी जल्दी और आसानी के साथ और किसी भाषा के द्वारा नहीं कर सकते। कारण, कोई भी विचार सर्वप्रथम इसी भाषा के सहारे हमारे मस्तिष्क में उत्पन्न होता है। हम इसी भाषा में सब कुछ सोचते-समझते हैं।

अँगरेज़ी राज्य के प्रसार के साथ-साथ इस देश के अन्दर अंगरेज़ी शिक्षा का भी धीरे-धीरे अच्छा प्रचार और विस्तार हुआ। हमारे हिन्दुस्तानियों में से अनेक महानुभाव इस विद्या के पारङ्गत हो चुके हैं और प्रतिवर्ष देशीय विश्वविद्यालयों से ऊँची-ऊँची डिग्रियाँ पाकर और पाश्चात्य देशों से सर्वोच्च शिक्षा ग्रहण कर बहुत से लोग इस विद्या के विशारद होकर निकलते हैं। परन्तु इतने बड़े देश की इतनी बड़ी जनसंख्या को देखते हुए अंगरेज़ी-शिक्षाप्राप्त सज्जनों की संख्या "शाकाय वा स्यात्, लवणाय वा स्यात्" के समान थोड़ी ही है! हमारी जन-संख्या का बहुत बड़ा भाग अभीतक इस लाभ से वञ्चित है। उसे केवल देशी भाषाओं का ही सहारा है। इन्हीं के द्वारा वह जीवन-संग्राम के लिये उपयोगी ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर सकता है। साथ ही अंगरेज़ी शिक्षा महँगी भी बहुत है। भारत जैसे दरिद्र देश के सभी अधिवासियों के लिये यह शिक्षा वैसी सुलभ नहीं है। अतएव देशी भाषाओं के उत्तेजन और उन्नयन की बहुत बड़ी आवश्यकता है। ऐसा ही करने से इस देश की भयंकर निरक्षरता दूर कर साक्षरता का प्रचार किया जा सकता है। यह कार्य देशी भाषाओं की समुचित शिक्षाद्वारा जितना सहज-सम्भव है, उतना और किसी प्रकार से नहीं हो सकता।

अन्य प्रान्तों की बात जाने दीजिये, अपने ही प्रान्त की बात ले लीजिये। देखिये, हमारे इस बिहार-उड़ीसा-प्रान्त में प्रधानतया तीन ही भाषाओं का प्रचार है—हिन्दी, उर्दू और उड़िया। हमारे बहुत से बङ्गाली भाई यहां आकर बस गये हैं और उन्होंने इसी प्रान्त में अपना घर बना लिया है। इसलिये अच्छा तो यही होता कि वे लोग भी यहीं की बोलियों में से किसी एक को अपना लेते,

जैसा कि हमारे यहां के बहुत से भाइयों ने बङ्गाल में बसकर बँगला को ही अपना लिया है। तो भी यदि वे अपने मातृभाषा-प्रेम के वशवर्ती हो अथवा अन्य किसी सुविधा के विचार से बंगला को छोड़ना नहीं चाहते, तो इनकी सुविधा का विचार कर हम बँगला को भी यहाँ की अन्यतम प्रान्तीय भाषा मानलें, तो कुछ बेजा नहीं होगा। यों तो इस देशसे इस प्रकार के बहुभाषा-व्यापकत्व का आडम्बर जहां तक मिट जाय, वहीं तक मङ्गलप्रद है, तथापि अभी जैसी स्थिति है, उसमें तो यह भेद की दीवार टूटती नहीं नज़र आती। इसलिये इन भिन्न-भिन्न देशी भाषाओं को पनपने देनेके लिये उत्तेजन देने की परम आवश्यकता है। हाँ, यह प्रश्न ही कुछ और है, कि हम अपनी-अपनी प्रान्तीय बोलियों को स्थिर रखते हुए उन्हें काममें लायँ, परन्तु सारे भारत को एक ही जातीय सूत्र में ग्रथित करने के लिये किसी ऐसी भाषा को अवश्य ही अपना लें, जो राष्ट्रभाषा कहलानेकी योग्यता रखती हो। यूरोप में नाना प्रकार की भाषाएँ बोली जाती हैं, परन्तु प्रायः सभी देशों में अंगरेज़ी भाषाका व्यवहार ज़ारी हो गया है, जिससे अंगरेज़ी जाननेवाले का सभी मुल्कों में बड़ी आसानी से काम चल जाता है। कहते हैं कि अंगरेज़ी भाषा ने इस हिसाब से सारे संसार पर विजय प्राप्त कर ली है। इतने पर भी यूरोप के विद्वान् सन्तुष्ट नहीं हैं। उन्हें अंगरेज़ीमें भी कुछ कसर दीखती है और वे समस्त संसार से भाषा-भेद को एकदम मिटाकर एक सर्व-सुलभ, सहज बोध्य विश्व-भाषाकी योजना करनेमें लगे हुए हैं।

ऐसी अवस्था में क्या हम भारतवासी सारे संसार की एक भाषा बनाने की बात छोड़कर केवल अपनी ही सुविधा, सुगमता और सार्वजनिक कल्याण की कामना से प्रेरित हो अपने देशके लिये एक राष्ट्रभाषा की योजना नहीं कर सकते ? वह दिन देशके लिये कितने आनन्द का होगा, इसकी कल्पना भी कम सुखद नहीं है। (शिक्षा)

मुस्लिमलीग के एक प्रस्ताव पर काशी-नागरी-प्रचारणी सभा

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की प्रबन्ध समिति के १ मार्च १९२५ के अधिवेशन में नीचे लिखे प्रस्ताव स्वीकृत हुए हैं—

१—(क) निश्चय हुआ कि संयुक्त प्रांत की हिन्दू सभाओं, सनातनधर्म सभाओं, आर्य्यसमाजों तथा आर्य्य प्रतिनिधि सभा का ध्यान संयुक्तप्रांत की मुस्लिम लीग की इलाहाबाद वाली ता० २३—२—२५ ई० की बैठक के नीचे लिखे प्रस्ताव की ओर आकृष्ट किया जाय।

"यह लीग कुछ म्युनिसिपल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आफिसों के उर्दू लिपि के स्थान पर हिन्दी का प्रवेश करने की प्रवृत्ति का ज़ोरों से विरोध करती है और सरकार को यह कार्य रोकने की आवश्यकता बतलाती है।"

और उनसे प्रार्थना की जाय कि वे अपनी सभा से स्थानीय म्युनिसिपल बोर्ड तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से प्रार्थना करें तथा इस बात का पूरा-पूरा उद्योग करें कि मुसलमानों के नाम उर्दू लिपि में तथा हिन्दुओं के नाम नागरी लिपि में पत्र व्यवहार हों तथा हुकुमनामे आदि ज़ारी किए जायँ और भविष्य में सदा इसी प्रकार कार्य्य होता रहे।

(ख) निश्चय हुआ कि सभा की ओर से संयुक्त प्रान्त की मुस्लिम लीग के इस एक-पक्षीय प्रस्ताव का विरोध करते हुए संयुक्त प्रांत के म्युनिसिपल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों से उपर्युक्त प्रस्ताव के (क) अंश के अनुसार प्रार्थना की जाय।

२—निश्चय हुआ कि संयुक्त प्रान्त की सरकार का ध्यान संयुक्तप्रान्त की मुस्लिम लीग के उक्त प्रस्ताव की ओर आकृष्ट किया जाय और प्रार्थना की जाय कि यदि सरकार उक्त प्रस्ताव के अनुसार हस्तक्षेप करेगी तो नागरी लिपि जाननेवालों के साथ, जिनकी संख्या बहुत अधिक है, अन्याय होगा; और यह प्रार्थना की जाय

कि यदि सरकार इसमें हस्तक्षेप करना ही उचित समझती हो तो म्युनिसिपल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को सूचना दे कि मुसलमानों के नाम सब प्रकार के पत्र तथा हुकुमनामें आदि उर्दू लिपि में और हिन्दुओं के नाम नागरी लिपि में जारी किए जाया करें।

३—निश्चय हुआ कि संयुक्त प्रान्त की कौंसिल के सदस्यों का ध्यान संयुक्त प्रान्त की मुस्लिम लीग के उक्त प्रस्ताव की ओर दिलाया जाय और उनसे प्रार्थना की जाय कि वे सरकार से इस बात की सिफारिश करें कि म्युनिसिपल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड मुसलमानों के नाम, पत्र तथा हुकुमनामे आदि उर्दू लिपि में तथा हिन्दुओं के नाम नागरी लिपि में जारी किया करें।

महात्माजी को अभिनन्दन-पत्र

[अभी हाल में महात्मा गांधी ने वायकोम-सत्याग्रह के संबंध में दक्षिण-भारत की यात्रा की थी। जाते समय आप मद्रास नगर में भी पधारे थे। वहां राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रेमियों और प्रचारकों ने आप को, राष्ट्रभाषा के अनन्य भक्त के नाते, जो अभिनन्दन-पत्र समर्पित किया था, उसे हम नीचे उद्धृत करते हैं। मद्रास प्रान्त में राष्ट्रभाषा के प्रचार में महात्माजी ने जो योग-प्रदान किया है, वह किसी भी हिन्दी-भाषा-भाषी से छिपा नहीं। निम्नलिखित अभिनन्दन-पत्र में मद्रास के हिन्दी-प्रेमियों और प्रचारकों ने महात्माजी के चरणों में जिन शब्दों में श्रद्धांजलि अर्पित की है, उन्हें पढ़कर किस स्वदेश-भाषाभिमानी का हृदय भक्ति-भावों से परिप्लुत न होगा! इस अभिनंदनपत्र के समस्त अनुमोदक महोदय, वास्तव में, अभिनन्दनीय और धन्य हैं।—सम्पादक]

पूज्य महात्माजी,

दर्शन शुभ पाये।
धन्य भाग्य इन नयनन के जो लखि तुमकों सरसाये॥

स्वराज्य की तपोभूमि कृष्ण-जन्मस्थान कारागार से पधारने पर प्रथम बार आज आपके दर्शनों का सौभाग्य मिला है। हम मद्रास के हिन्दी-प्रेमी और हिन्दीप्रचारक धन्य होकर आपके तीर्थस्वरूप चरण-कमलों में श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हैं!

महानुभाव, आज दक्षिण भारत की इस राजधानी का सुप्रभात है। आपके श्रीचरणों का शुभागमन चेन्नपुरी की चांदनी है।

आपका गुणगान और आपके जीवन-रहस्य का मर्म समझना हमारी शक्ति के बाहर है। आप इस जगत् के विश्व-वंद्य महापुरुष हैं। आप संयमी, पवित्र "सत्यं शिवं सुन्दरं" प्रेम के पुजारी हैं और भगवान् योगेश्वर श्रीकृष्ण तथा बुद्ध के प्रतिनिधि हैं। भारत-माता की नौका के कर्णधार, राष्ट्रीय महासभा के राष्ट्रपति और भारत के दीन-हीन असहायों के 'बापू' हैं। क्योंकि एक दिन आपने यह कहा था कि-"मैं ग़रीब से ग़रीब हिन्दुस्तानी के जीवनके साथ अपने जीवन को मिला देना चाहता हूं। मैं जानता हूं कि दूसरे तरीक़ों से मुझे ईश्वर के दर्शन हो नहीं सकते। मुझे उसे प्रत्यक्ष देखना है, इसके लिये मैं अधीर हो बैठा हूँ। जब तक मैं ग़रीब से ग़रीब न बन सकूं तब तक ईश्वर का साक्षात्कार हो ही नहीं सकता" इन वचनामृतों में आपके जीवन का रहस्य है। अधिक कहां तक वर्णन करें।

हमारा हिन्दी-प्रचार के साथ ही विशेष और प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। दक्षिणभारत में राष्ट्रभाषा हिन्दी का पौधा आपही ने अपने हस्त-कमल से लगाया था जो आज हरा-भरा एक सुन्दर वृक्ष हो गया है, आपकी कृपा और आशीर्वाद से जिसकी शीतल छाँह में बैठकर इस प्रान्त की संतान को राष्ट्र के सुमधुर फल खाने को मिलेंगे।

श्रीभगवान् भारत के उद्धार के लिये आपको पूर्ण आरोग्य और दीर्घायु प्रदान करें! हमतो आपसे हाथ जोड़ यही बिनती करत हैं—

"मोहन प्यारे! तुमसों निसि दिन बिनय विनोत हमारी।
हिन्दू, हिन्दी, हिन्द देश के बनहु सत्य हितकारी"

हम हैं,
आपके विनीत—
मद्रास के हिन्दी-प्रेमी और प्रचारक

गुजराती हिन्दी कोष

सम्पादक का सम्मान

(पदक)

विद्यावाचस्पति पं० श्रीगणेशदत्त शर्मा गौड़ शान्ति कुटी आगर ज़ि० मालवा के सम्पादकत्व में जयदेव ब्रादर्स बड़ौदा प्रकाशक द्वारा गुजराती हिन्दी कोष प्रकाशित हुआ है। पृष्ठ संख्या १०५० हैं। छपाई, आकार-प्रकार, रङ्ग-रूप सभी सुन्दर हैं। मूल्य छह रु० है। श्री विद्यावाचस्पतिजी के परिश्रम से सन्तुष्ट होकर उनके सम्मानार्थ श्रीमती नागरी प्रचारिणी सभा बड़ौदा ने उनके लिये एक चान्दी का सुन्दर पदक अर्पण किया है। श्री विद्यावाचस्पति जी सम्मेलन के अवसर पर उपस्थित नहीं थे और इसलिये उनको नहीं दिया जा सका। अब रजिस्टर्ड पोस्ट द्वारा उनकी सेवा में भेज दिया गया। सूचनार्थ निवेदन है।

श्रीनरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ
अध्यक्ष, स्वागत-कारिणी समिति
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, देहरादून

देवजी के एक छन्द में पाठान्तर] प्राचीन कवियों की कविताओं में बहुधा पाठान्तर पाया जाता है। विविध संग्रहकर्त्ताओं वा सम्पादकों से, जान या अनजान में, यह पाठ-भेद हो जाया करता है। महाकवि देव के छन्दों में भी काफ़ी पाठ-भेद मिलता है। 'सखी के सकोच गुरु सोच मृगलोचनि' आदि छन्द के पाठान्तर पर, अभी कुछ ही दिन हुए, अच्छा विवेचन हो चुका है। आज हम देवजी का एक छन्द और उपस्थित करते हैं, जिसका पाठान्तर बड़ा रहस्य-पूर्ण ज्ञात होता है। मिश्रबन्धु-कृत 'हिन्दी-नवरत्न' के नवीन संस्करण के पृष्ठ २०८ में निम्नलिखित छन्द, देव-चरित्र नामक ग्रन्थ से, उद्धृत किया गया है—

फैलि-फैलि, फूलि-फूलि, फलि-फलि, हूलि-हूलि,
झपकि-झपकि आईं कुंजें चहुँ कोद ते;
हिलि-मिलि हेलिनु सों केलिनु करन गईं,
बेलिनु बिलोकि बधू ब्रज की बिनोद ते।
नंदजू की पौंरि पर ठाढ़े हे रसिक 'देव',
मोहन जू मोहि लीन्ही मोहनी सुमोद ते,
गाथनि सुनत भूली साथनि की, फूल गिरे
हाथनि के हाथनि ते गोदनि के गोद ते।

यही छन्द उसी ग्रन्थ (हिन्दी-नवरत्न) के पृष्ठ २५४ में इस प्रकार लिखा मिलता है—

फलि-फलि, फूलि-फूलि, फैलि-फैलि, झुकि झुकि,
झपकि-झपकि आईं कुंजें चहुँ कोद ते;

हिलि-मिलि हेलिन को केलिन करन गईं,
बेलिन बिलोकि बधू ब्रज की बिनोद ते।
नंदजू की पौंरि पर ठाढ़े हैं रसिक 'देव',
मोहन जू मोहि लीन्हीं मोहिनी वे मोद ते,
गाथन सुनत भूलीं साथन के फूल गिरे
हाथन के हाथन ते गोदन के गोद ते।

यह पाठ 'प्रेम चन्द्रिका' से उद्धृत किया गया है। अब दोनों पाठों का मिलान कीजिए। पाठान्तर प्रायः चारों चरणों में मिलेगा। पहले चरण में, 'फैलि-फैलि, फलि-फलि' का 'फलि-फलि, फैलि-फैलि' हो जाना तो एक साधारण-सी बात है, पर 'हूलि-हूलि' के स्थान पर 'झुकि-झुकि' का हो जाना अवश्य ही एक मोटा पाठ-भेद है। दूसरे चरण में कोई विशेष बात नहीं है—'हेलिनु, केलिनु और बेलिनु' का 'हेलिन, केलिन और बेलिन' ही हुआ है और 'सों' का 'को' होगया है। तीसरे चरण में दो स्थान पर पाठान्तर मिलता है—एक तो 'हे' के स्थान पर 'हैं' और दूसरे 'सु' की जगह पर 'वे' देख पड़ता है। हाँ, 'मोहनी' का 'मोहिनी' भी हो गया है। चौथे चरण में भी दूसरे की तरह कोई विशेष पाठान्तर नहीं है—'गाथनि, साथनि, हाथनि और गोदनि' का सिर्फ़ 'गाथन, साथन, हाथन और गोदन' ही हुआ है! ख़ैर!

इस छन्द का पाठान्तर हमने 'रहस्यपूर्ण' इसलिए कहा है कि वह एक ही ग्रन्थ में पाया जाता है और वह ग्रन्थ उन सुप्रसिद्ध लेखकों द्वारा लिखा गया है, जो महाकवि देव की जानकारी के विषय में अच्छी ख्याति पा चुके हैं। यह कहा जा सकता है कि दो भिन्न ग्रन्थों में इस छन्द का पाठ भी भिन्न मिलता है। पर यह बात तो और भी कई छंदों के संबंध में कही जा सकती है। उदाहरणार्थ, उन्हीं देव का "पाँयनि नूपुर मंजु बजैं, कटि किंकिनि मैं धुनि की मधुराई" आदि छन्द 'जाति विलास', 'रस विलास' तथा अन्य ग्रंथों में पाया जाता है, पर पाठान्तर कहीं भी नहीं है। हम यह भी नहीं मान सकते कि 'प्रेस' की असावधानी से यह

पाठान्तर हो गया है। 'फैलि-फैलि' जैसे शब्दों में 'प्रेस-मिस्टेक' भी मान लें, पर 'हूलि-हूलि—झुकि-झुकि', 'सों—को', 'हे—हैं' तथा 'सु—वै' का क्या समाधान है? फिर यह पाठान्तर रहस्य-पूर्ण क्यों न कहा जाय?

❀ ❀ ❀

हिन्दी-प्रदीप का पुनर्प्रकाशन—प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय पंडित बालकृष्ण भट्ट के "हिन्दी-प्रदीप" ने तिमिराच्छन्न हिन्दी-जगत् को बहुत समय तक अपने दिव्यालोक से प्रकाशित किया था। हिन्दी-समाचार-पत्रों के इतिहास में भट्टजी के 'प्रदीप' का नाम चिरकाल तक स्वर्णाक्षरों से अंकित रहेगा, ऐसी हमारी धारणा है। इसी 'प्रदीप' के आलोक में एक समय हिन्दी-संसार ने स्वदेश-सेवा और राष्ट्र-भाषा की भव्यमूर्त्ति का दर्शन किया था। पूज्य भट्टजी ने दीर्घकाल तक इस पत्र को किस अध्यवसाय और निःस्वार्थ भाव से चलाया यह किसी हिन्दी-साहित्य-सेवी से छिपा नहीं है। हिन्दी-प्रदीप का पवित्रस्मरण कर श्रद्धेय पंडित राधाचरण गोस्वामी, कविवर पंडित श्रीधर पाठक और पूज्य पुरुषोत्तमदास टंडन आज भी भक्ति-भाव से दो बूँद आँसू गिराते हैं। सन् १९१० में सरकारी प्रकोप के झकोर में आकर अबतक यह 'प्रदीप' बुझा पड़ा रहा! आज हमें यह सूचित करते हुए अत्यन्त आनंद हो रहा है कि पूज्य भट्टजी के सुयोग्य सुपुत्र पंडित जनार्दन भट्ट उसे फिर नये आकार-प्रकार में शीघ्र ही कलकत्ते से प्रकाशित करनेवाले हैं। हमें विश्वास है कि 'हिन्दी-संसार' 'हिन्दी-प्रदीप' को द्विगुण उत्साह से अपनावेगा। पता यह है—"हिन्दी-प्रदीप" कार्यालय, नं० ७, नवाब बद्रुद्दीन स्ट्रीट, कलकत्ता।

❀ ❀ ❀

मुस्लिम लीग का एक हिन्दी-विरोधी प्रस्ताव—संयुक्त प्रांत की मुस्लिम लीग की इलाहाबाद वाली—ता० २३—२—२५ ई० की—बैठक में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है—

"यह लीग कुछ म्युनिसिपल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आफ़िसों के उर्दू लिपि के स्थान पर हिन्दी का प्रवेश करने की प्रवृत्ति का ज़ोरों से विरोध करती है और सरकार को यह कार्य रोकने की आवश्यकता बतलाती है।"

काशी-नागरी प्रचारिणी सभा की प्रबंध समिति ने, अपने १ मार्च १९२५ के अधिवेशन में, संयुक्तप्रांत की हिंदू सभाओं, सनातन-धर्म सभाओं, आर्यसमाजों तथा आर्य प्रतिनिधि सभा का ध्यान उपर्युक्त प्रस्ताव की ओर आकृष्ट करते हुए उन से प्रार्थना की है कि वे स्थानीय म्युनिसिपल बोर्ड तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से प्रार्थना करें तथा इस बात का पूरा-पूरा उद्योग करें कि मुसलमानों के नाम उर्दू लिपि में तथा हिंदुओं के नाम नागरीलिपि में पत्र-व्यवहार हो तथा हुकुमनामे आदि ज़ारी किये जायँ और भविष्य में सदा इसी प्रकार कार्य होता रहे। सभा ने संयुक्तप्रांत के म्युनिसिपल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों, संयुक्तप्रांत की सरकार और संयुक्तप्रांत की कौंसिल के सदस्यों का भी ध्यान उपर्युक्त प्रस्ताव की ओर आकृष्ट किया है।

सभा ने इस हिन्दी-विरोधी प्रस्ताव के संबंध में उचित कार्रवाई की है। इस प्रस्ताव को पास कर मुस्लिम लीग ने, वास्तव में, एक संकीर्णता का परिचय दिया है! न जाने क्यों मुस्लिमलीग को 'हिन्दी' में 'हिन्दुत्व' की गंध आती है। हिन्दी तो वह भाषा है, जिसे हिंदू और मुसलमान दोनों ही एकही भाव से अपना सकते हैं। लिपि हिंदी की जैसी सुगम और स्पष्ट है, वैसी उर्दू की कहाँ? जनता की सुगमता और सुविधा को ध्यान में रख कर हिन्दी-लिपि का जितना अधिक प्रचार हो थोड़ा है। हिन्दी-लिपि की सुगमता और सुस्पष्टता के संबंध में कई उदारहृदय मुसलमान सज्जन भी यही सम्मति दे चुके हैं। फिर मुस्लिम लीग को, न जाने क्यों, म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों में हिन्दी-प्रवेश की प्रवृत्ति के ज़ोरों से विरोध करने की बात सूझी! सरकार को कदापि उक्त प्रस्ताव के अनुसार हिन्दी-लिपि के संबंध में हस्तक्षेप न करना चाहिए। हाँ, यह दूसरी बात है कि मुसलमानों की सुविधा के लिए म्यूनि-

सिपल तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड उन के नाम पत्र और हुकुमनामें आदि उर्दू-लिपि में ज़ारी किया करें।
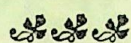
अभय की एक निन्दनीय टिप्पणी]· सहयोगी 'अभय' ने ता० १७ मार्च—१९२५ ई० के अंक में 'चोरी और सीना ज़ोरी' नाम की एक टिप्पणी लिखी है। इस में यह सिद्ध किया गया है कि देहरादून-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की स्वागत-कारिणी-समिति के कार्यालय से जो सम्मेलन-संबंधी हिसाब-किताब के काग़ज़ात आदि चोरी गये हैं, यह ग़लत है—चोरी कुछ नहीं गया, सम्मेलन का हिसाब ग़बन करने के लिए ही शायद यह युक्ति सोची गई है! उस टिप्पणी के लिखने में संपादक महोदय ने स्वागत-कारिणी-समिति के कार्यकर्ताओं के संबंध में ऐसे-ऐसे अनुचित और घृणास्पद शब्दों का प्रयोग किया है कि जिन्हें उद्धृत करने में लेखनी को संकोच होता है। इसी बात को सहयोगी गंभीरता से भी लिख सकता था, पर ऐसा करना कदाचित् उस के गौरव के विरुद्ध है! ख़ैर। उस टिप्पणी में कोई तत्व नहीं। निश्चय ही स्वागत-कारिणी-समिति के कार्यालय से चोरी हुई है। सम्मेलन-कार्यालय की ओर से प्रबंध-मंत्री श्री पंडित द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी उस दिन इस संबंध में देहरादून गये थे। आप का सप्रमाण कथन है कि अवश्य ही वहां चोरी हुई है। स्वागत-कारिणी समिति के अंतिम अधिवेशन में, जिस में प्रिंसपल लक्ष्मणप्रसादजी और पं० द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी भी उपस्थित थे, सम्मेलन की रिपोर्ट तयार करने के लिए पं० नरदेव शास्त्री, पं० विश्वंभर दत्त चंदोला और मास्टर गौरीशंकर—इन तीन सज्जनों की एक उप-समिति बनायी गई और सम्मेलन द्वारा जांच हुआ हिसाब-किताब भी सर्वसम्मति से पास हुआ। ऐसे अवसर पर स्वागत-कारिणी-समिति के दूरदर्शी पदाधिकारियों ने शीघ्र समिति की बैठक कर के जो रिपोर्ट तयार करने के लिए उपसमिति आदि बनाने का कार्य किया है वह प्रशंसनीय है।

१—गोस्वामी तुलसीदासजी के दार्शनिक विचार—लेखक—श्री रायकृष्णजी, काशी; प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; पृष्ठ संख्या ४८; काग़ज़ पुष्ट, छपाई सुन्दर; मूल्य (लिखा नहीं)।

यह लेख नागरीप्रचारिणी-पत्रिका, भाग ४, संख्या ३, से उद्धृत किया गया है। सभा द्वारा प्रकाशित "तुलसी-ग्रन्थावली" के तीसरे खंड में पं० गिरधर शर्म्मा चतुर्वेदी का 'गोस्वामी तुलसीदासजी के दार्शनिक विचार' नामक एक लेख प्रकाशित हुआ है। सुविज्ञ चतुर्वेदीजी ने उस लेख में यह निश्चय किया है कि दार्शनिक सिद्धान्तों में गोस्वामीजी श्रीशंकराचार्य्य के अद्वैतवाद के अनुगामी हैं। प्रस्तुत लेख में श्री० रायकृष्णजी ने चतुर्वेदीजी के इस सिद्धान्त का कि, गोस्वामीजी शंकराचार्य्यजी के अद्वैतवाद के अनुगामी हैं, विवेचना और गम्भीरता के साथ खंडन किया है। उद्धरण भी प्रायः लेखक ने वही लिये हैं जिनके आधार पर चतुर्वेदीजी ने अपने पक्ष का समर्थन किया है। गोस्वामीजी ने जगत् को कहीं-कहीं मिथ्या अवश्य माना है, किन्तु उन्होंने शांकरवाद की तरह "जीव-ब्रह्मैक्य" कभी भी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने माया का उच्छेद करने के लिये अद्वैतवादियों की तरह ज्ञान का आश्रय कहीं भी नहीं लिया। उनके मत से तो माया का निराकरण इस प्रकार होता है:—

सो दासी रघुबीर की, समुझै मिथ्या सोपि।
छुटै न राम कृपा बिन, नाथ कहौं पद रोपि॥

उस 'राम-कृपा' का पात्र होने के लिये, उनका एक मात्र मार्ग है अनन्यभक्ति। भक्ति के आगे गोस्वामीजी ने मोक्षानन्द को तुच्छ ही नहीं, हेय समझा है। हमारी समझ में तो गोस्वामीजी ने शांकर वाद तो क्या, किसी भी वाद का स्पष्ट रीति से आश्रय नहीं लिया। विनय-पत्रिका में लिखते हैं—

'कोउ कह सत्य, कोउ कह मिथ्या, युगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै॥'

श्री० राय कृष्णजी ने, वास्तव में, गोस्वामीजी के दार्शनिक विचारों के समझने में अधिक बुद्धिमत्ता और सूक्ष्मता से काम लिया है। हमें आशा है कि माननीय चतुर्वेदीजी भी गोस्वामीजी के दार्शनिक विचारों पर पुनर्वार गम्भीरतापूर्वक ध्यान देकर बहुत कुछ बातों में अपना मत परिवर्तन कर देंगे। दर्शन-प्रेमियों को यह छोटी-सी पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

२—हिन्दी लोकोक्ति कोष—सम्पादक और प्रकाशक—श्री० बाबू विश्वम्भर नाथ खत्री, ९९, हरिसन रोड, कलकत्ता; रायल ८ पेजी साईज़; पृष्ठ-संख्या ३६४; कागज़ और छपाई सुन्दर; मूल्य सादी जिल्द ३॥) और सुनहरी जिल्द ४)।

लोकोक्ति साहित्य में एक अलङ्कार है। इसका महत्त्व अन्य अलंकारों की अपेक्षा बहुत ऊँचा और आवश्यक है। समाज का एक विस्तृत अनुभव-गम्य ज्ञान लोकोक्ति में इस प्रकार भर दिया जाता है, जैसे 'गागर में सागर'। यों तो लोकोक्तियाँ संसार की प्रायः प्रत्येक भाषा में पायी जाती हैं, परन्तु हिन्दी में लोकोक्ति-बाहुल्य देख कर 'कौन गिने उड़गन आकास' वाली कहावत 'सवा सोलह आने, पाव रत्ती' चरितार्थ हो जाती है। इसके पहले हिन्दी में लोकोक्ति-संग्रह सम्बन्धी दो-चार छोटी-मोटी पुस्तकें मिलती थीं; पर उनका होना 'आटे में नोन' के समान था। बाबू विश्वम्भर नाथजी ने इस बृहत् संग्रह का संकलन करके, वास्तव में, हिन्दी-साहित्य के एक बड़े अंग की पूर्ति की है। यह केवल संग्रह मात्र ही नहीं है; इसके पढ़ने में कहीं-कहीं पर साहित्यिक आनन्द आ

जाता है। हिन्दी और उर्दू के कवियों के बहुत-से ग्रन्थों में से सुन्दर उदाहरण चुन-चुन कर कहावतों के साथ यथास्थान दिये गये हैं। कहावतों का निकास कहां से हुआ, इसकी भी खोज की गई है। बहुत-सी कहावतों के साथ उनमें फबती हुई छोटी-छोटी कहानियाँ सचमुच ही ग्रन्थकार ने 'फ़ुरसत् रा, ग़नीमत शुमार', इस फ़ारसी की कहावत को अपनी बेशक़ीमत ज़िन्दगी में खूब चस्पा किया है। हिन्दी के लेखकों और वक्ताओं को तो यह पुस्तक 'सोने में सुगन्ध' का काम देगी। बाबू विश्वम्भरनाथ खत्री-जैसे छिपे हुए रत्नों को देख कर महाकवि अकबर का यह शेर याद आ जाता है:—

निगाह क़ाबिलों पर पड़ ही जाती है ज़माने में।
कहीं छिपता है 'अकबर', फूल पत्तों में निहां हो कर ?

हिन्दी-संसार तो इस पुस्तक से पीछे लाभ उठाएगा, पर प्रेस की प्रेत-मन्डली ने पहले से ही खूब छक्के पञ्जे के हाथ दे डाले हैं। इस शुद्धि के ज़माने में एक फ़ार्म का शुद्धिपत्र क्या बेजा है! आशा है, लोकोक्ति-रसिक इस पुस्तक को 'हृदय का हार' या 'आंख की पुतली' बनाने में आगा-पीछा न करेंगे।

३—**अन्ताराष्ट्रिय विधान**—लेखक—श्री० सम्पूर्णानन्द बी-एस-सी०; एल-टी; प्रकाशक—ज्ञान-मण्डल, काशी; डबल क्राउन सोलह पेजी साइज़; पृष्ठ-संख्या ५२६; काग़ज पुष्ट, छपाई चित्ताकर्षक; मूल्य सजिल्द २॥)

ज्ञान-मण्डल-ग्रन्थमाला का यह २३ वां ग्रन्थ है। ग्रन्थ में सब मिला कर पाँच खण्ड और चौंतिस अध्याय हैं। अन्ताराष्ट्रिय विधान का इतिहास, स्वातन्त्र्य-सम्बन्धी स्वत्व और कर्त्तव्य, संधियाँ, अन्ताराष्ट्रिय जीवन में युद्ध का स्थान, युद्ध के उपकरण, तटस्थता और राष्ट्रसंघ और मानव-समाज का भविष्य आदि उच्च, गम्भीर और आवश्यक विषयों का बड़ा ही उत्तम निरूपण किया गया है। सुयोग्य लेखक ने इस ग्रंथ-लेखन में अपनी परिष्कृत लेखनी का पर्याप्त परिचय दिया है। आज के दिन हमारे देश में इस विषय के ग्रंथ असामयिक और अनावश्यक-से समझे जाते हैं

पर कल ही प्रत्येक स्वतन्त्रता-प्रिय भारतीय को इनमें प्रतिपादित सिद्धान्तों का स्वीकार करना उपयोगी ही नहीं, अनिवार्य होगा। हम ज्ञान-मण्डल कार्य्यालय को ऐसे-ऐसे गम्भीर, उच्च और स्थायी ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए हृदय से बधाई देते हैं!

४—**स्वाधीनता के पुजारी**—लेखक—प्रो० भूदेव शर्मा विद्यालङ्कार; प्रकाशक—प्रताप कार्य्यालय, कानपुर; डबल क्राउन सोलह पेजी साइज़, पृष्ठ-संख्या २२६; काग़ज और छपाई सुन्दर चित्र १३; मूल्य १।)।

इस पुस्तक में रूस की सुप्रसिद्ध राजक्रान्ति में बलि हो जाने वाले उन वीरों का चरित्र-चित्राङ्कण किया गया है, जिनका नाम चिरकाल तक इतिहास के पन्नों पर धधकती हुई लाल स्याही से लिखा रहेगा। कैथेराइन सोफ़िया, चैमडानफ् सोफ़िया, वरडीना जैसी देवियों और कर्नल पिस्टल, प्रिंस ख़िल्काफ़ कवि रिलीफ़ और राज़ीन जैसे वीर पुरुषों की, संक्षेप में, पवित्र जीवनियां लिखी गई हैं। भाषा भी साधारण रीति से बुरी नहीं है। पुस्तक प्रत्येक राष्ट्र-वादी के काम की है।

५—**व्यापार-सङ्गठन**—लेखक—प्रो० पं० गौरीशंकर शुक्ल "पथिक"; प्रकाशक—अखिल भारतवर्षीय-मारवाड़ी अग्रवाल सभा, १६०, हरिसनरोड, कलकत्ता; डबल क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ४३०; काग़ज और छपाई सुन्दर; सुनहरी जिल्द मूल्य २)।

ग्रन्थ में सब मिला कर ग्यारह अध्याय हैं, जिनमें व्यापारिक सफलता के आवश्यक साधन, व्यवसाय की नींव, कम्पनी का संचालन और संगठन, विक्रय-कला, निर्यात और आयात, समुद्री बीमा और अग्नि का बीमा आदि विषयोंपर लेखक महाशय ने अच्छा विवेचन किया है। व्यापार विषय पर, जहां तक हमें स्मरण है, इस प्रकार का यह पहला ही ग्रन्थ है। व्यापार-सम्बन्धी इसमें अनेक उपयोगिनी सूचनाएँ हैं, परन्तु उनका उपयोग, हमारी राय में, तब तक पूर्णतः नहीं हो सकता, जब तक भारतवर्ष में स्वराज्य स्थापित नहीं हुआ। तथापि व्यापार-संसार में इस ग्रन्थ का जितना

आदर हो, थोड़ा है। शैली अच्छी है। भाषा भी साधारणतः अच्छी है। ग्रन्थ के आदि में श्रीमान् कालीप्रसादजी खेतान ने अंग्रेज़ी में तीन पृष्ठ का एक फ़ोरवर्ड (प्राक्कथन) लिखा है। राष्ट्रभाषा-प्रचार के ज़माने में श्रीमान् खेतानजी यदि इस प्राक्कथन को अंग्रेज़ी में न लिखते, तो शायद ही वे अपने को एम. ए. बी. एल. बार एट ला० साबित कर पाते !

६—श्रीमद्राम-रसामृत अथवा अमृत सतसई—लेखक—श्री० लाला अमृतलाल माथुर; प्रकाशक—श्री० लाला नन्दलाल माथुर, नया वास, जोधपुर (मारवाड़); डिमायी आठ पेजी साईज़; पृष्ठ-संख्या १०२; कागज़ चिकना, छपाई साधारण; मूल्य ॥=)

श्रीयुक्त माथुरजी ने, सात सौ दोहों में, इस सतसई में सातों काण्ड रामायण का बड़ी सुन्दरता के साथ निरूपण किया है। आवरण-पृष्ठ पर विद्या-वयोवृद्ध सहृदय-वर पंडित किशोरी लाल-जी गोस्वामी ने तो स्नेहवश इस सतसई को यहाँ तक दाद दे डाली है कि :—

"ऐसो अनुपम काव्य लहि, जा सम अन्य न गन्य।
भाषा-कविता-कामिनी, आजु भई अति धन्य॥"

भूमिका में इस सतसई के लेखक महाशय का स्थान स्वर्गीय पंडित सत्यनारायण 'कविरत्न' के बाद रक्खा गया है और कविता का आदर्श कहा गया है, कविवर बिहारीलाल का आदर्श ! दोहे, वास्तव में, सरस और चुभीले हैं। कवि का हृदय भी सरस समझ पड़ता है। यह सब होने पर भी हमें पुस्तक पर जो सम्मतियाँ दी गई हैं उनमें अतिरंजन की मात्रा देख पड़ती है। आदि से अन्त तक 'येन केन प्रकारेण' अलङ्कारों की, विशेष कर शब्दालंकारों की, आवश्यकता से अधिक भर्ती की गई है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि कई स्थलों पर तो अलंकारों की कृत्रिम सजावट ने भावों के स्वाभाविक सौन्दर्य पर विजय लाभ कर लिया है। यमक के लोभ से यत्र तत्र शब्द विकृत किये गये हैं। भाषा का सरस और स्वाभाविक प्रवाह भी कहीं-कहीं पर इसी

क्लिष्ट कल्पना के चक्कर में पड़ कर कुंठित-सा हो गया है। फिर भी, इस सतसई में सरस कविता का दर्शन पर्याप्त मात्रा में मिलता है। लेखक महोदय, वास्तव में, होनहार सुकवि जान पड़ते हैं।

पुस्तक का नाम श्रीमद्राम-रसामृत न रख कर श्रीराम-रसामृत रक्खा जाता तो कहीं अच्छा होता। यह नाम कुछ-कुछ कर्णकटु जान पड़ता है।

७—**भारतीय शासन**—लेखक और प्रकाशक—श्री० भगवानदास केला, भारतीय ग्रन्थ-माला, वृन्दावन; डबलक्राउन साइज़ सोलह पेजी, पृष्ठ-संख्या १६०, कागज़ पुष्ट, छपाई सुन्दर; मूल्य ॥।≈) ।

शासन-सम्बन्धी ज्ञान के केलाजी अच्छे जानकार हैं। इस विषय के आप ने कई सुन्दर और उपयोगी ग्रन्थ लिखे हैं, जिनका हिन्दी-संसार ने अच्छा आदर किया है। प्रस्तुत पुस्तक में चौदह परिच्छेद हैं, जिनमें वृटिश साम्राज्य का शासन, भारत सरकार, भारतीय व्यवस्थापक मण्डल, स्थानीय स्वराज्य, देशी रियासतें, न्याय और जेल और नागरिकों के कर्त्तव्य और अधिकार आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर अच्छा विवेचन और विचार किया गया है। परिशिष्ट में भी अनेक ज्ञातव्य बातों का उल्लेख किया गया है। पृष्ठ १३८ पर दतिया राज्य के शासक क्षत्रिय और ओरछा राज्य के शासक राजपूत लिखे गये हैं। यद्यपि क्षत्रिय और राजपूत में कोई भेद नहीं है, तथापि इन दोनों राज्यों के शासक एक ही वंश के हैं और वह वंश बुन्देला क्षत्रियों का है। यह भ्रम कदाचित् लेखक महोदय को गवर्न्मेंट ग़ज़ेटियर से हुआ है। अस्तु। पुस्तक महत्त्व-पूर्ण और उपादेय है।

८—**मनो विज्ञान**—लेखक—श्री० प्रोफ़ेसर सुधाकर एम. ए.; प्रकाशक—इण्डियन प्रिन्टिङ्ग वर्क्स, ग्वालमण्डी, लाहौर; डबलक्राउन १६ पेजी साईज़, पृष्ठ-संख्या २७२, कागज़ और छपाई सुन्दर; सुनहरी जिल्द मूल्य २)

मनोविज्ञान एक बड़ा ही गहन और जटिल विषय है, परन्तु है बड़ा ही उपयोगी और आवश्यक। हिन्दी में इस विषय की इतनी

अच्छी, शायद, यह पहिली ही पुस्तक है। इसका विचार-क्रम अधिकांशतः व्यूल महोदय की "मनोविज्ञान के मूल सिद्धान्त" नामी पुस्तक के अनुसार रक्खा गया है। पुस्तक देख कर लेखक के मनोविज्ञान-विषयक अध्ययन का अच्छा पता चलता है। कुछ विवादास्पद विषयों को छोड़कर पुस्तक में प्रतिपादित मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त विचारणीय हैं। ऐसी उत्तम पुस्तक के लिए लेखक और प्रकाशक दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं।

—"साहित्यानन्द"

प्राप्ति-स्वीकार

नीचे लिखी पुस्तकें भी प्राप्त हो गई हैं। प्रेषक महोदयों को अनेक हार्दिक धन्यवाद !

१-तपस्विनी पार्वती देवी—प्रकाशक पं० सुरेन्द्र शर्मा, प्रताप प्रेस कानपुर; मूल्य ≡) मात्र

२-अमीरी व गरीबी—लेखक प्रो० सुधाकर एम. ए. पता—इण्डियन प्रिंटिंग वर्क्स चौक, ग्वालमण्डी, लाहौर; मूल्य ॥)

३-नोक झोंक—लेखक श्रीयुत जी. पी. श्रीवास्तव्य बी. ए. एल्-एल् बी.; प्रकाशक—हिन्दी-पुस्तक एजेंसी, १२६, हरिसन रोड कलकत्ता; मूल्य १)

४-गया-पथ-प्रदर्शक और गया माहात्म्य—लेखक बा० प्र० शाव, प्रकाशक—विहार रबर-स्टाम्प मैन्यु कम्पनी, गया; मूल्य ।=)

५-मार-मार कर हकीम—लेखक श्रीयुत जी. पी. श्रीवास्तव्य; प्रकाशक—हिन्दी पुस्तक एजेंसी १२६, हरिसन रोड, कलकत्ता

६-छत्रपति शिवाजी—(नाटक) लेखक पं० रूपनारायण पांडेय कविरत्न; प्रकाशक—हिन्दी-कल्प-तरु ग्रंथमाला आफिस, मुट्ठीगञ्ज, प्रयाग; मूल्य १)

७-गृह लक्ष्मी—अनुवादक श्रीयुत पं० वासुदेव मिश्र—प्रकाशक, भारती प्रेस २२, सरकार लेन, कलकत्ता; मूल्य अजिल्द १॥) सजिल्द २)

८-देश भक्त मेक्स्विना—ले०—विश्वम्भरनाथ जिज्जा; प्रकाशक—प्रताप प्रेस कानपुर; मूल्य ।)

९-संस्कृत परिचायिका—ले०—गया दत्त शर्मा; प्रकाशक—के० एन० त्रिपाठी, कृषिभवन, इलाहाबाद। मूल्य मानेति चतुष्टयम् ।)

१०-अद्भुत कहानियाँ—लेखक श्री ज्ञानेन्द्र मोहन दास; अनुवादक—पं० जनार्दन झा; प्रकाशक—हिन्दी पुस्तक एजेंसी १२६, हरिसन रोड कलकत्ता; मूल्य ॥)

११-हमारा प्राचीन गौरव—ले०—श्री आनन्द भिक्षु; प्रकाशक—श्री भगवान दास केला; भारती ग्रन्थमाला, वृन्दावन मू० ‒)

१२-हिन्दी भाषा में अर्थशास्त्र—प्रकाशक—भारती ग्रंथमाला, वृन्दावन; मू० ‒)

१३-हिन्दी भाषा में राजनीति—प्रकाशक—भारती ग्रन्थमाला, वृन्दावन; मू० ‒)

१४-मेरी कैलाश-यात्रा—(दूसरा संस्करण) लेखक—श्री स्वामी सत्यदेव; प्रकाशक—दी लवानियां पब्लिशिंग हाउस, आगरा; डबल क्राउन साइज़ १४० पृष्ठ; काग़ज छपाई साधारण; मूल्य ॥।)

१५-विधवा—कविता; लेखक श्री पं० राजाराम शुक्ल; प्रकाशिका—श्रीमती फूलकुमारी मेहरोत्रा, संपादिका—"स्त्री-दर्पण" कानपुर, डबलक्राउन साइज़ पृष्ठ ८०, काग़ज-छपाई सुन्दर; मूल्य ।।)

१६-श्रीकृष्ण उपदेश—भगवद्गीता का पद्यात्मक अनुवाद लेखक—श्री पं० जगदीश नारायण तिवारी; प्रकाशक—हिंदी-पुस्तक

भवन, १८१, हरिसनरोड, कलकत्ता; डबलक्राउन साइज़ पृष्ठ १२०; काग़ज़-छपाई सुन्दर; मूल्य ॥)

१७-**कैलाश का शिवरात्रि अंक**-संपादक-श्री पं० लक्ष्मी-नारायण शुक्ल; प्रकाशक श्री पं० शिवशंकर, शर्मा हिमालय प्रेस, मुरादाबाद; डबलक्राउन साइज़ १२० पृष्ठ; सचित्र; काग़ज और छपाई सुन्दर।

१८—डाकूर एस. के. वर्म्मन का, संवत् १९८२ का, सचित्र पंचांग; पता—डाकूर एस, के, वर्म्मन, ४ ताराचन्द दत्त स्ट्रीट, कलकत्ता।

१९-**बाल-संकीर्तन**—सं० श्री दामोदर सहाय सिंह, एल. टी., स्कूल-सब-इन्स्पेक्टर, छपरा (बिहार); प्रकाशक—हिन्दी-मंदिर, शीतलपुर; मूल्य =)

२०-**कन्या-शिक्षा**—ले०—श्री पं० चन्द्रशेखर शास्त्री; प्रकाशक—हिन्दी-पुस्तक-भवन, १८१, हरिसन रोड, कलकत्ता; मूल्य ॥)

—सम्पादक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्य-विवरण

तथा

लेखमालाएँ

प्रथम सम्मेलन की लेखमाला ॥)	चतुर्दश सम्मेलनकी लेखमाला	॥)
द्वितीय " "	प्रथम वर्ष का कार्य विवरण	।)
तृतीय " " ॥।)	द्वितीय " "	
चतुर्थ " " ॥।)	तृतीय " "	।=)
पंचम " " ।)	चतुर्थ " "	॥)
षष्ठ " " ॥।)	पंचम " "	॥।)
सप्तम " " ॥=)	षष्ठ " "	।)
अष्टम " " १)	सप्तम " "	।=)
नवम " " १।)	अष्टम " "	।)
दशम " " ॥)	नवम " "	।=)
द्वादश " " १)	दशम " "	॥)
त्रयोदश " " १)	त्रयोदश" "	॥)

अन्य पुस्तकों के नवीन संस्करण

निम्नलिखित पुस्तकें, बहुत दिनों से अप्राप्य थीं, अब उनके नवीन संस्करण छपकर तैयार हैं। जिन्हें आवश्यकता हो, तुरन्त लिखकर मँगालें—

तृतीय सम्मेलन का कार्य-विवरण प्रथम भाग	।)
" " " द्वितीय भाग (लेखमाला)	१)
हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	।=)
सूरदास की विनय-पत्रिका (सटिप्पण)	≡)

पता—

मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित
रजप्रसाद खन्ना के प्रबन्ध से हिन्दी-साहित्य प्रेस प्रयाग में मुद्रित।

आवश्यकता है

१—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रचार-कार्यालय, ट्रिप्लिकेन, मद्रास, के लिए एक वैतनिक मन्त्री की, जो हिन्दी में अच्छी योग्यता रखते हों और अँगरेज़ी में भी किसी विश्व-विद्यालय के ग्रेजुएट हों तथा अँगरेज़ी और हिन्दी में धारावाहिक रूप से प्रभावशाली भाषण दे सकते हों, इसके अतिरिक्त मिलनसार, मिष्टभाषी और तरुण हों। वेतन १००) मासिक तक योग्यतानुसार एवं रहने के लिए निवासस्थान भी दिया जायगा।

२—आसाम, सिन्ध तथा दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार-कार्य करने के लिए कुछ हिन्दी-प्रचारकों की, जो शुद्ध हिन्दी लिखने, बोलने तथा अंग्रेज़ी से हिन्दी पढ़ा सकने की योग्यता रखते हों। बँगला, आसामी, सिन्धी तथा दक्षिण-भारतीय प्रान्तिक भाषाओं का ज्ञान हो तो और भी अच्छा। सम्मेलन की विशारद-उपाधि-प्राप्त आवेदकों के आवेदन-पत्र पर विशेष ध्यान दिया जायगा। वेतन ३०) से ५०) तक योग्यतानुसार।

३—पंजाब की एक पहाड़ी रियासत की राजकीय कन्या-पाठशाला के लिए, जिसका सम्बन्ध सरकारी शिक्षा-विभाग से नहीं है, एक मुख्याध्यापिका तथा एक द्वितीय मुख्याध्यापिका की, जो सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में उत्तीर्ण हों। मुख्याध्यापिका कुछ अँगरेज़ी भी जानती हों तो बहुत अच्छा होगा। वेतन क्रमशः ६०) और ३०) होगा। प्रार्थना-पत्र, प्रशंसा-पत्रों सहित, निम्नलिखित पते पर भेजना चाहिए।

प्रचारमन्त्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

आवश्यक सूचना

परीक्षा-समिति के माघी पूर्णिमा, सं० १९८१ वि०, के अधिवेशन में यह निश्चित हो चुका है कि विश्वविद्यालयों के उपाधिधारी ग्रेजुएट तथा संस्कृत की शास्त्री, आचार्य्य और तीर्थ परीक्षा में उत्तीर्ण परीक्षार्थी मध्यमा के केवल साहित्य विषय में उत्तीर्ण होकर विशारद उपाधि प्राप्त करने के अधिकारी होंगे।

[illegible] परीक्षाओं की प्रेमी जनता को इस नियम से लाभ उठाना चाहिए।

परीक्षामंत्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

तार का पता—"सम्मेलन" इलाहाबाद   रजिस्टर्ड नं० ए. ६२६.

भाग १२ अङ्क ६, वैशाख सं० १९८२ वि०

संपादक

वियोगी हरि

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

वार्षिक मूल्य २)   प्रत्यंक ≡)

विषय-सूची

भूल-संशोधन

९ठें फार्म की पृष्ठ-संख्या, भूल से, अशुद्ध छप गयी है। ४०७—४१४ के बदले ४३७—४४४ होनी चाहिए। पाठक कृपया सुधार लें।

—सम्पादक

३९७
३९८
४०१
४०१
४०८
४२०
४३८
४४३
४१४

सम्मेलन-पत्रिका के नियम

१—'पत्रिका' प्रत्येक मास की पूर्णिमा को प्रकाशित हो जाती है। यदि किसी मास की कृष्णा १० तक उस मास की पत्रिका न मिले, तो पत्र द्वारा सूचना देनी चाहिए।

२—'पत्रिका' का वर्ष भाद्रपद से प्रारम्भ होता है। वर्ष के बीच में, किसी भी मास में, ग्राहक होने पर उस वर्ष के पूर्व मासों के अंक अवश्य लेने पड़ते हैं। डाक-व्यय-सहित पत्रिका का वार्षिक मूल्य २=) है। २) मनीआर्डर द्वारा भेजने से अधिक सुभीता होता है।

३—यदि दो एक मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकखाने से प्रबन्ध कर लेना चाहिये, और यदि बहुत दिनों के लिए बदलवाना हो, तो हमें उसकी सूचना देनी चाहिए, अन्यथा 'पत्रिका' न मिलने के लिए हम उत्तरदायी न होंगे।

४—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें—"सम्पादक सम्मेलन पत्रिका, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र—"प्रचार-मन्त्री हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से और पत्रिका का मूल्य, विज्ञापन की छपाई आदि का द्रव्य "अर्थमंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से आना चाहिए।

५—प्राप्त कविता और लेखों के घटाने, बढ़ाने एवं प्रकाशित करने न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है।

सम्मेलन-पत्रिका में
विज्ञापन की दर

	१ मास	६ मास	एक वर्ष
एक पृष्ठ	५)	२५)	४५)
आधा पृष्ठ	३)	१५)	२८)

आवश्यक सूचना

६—सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की बिक्री पर कमीशन की दर निम्नलिखित है—

(क) १०) से नीचे की पुस्तकों पर कुछ भी कमीशन नहीं दिया जाता।

(ख) १०) से २५) तक की पुस्तकों पर दो आना रुपया कमीशन दिया जाता है।

(ग) २५) से ऊपर १००) तक २०) सैकड़ा।

(घ) १००) से ऊपर, २५) सैकड़ा।

(ङ) ५००) या अधिक की पुस्तकें लेने पर तृतीयांश कमीशन अर्थात् ३३।-)४ सैकड़ा।

(नोट) सम्मेलन से सिर्फ सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें बेची जाती हैं, अतः सर्वसाधारण को चाहिए कि वे सम्मेलन से केवल सम्मेलन द्वारा प्रकाशित ही पुस्तकें मगावें। अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें हमारे यहाँ नहीं मिलतीं।

सुलभ-साहित्य-माला की पुस्तकें

हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—श्री० मिश्रबन्धु

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ, उसने कौन-कौन से रूप पकड़े, किन-किन बाधाओं एवं साधनों का उसे सामना करना पड़ा, वर्त्तमान परिस्थिति क्या है, आदि गम्भीर विषयों का पता इस पुस्तक से भलीभाँति चलता है। अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। "मिश्रबन्धु-विनोद" रूपी महासागर से मथनकर यह इतिहासामृत निकाला गया है। यह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में स्वीकृत है। तृतीय संस्करण, पृष्ठसंख्या १०८, मूल्य।=)

भारतगीत

लेखक—पं० श्रीधर पाठक

पाठकजी की रसमयी रचना से किस सहृदय साहित्य-रसिक का हृदय रसप्लावित न होता होगा ? आपकी गणना वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य के महारथियों में है। आपकी राष्ट्रीय कविता नवयुवकों में जातीय जीवन सञ्चार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक पाठकजी के उन गीतों का संग्रह है, जिन्हें उन्होंने समय-समय पर स्वदेश-भक्ति की उमंग में आकर लिखा है। इसकी प्रस्तावना साहित्य-मर्मज्ञ बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठसंख्या ६४, मूल्य ≡)

भारतवर्ष का इतिहास [प्रथम खण्ड]

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६०० संवत् पूर्व से ५० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है। अबतक हिन्दी में भारतवर्ष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था। विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहाँ के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। मध्यमा परीक्षा के इतिहास विषय में यह पुस्तक निर्दिष्ट है। जिल्दवाली पुस्तक का, जिसकी पृष्ठसंख्या ४०६ है, मूल्य केवल १॥) है।

राष्ट्रभाषा

संपादक—श्री 'भारतीय हृदय'

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न उपस्थित किया था कि, क्या हिन्दी राष्ट्रभाषा हो सकती है ? इसके उत्तर में भारत के प्रत्येक

प्रान्त के बड़े-बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपात-रहित सम्मतियाँ दी थीं कि निःसन्देह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने योग्य है। उन्हीं सब अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इसके विरोधियों का भी यथेष्ट खण्डन हुआ है। इस विषय के व्याख्यानों का भी इसमें सङ्कलन कर दिया गया है। हिन्दीभाषा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक प्राणस्थानीय नहीं तो क्या है ? पृष्ठसंख्या २००, मूल्य ॥)

शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस सम्बन्धी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह। इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें। महाराष्ट्रपति शिवाजी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का यदि चित्र देखना हो, तो एक बार इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइए। शब्द एवं भाव-काठिन्य दूर करने के लिये कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलङ्कार आदि साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाली आवश्यक बातों का इसमें उल्लेख कर दिया गया है। साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है। पृष्ठ-संख्या ५४, मूल्य ≡)

सरल पिङ्गल

ले०— श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद

इस पुस्तक में पिङ्गलशास्त्र के गूढ़ रहस्यों को सरल और सुन्दर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छन्दों के उत्तम उदाहरण भी दिये गये हैं। अन्त में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्दर्शन करा दिया गया है। पृष्ठ-संख्या ५८, मूल्य ।)

सूरपदावली (सटिप्पण)

श्री सूरदासजी के १०० अत्युत्तम पदों का अपूर्व संग्रह है। मूल्य ।)

भारतवर्ष का इतिहास [द्वितीय खण्ड]

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

इसमें ५०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का वर्णन किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान-पतन के क्रम का पता इस पुस्तक से जैसा कुछ चलता है, यह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू-समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि जानने योग्य आवश्यक विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः प्राप्त हो सकता है। सुन्दर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठसंख्या ४४०, मूल्य २।)

पद्य-संग्रह

संपादक { श्री ब्रजराज एम्० ए, बी० एस-सी., एल्-एल्० बी०
श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम्० एस्-सी० }

आधुनिक खड़ी बोली के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सुन्दर संग्रह। ये कविताएँ विद्यार्थियों के बड़े काम की हैं। संग्रह सामयिक और उपादेय है। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के साहित्य में स्वीकृत है। पृष्ठसंख्या १२८, मूल्य ।≈)

संक्षिप्त सूरसागर

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

सूरदासजी-रचित सूरसागर से ५०० पद-रत्न चुनकर इसमें एकत्र किये गये हैं। जहाँ तक हो सका है, कई प्रतियों से पदों का पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी गयी है।अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और

सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिये लालायित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूरकर हिन्दी-साहित्य-रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य परिचय जोड़ा गया है। उनकी जीवनी की मुख्य-मुख्य घटनाओं का पूरा-पूरा उल्लेख आगया है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएँ भी लिखी गयीं हैं। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत है। एण्टिक कागज़ का जिल्ददार संस्करण, पृष्ठसंख्या ४२५, मूल्य २)

विहारी-संग्रह

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

कविवर विहारीलाल की सतसई से प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह छोटा सा संग्रह तैयार किया गया है। जहाँ तक सम्भव हुआ है, इसमें शृंगाररस के दोहों का समावेश नहीं किया गया है, किन्तु ऐसे दोहों का संग्रह किया गया है, जो बिना किसी सङ्कोच के बालक-बालिकाओं को पढ़ाये जा सकते हैं। पृष्ठसंख्या ६४, मूल्य ≋)

ब्रज-माधुरी-सार

सम्पादक—श्री वियोगी हरि—इस पुस्तक का विषय इसके नाम ही से प्रकट होता है। इसमें ब्रजभाषा की कविता का सार सङ्कलन किया गया है। इस संग्रह में चार विशेषताएँ हैं:—

(१) इसमें सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय सत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया गया है।

(२) इसमें कुछ ऐसे कवियों की रचनाओं का रसास्वादन भी कराया गया है जो अभी तक कहीं प्रकाशित नहीं हुई थीं।

(३) इस ग्रन्थ में यथेष्ट पाद-टिप्पणियां लगा दी गयी हैं, जिनकी सहायता से साधारण पाठक भी लाभ उठा सकते हैं।

(४) इसके प्रारम्भ में प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवनचरित और उसकी कविता की संक्षिप्त आलोचना भी की गई है।

पृष्ठसंख्या ६३२, मूल्य जिल्दवाले संस्करण का केवल २)

पद्मावत (पूर्वार्द्ध)

सम्पादक—श्री लाला भगवानदीन

यह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत का पूर्वार्द्ध है। इस भाग में पहले खण्ड से लेकर ३४वें खण्ड तक का समावेश हुआ है। सम्पादक महोदय ने इस ग्रन्थ में इतनी पादटिप्पणी लगा दी हैं कि अब इस प्राचीन काव्य का रसास्वदान करना प्रत्येक कविता-प्रेमी के लिए सुलभ हो गया है। अन्त में एक संक्षिप्त शब्दकोश भी जोड़ दिया गया है। पृष्ठसंख्या लगभग २००; मूल्य साधारण जिल्द का १) और जिल्दवाली का १।)

सूरदास की विनयपत्रिका

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

यद्यपि 'विनय-पत्रिका' नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ महात्मा सूरदासजी का नहीं है तथापि सूरसागर में विनय-सम्बन्धी जो पद मिलते हैं, उन्हीं के आधार पर सौ उत्तमोत्तम एवं मनोरम पदों का संकलन करके इसका 'विनय-पत्रिका' नाम दिया गया है। क्रम तुलसीदासजी की विनय-पत्रिका का रक्खा गया है। अन्त में संक्षिप्त शब्दार्थ भी दे दिया है। पृष्ठ-संख्या ७४, मूल्य केवल ≡)

भाग १२ } वैशाख, संवत् १९८२ { अङ्क ९

भक्त-भावना

कवित्त

पान चरनामृत कौ, गान गुन गानन कौ,
हरि-कथा सुने सदा हिये कौ हुलसिबो।
प्रभु के उतीरन की गूदरी औ चीरन की,
भाल भुज कंठ उर छापन कौ लसिबो॥
'सेनापति' चाहत है सकल जनम भरि
वृन्दावन-सीमा तें न बाहर निकसिबो।
राधा-मन-रंजन की सोभा नैन-कंजन की,
माल गरे गुञ्जन की, कुञ्जन कौ बसिबो॥

—सेनापति

अनुराग-वाटिका

पद

सो रस-धाम हमारो।
तीन लोक तें न्यारो॥

अगम, अखंड, अलौकिक, अद्भुत, अनुपम, अलख, अलेखा।
अकथ, अनादि, अपरिमित, अश्रुत, अमल, अरूप, अरेखा॥
अप्राकृत, अनवद्य, अगुन, अज, रसिकन प्रान-पियारो।
पूरन-काम, अकाम, एक रस; सो रस-धाम हमारो॥
तीन लोक तें न्यारो॥

भूमि अमिय-रस-सौनी।
सोभित सुकृत-सलौनी॥

स्वर्ग-सुधा-सिंचित वसुधा जहँ सजल सफल सुचि भ्राजै।
शान्ति-वनी विकसित कल कुसुमनि, ललित लतावृत राजै॥
अनुरति-सरित समुद लहरति मिलि मलयानिल गज-गौनी।
कूजत भाव-विहँग सुख-साखनि, भूमि अमिय-रस-सौनी॥
सोभित सुकृत-सलौनी॥

मानस-सर मन भावै।
हंसनि केलि करावै॥

तहँ मराल विहरत नित हिलि-मिलि करि कल्लोलनि गावैं।
चुगत मुक्ति-मुक्तान मनोरम, नीर-छीर बिलगावैं॥
फूले कमल, मधुप मँडरावैं, मधुर मरंद लुभावै।
धन्य-धन्य! या में क्रीड़त जे, मानस-सर मन भावै॥
हंसनि केलि करावै॥

गावत राग नवीना।
बाजि रही तहँ बीना॥

लहरति स्वर-लहरी बीना की अति झीनी रँगभीनी।
अनहद रद परि गयो बिहद सुनि तान-तरंग नवीनी॥

दिव्य मधुर रस-बिन्दु-नाद में ह्वै पल-पल लय-लीना।
भावुक भाव-भरे गुन-गुम्फित गावत राग नवीना॥
बाजि रही तहँ बीना॥

प्रेम-प्रकास-प्रकासी।
दिव्य विकास-विकासी॥

जागति जोति अमन्द अमित रवि-चन्द मन्द दुति भासै।
प्रेम-प्रभा-प्रतिबिम्बित प्रतिकन, परम प्रकास प्रकासै॥
सहज-स्वरूप-सुरत-संभव रवि उदित जहाँ अविनासी।
नहिं तहँ दिवस न रैनि, लोक सो प्रेम-प्रकास-प्रकासी॥
दिव्य विकास-विकासी॥

अंत न कोऊ पायो।
वेद नेति कहि गायो॥

प्रणव जहाँ गंधर्व, वेद चहुँ बिरदावलि नित गावैं।
कर्म, उपासन, ज्ञान टहलुवा निसि-दिन इत-उत धावैं॥
मुक्ति भई दासी वा गृह की, तत्व-विचार भुलायो।
बँधुवा बन्यो काल कलपत तहँ, अंत न कोऊ पायो॥
वेद नेति कहि गायो॥

राजत प्रीतम प्यारो।
जीवन-जीव हमारो॥

परम भावतो सजन सनेही लै सँग कृपा-पियारी।
दै मुख-चंद-सुधा-रस रसिकनि बिहरत स्वबस-बिहारी॥
काल-कर्म-गुन-पर सुख-अनुभव लेत जीव तहँ न्यारो।
सो रस-धाम हमारो, हरि जहँ राजत प्रीतम प्यारो॥
जीवन-जीव हमारो॥ १॥

❧❧❧

याही तें हौं प्रेम-रँगीलो।

भयो प्रेम तें उभयलोक कौ बंधन मेरो ढीलो॥
ज्ञान, उपासन, कर्म सुसाधन कथना में अति मीठे।
पै पीछे करनी में बिपलौं लागत हैं सब सीठे॥

ध्रुव लौं अटल सदा जगतीतल प्रेम-पंथ कलि माहीं।
तीन काल अरु तीन लोक में या सम साधन नाहीं॥
सुलभ, सुसाध्य, सरस, संतत सुख-सार, सुकृत-संचारी।
अनुभव-गम्य, अकथ, आनँदमय, अमल, अनूप, अपारी॥
है अनन्य रसिकन कौ रसमय उपवन प्रान-पियारो।
पथिकन कौ विश्राम-धाम यह साधन सुगम हमारो॥

मति देखै उत रंग-रंगीली।
जावैगी परि अँखियन मादक विष की धार रसीली॥
वा मतवारी रस-धारा तें भई न कौनि दिवानी?
कोरनि में भरि वाहि कौनि नहिं हेरत हीय हिरानी?
तू तौ भोरी अति सुभाव की, पुनि-पुनि उतही देखै।
जाति खिंची वा चुंबक पै तू, हानि-लाभ नहिं लेखै॥ ३॥

चाखि रही पिय-प्रेम-सुधा-रस।
साँचेहुँ सुधि-बुधि नाहिं मोहि कछु, कहा लोक-परलोक-'अजस-जस'॥
बूड़ी नेह-सिंधु में हौं तौ, उछरत नाहिं बनत अपने बस।
सौंपि चुकी सरबस प्रीतम कौं, कहा करूँ अब लहि जग नीरस॥ ४॥

(क्रमशः)

वि० ह०

सागर तट पै!

तू कब डोंगी डारैगो?
या सागर सों तारैगो?
छई अँधेरी; पच्छिम में दिनकर की चिता जरी।
मुरझाये प्रसून, अनुरंजित दिसा मलीन परी।
कबतैं बैठ्यौ इहाँ आइके—
वारिद वृन्द बनाऊँ!!

ढारों रोय-रोय अम्बूकन;—
(कोमल-दूब भिँजाऊँ)
ज्यारि सवेग सिंधु थिर नाहीं, झिलमिल चन्द जुन्हाई,
बिरह-बावरी कुररी की कहुँ देति कराह सुनाई।
दूरि; नाव पर नाविक हू—
मधुरे विहाग-स्वर गावै।
सो रहि-रहि बिछुरे अतीत के
प्रेमी की सुधि ल्यावै।
मैहुँ, प्रीतिके प्याले की
फेनिल-वारुनी पिये।
बैठ्यौ तट पै;
आसा के आँचर को छोर छिये।

(२)

कब करुना-कोर करैगो ?
उर में आमोद भरैगो ?
नहिं बिछोह जित नित लहरै अविगत सुख-पारावार।
माझी !
कब पहुँचैहै बोहित—
वारिधि के वा पार !!

—मदनलाल चतुर्वेदी

सूरदासजी का एक दृष्टिकूटक पद

ब्रज-भाषा के कवियों में सूरदासजी इतने प्रसिद्ध हैं कि उनके विषय में जो कुछ प्रशंसा की जाय वह अत्युक्ति नहीं कही जा सकती। बङ्ग-प्रान्त में श्रीमन् महाप्रभु चैतन्य देव के आविर्भाव से गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदाय की बड़ी उन्नति हुई थी। इस सम्प्रदाय में भी गोविन्ददास, राय शेखर प्रभृति श्रेष्ठ वैष्णव-कवियों का प्रादुर्भाव हुआ। बङ्गाली

वैष्णव-कवियों ने मैथिल कवि-कोकिल विद्यापति के बहुत-से पद संग्रह करके "पदामृत-समुद्र" "पद-कल्प-तरु" प्रभृति ग्रन्थों में आदर से सन्निवेशित किये; पर यह बड़ी दुःख की बात है कि आज प्रायः साढ़े चार सौ वर्ष से गौड़ीय वैष्णव-सम्प्रदाय का श्रीव्रज-धाम से अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्ध होते हुए भी हमारे पूर्वोक्त पद-संग्रह ग्रन्थों में सूरदास, नन्ददास, हितहरिवंश, हरिदास स्वामी जैसे व्रज-भाषा के श्रेष्ठ कवियों की पदावली को स्थान नहीं मिला ! व्रज-भाषा की अनभिज्ञता हमारे प्रान्त में इतनी दूर तक पहुँची कि अनेक प्रसिद्ध बङ्गाली साहित्य-सेवियों ने भी, विद्यापति की मैथिल पदावली के अनुकरण से रची हुई, तथा-कथित (So-called) "व्रज-बोलि" की पदावली को विशुद्ध व्रज-भाषा की रचना समझ कर बहुत-कुछ असङ्गत कथन किया। यह बड़े आनन्द की बात है कि अब हमारे प्रान्त में दो-चार भाषा-तत्वविद् सुशिक्षित बङ्गाली भाइयों ने हिन्दी तथा व्रज-भाषा के साहित्य का आलोचन कर के प्रकृत तथ्य के प्रकट करने की चेष्टा की है और उस प्रचलित भ्रान्त विश्वास को अमूलक प्रमाणित किया है। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रभृति साहित्य-हितकारिणी संस्थाओं द्वारा प्रकाशित हिन्दी तथा व्रज-भाषा के सुलभ ग्रन्थों के प्रचलन से अब हम आशा करते हैं कि थोड़े ही दिनों में हमारे शिक्षित बङ्गाली भाई हिन्दी-साहित्य-कानन में विचरण करके सूरदास, तुलसीदास, विहारी लाल प्रभृति महाकवियों के काव्यरूपी पारिजात-प्रसूनों के मकरन्द का पान करेंगे।

सूरदासजी प्रभृति हिन्दी-कवियों की पदावली बङ्गप्रान्त के प्राचीन वैष्णव-पद-संग्रहों में अकसर नहीं मिलती, पर मुझे कलकत्ता के बंगीय-साहित्य-परिषद् की पोथि-शाला की २०१ संख्यक पुस्तक में सूरदासजी का एक दृष्टिकूटक पद मिला है। मैंने अपने स्वसम्पादित अप्रकाशित "पद-रत्नावली" ग्रन्थ में भी वह पद उद्धृत किया है। मुझे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-द्वारा प्रकाशित "व्रज-माधुरीसार" ग्रन्थ में भी सूरदासजी का वह पद मिला है, पर

उभय ग्रन्थों में कुछ ऐसा प्रयोजनीय पाठान्तर मिला है कि जिस से यह प्रमाणित होता है कि दो-तीन स्थलों में "व्रज माधुरी-सार" का पाठ और बहुत स्थलों में हमारी उस बंगीय पुस्तक का पाठ अशुद्ध है। इन पाठान्तरों की सविस्तृत आलोचना से यदि सूरदासजी के उस दृष्टिकूटक पद का ठीक-ठीक पाठ और अर्थ निर्णीत हो जाय तो बड़ा अच्छा काम हो।

मैं यहाँ व्रज-माधुरी सार और बङ्गला पोथी से उस पद को उद्धृत करता हूं। अनावश्यक पाठान्तरों को छोड़ कर केवल प्रयोजनीय पाठान्तरों के विषय में मैं अपनी सम्मति हिन्दी-साहित्य-सेवियों की सेवा में उपस्थित करता हूं। आशा है, मेरे उद्देश्य को अच्छा समझ कर वह मेरी त्रुटि और प्रगल्भता को क्षमा करेंगे।

व्रज-माधुरी-सार का पाठः—

सारँग

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज क्रीड़त है, तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर, सर पर गिरिवर, फूले कंज पराग।
रुचिर कपोत बसै ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, तापर सुक पिक मृगमद काग।
खंजन धनुष चंद्रमा ऊपर, ता ऊपर इक मनिधर नाग॥
अंग-अंग प्रति और-और छबि, उपमा ताको करत न त्याग।
सूरदास प्रभु पियहु सुधारस, मानौं अधरनि के बड़भाग॥
(व्र० मा० सा०—पृष्ठ १८)

बंगला पुस्तक का पाठ:—

धानसी

पेखलुँ एकहि अदभुत राग।
युगल कङल पर गज-बर गीरत
तापर सिंह करत अनराग॥ ध्रु०॥

तहि पर सरबर तापर गिरि-बर
गिरि फुले कञ्ज-पराग।
रसिक कपोत वसइ तहि ऊपर
अरुण अमृत-फल लाग।
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव
ता पर शुक, मृग, भाग।
युगल धनूक बसइ तहि ऊपर
ता पर मणिधर नाग।
इह बिध शोभा रहत निशि बासर
कबहुँ न करत तियाग।
सूरदास पहुँ रसिक-शिरोमणि
बाड़ह सिन्धु-सोहाग॥

(अ० प० र—पृष्ठ १४७)

(१) बंगला की प्राचीन पोथियों में "र" और "ब" अक्षर बहुत स्थलों में एक ही तरह से लिखा जाता था, इसलिये मेरी सम्मति में "बाग" जैसा शुद्ध और अर्थ-वैचित्र्य-युक्त पाठ ही बंगाली लिपिकारों के भ्रम से "राग" हो गया। "राग" शब्द का "शोभा"—अर्थ असम्भव नहीं है, पर श्रीराधिकाजी के अंग-प्रत्यङ्ग यहाँ पल्लव, पुष्प, फल, पक्षी इत्यादि के स्वरूप से कवि ने वर्णित किये हैं, इसलिये "बाग" पाठ ही यहां ठीक मालूम होता है। बंगला-पोथी का "पेखलुँ" पाठ भी ब्रज-भाषा में ठीक नहीं है। "पेखलुँ" शब्द विद्यापति के पदों में बहुत मिलता है; अतः विद्यापति के अनुकरण से ही यह शब्द बंगला-कथित "ब्रज-बोलि" में प्रचलित हुआ है।

(२) हिन्दी की 'गिरना' धातु से 'गिरता', छन्द के अनुरोध से 'गीरत', शब्द (=पड़ता) हो सकता है, पर यहां 'पतन' अर्थ से 'क्रीड़न' अर्थ ही मैं ठीक समझता हूं, क्योंकि गज के 'पतन' से 'क्रीड़न' कहीं अधिक सुदृश्य होता है।

(३) 'गिरि में फूलत' इस अर्थ में 'गिरि फुले' पाठ से व्रज-माधुरी-सार का पाठ ही अधिक शुद्ध है।

(४) बंगाली-पुस्तक का 'रसिक-कपोत' व्रज-माधुरी-सार के 'रुचिर-कपोत' से समीचीन मालूम होता है, क्योंकि उसकी रसिकता (रसज्ञता) अधर-रूपी अमृत-फल की प्रार्थना के लिये एकान्त उपयोगिनी है। 'रुचिर' शब्द से ऐसी "ध्वनि" नहीं निकलती। "व्रज-माधुरी-सार" की "रुचिर कपोत" इत्यादि पंक्ति में दो बार "ता ऊपर ता ऊपर" प्रयोग पुनरुक्ति-दोष में आता है, जो सूरदास—जैसे महाकवि के पद में न होना चाहिए। यदि यह पाठ ठीक समझा जाय तो 'लाग' शब्द का 'निमित्त' अर्थ छोड़कर 'लग रहा' अर्थ करना चाहिये। बंगला-पुस्तक का "अरुण" विशेषण भी यहां बहुत सार्थक जान पड़ता है।

(५) "व्रज-माधुरी-सार" के सम्पादक श्रद्धेय वियोगी हरिजी ने 'अमृत-फल' का अर्थ "मुख" 'पुहुप' का "पुष्प; चिबुक" और 'पल्लव' का अर्थ "पत्र" और "अधर" लिखा है; मेरी सम्मति में "अरुण-अमृत-फल" से श्रीराधिकाजी का 'अधर' 'पुहुप' से उनकी श्वेत कुन्द-कलिका-सी दन्त-पंक्ति और 'पल्लव' से "आताम्र" अर्थात् थोड़ा-सा लाल रंग का "ओष्ठ" प्रतीत होता है, क्योंकि अमृत-फल के साथ सम्पूर्ण मुख-मण्डल की उपमा नहीं बनती और मुख-मण्डल के अधर, ओष्ठ, नासिका, नेत्र प्रभृति अवयवों की यहाँ पृथक्-पृथक् वर्णना की गई है। सम्पूर्ण मुख के उपमास्थल (उपमान) चन्द्रमा और कमल दो पदार्थ ही प्रसिद्ध हैं। "व्रज-माधुरी-सार" के पद की छठी पंक्ति में "चंद्रमा" से श्रीराधिकाजी के अर्द्धचन्द्राकार ललाट की उपमा और तीसरी पंक्ति में "कंज" (कमल) से स्तन की उपमा दी गई है; इसलिये मेरी राय में कवि ने यहां समग्र मुख-मण्डल की तुलना अनावश्यक समझ कर छोड़ दी है।

(६) वियोगी हरिजी ने "सुक, पिक, मृगमद, काग" इस वाक्य के अर्थ में "पिक" और "काग" छोड़ दिया है; "पिक" से श्री

मतीजी की "बोली" प्रतीत हो सकती है; जैसे "संक्षिप्त सूरसागर" के २८८ संख्यक पद में है, यथा "ससि पर बिम्ब कोकिला ता बिच कीर करत अनुमान।" यदि यही पाठ और अर्थ ठीक हो, तो उद्धृत वाक्य में जैसा "कोकिला" (बोली) शब्द "बिम्ब" (अधर) और "कीर" (नाक) शब्दों के बीच में है, यहां भी ऐसा ही होना चाहिये। अन्यथा इस "क्रम-भङ्ग" दोष से अर्थ-प्रतीति में बड़ी हानि पहुँचेगी।

"काग" शब्द से यहां क्या समझा जाय ? "काग" से संस्कृत-कवियों द्वारा वर्णित "काक-पक्ष" (शिखण्डक अर्थात् कर्णप्रान्तों में विलम्बित केश-गुच्छ) लक्षित करने से, सूरदासजी के अभिप्राय से, छठी पंक्ति में वर्णित खंजन-रूपी नेत्र, धनुष रूपी भौंह और अर्द्ध चन्द्र-रूपी ललाट की वर्णना के आगे काक-पक्ष की वर्णना नहीं बनती। इसलिये "सुक पिक" इत्यादि वाक्य में "पिक" और "काग" शब्दों का ग्रहण असङ्गत प्रतीत होता है। अतः बङ्गाली पुस्तक का "ता पर शुक-मृग-भाग" पाठ ही समीचीन जान पड़ता है। क्योंकि "ता" अर्थात् पल्लव-रूपी ओष्ठ के ऊपर शुक और मृग के भाग (अंश अर्थात् अङ्ग), यथाक्रम से, शुक-नासा और मृग-नेत्र विराजित हैं।

(७) वियोगी हरिजी ने कदाचित् सरल समझ कर "खंजन" "धनुष" और "चन्द्रमा" शब्दों का अर्थ नहीं लिखा। "मनिधर नाग" से तो "मणियों से गुंथी हुई बेनी" लक्षित होती है, जैसा वियोगी हरिजी ने लिखा है। इस से भी प्रमाणित होता है कि पाँचवीं पंक्ति में "काग" पाठ और उस का "काक-पक्ष" अर्थ करना कवि का अभिप्राय नहीं था; अन्यथा कवि ने तो अवश्य ही "काग" शब्द को यहाँ से खींच कर और "खंजन" "धनुष" आदि को ऊपर उठा कर "मनिधर-नाग" (मणियों से गुँथी हुई बेनी) से मिला दिया होता।

(८) उपसंहार में यह भी वक्तव्य है कि संस्कृत पदों के अनुसार हिन्दी और मैथिल पदों के 'ध्रुव-कलि' (धुया) में मात्रा कहीं

कहीं अधिक या कम भी मिलती है; पर शेष कलियों (Stanzas) में मात्रा की समता (Uniformity) वांछनीय होती है। क्योंकि मात्रा का व्यतिक्रम कवि की "अशक्ति" का परिचायक है। उद्धृत बंगला पद के ध्रुव-भिन्न अन्य सब कलियों में चतुर्म्मात्रात्मक सात गण अर्थात् अट्ठाइस मात्राएं हैं। "व्रज-माधुरी-सार" के पद में "हरि पर" इत्यादि चरण में २८ मात्राएं ठीक हैं, किन्तु ४, ५, ६, ७ और ८ वें चरण में सर्वत्र चतुर्म्मात्रिक ८ गण अर्थात् ३२ मात्राएँ मिलती हैं। यह मात्रा-वैषम्य भी, मेरी सम्मति में, पाठाशुद्धि का समर्थक है। प्राचीन कवियों की पदावली प्रायशः अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित लिपिकारों द्वारा लिखित और प्रचारित होकर "सात नक़ल से असल खस्ता" इस प्रसिद्ध लोकोक्ति की यथार्थता सप्रमाण करती है; मुद्रा यन्त्र का अभाव भी एक प्रबल कारण रहा है, इसलिये प्राचीन कवियों की रचना का भ्रष्ट होना कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। हिन्दीके प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशकों और सम्पादकों से मेरा विनीत निवेदन है कि यदि ग्रन्थकारों की स्वहस्तलिखित पोथियां न मिलें, तो यथासम्भव प्राचीन और विशुद्ध हस्तलिखित पोथियों को संग्रह कर और अच्छी तरह से पाठों को मिलाकर प्रकृत पाठों के निर्णय में सतर्क और यात्निक रहें।*

—श्री सतीशचन्द्र राय एम. ए.

---

* इस लेख के लेखक महोदय का हिन्दी-साहित्य-प्रेम श्लाघनीय है। ब्रजभाषा-साहित्य से, जैसा कि लेखक ने लिखा है, बंगीय वैष्णव साहित्य का सैकड़ों वर्षों से घनिष्ठ संबंध रहा है। अतएव ब्रजभाषा और हिंदी के काव्यग्रन्थों पर बंगाली साहित्यकों का प्रेम स्वाभाविक है। श्री सतीशचंद्रायजी ने उपर्युक्त लेख में अपनी साहित्य-मर्मज्ञता का पर्याप्त परिचय दिया है। आप के इस सार्थक परिश्रम को देखकर हमारा हृदय फूला नहीं समाता। हम आप की कुछ बातों से पूर्णतः सहमत हैं। शेष बातों पर, अवकाश मिला तो, यथामति प्रकाश डालने की चेष्टा की जायगी। हमें आशा है कि श्रीयुक्त राय महोदय 'पत्रिका' को इसी प्रकार सदा समलंकृत करने की कृपा करते रहेंगे। —संपादक

स्थायी समिति का द्वितीय अधिवेशन

पंद्रहवीं स्थायी समिति का द्वितीय अधिवेशन रविवार मिति चै० शु० ११—८२ वि०, ता० ५ अप्रैल सन् १६२५ ई० को ३ बजे दिन से सम्मेलन-कार्यालय में निम्नलिखित सदस्यों की उपस्थिति में हुआ—

१—श्री० पं० भागीरथप्रसादजी दीक्षित
२—श्री० पं० देवीप्रसादजी शुक्ल, प्रयाग
३—श्री० प्रो० ब्रजराजजी, प्रयाग
४—श्री० वियोगी हरिजी, प्रयाग
५—श्री० बा० केदारनाथजी गुप्त, प्रयाग
६—श्री० पं० लक्ष्मीनारायणजी नागर, प्रयाग
७—श्री० पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी, प्रयाग
८—श्री० चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्मा, प्रयाग
९—श्री० अध्यापक पं० रामरत्नजी, प्रयाग
१०-श्री० बा० पुरुषोत्तमदासजी टंडन, प्रयाग

नियमानुसार श्री० बा० पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

१—आय-व्यय का भाद्रपद कृ० १ सं० १९८१ वि० से पौ० शु० १५ सं० १९८१ वि० तक का जाँचा हुआ हिसाब अर्थमन्त्रीजी ने उपस्थित किया और सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

२—बाल-साहित्य-सम्बन्धी पुरस्कार के सम्बन्ध में श्रीमती यशोदा देवी का पत्र उपस्थित हुआ। निश्चित हुआ कि—

(क) समाचारपत्रों में सूचना प्रकाशित कर "बाल-साहित्य" विषय पर श्रावणी-पूर्णिमा तक कार्यालय में पुस्तकें मंगायी जायँ।

(ख) निम्नलिखित सज्जनों की एक समिति कार्यालय में इस प्रकार से आयी हुई सब पुस्तकों पर विचार कर निर्णय करे कि किस लेखक को पारितोषिक दिया जाय—

१—श्री० पं० रामजीलालजी शर्मा, प्रयाग
२—श्री० चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्मा, प्रयाग
३—श्री० बा० केदारनाथजी गुप्त, प्रयाग

इस समिति के संयोजक पं० रामजीलालजी शर्मा नियुक्त हुए।

(ग) परीक्षामन्त्री अध्यापक पं० रामरत्नजी को अधिकार होगा कि इस कार्यालय में उपर्युक्त सूचना द्वारा जो पुस्तकें आवें उनके अतिरिक्त जो पुस्तकें वे इस योग्य समझें, उन्हें भी वह विचारार्थ इस उपसमिति में उपस्थित करें।

(घ) बाल-साहित्य के अन्तर्गत बाल-व्यायाम भी सम्मिलित समझा जायगा।

३—सहायकमन्त्री के पद पर पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी की स्थायी नियुक्ति का विषय उपस्थित हुआ। निश्चित हुआ कि सहायकमन्त्री के पद पर पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी स्थायी रूप से नियुक्त किये जाँय। वेतन ५०) मासिक दिया जायगा। वेतन वृद्धि ५) वार्षिक के क्रम से ७५) मासिक तक होगी।

४—श्रीमान् शिवप्रसादजी गुप्त का वह पत्र उपस्थित हुआ जिसमें उन्होंने अपनी यह सम्मति प्रकट की है कि कार्य की सुविधा के लिये श्रीनरेन्द्र देवजी इतिहास-समिति के संयोजक नियुक्त किये जाँय। निश्चय हुआ कि श्री नरेन्द्र देवजी से इस समिति के संयोजक बनने की प्रार्थना की जाय।

५—कसिया के बौद्ध-विद्यालय में हिन्दी की पढ़ाई के लिए अगले वर्ष के आय-व्यय के अनुमान-पत्र में आर्थिक सहायता की व्यवस्था की जाय, इस आशय का श्री राजमणिजी त्रिपाठी का

पत्र उपस्थित हुआ। निश्चित हुआ कि अगले वर्ष आय-व्यय का अनुमान-पत्र बनाते समय यह विषय उपस्थित किया जाय।

६—प्रबन्ध मंत्रीजी ने सूचना दी कि कसिया, ज़िला गोरखपुर, का गौतम बुद्ध-विद्यालय सम्मेलन से सम्बद्ध होना चाहता है; उसका सम्बद्ध-शुल्क भी आ गया है। निश्चित हुआ कि विद्यालय सम्मेलन से सम्बद्ध किया जाय।

७—कचहरियों में हिन्दी-अर्ज़ीनवीस नियुक्त करने के विषय में श्री हरमुकुन्दजी का पत्र उपस्थित हुआ। निश्चय हुआ कि उनको लिखा जाय कि इस विषय पर सम्मेलन का पहले से ध्यान है और कार्य भी हो रहा है।

८—पंजाब तथा सिन्ध में हिन्दी-प्रचार के लिए आय-व्यय के अनुमान-पत्र में व्यवस्था न होने पर भी विशेष परिस्थिति उपस्थित होने पर प्रधान मन्त्रीजी को इस काम के लिए एक प्रचारक नियुक्त करना पड़ा। आय-व्यय के अनुमान-पत्र में इस व्यय के लिए गुंजायश न होने के कारण प्रधान मन्त्रीजी का यह प्रस्ताव उपस्थित हुआ कि आय-व्यय के अनुमान-पत्र में पंजाब और सिन्ध में हिन्दी-प्रचार के लिए २०००) के व्यय की स्वीकृति दी जाय। सभापतिजी ने यह निश्चय किया कि नियमावली की ८२ धारा के अनुसार प्रधानमन्त्रीजी स्थायी समिति का एक विशेष अधिवेशन कर उसमें यह विषय उपस्थित करें।

कार्य समाप्त न होने के कारण समिति की बैठक दूसरे दिन करना निश्चित हुआ।

पिछले दिन की स्थगित बैठक चै० शु० १२ संवत् १९८२ वि० ता० ६ अप्रैल सन् १९२५ ई० को सायंकाल ५ बजे से निम्नलिखित सदस्यों की उपस्थिति में हुई—

१—श्री० बा० पुरुषोत्तमदासजी टंडन, प्रयाग
२—श्री० बा० गंगाप्रसादजी, प्रयाग

३—श्री० पं० भागीरथप्रसादजी दीक्षित,
४—श्री० पं० गिरजादत्तजी शुक्ल "गिरीश", प्रयाग
५—श्री० वियोगी हरिजी, प्रयाग
६—श्री० पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी, प्रयाग
७—श्री० चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्मा, प्रयाग
८—श्री० अध्यापक पं० रामरत्नजी, प्रयाग
९—श्री० प्रो० ब्रजराजजी, प्रयाग
१०-श्री० पं० लक्ष्मीनारायणजी नागर, प्रयाग
११-श्री० पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी, प्रयाग
१२-श्री० पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी (सहायक मंत्री)

नियमानुसार श्री बा० पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

९—हिन्दी-विद्यापीठ-उपसमिति की बनायी हुई हिन्दी-विद्यापीठ की योजना उपस्थित हुई। निश्चित हुआ कि यह योजना छपाकर स्थायी समिति के समस्त सदस्यों के पास तथा समाचार-पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजी जाय और यह विषय आगामी अधिवेशन में उपस्थित हो।

१०—श्रीमान् सभापतिजी ने यह सूचना दी कि इलाहाबाद-डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से विद्यापीठ में खेती करने के लिए सहायता माँगी गयी थी। लिखापढ़ी के बाद १००००) का चेक उनके पास आ गया है। विद्यापीठ जिस गाँव में है, उसका ॥।) हिस्सा बिक रहा है। कुल गाँव, जिसमें २३५ बीघा खेती की भूमि तथा ३०० बीघा बालू यमुना तट पर है, लगभग १२५००) में मिल रहा है। विद्यापीठ में यदि बालकों को खेती का काम सिखाना है और ज़िला बोर्ड की सहायता को काम में लाना है तो भूमि लेने का यह अच्छा अवसर है। बहुत देर तक इस विषय में विवाद हुआ। सम्मति लेने पर दोनों पक्षों में बराबर सम्मतियाँ आयीं; इसपर सभापतिजी ने कहा कि यद्यपि मेरी स्वयं सम्मति है कि भूमि मोल ले ली

जाय, तथापि जब इतने सज्जन इसका विरोध करते हैं तब मेरी यही सम्मति है कि गाँव मोल न लिया जाय। इस प्रकार का काम जहाँ तक हो, मतैक्य से ही किया जाना अच्छा होता है।

सभापतिजी की इस सम्मति के कारण गाँव मोल लेने का प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ।

११—प्रबन्धमन्त्रीजी ने सूचना दी कि देहरादून के लाला बलबीरसिंह जी सम्मेलन के स्थायी सदस्य होना चाहते हैं, उन्होंने नियमानुसार २५०) शुल्क भी भेज दिया है।

निश्चित हुआ कि यह महानुभाव स्थायी सदस्य बना लिए जायँ।

१२—प्रबन्धमन्त्रीजी ने सूचना दी कि निम्नलिखित सज्जन सम्मेलन के साधारण सदस्य होना चाहते हैं, इन्होंने नियमानुसार १२) वार्षिक भेज दिया है।

निश्चित हुआ कि यह महानुभाव साधारण सदस्य बना लिए जायँ :—

१—श्री० विन्ध्येश्वरी प्रसाद सिंहजी
मन्त्री राबर्ट्स पब्लिक लाइब्रेरी, बलिया
२—श्री० त्रिवेणीप्रसादजी,
मन्त्री श्री महावीर हिन्दी-पुस्तकालय, आज़मगढ़
३—श्री० रघुनाथ पाण्डेयजी, वकील, आज़मगढ़
४—श्री० कालिकाप्रसादजी त्रिवेदी, वकील
हाईकोर्ट, सीतापुर
५—श्री० सोमेश्वरनाथजी, शाहाबादी
मुज़फ़्फ़रगंज, शाहजहाँपुर
६—श्री० मथुराप्रसादजी शुक्ल, रायबरेली (अवध)
७—श्री० शिवगोविन्दजी त्रिपाठी, वकील, रायबरेली
८—श्री० सूर्यबख़्श सिंहजी, वकील, बाराबंकी
९—श्री० रघुनाथसिंहजी वकील हाईकोर्ट, बाराबंकी

१०—श्री० शशिधरसिंहजी,
राज्य टिकारी, डाकखाना डीह, ज़ि० रायबरेली

११—श्री० शतीशचन्द्र रायजी, एम. ए.
धामगढ़, पो० बारपाड़ा, ज़ि० ढाका (बंगाल)

१२—श्री० मुरलीधरजी मिश्र वकील, लखीमपुर

१३—प्रबन्धमन्त्रीजी ने सूचना दी कि निम्नलिखित सज्जन सम्मेलन के हितैषी होना चाहते हैं, इन्होंने नियमानुसार वार्षिक शुल्क ३) भेज दिया है।

निश्चित हुआ कि वह महानुभाव हितैषी बना लिये जायँ—

१—श्री० अध्यापक हरिकृष्ण राय "विशारद" मिडिल-स्कूल, बैरिया, बलिया

२—श्री० शिवप्रसादसिंहजी, विशारद, माध्यमिक पाठशाला बैरिया, बलिया

३—श्री० शीतलप्रसादजी मिश्र अध्यापक मिडिलस्कूल बैरिया, बलिया

४—श्री० रामनारायणजी त्रिपाठी बैरिया, बलिया

५—श्री० गोविन्दचन्दजी त्रिपाठी, मैनेजर श्रीसनातन धर्म संस्कृत कालेज, आज़मगढ़

६—श्री० सामर्थी पाण्डेय, मुख़्तार, आज़मगढ़

७—श्री० विष्णुकुमार भार्गव वकील, हाईकोर्ट, सीतापुर

८—श्री० सेठ जयनारायण अभिमन्यु, जयनारायण रोड, सीतापुर

९—श्री० चिम्मनलाल किशोरदास, तामसनगंज, सीतापुर

१०—श्री० रामदयालु रामकुमार, तामसनगंज, सीतापुर

११—श्री० माताप्रसाद वकील, बाराबंकी

१२—श्री० रामजियावन लाल दीक्षित वकील, बाराबंकी

१४—अर्थमन्त्रीजी ने सूचना दी कि रानीगंज (बंगाल) के श्री जगन्नाथ झुंझुनवाला तथा स्थानीय पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल ने अपने साधारण सदस्य पद से त्याग-पत्र दिया है।

निश्चित हुआ कि नियमानुसार इनका त्यागपत्र स्वीकार किया जाय।

१५—श्री हरिभाऊजी उपाध्याय का वह पत्र पढ़ा गया जिसमें उन्होंने संवादपत्रों में प्रकाशित होनेवाले विज्ञापनों से अनर्थों की चर्चा करते हुए स्थायीसमिति के सामने इस आशय के प्रस्ताव का एक मशविदा उपस्थित किया है कि यह समिति हिन्दी के समस्त पत्र-संचालकों से आग्रहपूर्वक यह अनुरोध करती है कि वे ऐसे विज्ञापनों को अपने पत्रों में स्थान न दें।

निश्चित हुआ कि यह प्रस्ताव सम्पादक-समिति के पास भेजा जाय।

सभापति को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई।

रामजीलाल शर्मा, प्रधान मन्त्री

संवत् १९८१ वि० की मध्यमा परीक्षा की उत्तर-पुस्तकों पर

परीक्षकों की सम्मतियाँ

साहित्य—तीसरा प्रश्न-पत्र

मध्यमा परीक्षा के निबंध की १८४ उत्तर-पुस्तकें मैंने जांचीं। इनमें १२५ परीक्षार्थी उत्तीर्ण और ५९ अनुत्तीर्ण हुए। परीक्षा-फल ६८ फ़ी सदी रहा।

परीक्षा देनेवालों में निबन्ध लिखने की योग्यता साधारण पायी गयी। विराम चिन्हों के नियमों का पालन तो एक-दो को छोड़ अन्य किसी भी परीक्षार्थी ने नहीं किया। निबन्ध की निर्दिष्ट संख्यक पंक्तियों अथवा पृष्ठों की ओर भी बहुतही कम परीक्षार्थियों ने ध्यान दिया। अनेक परीक्षार्थियों ने शब्दों के शुद्ध रूप लिखने में

बड़ी ही असावधानी की है, जैसे पद्यों के लिये "पधों" प्राण के लिये "प्रा.ड़"। इसी तरह किसी-किसी ने नये शब्दों को गढ़ा है। जैसे "मुशकिलता" "खींचान" "कहनानुसार" आदि। महाविरेदार हिन्दी लिखनेवाले परीक्षार्थी इने-गिने ही कहे जा सकते हैं। पंजाब तथा बिहार से परीक्षार्थियों की उत्तर-पुस्तकों में शब्दों की लिङ्ग-सम्बन्धी अशुद्धियां भी कम नहीं हैं। यह आनन्द की बात है कि इस प्रश्न में लाहौर की कुमारी विद्याधरी को सबसे अधिक अङ्क मिले हैं। उत्तर-पुस्तकों को देखने से हम कह सकते हैं कि काशी, आगरा, नारायणगढ़ तथा कानपुर के परीक्षार्थियों की योग्यता अच्छी है।

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा एम. आर. ए. एस.

साहित्य—चौथा प्रश्न-पत्र

मध्यमा परीक्षा के चतुर्थ पत्र के उत्तर-पत्रों को देखने से मेरी यह धारणा हुई है कि जो लोग इस परीक्षा के लिये तैयारी करते हैं वे साहित्य का इतिहास तो बिलकुल ही नहीं पढ़ते हैं। उन्हें हिन्दी-साहित्य के इतिहास की मोटी-मोटी बातें तक नहीं मालूम रहतीं। भाषा भी अच्छी नहीं होती! हिज्जों तक की गलतियां रहती हैं। इस वर्ष कितने ही विद्यार्थियों ने अपने उत्तर इस तरह लिखे हैं कि उनमें एक वाक्य तक शुद्ध नहीं हैं। इससे ऐसा जान पड़ता है कि योग्यता न रहने पर भी विद्यार्थी परीक्षा में सम्मिलित हो जाते हैं।

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए०

दर्शन शास्त्र

दर्शन विषय की ५ उत्तर-पुस्तकें आयी हैं। कापियाँ बड़ी ही खराब हैं। विद्यार्थियों ने परीक्षा-पुस्तकें देखी ही नहीं ऐसा अनुमान किसी प्रकार भी असत्य न होगा, हां बुद्धि के दार्शनिक मसलों को हल करने का प्रयत्न किया गया, पर सफलता किसी को नहीं मिली, क्योंकि शब्दों का केवल अनुधावन किया गया है।

चन्द्रशेखर शास्त्री साहित्याचार्य

विज्ञान

मध्यमा परीक्षा के विज्ञान विषय की उत्तर-पुस्तकों की मैंने परीक्षा की। उत्तर पुस्तकें साधारणतः अच्छी हैं, किन्तु अन्य वर्षों की भांति इस वर्ष भी कुछ ऐसे परीक्षार्थी हैं जो नियमित पुस्तकों के पढ़ने का कष्ट नहीं उठाते।

यदि प्रति केन्द्र में कम-से-कम एक भी ऐसी संस्था हो जो परीक्षार्थियों को नियमित पुस्तकों के पढ़ने और समझने में सहायता दे तब मैं आशा करता हूं कि इससे बहुत कुछ लाभ हो सकता है। हर केन्द्र के हिन्दी-भाषा-उत्साही सज्जनों को यह कार्य अपने हाथ में लेना चाहिये तब ही हिन्दी और उसके साथ-साथ ज्ञान की वृद्धि हो सकती है।

फूलदेव सहाय वर्म्मा

धर्म शास्त्र

मध्यमा परीक्षा के धर्म शास्त्र विषय में ६३ छात्र हैं। उन में से ४३ उत्तीर्ण हैं। फल साधारण रूप से संतोषजनक है।

जो अनुत्तीर्ण हुए हैं वे छात्र क़रीब-क़रीब ऐसे हैं, जिन्होंने धर्म शास्त्र में नियत पुस्तकों का प्रायः अवलोकन भी नहीं किया है। जिन ने कुछ भी नियत ग्रन्थ पढ़े हैं—उनको प्रायः पास ही किया गया है। बहुत से छात्र बिना पुस्तकें पढ़े ही परीक्षा में बैठते हैं—यह आश्चर्य है।

गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, शास्त्री; व्याकरणाचार्य, महामहोपाध्याय

संस्कृत

इस बार सम्पूर्ण परीक्षा में सम्मिलित होनेवालों में कुछ न्यून एक-तिहाई संख्या संस्कृत विषय लेनेवालों की थी। इससे इस विषय की सर्वप्रियता के उत्तरोत्तर बढ़ने में कुछ भी सन्देह नहीं रहता। ३४ परीक्षार्थी तो अनुपस्थित रहे। जो ५,८ सम्मिलित हुए

उन में ८ सर्वथा अयोग्य पाये गए। अवशिष्ट ५० उत्तीर्ण होनेवालों में अधिक संख्या व्युत्पन्न विद्यार्थियों की थी। परन्तु उन में भी अनुवाद को शुद्ध संस्कृत में कर सकनेवाले बहुत थोड़े थे। इस विषय में विशेष अभ्यास होना चाहिए।

चतुर्थ प्रश्न के उत्तर में कई महाशयों ने 'शब्दानुवाद' के स्थान में केवल संस्कृत शब्दों के सामने हिन्दी पर्याय लिख दिए, अनुवाद की आवश्यकता उन को प्रतीत ही न हुई—यह प्रश्न-पत्र को ध्यान से न पढ़ने का ही फल है। और भी, तृतीय प्रश्न के (ख) के उत्तर में कई सज्जनों ने प्रश्न में दिये हुए चरणों को ही आनुपूर्वी लिख दिया—कदाचित् उन्हों ने समझा ही नहीं कि पूर्ण श्लोक मांगे हैं, अन्यथा वे अपना समय इस प्रकार क्यों वृथा खोते? और कितनों ही ने तो हिन्दी में अनुवाद कर दिया कि जिसकी आवश्यकता की गन्ध भी प्रश्न में नहीं थी। बहुतों ने अनेक अनपेक्षित बातों को विस्तारपूर्वक लिखने में यथेष्ट समय खो कर, बड़े प्रश्नों के अच्छे और पूर्ण उत्तर लिखने की योग्यता रखते हुए भी शीघ्रता में पड़ कर, अवश्य मिलनेवाले अधिक अङ्कों को खो दिया। साधारणतया पूर्वीय तथा दक्षिणीय केन्द्रोंवाले छात्रों की हिन्दी में व्याकरण की अशुद्धियों की ऐसी भरमार होती है, जैसी दक्षिण देश में खाद्य वस्तुओं में लाल मिर्चों की। इन को व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध भाषा लिखने का अभ्यास विशेष रूप से करना चाहिये।

द्वितीय प्रश्न केवल आलोचनात्मक मौलिक विचार-शक्ति की परीक्षा के लिये दिया गया था, परन्तु खेद है कि, परीक्षार्थियों में उस का बड़ा अभाव पाया गया। भला तुलसीदास, असली-नक़ली सीता, वाल्मीक का डाकूपन, इत्यादि दन्तकथाओं पर पन्ने पर पन्ने रंगने के लिये प्रश्न में कहां गुञ्जायश थी? विभीषण वा राम के चरित्र में कितनों ही ने परस्पर विरुद्ध और असम्बद्ध अनर्गल बातें लिख डालीं। अतः आवश्यकता है कि मौलिक-विचार-शक्ति की जागृति और उन्नति के लिये हिन्दी-साहित्य विषय के अन्तर्गत कोई 'आलोचनात्मक' पुस्तक अवश्य

अनिवार्य रूप से रखी जावे जिस से सभी विषयों के विद्यार्थियों के विचारों में से क्षुद्रता दूर हो कर विचार-गाम्भीर्य उत्पन्न हो और साहित्य-क्षेत्र में उन की भाविनी उपयोगिता की जड़ जम सके।

र० मि० शास्त्री, एम्० ए०

वैद्यक

परीक्षा-फल अच्छा है। परीक्षार्थियों ने पढ़े हुए भाग को अच्छी तरह लिखने का प्रयत्न किया है। एक-दो परीक्षार्थी नियम का ध्यान न रख लिखते चले गये हैं।

जगन्नाथप्रसाद शुक्ल आयुर्वेद पंचानन, भिषङ्मणि

समालोचना

परीक्षार्थियों में अध्ययन तथा विषय के बोध का अभाव पाया जाता है। साहित्य-सम्बन्धी साधारण शब्द भी वे नहीं समझते; उदाहरण के लिए 'ध्वनि' शब्द लीजिए। प्रत्येक परीक्षार्थी ने नाद या आवाज़ के अर्थ में ही इस शब्द को लिया है। नियमित शिक्षा का प्रबन्ध जब तक न होगा तब तक यही दशा रहेगी।

रामचन्द्र शुक्ल

त्वरा-लेखन

हिन्दी त्वरा-लेखन-प्रणाली में इस वर्ष कदाचित् पहले-पहल एक परीक्षार्थी सम्मिलित हुआ। परीक्षा फल संतोषजनक है।

हिन्दी-त्वरा-लेखन में हिन्दी भाषा के ज्ञान की भी कड़ी परीक्षा हो जाती है और प्रायः कुल विभक्तियों और क्रियाओं आदि के रूप स्वयं ही अपनी बुद्धि से लिखने पड़ते हैं। प्रतिलिपि में परीक्षार्थी से बहुत सी भाषा की ऐसी भूलें हो गई जो मध्यमा के विद्यार्थी

को नहीं करनी चाहिए थीं। परीक्षार्थी ने भाषा-सम्बन्धी उपर्युक्त बातों में यदि ज़रा अधिक सावधानी दिखलायी होती तो उस को अवश्य उस से कहीं अधिक सफलता प्राप्त हुई होती।

निष्कामेश्वर मिश्र, बी० ए०

लाला लाजपत राय और हिन्दी

सारे भारतवर्ष में हिन्दी का प्रचार किया जावे और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साथ मिलकर इस काम को तरक्की दी जावे।

× × × × × × × × × ×

हिन्दू-देवियों का धर्म्म है कि वे अङ्गरेजीकी जगह हिन्दी और संस्कृत पढ़ें, पत्र व्यवहार आदि हिन्दी में करें, हिन्दी-साहित्य को बढ़ावें। मैं अंगरेज़ी या अन्य भाषाओं के पढ़ने का विरोधी नहीं हूं। विद्या या गुण हम को जहां से मिले ले लेना चाहिये, परन्तु अपनी सभ्यता को नहीं छोड़ना चाहिये। हमारी भाषा हमारी सभ्यता का आवश्यक अंग है। अपनी भाषा को छोड़कर हम हिन्दू नहीं रह सकते।

[अष्टम हिन्दू-महासभा के सभापति के भाषण से]

लेजिस्लेटिव ऐसेम्बली और राष्ट्रभाषा

दूसरी बात जो किसी भारत-वासी को सबसे अधिक खटक सकती है वह यह है कि इस सभा की समस्त कार्यवाही अँगरेज़ी में होती है। किसी भी राष्ट्र के लिए एक विदेशी भाषा का राष्ट्र-भाषा बनाया जाना गौरव का विषय नहीं हो सकता। ऐसेम्बली के वर्तमान नियमों के अनुसार इतनी स्वतंत्रता अवश्य दे दी गई है कि जो सदस्य अँगरेज़ी से अनभिज्ञ हों वे अपने-अपने प्रांत की भाषा में अपना वक्तव्य प्रकट कर सकते हैं, किन्तु ऐसेम्बली में ऐसे

भाषण बहुत ही कम सुने जाते हैं। शायद उसके सभी सदस्य अङ्गरेज़ी के पूरे पंडित होते हैं। मौलवी आसफुद्दौला निस्संदेह उर्दू में भाषण दिया करते थे, उसका लोगोंपर कुछ प्रभाव भी पड़ता था। किंतु उनके न रहने से वह बात जाती रही। अब तो मिस्टर मकनजी ही एक ऐसे सदस्य रह गये हैं जो यदि चाहें तो इस अधिकार से लाभ उठा सकते हैं। अस्तु। इस दृश्य को देखकर सहसा यह प्रश्न मन में उठता है कि क्या कभी ऐसेम्बली के अँगरेज सदस्य भी इस बात को चाहते होंगे कि सभा का कार्य किसी देशी राष्ट्रभाषा के द्वारा चलाया जाय, अथवा क्या उनके हृदय में यह इच्छा उठती होगी कि वे भी भारत की राष्ट्रभाषा के ज्ञान से भले प्रकार परिचित हो जायँ, जैसे भारतवासियों ने अँगरेज़ी में क्षमता प्राप्त कर ली है, उसी प्रकार वे भी राष्ट्रभाषा में भाषण दे सकें? कहना न होगा कि अँगरेज़ों का यह सिद्धांत है कि यदि कोई राष्ट्र उन्नति करना चाहता है तो उसे सब से पहले अपनी राष्ट्रभाषा के विकास में लग जाना चाहिए। किंतु खेद है कि हमारे यहां उसी राष्ट्रभाषा की भी उपेक्षा है! यदि भारतवर्ष में कोई समुन्नत राष्ट्रभाषा होती तो शायद अँगरेज़ी के इतने अधिक पैर न जमते। हिसाब लगा कर देखा गया है कि यदि ऐसेम्बली के प्रत्येक सदस्य अपनी-अपनी प्रांतिक भाषाओं में बोलने लगें तो कम से कम ऐसे १५ अनुवादकों की आवश्यकता होगी जो भारत की अनेक भाषाओं के ज्ञाता हों। तब कहीं सभा का काम चल सकेगा। सचमुच ऐसी अवस्था में सभा का कैसा हास्यास्पद दृश्य होगा। उसकी कल्पना ही बड़ी मनोरंजक है। न तो मिस्टर विपिनचंद्र पाल की बँगला मिस्टर जमनादास मेहता ही समझ सकेंगे और न मालवीय जी का भाषण मिस्टर रंगाचारियर की ही समझ में आयेगा। सभी को अनुवादकों का मुँह ताकना पड़ेगा। यद्यपि हिंदी को सब ने भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा मान लिया है, और आशा है कि वह बहुत जल्दी कार्यरूप से राष्ट्रभाषा का काम भी देने लगेगी तथापि ऐसेम्बली में ही मिस्टर कबीरुद्दीन अहमद जैसे विद्वान् मौजूद हैं

जो एक विचित्र खिचड़ी भाषा को यह गौरव देना चाहते हैं। यह खिचड़ी भाषा एस्पराण्टो से बहुत मिलती-जुलती है, जिसको लोग केवल भारतवर्ष की ही नहीं, वरन समस्त विश्व की विश्व-भाषा बनाने की चिंता में हैं। वह विश्व की एक भाषा भले ही हो जाय, इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। किन्तु जब तक विश्व को यह सौभाग्य नहीं प्राप्त होता है तब तक हम भारत-वासियों को राष्ट्रभाषा के अभाव के कलंक को दूर करने के लिए अवश्यमेव प्राणपण से चेष्टा करनी चाहिए।

[सरस्वती से संकलित]

सम्मेलन की परीक्षाएँ

अनेक शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाएँ तथा शिक्षा-प्रेमी सज्जन परीक्षाओं के केन्द्र खुलवाने के लिए हम से लिखा-पढ़ी कर रहे हैं। गत-वर्ष २५ नये केन्द्र बनाए गये थे, तब भी कालातिरेक हो जाने से अनेक स्थानों में केन्द्र नहीं खोले जा सके। अतः प्रस्तावित केन्द्र तभी खोले जा सकेंगे जब जल्दी से जल्दी सशुल्क आवेदन-पत्र, परीक्षा-स्थान तथा व्यवस्थापक आदि के प्रस्ताव आ जायँगे। डी० ए० वी० कालेज देहरादून, डी० ए० वी० कालेज कानपुर, बागला हाईस्कूल हाथरस, जे० एस० हाई स्कूल खुर्जा, देवनागरी हाई स्कूल मेरठ, किशोरी-रमन हाई स्कूल मथुरा, सेन्ट्रल-हिन्दू हाई स्कूल काशी, डी० ए० वी० हाई स्कूल प्रयाग, धर्मसमाज हाई स्कूल अलीगढ़, सनातन धर्म कालेज कानपुर, गुरुकुल वैद्यनाथ धाम विहार, कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ, कन्या महाविद्यालय जालन्धर, राजस्थान ऋषिकुल रतनगढ़, स्टेट स्कूल रतननगर, मिडिल स्कूल रामगढ़, कान्यकुब्ज इन्टर मीजिएट कालेज लखनऊ, मिशन हाई स्कूल शाहजहाँपुर, ब्राह्मण सभा रंगून, मिडिल स्कूल बैरिया, मिडिल स्कूल बलिया, ट्रेनिङ्ग स्कूल बाराबंकी, साहित्य

परिषद् करौली, साहित्य-विद्यालय काशी, साहित्य-विद्यालय आगरा में केन्द्र होने के सिवाय सम्मेलन-परीक्षाओं के पाठ्यग्रन्थों के पढ़ाने का प्रबन्ध भी है या इस वर्ष से कर रहे हैं। अनेक राष्ट्रीय और सामाजिक विद्यालय तो केवल सम्मेलन-परीक्षाओं के लिए विद्यार्थी तयार करते हैं। अनेक सार्वजनिक स्कूल सरकारी परीक्षाओं के समकक्ष हो सम्मेलन-परीक्षाओं का ध्यान रखते हैं। अनेक ऐसी संस्थाएँ हैं जहाँ पढ़ाई का प्रबन्ध है, किन्तु हमें नियमबद्ध सूचना नहीं है। ऐसे नाम कार्यालय में शीघ्र आजाने चाहिएँ।

इधर बिहार-प्रान्तीय-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अपने डिस्ट्रिक्ट् बोर्डों, म्युनिसिपल बोर्डों तथा लोकल बोर्डों से अनुरोध कर रहा है कि सम्मेलन के उपाधिधारियों को अपने बोर्डों में स्थान दें और शिक्षा-संस्थाओं से सम्मेलन के प्रस्तावानुसार परीक्षाओं के पाठ्यक्रम के लिए सुविधा कराने का प्रयत्न करें। जोधपुर, जयपुर, इन्दौर, बीकानेर और कोटा राज्य के अनेक स्कूल तो पहिले ही से सम्मेलन से सम्बद्ध हैं। इस वर्ष और भी राज्यों का ध्यान आकर्षित किया जा रहा है।

अतः सम्मेलन मातृभाषा-प्रेमी जनसाधारण, शिक्षकों, शिक्षालयों, सार्वजनिक संस्थाधिकारी, राज्याधिकारी और अन्य सज्जनों से बड़ी आशा के साथ प्रार्थना करता है कि सम्मेलन-परीक्षाओं के प्रचार में सहायता देकर वे अपनी अनुभवशीलता, दूरदर्शिता, तथा देशभक्ति का परिचय देंगे।

अध्यापक रामरत्न, परीक्षामंत्री
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

हिन्दी-पाठकों की रुचि

हिन्दी की पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएँ पढ़नेवाले पाठकों की संख्या अभी बहुत कम है। देश में हिन्दी-भाषा-भाषी तो करोड़ों

हैं, किन्तु पुस्तक-पाठक और पत्र-वाचक मुश्किल से कुछ ही लाख होंगे। अनुमान तो ऐसा है कि आजकल पाठकों से अधिक लेखक ही हो गये हैं। अगर ३१ करोड़ भारतवासियों में १५ करोड़ भी हिन्दी बोलनेवाले हों, यद्यपि इससे आधे ही या कुछ ही अधिक होंगे, तो यह मानना पड़ेगा कि उनका शतांश भी हिन्दी-ग्रन्थों और पत्रों को नहीं देख पाता। इसका कारण देश की भयानक अज्ञानता है; पर जो लोग पुस्तकें और पत्रादि पढ़ सकते हैं, उनकी विद्या या शिक्षा भी तो किसी काम की नहीं होती। क्योंकि उनकी रुचि ऐसी भ्रष्ट हो गई है कि वे कुत्सित साहित्य अथवा क्षणिक साहित्य के सिवा स्थायी, गम्भीर और पवित्र साहित्य के पढ़ने में प्रवृत्त ही नहीं होते। हिन्दी में अच्छी पुस्तकों की संख्या कम नहीं है। किन्तु उनके पढ़नेवालों की संख्या बेशक बहुत कम है। भ्रष्ट, अश्लील और दूषित पुस्तकों के पाठक बहुत अधिक हैं। इसीलिये सुविचारपूर्ण पुस्तकें पड़ी रह जाती हैं और ऐयारी, तिलस्म तथा जासूसी से भरे हुए उपदेशहीन उपन्यास धड़ाधड़ खप जाते हैं। जैसे उपन्यास आजकल निकल रहे हैं, चाहे वे मौलिक हों या अनुवादित, उनसे हिन्दी-पाठकों की रुचि परिष्कृत होने के बदले विकृत होती जा रही है। अखबारों की यह हालत है कि जिसमें रसीली कहानियां या दिलचस्प गल्पें नहीं रहतीं, उसे लोग छूते ही नहीं। अब तो कहानियों और गल्पों द्वारा ही समाज, साहित्य और धर्म के क्षेत्र में क्रान्ति मचाने की बातें सोची जाती हैं। किन्तु कहानियों का प्रभाव भी स्थायी होता नज़र नहीं आता। समाचारपत्रों के लाखों पाठक आज तक हज़ारों कहानियां पढ़ चुके, हजारों उपन्यास पढ़ चुके; और ऐसी-ऐसी कहानियाँ, जो सुधार और हलचल मचाने के लिए ही लिखी गई थीं। मगर अभी तक समाज और सम्प्रदाय चट्टान की तरह एक ही स्थान पर निर्जीव पड़े हुए हैं। इसका कारण यह है कि जिन लेखनियों से कहानियां निकलती हैं, जिन हृदयों से उन कहानियों में भाव भरे जाते हैं, उन लेखनियों और उन हृदयों में जब तक कोई ऐसी जादू-भरी शक्ति न होगी, जो

देश और समाज को उद्बुद्ध करके वर्तमान साहित्य की धारा पलट दे, तब तक लाखों कहानियां या लाखों लेख कुछ कर नहीं सकते। अस्वाभाविकता कभी सफल नहीं होती। "परोपदेशे पाण्डित्यं" को चरितार्थ करनेवाले मनुष्य संसार में कोई काम करके प्रभाव नहीं जमा सकते और न प्रभावशाली बनकर संसार का कुछ उपकार ही कर सकते हैं। उपकार तो वास्तव में वही कर सकता है जिसके मन, वचन और कर्म में अन्तर न हो। तीनों की साधना के बिना संसार की सेवा असम्भव है। साहित्य-सेवा द्वारा शिक्षित या पठित जनता की मनस्तुष्टि करना भी एक प्रकार की पवित्र लोकसेवा ही है। उस लोकसेवा की प्रणाली इतनी घृणित होती जा रही है कि कुछ दिनों में अवस्था विषम हो उठेगी। इसमें किसी एक का दोष नहीं। इस दोषपूर्ण कार्य में सारा समुदाय ही सम्मिलित है। अगर कहें कि लेखक अशुद्ध साहित्य लिखना ही छोड़ दें तो पाठक भी लाचार हो कर पढ़ना छोड़ देंगे, अथवा यह कहें कि प्रकाशक प्रकाशित ही न करें या पाठक पढ़ें ही नहीं, तो ये बातें एक प्रकार से असम्भव हैं। जब सारा समुदाय ही दोषी है तो सारे समुदाय के पारस्परिक सहयोग से ही दोष का निवारण हो सकता है। लेखक, प्रकाशक और पाठक इस बात की चेष्टा करें कि रुचि का प्रवाह मलिनता से बचा रहे। हाँ, यह काम समाचारपत्रों द्वारा शीघ्र सफल हो सकता है। सम्पादक-मण्डली यदि चाहे तो जनता की रुचि का प्रवाह निर्मल बना सकती है और साहित्य-सरोवर को गन्दा बनानेवाले लोगों की भी ख़बर ले सकती है। यदि ऐसा न किया गया, तो पत्र-पत्रिकाओं की अनुदिन संख्यावृद्धि से कोई विशेष और स्थायी लाभ होने की संभावना नहीं है।

[समन्वय]

राजस्थान-हिन्दी-सम्मेलन

राजस्थान-हिन्दी-सम्मेलन के लिए पिछले कुछ दिनों से समाचारपत्रों में खासी चर्चा हो रही थी और उसके प्रति प्रान्त के अनेक हिन्दी-प्रेमी सज्जनों तथा कतिपय देशी नरेशों ने भी अपनी सम्मति प्रकट की थी। तदनुसार फतहपुर (जयपुर) में मारवाड़ी अग्रवाल महासभा के समय सम्मेलन की एक स्थायी समिति का सङ्गठन करने का निश्चय कर हिन्दी-प्रेमियों को उस अवसर पर फतहपुर पधारने के लिये निमन्त्रित किया गया था। किन्तु कदाचित् समय बहुत कम होने के कारण प्रान्त के बहुत से प्रतिष्ठित हिन्दी-प्रेमी सज्जन न आ सके। इसलिये काम की सहूलियत की दृष्टि से कुछ प्रतिष्ठित सज्जनों की सम्मति से यह निश्चय हुआ कि इस का कार्य अभी केवल एक ही व्यक्ति की अधीनता में सौंप दिया जाय। इस पर सर्वसाधारण की स्वीकृति प्राप्त करने के लिये ता० २६ को रात्रि के आठ बजे मारवाड़ी अग्रवाल-महासभा के प्रतिनिधि केम्प में रतनगढ़-निवासी पं० माधवप्रसादजी एम०ए०; एल० एल० बी० के सभापतित्व में एक सार्वजनिक सभा की गई जिसमें हिन्दी-सम्मेलन के लिये निमन्त्रित सज्जनों के अतिरिक्त महासभा के भी बहुत से प्रतिनिधि एवं दर्शक सज्जन उपस्थित थे। उपस्थित प्रतिष्ठित सज्जनों में सेठ जमनालालजी बजाज, पं० हरिभाऊजी उपाध्याय सम्पादक हिन्दी नवजीवन तथा मालवमयूर पं० झाबरमल्लजी शर्म्मा सम्पादक दैनिक हिन्दू-संसार, पं० नेकीरामजी शर्म्मा सम्पादक सन्देश, पं० अर्जुनलालजी सेठी, श्री श्रीरामजी गोयनका मेम्बर सी० पी० कौंसिल, तथा स्वामी नृसिंहदेवजी आदि विशेष उल्लेख योग्य हैं।

आरम्भ में स्वागत-समिति के अध्यक्ष श्रीभीमराजजी दूगड़ ने सभा का उद्देश्य बतलाते हुए पं० माधवप्रसादजी के सभापति चुने जाने का प्रस्ताव किया जिसके स्वीकृत हो जाने पर पंडितजी

ने सभापति का आसन ग्रहण करते हुए अपने सुन्दर भाषणमें राजस्थान में हिन्दी का कार्य किये जाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया और बतलाया कि स्वराज्य-प्राप्ति का एक साधन साहित्योन्नति है।

आप के भाषण के पश्चात् श्रीक्षेमानन्दजी राहत ने सम्मेलन के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए आये हुए तार व पत्र पढ़ कर सुनाये। इसके बाद पं० हरिभाऊजी उपाध्याय ने अपना निम्न-लिखित प्रस्ताव पेश किया—

"यह हिन्दी-प्रेमियों की सभा इस बातकी आवश्यकता समझती है कि राजस्थान में हिन्दी के विशेष प्रचार और हिन्दी-साहित्य की अधिकाधिक उन्नति के लिये कुछ वास्तविक उद्योग हो। सभा की सम्मति में पं० क्षेमानन्दजी राहत इस कार्य के लिए उपयुक्त पात्र हैं, इसलिए सभा उन्हीं को यह कार्य सौंपकर उनसे यह आशा करती है कि वे इस कार्य को सुचारु रूप से चलाने और राजस्थान में हिन्दी-सम्मेलन की स्थापना के लिए समुचित वातावरण तैयार करने की व्यवस्था करेंगे और हिन्दी-प्रेमी सज्जन उन्हें सब प्रकार की सहायता देकर इस कार्य को सफल बनाने का प्रयत्न करेंगे।"

पं० झाबरमलजी शर्मा ने प्रस्ताव का अनुमोदन और कुँवर ईश्वरीसिंहजी ने उसका समर्थन किया।

श्री० जानकीप्रसाद बागरहटा ने इसके लिए पांच सज्जनों की एक समिति बनाने का संशोधन किया, जिसका पं० अर्जुनलाल जी सेठी ने समर्थन किया। पं० रामजीवनजी त्रिपाठी, तथा पं० लादूरामजी जोशी आदि ने इसका विरोध किया। सेठ जमनालाल जी बजाज ने परिस्थिति को स्पष्ट करते हुए समिति की अनावश्यकता सिद्ध की। एक आदमी की ज़िम्मेदारी पर काम चलाने की सलाह देते हुए उन्होंने मूल प्रस्ताव का समर्थन किया। अन्त में मत लिये जाने पर संशोधन रद्द हो गया और मूल प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ।

इसके बाद श्रीयुत शंकरलालजी वर्म्मा ने निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किया:—

"राजस्थान-हिन्दी-सम्मेलन के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करने के लिये यह सभा श्रीमती देवेन्द्र कुंवरि सीनियर महारानी साहिबा डूंगरपुर, शाहपुराधीश राजा नाहरसिंहजी, रावराजा तेजसिंहजी तथा पं० गौरीशंकरजी ओझा को धन्यवाद देती, और आशा करती है कि वे तथा अन्य हिन्दी-प्रेमी नरेश श्री क्षेमानन्दजी राहत को हिन्दी-सम्बन्धी कार्यों में सहायता तथा सहयोग प्रदान करने की कृपा करेंगे।"

श्री भीमराजजी दूगड़ के अनुमोदन के पश्चात् प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गया।

इसके बाद पं० क्षेमानन्दजी राहत ने अपनी छोटी सी, किन्तु सारगर्भित, वक्तृता में बतलाया कि मैं तो चाहता था कि हिन्दी-प्रेमियों की एक समिति बना दी जावे जिनके सहयोग से यह कार्य अच्छी तरह चल सके। किंतु इस समय आप लोग यह भार अकेले मेरे दुर्बल कन्धों पर डाल रहे हैं। कर्तव्यवश मैं उसे स्वीकार करता हूँ। पर आशा है कि, आप उसमें सब प्रकार से सहयोग एवं सहायता देकर मुझे अपनी सेवा के योग्य बना लेंगे।

अन्त में सभापति तथा उपस्थित सज्जनों को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित की गई।

नारायण सिंह
मन्त्री, स्वागतसमिति

हिन्दी-सप्ताह

आन्ध्र में हिन्दी सप्ताह—गत कार्तिक मास में गुंटूर के प्रचारक-सम्मेलन में सर्वसम्मति से निश्चय हुआ था कि प्रतिवर्ष चैत्र शुक्ल-२ से श्री रामनवमी तक आन्ध्रदेश भर में हिन्दी-सप्ताह (इस-

का नाम "राष्ट्रभाषा-सप्ताह" हो तो बहुत अच्छा हो) मनाया जाय। तदनुसार बेजवाड़े में बड़ी धूमधाम के साथ हिन्दी-सप्ताह मनाया गया। चैत्र शुक्ल ३, १६८२ मंगलवार के सायंकाल नगर-संकीर्तन के बाद ६॥ बजे श्रीमान् देशोद्धारक के० नागेश्वररावजी पंतुलु की अध्यक्षता में नगर-मंदिर (टौन-हाल) में हिन्दी-प्रेमियों की एक सार्वजनिक सभा हुई। उस में राष्ट्रभाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी की आवश्यकता बतलाते हुए श्री नागेश्वर राव पंतुलु, अ० कालेश्वर रावजी, ब्रह्मानन्दजी, रामशेषय्याजी प्रभृति सज्जनों के महत्व-पूर्ण एवं सारगर्भित भाषण हुए। स्थानीय हिन्दी-प्रचारक श्री०पी० वें० सुब्बारावजी ने सभा का कार्यारंभ करते हुए आन्ध्रप्रान्त में हिन्दी-सप्ताह मनाने का उद्देश्य बतलाया। आपने कहा कि आंध्र ही में क्यों, सारे भारतवर्ष भर में यह हिन्दी सप्ताह मनाया जाय, इस में ही राष्ट्रभाषा पर ही व्याख्यान और चर्चाएँ हों, एवं नेताओं, विद्वानों तथा प्रचारकों द्वारा राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता और उसके फैलाने के सुगम उपायों पर ग्राम ग्राम में आन्दोलन मचाया जाय। तदनन्तर कई विद्यार्थियों के भी छोटे-छोटे व्याख्यान हिन्दी में होने के बाद सभा का कार्य समाप्त हुआ।

पंजाब-कौंसिल में हिन्दी का प्रश्न

७ मई की बैठक में पंजाब-कौंसिल में प्रोफेसर रुचिराम साहनी एम० ए० ने यह प्रस्ताव किया कि पंजाब के स्कूलों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी और पंजाबी होना चाहिये। वस्तुतः यह बहुत ही उपयोगी और आवश्यक प्रस्ताव था, परन्तु मुसलमान मेम्बरों ने इसे भी हिन्दू-मुसलिम प्रश्न बनाकर यों ही टाल दिया। हमें दुःख है कि हमारे मुसलमान भाई हर जगह हर बात को हिन्दू-मुसलिम प्रश्न बनाकर हिन्दुओं की उचित मांग के मार्ग में व्यर्थ ही रोड़े अटकाते फिरते हैं। बिहारप्रान्त में ६ फ़ी सदी मुसलमान यदि उर्दू का मतालबा करते हैं तो ४८ फ़ी सदी पंजाब के हिन्दू क्यों न

हिन्दी के लिए आन्दोलन करें ? इसमें उनके चिढ़ने की बात ही क्या है ? उर्दू जैसी कठिन लिपि सीखने में हमारे कोमलमति बालकों के मस्तिष्क पर अनावश्यक भार पड़ता है, फिर उससे त्राण पाने के लिए हिन्दू क्यों न कोशिश करें ?

हमें कौंसिल के हिन्दू सदस्यों की दशा पर भी बड़ा शोक है कि अपनी भाषा को अपमानित होते देखकर भी उनका खून नहीं खौल उठा। क्या हम आशा करें कि वे इस प्रश्न को उस समय तक बार बार कौंसिल में पेश करते रहेंगे जबतक कि हिन्दी और पंजाबी को उचित स्थान न मिल जायगा। (आर्य जगत)

मौरावाँ की नागरी-प्रचारिणी सभा के आठवें वार्षिकोत्सव में

स्वीकृत प्रस्ताव

(१) यह सभा हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् पं० गोविन्द नारायण मिश्र तथा बाबू जगन्मोहन वर्म्मा की मृत्यु पर शोक और उनके दुखी परिवार के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करती है।

(२) यह सभा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड उन्नाव से प्रार्थना करती है कि बोर्ड अपने महकमे में तुलसी-जयन्ती के अवसर पर, अर्थात् श्रावण शुक्ला सप्तमी को, एक दिन की छुट्टी किया करे।

(३) यह सभा अपने ज़िले के तालुक़दार तथा ज़मींदार भाइयों से प्रार्थना करती है कि वे अपने दफ़्तरों में देवनागरी लिपि को मुख्य स्थान दें।

(४) यह सभा ज़िला उन्नाव और विशेषतः मौरावां नगर के हिन्दू निवासियों से प्रार्थना करती है कि वे अपने बालकों की शिक्षा देवनागरी से आरम्भ करें।

(५) यह सभा ज़िला बोर्ड की उस नीति का विरोध करती है जिसके कारण ज़िला गज़ट का हिन्दी में छापा जाना बन्द हो गया

है; साथ ही बोर्ड के सदस्यों से प्रार्थना करती है कि वे ऐसा उद्योग करें जिससे गजट का हिन्दी-संस्करण भी निकाला जाया करे।

सम्मेलन के नवीन हितैषी

१—श्री अध्यापक शिवप्रसादसिंहजी विशारद, बैरिया (बलिया)

२—श्रीशीतलमिश्रजी, अध्यापक मिडिल स्कूल, बैरिया (बलिया)

३—श्रीरामनगीनाजी तिवारी, अध्यापक मिडिल स्कूल बैरिया (बलिया)

४—श्री पं० सामर्थीजी पांडेय, मुख़ार, आज़मगढ़

५—श्री पं० गोविन्दचन्द्रजी त्रिपाठी, मैनेजर संस्कृत-कालेज, आज़मगढ़

६—श्री अध्यापक हरिकृष्णरायजी विशारद मिडिल स्कूल, बैरिया (बलिया)

७—श्री पं० प्रभुदयालुजी मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा

८—श्री विष्णुकुमारजी भार्गव वकील हाईकोर्ट, सीतापुर

९—श्रीकालिका शर्माजी, मंत्री आर्य विधवा आश्रम, पो० नवद्वीप, ज़िला नदिया

१०—श्री सेठ जयनारायणजी अभिमन्यु, जयनारायण रोड, सीतापुर

११—श्री चिम्मनलाल किशोरदास, तामसनगंज, सीतापुर

१२—श्री रामदयालु रामकुमार तामसनगंज, सीतापुर

१३—श्री माताप्रसादजी वकील, बाराबंकी

१४—श्री रामजियावन लालजी दीक्षित वकील, बाराबंकी

१५—श्री कुंजीलालजी शर्मा अध्यापक, खाराकुआँ, अवन्तिकापुरी, उज्जैन

भारतीय भूगोल-समिति की नितान्त आवश्यकता

हिन्दी में भूगोल-सम्बन्धी साहित्य की कितनी कमी है यह सभी हिन्दी-प्रेमी विद्वानों को विदित है। केवल नदी, पहाड़ आदि के नाम रट लेने से भूगोल की जिज्ञासा कुछ भी पूरी नहीं होती। यही नहीं, हमारे इस अज्ञान से देश की आशालता-रूपी नवयुवक-मंडली पर बड़ा ज़हरीला असर पड़ता है। उनको यदि किसी विषय से हार्दिक घृणा और वास्तविक अरुचि होती है तो वह भूगोल ही है। इसका फल यह होता है कि वे देश-विदेश का ज्ञान न रखने के कारण पूरे देशभक्त भी नहीं हो सकते। जिस व्यक्ति के गुण रूप हम जानते ही नहीं, केवल नाम ही सुन लिया है उसकी ओर हमारा वास्तविक प्रेम कैसे हो सकता है? ठीक यही हाल देशों का भी है। जिस देश की नदी, पहाड़, समुद्र, पशु, पक्षी, वनस्पति आदि का दर्शन करने का सौभाग्य हमें प्राप्त नहीं हुआ, जिस देश के विविध स्थानों की सरदी-गरमी, वर्षा तथा अतिवृष्टि और अनावृष्टि हमने स्वयं नहीं सही, जिस देश के वासियों की भाषा, भोजन, भेष, घर-बार और जीविका के साधन कभी हमारे सामने से नहीं गुज़रे, जिस देश के पूर्वजों की कथा हमने नहीं सुनी, जिस देश के वासियों के धार्मिक कृत्यों से हम अनभिज्ञ हैं, उस देश के हम अनन्य भक्त कैसे बन सकते हैं? बहुत-से देशों को प्रकृति देवी ने हम से बहुत कम सामग्री प्रदान की है, पर वहाँ के लोग हम से कहीं अधिक धनी क्यों हैं? प्रतिकूल अथवा अधूरी ऋतुओं के होते हुए भी वे यहाँ से अच्छी फ़सलें कैसे उगा लेते हैं? अपने देश की मिट्टी, लकड़ी तथा कोयला, लोहा आदि को भारतवर्ष के सोने-चांदी से कहीं अधिक बहुमूल्य किस प्रकार बना दिया है? इन प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर पाने के लिये यह और भी आवश्यक है कि हम इन देशों के विषय में जानकारी प्राप्त करें।

हिन्दी भाषा में यह ज्ञान यथाशीघ्र तभी आ सकता है, जब हिन्दी-भाषा-भाषी ही इसे प्राप्त करें। निरे अनुवाद के आधार पर

भूगोल विषय के साहित्य की पूर्ति कदापि नहीं हो सकती। गणित के समान अटल सिद्धान्तों पर अवलम्बित होते हुए भी भूगोल का अधिकांश आधार मनुष्य से सम्बन्ध रखता है। जहां-जहाँ मनुष्य-सम्बन्धी भूगोल का विवरण अङ्गरेज़ी भूगोल-ग्रन्थों में आता है वहाँ-वहाँ गोरों का वृथा गौरव और कालों की असत्य वा अनुचित कालिमा दिखलाने में ज़रा भी कसर नहीं रक्खी जाती। आश्चर्य यह कि प्रसङ्ग न होते हुए भी इस प्रकार का ज़हर पराधीन बच्चों को दबाने और गोरों को घमण्डी बनाने के लिए छिपे-छिपे पिलाया जाता है। उदाहरणार्थ, अंगरेज़ी की प्रसिद्ध और प्रामाणिक पुस्तक (The world of to day) के छठे खंड में लिखा है कि, लंदन में संसार के सभी लोग किसी न किसी कार्यवश आते हैं:—फ्राँसीसी भाई चारा दिखलाने के लिये, अमरीकन नुक्ताचीनी करने के लिये, जर्मन रुपया कमाने की तरकीब जानने के लिये, अरबी तमाशा दिखाने के लिये, मंगोल तमाशा बनने के लिये, और हिन्दू दीनता-पूर्ण आश्चर्य से काँपने के लिये आते हैं। अभी तक अङ्गरेज़ी की शायद ही कोई विवरणात्मक पुस्तक निकली हो जिस में हमारी जलवायु, जीविका और आचार-विचार पर इस प्रकार के गुप्त हमले न किये गये हों! हर्ष का विषय है कि इतिहास-सम्बन्धी हथ-कंडों से तो हिन्दी-प्रेमी होशियार हो गये और उन से बचने के लिये प्रामाणिक व बृहत् इतिहास की चिन्ता में भी लग गये हैं। पर भूगोल की ओर फिर भी उदासीन हैं। इतिहास और भूगोल में दूध और पानी का सा घनिष्ठ सम्बन्ध है। वर्त्तमान इतिहास का दूसरा नाम भूगोल है, इसी प्रकार भूतकालीन भूगोल का नाम इतिहास है, अथवा यों कहिये कि भूगोल बीज है, इतिहास उसका फल है। जैसे गणित में दो और दो चार होते हैं वैसे ही आप सोचते होंगे कि भूगोल में भी अमुक लोग हैं यह विवरण भी सर्व देशीय व सर्वमान्य होगा। बात ऐसी सीधी नहीं है। भाषा, भोजन, भेष आदि के वर्णन में यद्यपि भद्दे से भद्दे उदाहरण ये लोग लेते हैं, तो भी इन में अधिक काट-छाँट की गुंजाइश नहीं मिलती—पर

आचार-विचार का चित्र खींचने में बड़ा ही अनर्थ किया जाता है। इसलिये उन अङ्गरेज़ी पुस्तकों का सीधा-सीधा अनुवाद करना मानो हिन्दी-भूगोल का गला घोटना है।

"दिग्दर्शक" (गाइड बुक्स) आदि पुस्तकें कुछ-कुछ इस दोष से शून्य हैं। पर उन में दूसरी तरह का दोष है। अङ्गरेज़ अथवा किसी अन्य विदेशी के खाने-पीने की सामग्री, ठहरने के स्थान, यात्रा करने के साधन, मिलन मंडली, आनन्द देनेवाले प्राकृतिक वा कृत्रिम पदार्थ हम से बहुत-कुछ भिन्न हैं। जहाँ उसकी पहुँच है वहाँ हमें कोई पूछने ही का नहीं। जहां हमें आराम मिल सकता है वहाँ वह न जाना पसन्द करेगा और न वहाँ का यथेष्ट हाल लिखेगा। इन पुस्तकों के अनुवाद से थोड़ा ही लाभ होगा।

भाषा के अतिरिक्त आत्म-सम्मान का दूसरा प्रश्न है। संयुक्त राष्ट्र व ग्रेट ब्रिटेन की एक भाषा होते हुए भी दोनों देशों ने अलग-अलग अपनी-अपनी राष्ट्रीय भूगोल-समितियाँ बनाई हैं। अपनी कमाई का उत्तम भाग भला वह हमें कब देनेवाले हैं? अमरीकन अथवा ब्रिटिश भूगोल-समिति के सदस्य बनने अथवा हिन्दुस्तान में उन की शाखाएँ खोलने से वास्तविक भूगोल-ज्ञान का बढ़ना कठिन है। ज्ञान-बूझ कर शिक्षा-जगत् में भी स्थायी दासता स्वीकार करने में कोई बुद्धिमानी नहीं। इस से आप यह न समझ लें कि मैं अङ्गरेज़ों और हिन्दुस्तानियों में कोई दुश्मनी पैदा करना चाहता हूँ। अगर कोई अंगरेज़ अथवा अन्य विदेशी भारतीय भूगोल-समिति का सदस्य बनना चाहे तो हम बड़े हर्ष से उसे स्वीकार करेंगे। पर हम अपने पैरों खड़ा होना चाहते हैं, जिस से हम उन्हीं का मुंह ताकनेवाले न बनकर उनके स्वतन्त्र सहायक बन सकें।

जो सम्पत्ति जिस जाति द्वारा इकट्ठी की जाती है उसका फल भोगने वाली उसी जाति की सन्तान होती है। भौतिक बपौती के लिये चाहे कभी इस नियम में विघ्न भी आजावे पर विद्या-सम्बन्धी बपौती के लिये तो उपर्युक्त नियम अटल ही है। यदि हमारे पास दूर ही से दूसरों के मानसिक ज्ञान जांचने का यन्त्र होता तो

हम सबको स्पष्ट हो जाता कि एवरेस्ट चोटी अथवा हिमालय का ज्ञान अंग्रेज़ी बच्चों को अमरीकन अथवा बहुत से हिन्दुस्तानी बच्चों से निस्सन्देह अधिक होगा। इसी प्रकार सहारा मरुस्थली का जो ज्ञान फ्रांसीसी सन्तान को है और होना चाहिये वह और किसी को नहीं। इसके विपरीत यदि हिन्दुस्तानी भूगोल-समिति की मंडली सहारा में मोटर-सड़क निकालती अथवा गौरीशंकर पर चढ़ाई करती, चाहे इसमें वह असफल ही क्यों न रहती, तो हिन्दुस्तानी बच्चे मंडली की रोज़ाना स्थिति के जानने के लिये उत्सुक रहते और अधूरे काम को पूरा करने का दृढ़ संकल्प करते। सम्भव है, कुछ लोग यह आपत्ति करें कि भूमंडल की अधिकांश खोजबीन तो हो ही चुकी। फिर पिसे को पीसने से क्या लाभ? जो स्थान खोज के लिये बाक़ी हैं वहां विज्ञान में बढ़ी हुई पाश्चात्य जातियों के सामने अधूरी शिक्षा पाये हुए पराधीन भारतीय क्या कर सकते हैं? इस पर मेरा विनीत उत्तर यह है कि जो अनुसन्धान हो चुके हैं वे हिन्दी-भाषा-भाषियों के लिये तो तब तक न हुए-से हैं जब तक वे उनका स्वयं जाकर पुष्टीकरण न कर लें। बहुत सी नई बातें भी जानी जा सकेंगी जो पहिले अन्वेषकों ने छोड़ दी हों। यह तो रहा स्थानों के बारे में। अफ्रीकन हबशी, तिब्बती, अरबी व आस्ट्रेलिया और अमरीका के मूल वासियों के बारे में तो मेरा विचार है कि बहुत सा भ्रम जान-बूझ कर स्वार्थी लोगों ने फैला दिया है। यह सब दुःखित जातियां हमारी तरह विदेशियों से पददलित हो चुकी हैं। इनके बीच में पर्याप्त जानकारी के लिये बहुत दिखावटी सामान की ज़रूरत नहीं। जो हाल हवाई जहाज़ों, गोलों और धार्मिक हमलों से पाना असम्भव है वह इनके साथ आंसू बहाने से अपने आप मिल जायगा। इनमें से कुछ के बारे में मेरा निजी अनुभव है कि वे भारतीयों के सामने हृदय खोलकर रख देते हैं और गोरों को बाज़ारू बातों ही से टाल देते हैं। नवीन तथा बचे-खुचे स्थानों की खोज में भी मुझे विश्वास है कि कर्मभूमि भारत की नवयुवक-मंडली और देशों से पीछे न रहेगी।

श्रीमान् राजा महेन्द्रप्रतापसिंहजी, स्वामी सत्यदेवजी, लाला लाजपतराय, कवीन्द्र ठाकुर रवीन्द्रनाथ, श्रीशिवप्रसादजी गुप्त आदि का विश्वभ्रमण तथा अनुभव मुझे यही विश्वास दिलाते हैं कि यहां भारतीय भूगोल-समिति की स्थापना का शुभ मुहूर्त आ गया है। जो सहन-शक्ति व मितव्ययता हमारे युवकों में है उससे बड़ी-बड़ी खोजें हो सकती हैं। शीलांग, दार्जिलिंग, गुलबर्ग, मसूरी, क्वेटा आदि ठण्डे स्थानों में जहां मेरा तथा मुझ सरीखे अनेकों हिन्दुस्तानियों का काम दो-तीन कुरतों से भली भांति चल जाता था वहीं कुछ गोरे लोग सिर से पैर तक ऊनी कपड़ों व गर्म खाल से लदे होने पर भी सिकुड़-सिकुड़ कर चलते थे। जिन ठंडे स्थानों पर दूसरे लोग जा सकते हैं और ज़िन्दा रह सकते हैं वहां हिन्दुस्तानी भी पहुँच सकते हैं और ज़िन्दा रह सकते हैं। गरम प्रदेशों से तो हम जन्म से ही परिचित हैं। उसी प्रकार के गरम तथा कुछ अधिक गरम प्रदेश हमारे लिये कदापि दुर्गम नहीं हो सकते। थोड़ा स्वावलम्बन ग्रहण करने की आवश्यकता है। बहुत-से लोग विदेशों में जाते ही आते रहते हैं, उनको केवल चलते समय हिन्दी की याद दिलाना है। जिन भागों में हिन्दुस्तानी नहीं गये हैं, अथवा अपने स्वतन्त्र काम से जाना पसन्द नहीं करते हैं वहां के लिये विशेष मंडली बनाई जा सकती है। धीरे-धीरे भूमंडल के प्रत्येक भाग का सच्चा और निष्पक्ष विवरण हिन्दुस्तानियों द्वारा हिन्दी-साहित्य में भरना है। वही सच्चा भूगोल होगा। हिन्दुस्तानी भावों को सरल वा स्वाभाविक हिन्दी में प्रकाशित करना कुछ भी कठिन न होगा। उस समय संसार भर के प्रसिद्ध स्थानों में हिन्दी-संवाददाताओं का नियत करना बड़ा ही सुगम होगा।

सुसंगठित संस्था के सदस्य को दूसरे देश की संस्थाएँ भी सहायता देंगी। तभी हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं के समाचार वा लेखों में स्वावलंबन और सार होगा। पैसा भी कम ख़र्च होगा। इस समय विदेशी न्यूज़ एजेंसियों के संवाददाता सैर तो करते हैं अधिकांशतः हिन्दुस्तानी पैसे के ख़र्चे से, पर खबर देते हैं मनमानी।

भारतीय भूगोल-समिति वास्तव में हिन्दी भाषा और जाति दोनों ही में नई जान डाल देगी और भावी उन्नति के लिये पथ-प्रदर्शक का काम देगी। आरम्भ में आप इराक़, जावा, मारीशस अथवा मिश्र आदि में से किसी एक को लें। लौटने पर आप को पता लगेगा कि इस एक स्थान की जानकारी आप ही तक परिमित न रहेगी, वरन् सारे स्कूलों व अन्य संस्थाओं में भी फैल जायगी। जो स्कूल व व्यक्ति धनी हैं वे अपने प्रतिनिधि अपने पैसे से भेज सकते हैं। साधारण स्कूल एवं समाचारपत्रों के संचालक अपनी शक्ति के अनुसार यात्रा के लिये धीरे-धीरे एक स्थायी कोष इकट्ठा कर सकते हैं। मंडली के लोग भी इन्हीं चन्दा देनेवाले सदस्यों से चुने जा सकते हैं। हिन्दुस्तान के बाहर किसी निकट देश में गर्मियों की छुट्टी में यात्रा करने के लिए हर आदमी को लगभग ३००)- खर्च करने होंगे। कम-से कम चार सदस्यों की यात्रा-मंडली होनी चाहिये।

यदि आप इस भावी भारतीय भूगोल-समिति की सेवा के लिये सचित्र मासिक पत्र "भूगोल" चुनें तो वह इसमें अपना बड़ा ही गौरव समझेगा। अगर आप इसके लिये दूसरा ही मुख-पत्र निकालें तो भी तबतक आप "भूगोल" से जितनी सेवा चाहें ले सकते हैं। भारतीय भूगोल समिति के निर्माण के लिये जो-जो उपाय आप ठीक समझते हैं उन्हें भेजने की कृपा अवश्य करें, "भूगोल" उनको सादर प्रकाशित करेगा। आपको यदि नियम बनाने का अवकाश नहीं है, पर आप भारतीय भूगोल की आवश्यकता समझते हैं और यथाशक्ति सहायता करने को तयार हैं, तो भी कृपया सूचना देकर उत्साह बढ़ाइये। आशा है, भारतीय नवयुवकों में नये जीवन का संचार करनेवाले इस महायज्ञ को सफल करने में आप अपना भाग भेजकर सच्चे भूगोल की पुनः स्थापना करेंगे।

रामनारायण मिश्र

सम्पादक "भूगोल" मेरठ

विनोद का नया संस्करण] बड़े ही आनन्द का विषय है कि हिन्दी-साहित्य के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ-रत्न 'मिश्रबन्धु-विनोद' का नया संस्करण निकलनेवाला है। अब की बार वह गंगा-पुस्तक-माला, लखनऊ से प्रकाशित होगा। हिन्दी की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में विनोद के सम्बन्ध की बहुत-कुछ चर्चा भी हो चुकी है और हो रही है। इस में तो सन्देह ही नहीं कि इतने भारी ग्रन्थ के लिखने में भूलें भी बहुत-कुछ हो सकती हैं। कुछ भ्रान्त और कुछ नवीन बातों की ओर हिन्दी-साहित्य-सेवियों ने ग्रन्थकारों का ध्यान आकृष्ट किया है। यह संतोष की बात है। 'विनोद' में प्रधानतः तीन प्रकार की बातें समालोच्य हैं—

१—कवियों का श्रेणी-विभाग,

२—कवियों वा लेखकों के जन्म-मरण और उनके रचना-काल तथा जन्म वा निवास-स्थान में मतभेद,

३—एक ही नाम के कई कवियों व लेखकों में गड़बड़ी।

श्रेणी-विभाग में जो हमारा मत-भेद है, वह बहुत बड़ा है। इसकी यत्किंचित् चर्चा हम स्वसंपादित "व्रज-माधुरी-सार" में यथास्थान कर चुके हैं। और भी कई सज्जनों ने इस वृहत् मत-भेद पर कुछ-न-कुछ यथासमय प्रकाश डाला है। विस्मय यह है कि ऊँचे-से ऊँचे कवि साधारण श्रेणी में रख दिये गये हैं और साधारण श्रेणी के कवि दास, पद्माकर या तोष के समकक्ष मान लिये गये हैं! उदाहरण देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, क्योंकि यह बात एक-दो नहीं, सैकड़ों स्थानों पर मिलती है। यदि ग्रन्थ-

कार महोदय अपने इस श्रेणी-विभाग का स्पष्ट रूप से कोई निश्चित परिमाण लिख देते तो उसके समझने में बहुत-कुछ आसानी हो जाती। पर ऐसा नहीं किया गया है। नवीन संस्करण में, आशा है, यह त्रुटि दूर कर दी जायगी, और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों के श्रेणी-विभाग के सम्बन्ध में उचित निर्णय भी हो जायगा।

कई कवियों वा लेखकों के जन्म-मरण और उनके रचना-काल तथा जन्म वा निवास-स्थान में लेखकों को भ्रम हो गया है। इतने भारी ग्रन्थ में ऐसा होना स्वाभाविक है। जिस कवि वा लेखक के समय के सम्बन्ध में जिन सज्जनों का मतभेद हो उन्हें चाहिये कि वह तुरन्त ही ग्रन्थकारों को सूचित कर दें। पहले भूल न सुझाकर पीछे समालोचना करना अच्छा नहीं। इस विषय में लेखकों को स्वयं भी यथेष्ट सतर्क और सयत्न रहना चाहिए, क्योंकि ऐसा न करने से इतिहास-जगत् में बहुत-कुछ अंधकार फैलने की संभावना रहती है। भूपति, गौड़िया गदाधर भट्ट, हरीराम व्यास प्रभृति कवियों का समय-निरूपण, आशा है, 'विनोद' के नवीन संस्करण में निश्चित कर दिया जायगा।

एकही नाम के कई कवियों व लेखकों में जो गड़बड़ी हो गई है, उसका भी सुगमता से संशोधन हो सकता है। इस गड़बड़ी का हम एक उदाहरण देते हैं। वह ओड़छा वाले सुप्रसिद्ध महात्मा और कवि हरीराम व्यास के संबंध का है। विनोद में उनका एवं प्रकारेण उल्लेख मिलता है—

कवि-संख्या	कवि-नाम	कविता-काल	पृष्ठ
(७८)	व्यास स्वामी, उर्छा	१६१५	३३७
(२८१)	व्यासजी, ओड़छा वाले	१६८५	४५०

उर्छा और ओड़छा दोनों एक ही हैं। इसी प्रकार व्यास स्वामी कहिए, चाहे व्यासजी। विनोद में (७८) संख्यक व्यास स्वामी ने 'हरिव्यासी' मत चलाया, यह लिखा है, और (२८१) संख्यावाले व्यासजी निम्बार्क संप्रदाय के हरिव्यासदेव माने गये हैं। उदा-

हरणार्थ, जो पद दिये गये हैं, वे भी एक ही 'बानी' से दो भिन्न-भिन्न स्थानों पर दो व्यासों के मान कर उद्धृत किये गये हैं! दो विभिन्न स्थानों पर उल्लिखित व्यास एक ही हैं, दो नहीं। यह न तो हरिव्यासदेव ही थे और न हरिव्यासीमत के प्रवर्त्तक ही। इनका निंबार्क संप्रदाय से कोई संबंध नहीं था। हरिव्यासी शाखा के संस्थापक हरिव्यास देवजी महात्मा श्रीभट्ट के शिष्य थे। ओड़छा वाले हरीराम व्यास श्रीगोस्वामी हरिवंशजी के शिष्य, अतः राधावल्लभी थे। इसी प्रकार अन्यत्र भी कई स्थलों पर भूलें हुई हैं, जिनका परिमार्ज्जन भी असंभव नहीं है। आशा है, सुविज्ञ लेखक महोदय प्रत्येक प्रसिद्ध कवि वा लेखक के विषय में उचित पूछताछ करके इस तरह की भूलों का भी 'विनोद' के नये संस्करण में संशोधन कर डालेंगे।

इन बातों के अतिरिक्त कुछ स्थल और आलोचनीय हैं। उन स्थलों पर लेखकों ने अपने निजी विचार प्रकट किये हैं। इसलिये उन पर अधिक ज़ोर देने की आवश्यकता नहीं है। वह विचार भाषा, धर्म और सामाजिक प्रश्नों से संबंध रखते हैं। उनका हम यहां उल्लेख नहीं करना चाहते। पर लेखक महोदयों से हम इतनी सानुनय प्रार्थना अवश्य करेंगे कि उन्हें अपने विचार-स्वातंत्र्य पर भी, 'विनोद' के नवीन संस्करण का संपादन करते समय, एक बार सूक्ष्म दृष्टि से विचार करना चाहिए।

ऐसे वृहत ग्रन्थ-रत्न का नवीन संस्करण प्रकाशित करने के लिए हम गंगा-पुस्तक-माला के सुयोग्य संचालक महोदय को हार्दिक बधाई देते हैं! हमें विश्वास है, हिंदी-जगत् सुसंस्कृत 'विनोद' का हृदय से स्वागत करेगा।

❧❧❧

भारतीय भूगोल-समिति] 'भारतीय भूगोल-समिति की नितांत आवश्यकता' शीर्षक एक सूचना हमने पत्रिका के प्रस्तुत अंक में, 'हिन्दी-जगत्' नामक स्तंभ में, प्रकाशित की है। मेरठ से प्रकाशित "भूगोल" मासिक पत्र के सुयोग्य संपादक श्रीयुत पंडित रामना-

रायणजी मिश्र ने वह सूचना हमारे पास भेजी है। मिश्रजी के सदुद्देश में किसी प्रकार का संदेह नहीं हो सकता। वास्तव में, अभी तक हमारे देश में ऐसा कोई साधन नहीं है, जिसके द्वारा हमें भूगोल-संबंधी यथेष्ट ज्ञान प्राप्त हो सके। विदेशियों के अनुभूत ज्ञान द्वारा लाभ उठाना बुरा नहीं है, पर केवल उसी ज्ञान के आश्रित हो रहना भी अच्छा नहीं। बड़े ही विस्मय और खेद का विषय है कि हमारे यहाँ—विशेषतः हिंदीभाषा में—विज्ञान, इतिहास, भूगोल प्रभृति महत्त्वशाली विषयों के उच्च साहित्य का आवश्यकता से अधिक अभाव है। इस अत्यावश्यक विषयों की ओर लोगों की रुचि ही नहीं है। "विज्ञान - जैसे उत्कृष्ट पत्र के कितने पढ़नेवाले हैं ? "स्वार्थ" जैसा सामयिक और उपादेय पत्र किस की उपेक्षा से बंद हो गया ? आज "भूगोल" के ही कितने ग्राहक होंगे ? इस सुरुचि-शैथिल्य की ओर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि हम भारत-वासियों के निःसत्व मस्तिष्क में साहित्यिक पराधीनता ने बड़ा सुदृढ़ स्थान बना रखा है। साथ ही राष्ट्रभाषा हिंदी का मस्तक भी हम ऊँचा नहीं करना चाहते। ईश्वर ही हमारे इस कलंक को दूर करे तो करे !

मिश्रजी के विचारों से हम पूर्णतः सहमत हैं, पर केवल सहमत होने से ही काम न चलेगा। भूगोल-समिति का स्थापित हो जाना भी कोई बड़ा महत्व नहीं रखता। क्योंकि यहां नित्य ही कोई-न-कोई समिति स्थापित हुआ करती है, पर वास्तविक काम कदाचित् ही कोई करती हो। पैसा भी थोड़ा-बहुत इकट्ठा हो सकता है। सौ-पचास "आरम्भशूर" भी सामने आ जायँगे। इतना सब संभव होने पर भी उद्देश के सफल होने में हमें संदेह है। संदेह के कारण स्पष्ट हैं। हमारे आरामतलब देश में अभी ऐसे नवयुवक विरले ही मिलेंगे, जो, स्वतंत्रताप्रिय जाति में उत्पन्न युवकों की भाँति कार्य-क्षेत्र में जान को हथेली पर रखकर, आ डटें, जो न जाड़ा गिनें, न गरमी, जो न हिमालय के शिखरों से गिर कर चकनाचूर होने से डरें, न सहारा की मरुस्थली में झुलसने से भागें। दूसरा

कारण यह है कि हम पराधीनतावश ऐसे ऐसे गौरवशाली कार्य कर ही कैसे सकेंगे ? जब तक हमारा किसी स्वतंत्र देश में प्रवेश करना संदेह की दृष्टि से देखा जायगा, जब तक हमारा किसी ऐतिहासिक, भौगोलिक वा सामाजिक प्रश्न पर प्रकाश डालना अपराध समझा जायगा, अथवा जब तक हमारी किसी भी प्रकार की स्वाधीन कर्म-शीलता अनधिकार चेष्टा मानी जायगी, तब तक ऐसे-ऐसे महान् उद्देशों की पूर्ति की आशा करना एक प्रकार से मृग-मारीचिका ही है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि हम निराश होकर अकर्मण्यों की तरह, हाथ पर हाथ धरे, बैठ जायँ। हमें काम करना चाहिये और प्राणपण से करना चाहिये। सत्कर्म का स्वल्पांश भी श्रेयस्कर होता है। हमें आशा है कि प्रत्येक स्वतंत्रता-प्रिय राष्ट्रभाषा प्रेमी मिश्रजी की 'भूगोल-समिति' संबन्धी सूचना पर ध्यान देकर उनके सदुद्देश में यथेष्ट योग देगा।

❧❧❧

श्रीमान् बाजोरियाजी का सद्दान] हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मंत्रीजी सूचित करते हैं कि—"कलकत्ते के प्रसिद्ध हिन्दी-हितैषी श्रीमान् सेठ नारायणदासजी बाजोरिया ने, कई वर्ष हुए, "साहित्य-संवर्धिनी" समिति की स्थापना करके उसको ५०००) इसलिये दे दिये थे कि उन रुपयों से सरल हिन्दी में प्रारम्भिक शिक्षा के लिए सुन्दर और सस्ती वैज्ञानिक पुस्तकें प्रकाशित की जायँ। इस रुपये के लिये तीन सज्जनों को ट्रस्टी नियत कर दिया था। परन्तु बाजोरियाजी को अपने निजी कार्यों से अवकाश न मिलने के कारण यह प्रकाशन-कार्य, जिस उन्नति और शीघ्रता से वे करना चाहते थे, वैसा नहीं हो सका। इसलिए अब उक्त बाजोरियाजी ने वह पूर्वदत्त ५०००) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को प्रदान कर दिया है। उनकी इच्छा के अनुसार इस रुपये से सरल हिन्दी में ऐसी वैज्ञानिक पुस्तकें सम्मेलन प्रकाशित करेगा, जो सुंदर और सस्ती हों।"

श्रीमान् बाजोरियाजी को उनके इस सत्कार्य के लिए हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं!

कवित्त रामायण

लेखक—स्वर्गीय श्री पं० रामगुलाम द्विवेदी; संपादक—श्री पं० महावीर प्रसादजी मालवीय "वीर"; प्रकाशक—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग; डबल क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ७८; छपाई सुंदर, कागज़ अच्छा; मूल्य ।≈)

भक्तवर पंडित रामगुलाम द्विवेदी से हिंदी-साहित्य-संसार भलीभांति परिचित है। गोस्वामी तुलसीदास के काव्य के यह बड़े भक्त थे। यह कवित्त रामायण उन्हीं द्विवेदीजी की सरस रचना है। इसमें ७ कांड और २१६ छंद हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी की कवितावली रामायण का, जान पड़ता है, द्विवेदीजी ने अनुसरण किया है, और उसमें उन्हें सफलता भी अच्छी मिली है। बालकांड और उत्तरकांड अन्य कांडों की अपेक्षा अधिक सुंदर, सरस और विस्तृत हैं। कविता में माधुर्य और प्रसाद की पर्याप्त मात्रा है। एक छंद देखिए—

"बाल कंद बरन बिलोकत बनत बपु,
बिधुसो बदन कोटि मदन लजावनो।
इन्दीवर नैन सील सुभग सलोने केस,
भृकुटी सुदेस भाल तिलक सुहावनो॥
कटि पट पीत पाय पैजनी मुखर मंजु,
रमा को निवास उर दोष दुखदावनो।
बदत गुलाम राम धरे धनुबान राम,
दसरथ देव को दुलारो मनभावनो॥"

क्लिष्ट शब्दों का अर्थ समझने के लिए संपादक महोदय ने संक्षिप्त पाद टिप्पणियाँ भी दे दी हैं। पुस्तक साहित्य-प्रेमियों के काम की है।

बाँकीदास-ग्रन्थावली

(पहला भाग) लेखक—स्वर्गीय कविराजा बाँकीदासजी; संपादक—श्री पंडित रामकर्णजी; प्रकाशक—काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी; डबल क्राउन साइज़, पृष्ठसंख्या ८४; कागज़ छपाई सुंदर; सजिल्द मूल्य ॥)

कविराज बाँकीदासजी डिंगल भाषा के एक महाकवि हो गये हैं। उनके लिखे २४ छोटे-छोटे ग्रन्थ मिलते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थावली में उनके ७ ग्रन्थों का संग्रह है। यह पुस्तक 'बालाबक्स राजपूत चारण पुस्तकमाला' में प्रकाशित की गई है। उक्त नाम की माला का यह प्रथम पुष्प है। कविराजा ने दोहों में कविता की है। विषय वीरता और नीति का है। कोई-कोई दोहा तो बड़ा ही ऊँचा है। इन दोहों से राजपूताने की ऐतिहासिक सामग्री का भी बहुत-कुछ पता चल सकता है। प्रत्येक दोहे में एक-न-एक अलंकार भी है, जिसका निर्देश संपादक महोदय ने पाद-टिप्पणी में कर दिया है। टिप्पणी पर्याप्त है। यदि इतनी अधिक आवश्यक टिप्पणियाँ न दी जातीं, तो शायद ही यह दोहे समझ में आते। उदाहरणार्थ एक दोहा नीचे दिया जाता है—

> 'केहर तणी कलाइयाँ, भणणा हट भमराँह।
> भीजी गज-सिर भाँजताँ, मद सोरँभ उपराँह॥'

भावार्थ—हाथी का सिर तोड़ते समय केसरी की कलाइयाँ भीगीं, उन पर मद की सुगंध का आडंबर होने से भ्रमर भिनभिना रहे हैं।

हमें यह जान कर बड़ा आनन्द हुआ कि स्वनामधन्य नागरी-प्रचारिणी सभा उक्त पुस्तक-माला में राजपूतों और चारणों के रचित प्राचीन ऐतिहासिक तथा काव्यग्रन्थ प्रकाशित करेगी। हिंदी-भाषा-भाषियों के लिए यह सौभाग्य-सूचना नहीं तो क्या है।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्य-विवरण

तथा

लेखमालाएँ

प्रथम सम्मेलन की लेखमाला			॥।)	चतुर्दश सम्मेलनकी लेखमाला			॥।)
द्वितीय	"	"	१)	प्रथम वर्ष का कार्य विवरण			।)
तृतीय	"	"	॥।)	द्वितीय	"	"	।)
चतुर्थ	"	"	॥।)	तृतीय	"	"	।=)
पंचम	"	"	॥)	चतुर्थ	"	"	॥)
षष्ठ	"	"	॥।)	पंचम	"	"	॥।)
सप्तम	"	"	॥=)	षष्ठ	"	"	।)
अष्टम	"	"	१)	सप्तम	"	"	।=)
नवम	"	"	१॥)	अष्टम	"	"	।)
दशम	"	"	॥)	नवम	"	"	।=)
द्वादश	"	"	१)	दशम	"	"	॥)
त्रयोदश	"	"	१)	त्रयोदश	"	"	॥)

अन्य पुस्तकों के नवीन संस्करण

निम्नलिखित पुस्तकें, बहुत दिनों से अप्राप्य थीं, अब उनके नवीन संस्करण छपकर तैयार हैं। जिन्हें आवश्यकता हो, तुरन्त लिखकर मँगालें—

द्वितीय सम्मेलन का कार्य-विवरण प्रथम भाग	।)
" " " द्वितीय भाग (लेखमाला)	१)
हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	।=)
सूरदास की विनय-पत्रिका (सटिप्पण)	≡)

पता—

मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित
सूरजप्रसाद खन्ना के प्रबन्ध से हिन्दी-साहित्य प्रेस प्रयाग में मुद्रित।

सभापति का चुनाव

नियमावली के नियम ४९ के अनुसार आगामी वृन्दाबन-सम्मेलन के सभापति के आसन के लिए, पाँच सज्जनों की सूची बनाने के लिए, स्थायीसमिति का एक साधारण अधिवेशन रविवार श्रावण शुक्ल १३ सं० १९८२ वि०, तदनुसार ता० २ अगस्त सन् १९२५ ई०, को ४ बजे दिन से सम्मेलन-कार्यालय में होगा। स्थायीसमिति के सदस्यों से निवेदन है कि वे निश्चित तिथि पर अवश्य पधारें। यदि न आ सकें तो निश्चित तिथि से पहले ही अपनी सम्मति के अनुसार, सभापति के आसन के योग्य, पाँच सज्जनों की एक सूची बनाकर मेरे पास भेज दें। स्वागत-कारिणी-समिति, प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनों तथा सम्बद्ध-संस्थाओं के मंत्रियों से निवेदन है कि वे अपनी संस्था का अधिवेशन करें और उसमें पाँच सज्जनों की एक सूची बनाकर, निश्चित तिथि से पूर्व ही मेरे पास भेज दें।

प्रयाग
ज्येष्ठ शुक्ल ५
संवत् १९८२ वि०

निवेदक—
रामजीलाल शर्मा
प्रधानमंत्री
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

मंगलाप्रसाद पारितोषिक

नियमानुसार इस वर्ष श्रीमङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक विज्ञान विषयक सर्वोत्तम ग्रन्थ के लिए दिया जायगा। गणित, रसायन, भौतिकशास्त्र, ज्योतिष वैद्यक और कृषि-विज्ञान विषय विज्ञान के अन्तर्गत माने गये हैं। इसलिये इन ग्रन्थों की तीन-तीन प्रतियाँ आषाढ़ी पूर्णिमा सं० १९८२ वि० तक सम्मेलन-कार्यालय में आ जानी चाहिए। हस्त-लिखित ग्रन्थों पर विचार नहीं किया जायगा, लेखकों और प्रकाशकों की सेवा में प्रार्थना है कि उपर्युक्त विषय के ग्रन्थों की तीन-तीन प्रतियाँ अवधि से पूर्व ही सम्मेलन-कार्यालय में भेजने की कृपा करें।

निवेदक—
रामजीलाल शर्मा
संयोजक
मंगलाप्रसाद पारितोषिक-समिति

प्रयाग
ज्येष्ठ कृ० ११,
सम्वत् १९८२ वि०

तार का पता—"सम्मेलन" इलाहाबाद रजिस्टर्ड नं० ए. ६२९.

भाग १२ अङ्क १०, ज्येष्ठ सं० १९८२ वि०

संपादक

वियोगी हरि

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

वार्षिक मूल्य २) प्रत्येक ≡)

विषय-सूची

सम्मेलन-पत्रिका के नियम

१—'पत्रिका' प्रत्येक मास की पूर्णिमा को प्रकाशित हो जाती है। यदि किसी मास की कृष्णा १० तक उस मास की पत्रिका न मिले, तो पत्र द्वारा सूचना देनी चाहिए।

२—'पत्रिका' का वर्ष भाद्रपद से प्रारम्भ होता है। वर्ष के बीच में, किसी भी मास में, ग्राहक होने पर उस वर्ष के पूर्व मासों के अंक अवश्य लेने पड़ते हैं। डाक-व्यय-सहित पत्रिका का वार्षिक मूल्य २=) है। २) मनीआर्डर द्वारा भेजने से अधिक सुभीता होता है।

३—यदि दो एक मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकखाने से प्रबन्ध कर लेना चाहिये, और यदि बहुत दिनों के लिए बदलवाना हो, तो हमें उसकी सूचना देनी चाहिए, अन्यथा 'पत्रिका' न मिलने के लिए हम उत्तरदायी न होंगे।

४—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें—"सम्पादक सम्मेलन पत्रिका, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र—"प्रचार-मन्त्री हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से और पत्रिका का मूल्य, विज्ञापन की छपाई आदि का द्रव्य "अर्थमंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से आना चाहिए।

५—प्राप्त कविता और लेखों के घटाने, बढ़ाने एवं प्रकाशित करने न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है।

सम्मेलन-पत्रिका में
विज्ञापन की दर

	१ मास	६ मास	एक वर्ष
एक पृष्ठ	५)	२५)	४५)
आधा पृष्ठ	३)	१५)	२८)

आवश्यक सूचना

६—सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की बिक्री पर कमीशन की दर निम्नलिखित है—

(क) १०) से नीचे की पुस्तकों पर कुछ भी कमीशन नहीं दिया जाता।

(ख) १०) से २५) तक की पुस्तकों पर दो आना रुपया कमीशन दिया जाता है।

(ग) २५) से ऊपर १००) तक २०) सैकड़ा।

(घ) १००) से ऊपर, २५) सैकड़ा।

(ङ) ५००) या अधिक की पुस्तकें लेने पर तृतीयांश कमीशन अर्थात् ३३।-)४ सैकड़ा।

(नोट) सम्मेलन से सिर्फ सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें बेची जाती हैं, अतः सर्वसाधारण को चाहिए कि वे सम्मेलन से केवल सम्मेलन द्वारा प्रकाशित ही पुस्तकें मगावें। अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें हमारे यहाँ नहीं मिलतीं।

सुलभ-साहित्य-माला की पुस्तकें

हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—श्री० मिश्रबन्धु

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ, उसने कौन-कौन से रूप पकड़े, किन-किन बाधाओं एवं साधनों का उसे सामना करना पड़ा, वर्त्तमान परिस्थिति क्या है, आदि गम्भीर विषयों का पता इस पुस्तक से भलीभाँति चलता है। अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। "मिश्रबन्धु-विनोद" रूपी महासागर से मथनकर यह इतिहासामृत निकाला गया है। यह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में स्वीकृत है। तृतीय संस्करण, पृष्ठसंख्या १०८, मूल्य।=)

भारतगीत

लेखक—पं० श्रीधर पाठक

पाठकजी की रसमयी रचना से किस सहृदय साहित्य-रसिक का हृदय रसप्लावित न होता होगा? आपकी गणना वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य के महारथियों में है। आपकी राष्ट्रीय कविता नवयुवकों में जातीय जीवन सञ्चार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक पाठकजी के उन गीतों का संग्रह है, जिन्हें उन्होंने समय-समय पर स्वदेश-भक्ति की उमंग में आकर लिखा है। इसकी प्रस्तावना साहित्य-मर्मज्ञ बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठसंख्या ६४, मूल्य ≡)

भारतवर्ष का इतिहास [प्रथम खण्ड]

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६०० संवत् पूर्व से ५० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है। अबतक हिन्दी में भारतवर्ष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था। विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहाँ के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। मध्यमा परीक्षा के इतिहास विषय में यह पुस्तक निर्दिष्ट है। जिल्दवाली पुस्तक का, जिसकी पृष्ठसंख्या ४०६ है, मूल्य केवल १।।) है।

राष्ट्रभाषा

संपादक—श्री 'भारतीय हृदय'

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न उपस्थित किया था कि, क्या हिन्दी राष्ट्रभाषा हो सकती है? इसके उत्तर में भारत के प्रत्येक

प्रान्त के बड़े-बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपात-रहित सम्मतियाँ दी थीं कि निःसन्देह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने योग्य है। उन्हीं सब अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इसके विरोधियों का भी यथेष्ट खण्डन हुआ है। इस विषय के व्याख्यानों का भी इसमें सङ्कलन कर दिया गया है। हिन्दीभाषा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक प्राणस्थानीय नहीं तो क्या है? पृष्ठसंख्या २००, मूल्य ॥)

शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस सम्बन्धी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह। इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें। महाराष्ट्रपति शिवाजी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का यदि चित्र देखना हो, तो एक बार इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइए। शब्द एवं भाव-काठिन्य दूर करने के लिये कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलङ्कार आदि साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाली आवश्यक बातों का इसमें उल्लेख कर दिया गया है। साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है। पृष्ठ-संख्या ५४, मूल्य ≡)

सरल पिङ्गल

ले०— { श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद }

इस पुस्तक में पिङ्गलशास्त्र के गूढ़ रहस्यों को सरल और सुन्दर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छन्दों के उत्तम उदाहरण भी दिये गये हैं। अन्त में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्दर्शन करा दिया गया है। पृष्ठ-संख्या ५८, मूल्य ।)

सूरपदावली (सटिप्पण)

श्री सूरदासजी के १०० अत्युत्तम पदों का अपूर्व संग्रह है। मूल्य ।)

भारतवर्ष का इतिहास [द्वितीय खण्ड]

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

इसमें ५०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का वर्णन किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान-पतन के क्रम का पता इस पुस्तक से जैसा कुछ चलता है, यह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू-समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि जानने योग्य आवश्यक विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः प्राप्त हो सकता है। सुन्दर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठसंख्या ४४०, मूल्य २।)

पद्य-संग्रह

संपादक { श्री ब्रजराज एम्० ए, बी० एस-सी., एल्-एल्० बी०
श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम्० एस्-सी० }

आधुनिक खड़ी बोली के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सुन्दर संग्रह। ये कविताएँ विद्यार्थियों के बड़े काम की हैं। संग्रह सामयिक और उपादेय है। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के साहित्य में स्वीकृत है। पृष्ठसंख्या १२८, मूल्य ।≡)

संक्षिप्त सूरसागर

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

सूरदासजी-रचित सूरसागर से ५०० पद-रत्न चुनकर इसमें एकत्र किये गये हैं। जहाँ तक हो सका है, कई प्रतियों से पदों का पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी गयी है। अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और

सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिये लालायित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूरकर हिन्दी-साहित्य-रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य परिचय जोड़ा गया है। उनकी जीवनी की मुख्य-मुख्य घटनाओं का पूरा-पूरा उल्लेख आगया है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएँ भी लिखी गयी हैं। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत है। एण्टिक काग़ज़ का जिल्ददार संस्करण, पृष्ठसंख्या ४२५, मूल्य २)

विहारी-संग्रह

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

कविवर विहारीलाल की सतसई से प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह छोटा सा संग्रह तैयार किया गया है। जहाँ तक सम्भव हुआ है, इसमें शृंगाररस के दोहों का समावेश नहीं किया गया है, किन्तु ऐसे दोहों का संग्रह किया गया है, जो विना किसी सङ्कोच के बालक-बालिकाओं को पढ़ाये जा सकते हैं। पृष्ठसंख्या ६४, मूल्य ≡)

ब्रज-माधुरी-सार

सम्पादक—श्री वियोगी हरि—इस पुस्तक का विषय इसके नाम ही से प्रकट होता है। इसमें ब्रजभाषा की कविता का सार सङ्कलन किया गया है। इस संग्रह में चार विशेषताएँ हैं:—

(१) इसमें सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय सत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया गया है।

(२) इसमें कुछ ऐसे कवियों की रचनाओं का रसास्वादन भी कराया गया है जो अभी तक कहीं प्रकाशित नहीं हुई थीं।

(३) इस ग्रन्थ में यथेष्ट पाद-टिप्पणियां लगा दी गयी हैं, जिनकी सहायता से साधारण पाठक भी लाभ उठा सकते हैं।

(४) इसके प्रारम्भ में प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवनचरित और उसकी कविता की संक्षिप्त आलोचना भी की गई है।

पृष्ठसंख्या ६३२, मूल्य जिल्दवाले संस्करण का केवल २)

पद्मावत (पूर्वार्द्ध)

सम्पादक—श्री लाला भगवानदीन

यह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत का पूर्वार्द्ध है। इस भाग में पहले खण्ड से लेकर ३४वें खण्ड तक का समावेश हुआ है। सम्पादक महोदय ने इस ग्रन्थ में इतनी पादटिप्पणी लगा दी हैं कि अब इस प्राचीन काव्य का रसास्वदान करना प्रत्येक कविता-प्रेमी के लिए सुलभ हो गया है। अन्त में एक संक्षिप्त शब्दकोश भी जोड़ दिया गया है। पृष्ठसंख्या लगभग २००; मूल्य साधारण जिल्द का १) और जिल्दवाली का १।)

सूरदास की विनयपत्रिका

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

यद्यपि 'विनय-पत्रिका' नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ महात्मा सूरदासजी का नहीं है तथापि सूरसागर में विनय-सम्बन्धी जो पद मिलते हैं, उन्हीं के आधार पर सौ उत्तमोत्तम एवं मनोरम पदों का संकलन करके इसका 'विनय-पत्रिका' नाम दिया गया है। क्रम तुलसीदासजी की विनय-पत्रिका का रक्खा गया है। अन्त में संक्षिप्त शब्दार्थ भी दे दिया है। पृष्ठ-संख्या ७४, मूल्य केवल ≡)

भाग १२ } ज्येष्ठ, संवत् १९८२ { अङ्क १०

नेत्र-साफल्य

सवैया

गुच्छन कौ अवतंस लसै, सिखि-पच्छन अच्छ किरीट बनायो।
पल्लव लाल समेत छरी, कर पल्लव मों मतिराम सुहायो॥
गुंजन कौ उर मंजुल हार, निकुंजन तें कढ़ि बाहर आयो।
आजु कौ रूप लखे ब्रजराज कौ आजु ही आँखिन कौ फल पायो॥

—मतिराम

अनुराग-वाटिका

पद

हम तौ वा नगरी के वासी ।
बसत जहाँ अनुराग-रँगीले पूरन प्रेम-उपासी ॥
नित प्रकास नित मुद मंगल जहँ बिलसति भूरि हमारी ।
ऐसी भूमि न तीनि लोक में, प्रकृति-तत्व तें न्यारी ॥
सहज रहनि वा अगम पुरी की कैसे कैं कहि आवै ।
मन बानी की पहुँच तहाँ नहिं, वेद भेद किमि पावै ॥
तहँ की अलख अकथ कथनी पै नाहिं कबौं मन मानै ।
इक मरजीवा मरमी कोई मरम तहाँ कौ पावै ॥

❧❧❧

कहा हमैं परखत हौ प्यारे !
खोट भरी अति पोर-पोर में, धरम करम तें न्यारे ॥
लोक-लाज अँचई हँसि-हँसि कैं, कुल-कलंक पद पायो ।
पंचनि हू बाहिर करि दीनों, जग-अपवाद कमायो ॥
भये मनमुखी अब हम पूरे, सिर पै आँकुस नाहीं ।
कहाँ परखिवे-जोग रहे हम प्रभु की आँखनि माहीं ?
पानिप नाहिं मिलैगो कछु इत, काँच-किरिच हम काचे ।
पै तुमरी या प्रेम-परख तें ह्वै जैहैं मणि साँचे ॥

❧❧❧

बलि बलि नैन-खुमारी तेरी ।
तीनि लोक की सुघराई तो चख-कोरन की चेरी ॥
कौन हाट तें यह मादकता सखि, बिसाहि कैं लाई ?
कहा मोल दीनों याकौ, कहि कैसे कैं यह पाई ?
लोल अमोल कटोरनि भरि-भरि अरी, कहा छलकावै ?
एतो प्रिय प्रेमासव क्यों इन मानी दृगनि पियावै !

नित इन अँखियन में ऐसी ही छाई रहै खुमारी।
नित नव नेह-घटा बरसावै घूमनि घुमरि तिहारी॥

(क्रमशः)

वि० ह०

दीनदयाल गिरि

आधुनिक काल के कवियों में दीनदयाल गिरिजी का स्थान बहुत ऊँचा है और उनकी कविता बहुत उत्कृष्ट होती थी। इनके पाँच ग्रंथों को—अनुराग बाग़, दृष्टान्त-तरंगिणी, अन्योक्तिमाला, वैराग्य-दिनेश, अन्योक्ति कल्पद्रुम—काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने "दीनदयाल गिरि-ग्रंथावली" के नाम से प्रकाशित कराया है। इसके संपादक बा० श्यामसुन्दर दासजी ने गिरिजी की जीवनी के विषय में जो कुछ पता पाया है उसे भी भूमिका में उन्होंने लिखा है।

इन्हीं गिरिजी के जीवन पर अधिक प्रकाश डालने की इच्छा से हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-पत्रिका के भाग १२ अं० ६, पृ० २५३ पर एक लेख निकला है। इसमें भूमिका में दिए गए वर्णन से दो-तीन बातें विशेष हैं। गिरिजी के जन्मकाल के निश्चय करने में गो० दंपतिकिशोरजी का मृत्युकाल ८८ वर्ष की अवस्था में सं० १९८५ में माना गया है, पर संवत् के ठीक होते हुए भी अवस्था के विषय में मत-भेद है। गो० दंपतिकिशोरजी के परम स्नेहास्पद सुहृद पं० जानकीप्रसादजी चतुर्वेदी का कथन है कि उन्होंने इतनी अवस्था नहीं पाई थी। गोस्वामीजी वृन्दावन ही में अत्यधिक रुग्ण हो गए थे और कृष्णलीला-भूमि को छोड़ना नहीं चाहते थे, पर अपनी पुत्री तथा इन्हीं चतुर्वेदीजी के अनुरोध से इन्हीं के साथ वे काशी आए और यहीं परमधाम को सिधार गये। उनका

कथन है कि उनकी अवस्था उस समय लगभग ७० वर्ष की थी। साथ ही उनका यह भी कहना है कि गोस्वामीजी प्रौढ़ावस्था में गिरिजी के भाषा-काव्य के शिष्य हुए थे। जब कोई कवि अपनी कृतियों के कारण विशेष प्रसिद्धि प्राप्त कर लेता है तभी शिष्यगण उस ओर आकर्षित होते हैं। इससे यही ज्ञात होता है कि गोस्वामी-जी वैराग्य-दिनेश आदि ग्रंथों की रचना के अनंतर गिरिजी के शिष्य हुए होंगे; इस कारण जो जन्मकाल "मुकुन्द" जी ने माना है उसमें कोई विशेष आपत्ति नहीं होती। लेख तथा भूमिका दोनों ही में मृत्युकाल निश्चय करने का एक ही आधार लिया गया है। अन्योक्ति-कल्पद्रुम के सं० १९४० के इस संस्करण के ३३ वर्ष पहले, स्यात् गिरिजी के जीवनकाल ही में, इस ग्रन्थ का तथा अनुराग बाग का एक संस्करण लीथो में निकल चुका था। ये दोनों छपे हुए ग्रन्थ उक्त चतुर्वेदीजी ही ने मुझे देने की कृपा की थी। वैराग्य-दिनेश की एक हस्तलिखित प्रति भी आपने मुझे दी। इन ग्रन्थों से मैंने सभा द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों का मिलान किया और जो छंद मुझे अन्योक्तिकल्पद्रुम में अधिक मिले उनकी प्रतिलिपि मैंने पं० केदारनाथ पाठक के द्वारा बा० श्यामसुन्दरदास के पास भेज दी थी। उस समय तक विशेष परिचय न होने के कारण उन्होंने उन छंदों को भूमिका में समावेश करते हुए भी निश्चित रूप से उन्हें गिरिजी कृत नहीं माना है। उस विषय में पुनः कुछ लिखा-पढ़ी न होने के कारण वह उसी प्रकार रह गया। दीन-दयाल गिरिजी के दो मित्रों या दरबारियों का पता लगा है जिनका नाम देवीप्रसाद गौड़ और बूआजी घाटिया है। गिरिजी की कृपा से प्रथम सज्जन महाराज बलरामपुर के तथा द्वितीय सज्जन मिर्जापुर के धनाढ्य जयराम गिरि के आश्रित हो गए थे। इनमें प्रथम सज्जन के विषय में यह विशेष कथनीय है कि ये ही उन दो प्रकाशित ग्रन्थों के प्रकाशक तथा गो० दंपतिकिशोरजी के श्वशुर थे। अब उन दो प्रकाशित ग्रन्थों के विषय में कुछ लिखना आवश्यक है।

अनुराग बाग

इस ग्रन्थ की सं० १८८८ में रचना हुई थी। गिरिजी को अन्योक्तियाँ ही अधिक प्रिय थीं, और इस ग्रन्थ में भी उन्हीं की अधिकता है। सभा द्वारा प्रकाशित ग्रन्थावली में पृ० ६५ में जहाँ 'अन्योक्ति' छपा है वहाँ इस पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ में 'इत्यऽन्योक्ति' है और यही ठीक भी है, क्योंकि यहीं अन्योक्तियों की समाप्ति है और आगे केवल विनय के ही छंद हैं। सं० १९१३ के प्रकाशित ग्रन्थ के मुखपृष्ठ पर एक चित्र है जिसमें दिखलाया गया है कि वृक्ष के नीचे श्रीकृष्णजी खड़े बाँसुरी बजा रहे हैं और दो गोपियाँ तथा एक गाय खड़ी हैं। उस चित्र के नीचे एक कमलदल-सुशोभित वृत्त में ग्रन्थ का नाम इस प्रकार दिया है।

'॥ श्री ॥—श्री राधावल्लभाय नमः—अथ श्रीगोस्वामी दीन दयालु गिरि विरचित अनुराग बाग ग्रन्थः ॥ वनमाली बिहार वर्णनम् ॥ शुभम् ॥'

ग्रंथ के अन्त में जो कुछ छपा है वह इस प्रकार है—

'श्री विश्वनाथपुरी काशीजी में महल्ले ब्रह्माघाट पर अनन्तराम तिवारी के रामगोपालजी के मंदिर में गौड़ देबीप्रसाद मिश्र ने यह ग्रन्थ छपवाया लिखीतं नाथूराम तिवारी ने छापनेवाले रामनारायण तिवारी यह ग्रन्थ जिसकों लेना होय सो भैरव बाज़ार में काठ की हवेली के सामने गोपालजी नागर की दूकान में मिलैगा संवत् १९१३ मिति भादो बदी त्रयोदशी गुरुवासरे शुभम् ॥ * ॥'

इससे यह स्पष्ट हो गया कि यह ग्रंथ तथा अन्योक्ति-कल्पद्रुम गिरिजी के जीवनकाल ही में ग्रन्थकार ही के इच्छानुकूल चाल पर तथा उन्हींके एक मित्र द्वारा प्रकाशित हुआ था। इस बाग में पाँच केदार (क्यारी) बनाए गए हैं। प्रथम में ११३ पदों में बाटिका, द्रुम, वापी आदि, द्वितीय में ६४ पदों में कृष्ण तथा गोपियों की बाग में लीला, तृतीय में १३४ पदों में मथुरागमन

के अनन्तर द्वादस मास तथा षटऋतु का, चतुर्थ में २५ पदों में उद्धव और गोपियाँ के संवाद, विरह और सुगन्ध का और पंचम में ३५ पदों में विनय-तड़ाग का निरूपण किया गया है।

अन्योक्ति कल्पद्रुम

यह ग्रन्थ सं० १६१२ के माघ शुक्ल ५ रविवार को समाप्त हुआ था। इस अन्योक्तिकल्पद्रुम में चार शाखाएँ निकाली गई हैं। प्रथम में ६८ अन्योक्तियों द्वारा षटऋतु तथा जलपक्षियों का वर्णन हुआ है, द्वितीय में वृक्ष, उन पर के वासी पक्षियों तथा कुछ पशुओं पर ८१ अन्योक्तियाँ हैं, तृतीय शाखा में मनुष्यों की अनेक जातियों, बाजों तथा अनेक विशेष अंगों पर ३६ अन्योक्तियां विकसित की गई हैं और चौथी अनेक प्रकार के अलंकार तथा मोह विवेकादि वर्णित ७६ अन्योक्तियों से सुशोभित है। इस ग्रन्थ के प्रथम संस्करण के मुखपृष्ठ पर तीन चित्र और एक दोहा हैं। ऊपर श्रीगणेशजी तथा श्रीकृष्णजी के दो चित्र हैं और उसके नीचे एक वृक्ष का चित्र है जिसमें एक ओर मोर तथा दूसरी ओर मोरनी बनी हुई है। इन चित्रों के नीचे यह दोहा दिया गया है—

दोहा

यह कल्पद्रुम बुध सुखद, अरथ अनूप उदार।
विरच्यो दीनदयाल गिरि, अभिमत फलदातार॥

यह दोहा सभा द्वारा प्रकाशित इस ग्रन्थ के आरंभ में, अर्थात् मंगलाचरण से भी पूर्व अनुपयुक्त स्थान पर, लगा दिया गया है। पहले संस्करण के अंत का अंश भी दे दिया जाता है—

"इस ग्रंथके विषे ग्रंथकारने टवर्गी णकार, क-श संयोगी क्षकार, कवर्गी खकार और तालव्य शकार इन बरनों को नहीं लिषा, विसर्ग रेफकों भी नहीं लिषे॥ काहे तें जो ए सब भाषा में श्रुतिकटु लगैं हैं' पुरातन कवियों ने इन बरनों को कविता भाषा में निषेध किए हैं तातें चवरगी छकार॥ तवर्गी नकार दंती सकार और मूर्धन्य कों

खकार ही पढ़ैं हैं॥ यह भाषा-लेख-परिपाटी सतकवि जानै हैं, सन्देह नहीं है।

श्री वाराणशी सुधाकर यंत्र में त्रिपाठी रत्नेश्वर ने देवीप्रसाद मिश्र गौड़ के कहने से रामनारायण तिवारी के हस्ते छपवाया, लिखनेवाले लछमन चौबे। यह ग्रंथ जिसको लेना होय सो ठठेरी बाज़ार में पीतल के सिवाले के अति निकट लछिमन कसेरे की दूकान में मिलैगा अनुरागबाग और अन्योक्तिकल्पद्रुम दोनों ग्रंथ मिल कर मोल १॥) डेढ़ रुपया, मि० चैत्र सुदी ६ बुधवार को समाप्तः सं० १९१४।"

इससे स्पष्ट है कि यह संस्करण ग्रंथ-निर्माण के एक वर्ष बाद ही निकला था। इन अंतिम अंशों के देने से आज से ७५ वर्ष पहिले की गद्य भाषा का नमूना भी मिलता है और साथ ही निश्चय हो जाता है कि ये प्रकाशित ग्रन्थ हस्तलिखित प्रतियों से विशेष महत्व रखते हैं, क्योंकि इनसे यह भी प्रदर्शित होता है कि कवि अपनी पुस्तकों को किस प्रकार अर्थात् किस रूप में पाठकों के सन्मुख रखना चाहता था।

व्रजरत्नदास

बकसी हंसराज

हिन्दी के कुछ उत्तम कवियों का जीवनवृत्त प्राचीन इतिहासाभाव के कारण नहीं मिलता। उन्हीं में बकसी हंसराजजी की भी गणना है। फिर भी इनके ग्रन्थों के आधार और लोगों की खोज से कम से कम इनका समय तो अवश्य ज्ञात हो गया है। किन्तु इनके जन्म और मरण का समय मालूम नहीं।

ये पन्नाधीश महाराजा अमानसिंहजी के दरबारियों में प्रधान थे। महाराजा अमानसिंहजी ने संवत् १८०९ से १८१५ तक राज्य किया; अतएव ये भी इसी समय के आसपास ही कविता करते

रहे होंगे। कविवर लाला भगवानदीनजी ने "सनेह-सागर" की भूमिका में यह भी लिखा है "बकसी हंसराज ने निज-लिखित 'विरह-विलास' ग्रन्थ में रचना-काल सं० १८११ लिखा है।" अतएव यही निश्चय हुआ कि बकसी हंसराजजी का समय विक्रमीय १८वीं शताब्दी का अन्तिम चतुर्थांश तथा १९वीं शताब्दी का प्रथम चतुर्थांश है। क्योंकि अधिक अवस्था हुए बिना इस प्रकार की प्रौढ़ कविता कोई कवि कदापि नहीं कर सकता।

बकसी हंसराजजी कायस्थ थे। लाला भगवानदीनजी के कथनानुसार छतरपूर में जिन रैयाराव का बनवाया हुआ 'रावसागर' और 'संकट मोचन' मन्दिर है वह इन्हीं बकसीजी के पूर्वज थे।

बकसीजी सखी भाव के उपासक थे। ये ब्रजमण्डल के सखी (अनन्य) सम्प्रदाय के 'विजयसखी' के शिष्य थे। इनका गुरुदत्त नाम 'प्रेमसखी' था।

इनके बनाये हुए चार ग्रन्थ लालाजी ने लिखे हैं—१—सनेह सागर, २—विरह विलास, ३—रामचन्द्रिका और ४—बारहमासा। मिश्रत्रयी ने इनके रचित ग्रन्थों में "सनेह सागर" के अतिरिक्त अन्य चार ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है जो नागरी-प्रचारिणी-सभा-काशी की खोज में प्राप्त बताये गये हैं—१—श्रीकृष्णजू की पाती, २—श्रीजुगुलकिशोर स्वरूप विरह पत्रिका, ३—फाग तरंगिनी और ४—चुरिहारिन लीला।

खेद के साथ लिखना पड़ता है कि अब "सनेह सागर" के अतिरिक्त अन्य कोई भी ग्रन्थ दुर्लभ ही नहीं अप्राप्य है। श्रद्धेय लाला भगवानदीनजी से भी मैंने ग्रन्थों के विषय में पूछताछ की, पर उन्होंने उत्तर दिया कि, मैंने "विरह विलास" नामक ग्रन्थ देखा है, इस में भ्रमरगीत के ढंग पर गोपियों द्वारा भ्रमर पर नाना प्रकार की सुन्दर उक्तियों का वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ 'सनेह सागर' से अत्यधिक महत्व रखता है। उसके पद भी बड़े मनोहर और गाने में आह्लाद-प्रद हैं। 'विरह-विलास' की एक हस्तलिखित प्रति मेरे एक मित्र के पास थी। छतरपूर में मुझे

उसके दर्शन हुए थे। मेरे मित्र ने उस समय मुझे उस पुस्तक को देना चाहा था पर मैंने कहा कि फिर ले लूँगा। किन्तु मुझे काशी आते समय स्मरण न रहा। 'सनेह-सागर' के सम्पादन और प्रकाशन के पश्चात् मुझे 'विरह-विलास' के प्रकाशित करने की लालसा हुई, पर इस समय तक मेरे उक्त मित्र का शरीरान्त हो गया था; पुत्रों से दरियाफ़्त किया, पर पुस्तक न मिली।"

'सनेह-सागर' इनका एक अद्वितीय ग्रन्थ है। जो स्वाभाविकता कविता की जान है वही इस ग्रन्थ में कूट कूट-कर भरी हुई है। कवि ने अलंकारों या अनुप्रासों आदि के फेर में पड़ कर भाव की भर्त्सना नहीं की है। किन्तु एक दम सीधी-सादी बातों का प्रकृत्या वर्णन कर दिया है। ग्रन्थ सचमुच प्रेम-पयोधि ही है। इसकी प्रत्येक तरंग से हिन्दी-साहित्य-रस-रसिक मधुकर का मन तरंगित होने लगता है। मैं जब इस ग्रन्थ को पढ़ने लगता हूं और एकान्त में राग भरे अलाप से गाने लगता हूं तो कवि के भाव, छन्द के माधुर्य तथा वर्णनशैली की अनुपमेयता पर निछावर हो जाता हूँ, शरीर गद्‌गद हो जाता है और नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग जाती है। यह ग्रन्थ एक प्रेमस्रोत है, इसमें भावुक-कवि का मन रूपी तिनका किसी प्रकार भी नहीं थमता, बह जाता है।

कवि ने इस ग्रन्थ की सम्पूर्ण कविता "सार" छन्द में कही है। यह छन्द भी ऐसा मधुर होता है कि यदि कोई साधारण रीति से ही पढ़े तोभी इसके पढ़ने में आनन्द आता है, यदि छन्द में रमणीय वर्णन हो और माधुर्य भरा हो तथा कोई गायक गाकर पढ़े तो फिर उसका कहनाही क्या ? एक बार पत्थरपर भी कुछ असर हो जायगा।

लालाजी ने मुझ से एक बार कहा था-"जब मैं छतरपूर में पढ़ाता था उस समय एक स्कूल का चपरासी रात को बड़े सुन्दर राग से इसे पढ़ता था। मैं भी वहीं रहा करता था। उसके सुन्दर राग ने मेरा मन खींच लिया। मैं इसे उसके पास सुनने के लिए जाने लगा। वह चपरासी इसका पाठ करता था। मैंने सुना और इस अद्वितीय ग्रन्थ की एक प्रतिलिपि करा एवं संपादित

कर पीछे से प्रकाशित कराया। बात अक्षरशः सत्य है छन्दों में जो माधुर्य है वह कहा नहीं जा सकता, पढ़ने पर ही उसका जौहर खुलता है, लिखने से नहीं।

इस ग्रन्थ की भाषा बुन्देलखण्डी है। ठेठ के बहुत से शब्द इसमें आ गये हैं जिन्हें अन्य प्रान्तनिवासी कठिनता से समझ सकता है, किन्तु फिर भी थोड़ी हिन्दी जाननेवाले और साहित्य-प्रेमी इस से सच्चा आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण जी और राधिकाजी का परस्पर प्रेम प्रस्फुटित होने की कहानी का कविता में वर्णन किया गया है। ग्रन्थ में वर्णन ऐसे ढँग से किया गया है कि छन्द उसमें जड़े से ज्ञात होते हैं, क्योंकि कोई छन्द अपने स्थान से हटने पर अपना वास्तविक भाव खो सा बैठता है। कुछ प्रसंगों को मैं उद्धृत करता हूँ।

इनकी वर्णित "घटोक्ति" ज़रा देखिये, कैसी हृदय पर घाव करने वाली है। भावुक तो इस पर लोटपोट हो जायगा। घट अपनी तपस्या का वर्णन करता है—

जब मैं मूल हतो माटी को तब मैं सही कुदारी।
गार मचाय मोर तन गार्यो कुम्हरा लातन मारी॥
फेर मसोस मींड़ कैं मेरो लैकर पिंड बनायो।
हाथन मारि सुधारि सीस पै चकहा धारि भँवायो॥

अभी आगे क्या हुआ! कुम्हार ने फांसी दे दी—

फांसी डारि उतारि चाक तें फेरि धरनि पै धारो।
सूरज तपनि बैठि तप कीन्हों यह तनु तपि तपि गारो॥
उपल काठ के बीच बैठि पुनि कष्ट सह्यो बहुतेरो।
फिरि तपितपि दिनकरतेजनि सों ठीक भयो तन मेरो॥

अब भी कष्ट का अन्त नहीं हुआ! तपस्या शेष है—

जब दृढ़ता आई तन मेरे तब मैं भयों वियोगी।

ठीक उसी समय घट को विमुक्त होना पड़ा, जब उसके शरीर में प्रौढ़ता आई। अब विमुक्त हो जाने पर उसने क्या किया?

संन्यास ले लिया, योगाभ्यास करने लगा और दिगम्बर हो गया। घट ने गेरू से रँगा कपड़ा नहीं पहना, बल्कि अपना शरीर रँग डाला—

अपनो तन रँगि रँगि गेरू सों भयो दिगम्बर योगी ॥

अब इसके पश्चात् पंचाग्नि-सेवन करने लगा। तब क्या हुआ, यों ही सिद्ध हो गया—

अनल सहित तब तप्यो अवाँमें सिद्ध भयो तब यौंही।
अल्पदान लै दै दै ठोकर कुम्हरा बेंचो मोंही ॥

कुम्हार ने कुछ भी मूल्य नहीं समझा। किन्तु फिर तत्त्व क्या निकला—

जब तप करि परिपक्व भयौं मैं तब इनके ढिग आयौं।
जो इच्छा है मेरे मन में सो अजहूँ नहिं पायौं ॥

इच्छा क्या थी ?—

जो जल भरि धरि हैं सिर ऊपर अपने करनि उठाई।
तौ कछु अरस-परस छतियन सों भागनहीं ह्वै जाई ॥
यह आशा करि अपने जी मैं तप करि गारो गाता।
मेरे मनके सबै मनोरथ पूरन करै विधाता ॥

सो हे कृष्ण ! हमारे ऐसे तपस्वी से तो—

जो मैं इतनो तप करि आयौं तेहिसों हृदय न खोलै।
सो यह ग्वालिन सुनिये लालन ! तुमसों कैसे बोलै ॥

कैसी सुन्दर सूझ है ! जो 'ग्वालिन' ऐसे विकट तपस्वी से, जो अपने जीवन भर में तपस्या ही करता रहा, नहीं बोलती वह फिर सभी पुष्पों का रसपान करनेवाले भ्रमर-सदृश श्याम से कैसे बोल सकती है ? आवश्यक है कि कृष्ण तो उस तपस्वी से भी कहीं अधिक तपस्या करें।

वस्तुतः उत्प्रेक्षा ही कवि-प्रतिभा की सच्ची कसौटी है। यदि उसकी सूझ, कल्पना और उक्ति पर भावुकता, मनोज्ञता और

मार्मिकता न्यौछावर न हो गई तो वह कवि, सुकवि नहीं है। बकसीजी की कविता पढ़ने के साथ ही जिस आनन्द का उद्रेक होता है वह पारलौकिक और अनुपमेय है। इनके पदों की चमत्कारिता, ललितता, सूक्ष्मदर्शिता और स्वाभाविकता के सामने इनकी लेखनी चूम लेने की इच्छा होती है।

× × × ×

इस काव्य का "राधाकृष्ण-प्रेम-विवाह" भी पठनीय है। उसमें सुन्दर सांग रूपक बड़ी खूबी के साथ खींचा गया है। किन्तु प्रकरण बड़ा है, २७ छन्दों में इस प्रेम-विवाह का रूपक बांधा गया है। अतएव स्थानाभाव के कारण थोड़ा ही सा उद्धृत किया जाता है—

छायो शुभ कर्मन को मड़वा जामुन इच्छा डारी।
आसपास लै विधि के बांधे बंदनवार सुधारी॥

पंचन पंच इन्द्रियन मिलि कै धीरज-खम्भ गड़ायो।
काम कलस आनन्द नीर भरि वितको चौक पुरायो॥

तेल सनेह चढ़ाय प्रीति सों सुरया हरद चढ़ाई।
अचरज यहै देह पै उपजी बिन हरदी पियराई॥

नास्यो मान ज्ञान-दीपक लै मटियानों सो जानों।
धाख्यो मेहर मंत्र हिये में सुनत न मंत्र बिरानो॥

उपर्युक्त दो छन्दों से ही रूपक का वास्तविक रूप ज्ञात हो गया होगा। रमणीय वर्णों का आधिक्य, यथोचित शब्दों का संगठन तथा भाषा का सौष्ठव बरबस मन को खींच लेता है।

बकसीजी घरेलू बातों से अधिक परिचित थे। छोटी-छोटी अमोघ औषधियां वे खूब जानते थे। पुस्तक में स्वभावतः यत्र तत्र उसका वर्णन उन्होंने किया है—

काहे को तू हमको फिरि-फिरि ऐसे बचन सुनावै।
जस्यो आग की आंच अंग सखि आंचहि आंगु सिरावै* ॥

उक्ति कितनी सटीक है! यह वे ही जान सकते हैं जिन्हें इस बात का अनुभव हो। आपका कोई अंग आग में जल जाय, आप तुरन्त उसे आंच में दिखा दीजिये। कष्ट तो कुछ होगा, पर छाला पड़ने और पकने के भय से मुक्त हो जायँगे। आंच में दिखा देने के कुछ ही समय पीछे जलन-स्थान पर ठण्डक सी ज्ञात होने लगेगी यह बात परीक्षित है।

बिरह-अगिन मैं प्रीति-प्याजु लै लुपरी-लगन सेंकाये।
कहि कहि परम-प्रेम की बातें ललिता घाव बँधाये॥

घाव पर प्याज की सेंक और प्याज को पकाकर बांधना बड़ा गुणकारक होता है। इससे घाव पकने के स्थान पर सूख जाता है। गांवों में, जहां शहरों की भाँति डाक्टर और वैद्यों का मिलना कठिन है वहां पर, इसी प्रकार के चुटकुलों से किसान अपना काम निकालता है। उसकी दवाएँ ऐसी तुली हुई होती हैं कि वे चूकना जानती ही नहीं। दाम भी उसे कुछ नहीं लगता, केवल दमड़ी दुकड़े की बात रहती है।

प्रीति छिपाई नहीं जा सकती इसके लिए कवि कैसा उदाहरण देता है—

कोटि उपाय करौ जो कोई प्रीति न दुरति अनेरी।
कैसे रहै कहौधौं छिन भरि दारू अगिन घुसेरी।

प्रायः सभी लोग जानते हैं कि दारू (बारूद) अग्नि के भीतर यदि रख दी जाय तो वह भभक उठेगी। प्रीति भी इसी प्रकार छिपा नहीं सकती, "भभक" उठेगी।

---

* कविप्रिया के छठें प्रभाव में केशवदासजी ने भी ऐसा ही लिखा है—
पाई है तैं पीर किधौं यों ही उपचार करै,
आग को तो दाध्यो अंग आग ही सिरातु है।
—लेखक

अपन्हुति अलंकार द्वारा कवि कहता है—चन्द्रमा, चन्द्रमा नहीं, राधा-मुख-बिम्ब है, उसके लिए प्रमाण यह है—

आसमान भो विमल आरसी मुख-प्रतिबिम्ब मयंकू ।
सुंदर अँखियन में अंजन है तेहि सों कहत कलंकू ॥
बेनी गूँथन के समये में सखियां बिथुरैं बारा ।
बदन बिम्ब छबि छिपत छबीली कहत ग्रहन संसारा ॥
अति सुगंधमय सुमन सुहाये छूटत बेनी छूटे ।
कहत सबै तिन सों अति भारे नभ के तारे टूटे ॥

ऐसी ही कविताओं को साहित्य-संसार में सूक्ति नाम से सूचित किया जाता है ।

प्राकृतिक अनुभव का भी एक उदाहरण देखिये—

लोचन ललित प्रीति रस पागे पुतरिन श्याम निहारे ।
मानहु कमल विमल पर बैठे उड़त न अलि मतवारे ॥

उत्प्रेक्षा कितनी अच्छी है, कविता प्रकृति-पर्य्यवेक्षण कितना उत्तम है इसे पाठक स्वयं समझ लें ।

अधिक उदाहरणों की आवश्यकता नहीं । काव्य-रस रसिकों के लिए इतने ही उदाहरण अलम् हैं । श्रीवियोगी हरिजी ने अपने "कवि-कीर्त्तन" में जो इनका कीर्त्तन किया है वह बहुत ही ठीक और उपयुक्त है—

रोला

'हंसराज' कविराज राज पन्ना हरि ध्याये ।
'विजय सखी' को सिष्य स्याम स्यामा पद गाये ।
"सागर" विरचि "सनेह" नेह को रहस बतायो ।
जिय-लुभावनी कवित-माधुरी-स्रोत बहायो ॥ १ ॥
भाव, ओज, माधुर्य भरी स्वाभाविक बानी ।
पद पद पै श्री रसिक स्याम की नेह निसानी ॥
उपमा, पद-लालित्य, मधुरता, कहनि अनोखी ।
रसिक-रँगीली चारु-चुभीली, रचना चोखी ॥ २ ॥

उपर्युक्त गुण बकशीजी की कविता में अधिक अंश में पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त भाषा, बुन्देलखण्डी होने पर भी, अधिक मात्रा में प्रसाद गुणपूर्ण है; साथ ही इनकी कविता सरसता, सूक्ष्मदर्शिता और मार्मिकता की तो मानों मूर्ति ही है।

बुन्देलखण्डी भाषा होने के कारण स्वभावतः बोलचाल के बहुत से शब्द इनकी कविता में ऐसे आ गये हैं जिनका जानना अन्य प्रांतीय लोगों के लिए कठिन सा है।

सब मिलाकर और आलोचनात्मक दृष्टि से देखने पर बकसी जी की कविता बहुत अंशों में निर्दोष देख पड़ती है। इन कारणों से कहना पड़ता है कि बक्सीजी हिन्दी-साहित्य के एक ऊँचे सुकवि थे। इन्होंने कविता द्वारा हिन्दी का मस्तक ऊँचा उठाया है। अवकाश मिलने पर बक्सीजी की कविता पर हम तुलनात्मक दृष्टि डालने का भी प्रयत्न करेंगे।

विश्वनाथप्रसाद मिश्र 'मुकुन्द'

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
के
सभापति पं० दीनदयालुजी शर्मा का भाषण

कई साल हुए, कलकत्ते के भारतीय साहित्य-सम्मेलन के उत्सव में मैं उपस्थित था। अन्तिम दिन कई जगह से सम्मेलन को निमन्त्रण मिले, मैंने बाबू पुरुषोत्तम-दासजी टण्डन से परामर्श किया कि एक बार इसे पञ्जाब क्यों न ले चलें। वे सहमत हो गये। मैंने लाहौर के लिये सम्मेलन को निमन्त्रण दिया और मेरे प्रिय मित्र ला० लाजपतराय जी ने अनुमोदन कर दिया। निमन्त्रण स्वीकृत हो गया।

लाहौर में जब स्वागत-कारिणी-समिति बनी तब लालाजी मौजूद थे, किन्तु जब सम्मेलन हुआ तब लालाजी और टण्डनजी दोनों ही जेल में थे, फिर भी ला० हंसराजजी की अध्यक्षता में स्वागत-

कारिणी समिति ने अच्छा प्रबन्ध किया, सम्मेलन सफल हुआ और उसका जो फल हम देखना चाहते थे वह फल पञ्जाब को मिल गया। पञ्जाब में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन स्थायी रूप से स्थापित हो गया। मुझे यह देखकर परम प्रसन्नता हो रही है कि प्रांतीय सम्मेलन का पहला उत्सव पिछले वर्ष मुलतान में सफलतापूर्वक हो गया और अब उसका दूसरा उत्सव हो रहा है।

पञ्जाब में हिन्दी का काम बड़ा आवश्यक है। पञ्जाब की बोली जानेवाली भाषा पञ्जाबी है, जो वास्तव में पश्चिमी हिन्दी का उसी प्रकार एक रूपान्तरमात्र है जिस प्रकार राजस्थानी है। मैं इसे एक अलग भाषा नहीं मानता। इसका व्याकरण हिन्दी-व्याकरण से बिलकुल मिलता-जुलता है। केवल शब्दों और उच्चारण में कुछ भेद है और कुछ विभक्तियों और कारकों में तारतम्य है। इतना भेद राजस्थानी में भी है, किन्तु जिस प्रकार एक स्वतन्त्र भाषा न मानकर वह हिन्दी ही का एक अवान्तर भेद माना गया है उसी प्रकार पञ्जाबी भी हिन्दी ही का एक भेद है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि पंजाब का प्रत्येक पढ़ा-लिखा निवासी हिन्दी या उर्दू, जो कि फारसी और अरबी मिली हुई हिन्दी ही है, बोल और लिख सकता है और समझ तो सभी सकते हैं।

इतना ही नहीं, श्रीगुरु नानकदेव से लेकर दशवें पादशाह तक सभी गुरुओं ने जो-जो कविताएं कीं उनका अधिक भाग शुद्ध हिन्दी ही है। श्रीगुरु ग्रन्थ साहब को यदि आद्योपान्त देखा जाय तो पता चलेगा कि उसमें हिन्दी की कविता भरी पड़ी है, गुरुओं-द्वारा निर्मित कितने ही भजनों या शब्दों की भाषा और भाव पूर्व और ब्रज के भक्तों के भजनों की भाषा और भाव से इतने मिलते हैं कि सहसा उनका पहचानना कठिन हो जाता है।

इस प्रकार यह सिद्ध है कि पंजाबी हिन्दुओं में बहुत दिनों से हिन्दी भाषा का प्रचार उसी भांति चला आया है जैसे और समग्र उत्तर भारत में। अब पिछले दिनों में आर्यसमाज और सनातनधर्म

के दो वृहत् आन्दोलनों की भाषा हिन्दी ही रही है। धर्मसभाओं और आर्यसमाजों ने हिन्दी-प्रचार का पूरा प्रयत्न किया है, किन्तु फिर भी इस प्रान्त में जो हिन्दी का अभाव सा दिखलाई दे रहा है उसके कुछ विशेष कारण हैं।

मुसलमान बादशाहों के समय में फारसी राज-भाषा थी। उसका वैसा ही आदर देश में था जैसा आजकल अँगरेज़ी का है। जो फारसी पढ़ा न होता था उसे वैसे ही कष्ट होते थे जैसे आजकल बिना अंगरेज़ी पढ़े लोगों को होते हैं। फारसी का प्रभाव इतना बढ़ा कि स्वयं भारतवर्ष की भाषा हिन्दी भी फारसी अक्षरों में लिखी जाने लगी और उसका नाम उर्दू पड़ गया। यह मुसलमान बादशाहों के दृढ़ और सुसञ्चालित राज्य की एक बड़ी विजय थी कि उन्होंने इस देश में इसी देश की भाषा पर अपनी लिपि की छाप बिठा दी। आज अंगरेज़ी का बहुत प्रचार है, किन्तु कोई भारतीय भाषा रोमन लिपि में नहीं लिखी जाती। विलायतवालों ने इसके लिये बहुतेरा यत्न किया, किन्तु वे सफल नहीं हुए, और अन्त को कुछ संस्कृत और पाली पुस्तकों को परिष्कृत रोमन लिपि में छाप कर ही अपने दिल की हवस निकाल कर रह गये।

मुसलमान राज्य के बाद स्वयं सिखों के राज्य में भी फारसी ही में कारोबार होता था। शासन तो सिखों ने अवश्य छीन लिया, किन्तु इतना समय ही उन्हें न मिला कि वे देश की भाषा के पुनरुद्धार का प्रयत्न कर सकते।

अंगरेजों के शासन में फारसी का स्थान तो अंगरेजी को मिल ही गया, किन्तु देश-भाषा का स्थान असल अधिकारिणी हिन्दी को न मिलकर विदेशी जामा पहननेवाली बहन उर्दू को मिला।

पिछले ५० वर्ष में पंजाब में उर्दू ने अपना आसन बहुत दृढ़ रूप से जमा लिया है। इसका प्रधान कारण स्वयं हिन्दू ही हुए हैं। उन्हों ने सैकड़ों विद्या-संस्थाएं स्थापित कीं और उन सब के ज़रिये धड़ाधड़ उर्दू का प्रचार आरम्भ हुआ। हिन्दी का नाम-कीर्तन तो बहुत हुआ, किन्तु प्रचार हुआ उर्दू ही का। इसमें सन्देह नहीं कि

पहले की अपेक्षा शुद्ध हिन्दी जाननेवालों की संख्या अब पंजाब में बहुत अधिक है और हिन्दी से प्रेम रखनेवालों में तो पंजाब के हिन्दूमात्र शामिल हैं, किन्तु यह भी सत्य है कि जितना प्रचार स्वयं हिन्दू-संस्थाओं द्वारा उर्दू का हुआ उतना हिन्दी का नहीं हुआ।

यहां मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि हिन्दी-प्रचार का प्रश्न केवल हिन्दुओं या हिन्दी बोलनेवालों ही का प्रश्न नहीं है, यह एक राष्ट्रीय प्रश्न है जिसका प्रत्येक हिन्दुस्थानी से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

बिना एक भाषा के एक राष्ट्र का वास्तविक निर्माण नहीं होता। जब भी मैं भारत में स्वराज्य होने की बात सोचता हूं तभी यह प्रश्न मेरे सामने आता है। क्या स्वराज्य-प्राप्त भारत की भाषा भी अंगरेज़ी ही होगी? जबतक देश को विदेशी भाषा और विदेशी भावों की गुलामी से नहीं छुड़ाया जाता तबतक चाहे हमें औपनिवेशिक स्वराज्य मिल जाय, चाहे हम पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करलें, किन्तु हमारा मन और बुद्धि, हमारा दिलो-दिमाग़ विदेशी परतन्त्रता की कड़ी जंजीरों में उसी प्रकार जकड़ा रहेगा। इसीलिये मैं समझता हूं कि देश की वास्तविक स्वतंत्रता और उन्नति के लिये यह परमावश्यक है कि देश में एक राष्ट्रभाषा का प्रचार हो। अपने अपने प्रान्त की अलग-अलग भाषाओं के रहते हुए भी समस्त देश के कार्य-संचालन के लिये एक राष्ट्रभाषा की अनिवार्य आवश्यकता है। इसके लिये मुझे कोई युक्तियां देने की आवश्यकता नहीं है कि इस उच्च स्थान के लिये केवल एक हिन्दी ही उपयुक्त है। देश भर के समझदार लोगों ने इसके विषय में ऐकमत्य प्रकट किया है। मद्रास-जैसे दूरस्थित और सर्वथा भिन्न भाषा-भाषी प्रान्त ने भी हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में स्वागत किया है और आज सहस्रों नरनारी वहां हिन्दी पढ़ रहे हैं। ऐसी दशा में यदि यह मान भी लिया जाय कि पंजाब की भाषा हिन्दी से अलग एक भाषा है तो भी राष्ट्रभाषा के रूप में इसका प्रचार आवश्यक ही है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है वह पंजाब के उस भाग के लिये है जहां पंजाबी बोली जाती है। अम्बाला डिविज़न की परिस्थिति भिन्न है। यहां की तो बोलचाल की भाषा भी हिन्दी ही है और वह उसी प्रकार हिन्दी-भाषी देश है जैसे युक्तप्रान्त। इतिहास इस बात का साक्षी है कि हरियाना और कुरुक्षेत्र सदा दिल्ली और व्रज तथा मेरठ के साथ रहा है। वह न पंजाब का भाग है, न कभी पञ्जाब के साथ रहा है। किन्तु बृटिश राज्य के प्रारम्भ से ही उसे पञ्जाब की दुम से बाँध दिया गया है और उसके गले के नीचे भी ज़बर्दस्ती उर्दू ही उतारी जा रही है। मेरे बचपन में मेरे ज़िले रोहतक में कितने ही पटवारी हिन्दी में रजिस्टर रखते थे और कितने ही सरकारी मदरसों में हिन्दी पढ़ायी जाती थी। किन्तु आज उनका कहीं पता नहीं है। सब जगह उर्दू ही उर्दू दिखाई देती है।

ऐसी दशा में पञ्जाब के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में हिन्दी साहित्य-विषयक किसी समालोचना की आवश्यकता मैं नहीं समझता। उसके लिये युक्तप्रान्त, राजस्थान या बिहार का सम्मेलन उपयुक्त होगा, इसीलिये मैं साहित्य-समालोचना के गूढ़ विषय पर कुछ भी इस समय नहीं कहूंगा। पञ्जाब के सम्मेलन के समक्ष तो मेरी राय में एक ही प्रश्न है। और वह यह है कि पञ्जाब में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का प्रचार किस प्रकार हो।

१—यह तो प्रत्यक्ष है कि हिन्दी-प्रचार के रास्ते में सब से बड़ी अड़चन यह है कि सरकारी दफ्तर उर्दू में हैं, इस कारण कचहरी के कामों में उर्दू पढ़े बिना लोगों को बड़ा कष्ट होता है। सरकारी नौकरियों में भी उर्दू पढ़े बिना प्रवेश नहीं, इस कारण प्रायः लोग उर्दू अवश्य ही पढ़ते हैं; जो हिन्दी पढ़ते भी हैं वे इसे दूसरी भाषा की भांति पढ़ते हैं, और उनके नित्य के व्यवहार में यह बहुत काम नहीं आती। जब तक हिन्दी को अदालतों में स्थान नहीं मिला था तबतक युक्तप्रान्त में भी उसके प्रचार की प्रगति बहुत दुर्बल थी। यही हाल वहां से बढ़कर पञ्जाब का है। यहाँ हिन्दी स्त्रियों की भाषा बनी हुई है। पञ्जाब में ऐसे घर बहुत हैं जिनमें

पुरुष अंगरेज़ी, उर्दू पढ़ते हैं और स्त्रियाँ हिन्दी। ऐसे उदाहरण भी कम नहीं हैं जिनमें नवविवाहित युवक अपनी पत्नी से पत्र-व्यवहार करने मात्र के लिये ही हिन्दी का अभ्यास करते हैं। स्त्रियों की भाषा भी हिन्दी इसलिये बन गयी है कि उन्हें सरकारी नौकरी नहीं करनी है, अदालत में जाकर खड़ा नहीं होना है। यदि विलायत की तरह यहां भी स्त्रियां ये सब कार्य करती होतीं तो उनकी भाषा भी हिन्दी न हो पाती।

पञ्जाब की वर्तमान परिस्थिति देखते हुए यह सर्वथा असम्भव मालूम होता है कि समग्र पञ्जाब में हम हिन्दी को राजभाषा का रूप दिलवा सकें।

हां, यदि इस कार्य में हमारे साथ सिक्खों की भी मांग सम्मिलित होती तो सफलता की पूरी आशा थी। उस दशा में निःसन्देह पञ्जाब में भी युक्तप्रान्त की तरह उर्दू के साथ-साथ हिन्दी को हम अदालती भाषा बनवाने में सफल हो जाते। किन्तु कुछ कारणों से सिक्ख पञ्जाबी को एक स्वतन्त्र भाषा बनाने की फिक्र में हैं और उसके लिये गुरुमुखी लिपि का, जो नागरी का ही रूपान्तर है, प्रचार कर रहे हैं। इस आन्दोलन से हिन्दी का पक्ष तो दुर्बल हो ही गया, किन्तु गुरुमुखी के अदालती भाषा बनने की भी कोई आशा नहीं। इस दुविधा में दोनों ही बातें बिगड़ती दिखलाई दे रही हैं।

मुझे पञ्जाबी को एक स्वतन्त्र भाषा मानने का हठ नहीं है। किन्तु मेरा विचार यह अवश्य है कि यदि देवनागरी लिपि को सिक्ख भाई अपना लेते तो निश्चय ही पञ्जाब की भाषा का प्रश्न हल हो जाता। उन्हें यह सोचना चाहिये कि ऐसा करने से समस्त हिंदू जाति की एक मांग हो जावेगी और उसे रोक सकना सरकार की शक्ति से बाहर होगा। ऐसा न होने से एक विदेशी लिपि, जिससे न पञ्जाबी भाषा का न गुरुमुखी लिपि का ही कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध है, देश पर अधिकार जमाये हुए है। अधिक न सही, इतना तो है ही कि गुरुमुखी लिपि से देवनागरी अधिक

नज़दीक है। ऐसी दशा में यदि फारसी लिपि के साथ-साथ नागरी लिपि भी अदालतों में चलने लगे तो यह सिक्खों के लिये ही लाभदायक होगा। वे इस समय की तरह गुरुमुखी को अपनी धार्मिक लिपि रख सकते हैं, किन्तु अदालती लिपि फारसी के स्थान पर यदि नागरी कराने में वे हमारी सहायता करें तो कोई आश्चर्य नहीं। किन्तु ये सब बातें लिखी जाने में सुन्दर होते हुए भी कार्य में परिणत होनी कठिन हैं। पंजाब की जैसी राजनीतिक परिस्थिति है, उसे देखते यह आशा नहीं होती कि हिन्दी को यहाँ की अदालतों में प्रवेश मिल सकेगा।

हाँ, अम्बाला डिवीज़न की दशा भिन्न है। वहाँ पंजाबी या गुरुमुखी का प्रश्न नहीं है। वह हिन्दी-भाषी प्रदेश है और वहाँ हिन्दुओं की जनसंख्या बहुत अधिक है। वहाँ हिन्दी को अदालती भाषा बनाने में कोई रुकावट नहीं है। वहाँ की दशा युक्तप्रान्त से केवल इतनी ही भिन्न है कि भाग्यवश वह किसी ऐतिहासिक कारण से पंजाब के साथ जोड़ दिया गया। यह सर्वथा सम्भव और वांछनीय है कि कम से कम अम्बाला डिवीज़न में हिन्दी को उर्दू के साथ साथ अदालती भाषा बना दिया जाय। इसपर यह आपत्ति उठायी जा सकती है कि एक डिवीज़न के लिये अलग प्रबन्ध करने में कठिनाई होगी, किन्तु यह आपत्ति वास्तविक नहीं है। बम्बई प्रेसिडेन्सी में महाराष्ट्र प्रदेश में मराठी, गुजरात प्रदेश में गुजराती और सिन्ध में सिन्धी इस प्रकार तीन भाषाएँ एक साथ प्रचलित हैं। अदालतों में प्रत्येक प्रदेश में अपनी-अपनी भाषा चलती है और कार्य-सञ्चालन में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती। इसलिये यह सर्वथा संभव है कि केवल अम्बाला डिविज़न में ही पहले हिन्दी को अदालतों में चलाकर देखा जाय। किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि हिन्दी का प्रचार, बिना उसके अदालती भाषा बने, होगा ही नहीं। युक्तप्रान्त में, जहाँ हिन्दी का आजकल इतना प्रचार है, अबतक भी हिन्दी पूरी तरह से अदालती भाषा नहीं बनी है, केवल अर्जी दावा हिन्दी में दाखिल किया जा सकता है। हाँ, अब म्युनिसपल

और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों ने हिन्दी-प्रचार में भाग लेना प्रारम्भ किया है, किन्तु अधिकतर काम युक्तप्रान्त में भी प्रचार और सार्वजनिक आन्दोलन से ही हुआ है। इसी प्रकार यदि पंजाब में भी हिन्दी-प्रचार के लिये सच्चे भाव से और पूर्ण उत्साह के साथ उद्योग किया जाय तो कोई कारण नहीं कि यहां भी हिन्दुओं की भाषा हिन्दी न हो जाय।

२—इसलिये अम्बाला में हिन्दी को अदालती भाषा बनाये जाने के उद्योग के साथ-साथ हिन्दी के प्रचार के लिये सार्वजनिक आन्दोलन की आवश्यकता है। हिन्दुओं को यह समझना चाहिये, कि जिस प्रकार वे लड़कियों को हिन्दी पढ़ाते हैं वैसे ही प्रारम्भ से ही लड़कों को भी हिन्दी पढ़ाया करें। बाद में जो दिल में आवे सिखावें, किन्तु प्रारम्भ हिन्दी से ही करना चाहिये। ऐसा करने से हिन्दी उन की पहिली भाषा हो जायगी और उस के पश्चात् चाहे वे कुछ भी पढ़ें-सीखें, किन्तु अपनी मातृभाषा को न भूल सकेंगे। इस भाव को हिन्दुओं के हृदयों में दृढ़ बद्धमूल करने के लिये बड़े प्रबल आन्दोलन की आवश्यकता है, जिसमें समुदायों के हिन्दुओं को एकत्र हो कर कार्य करना चाहिये। पंजाब का हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ही इस कार्य के लिये पर्याप्त नहीं है। इस के लिये तो प्रत्येक बड़े नगर में एक हिन्दी-प्रचारिणी-सभा स्थापित होनी चाहिये जो रात्रि-पाठशालाएँ, पुस्तकालय, वाचनालय आदि खोल कर हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का प्रचार करें।

३—इस के साथ ही साथ प्रत्येक हिन्दूसभा, आर्यसमाज, सनातनधर्म-सभा, देवसमाज आदि का यह कर्तव्य होना चाहिये कि वह अपने सभासदों और नागरिकों में हिन्दी के प्रचार का उद्योग करें और अपने द्वारा सञ्चालित स्कूलों तथा पाठशालाओं में हिन्दी का पढ़ना अनिवार्य कर दें। म्युनिसिपैलिटियों और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के स्कूलों में भी प्रारम्भ से ही हिन्दी पढ़ाये जाने का उद्योग होना चाहिये। और इस ओर विशेष ध्यान दिया जाना

चाहिये कि किसी हिन्दूसंस्था-द्वारा सञ्चालित पाठशाला में हिन्दी-शिक्षा का अभाव न रहे।

४—हिन्दुओं की समस्त और हर तरह की संस्थाओं की कारवाई यथासम्भव हिन्दी ही में होनी चाहिये। इस से हिन्दी न जाननेवाले सभासदों को हिन्दी पढ़ने का उत्साह होगा। पंजाब की काँगरेस में तो एक प्रकार से हिन्दी के लिये स्थान ही नहीं है। उस में भी हिन्दुओं को अपना काम हिन्दी में ही करने का आग्रह करना चाहिये।

५—पंजाब में हिन्दी पते की चिट्ठियां D. L. O. में भेज दी जाती हैं! कितनी ही बार देखा जाता है कि जो लोग केवल हिन्दी ही जानते हैं उन्हें पता उर्दू पढ़े लोगों के पास लिखवाने जाना होता है, मानों वे तो सर्वथा अपठित ही हैं। इस अपमान से मातृ-भाषा की रक्षा करनी आवश्यक है। यदि इस विषय में दृढ़तापूर्वक आन्दोलन किया जाय तो डाक विभाग, जो प्रान्तीय नहीं बल्कि भारतीय सरकार के अधीन है, इस बात पर राज़ी किया जा सकता है कि चिट्ठीरसाँ वे ही लोग रखे जावें जो हिन्दी भी पढ़े हों।

६—हिन्दी समाचार-पत्रों का प्रचार भी हिन्दू घरों में बढ़ाना चाहिये। पंजाब में हिन्दू समाचार-पत्र निकले, किन्तु हमेशा उन की दशा प्रातःकाल के दीपक की सी रही। ज़रा झोका लगा और गुल। अब भी जो दो एक पत्र निकल रहे हैं वे कुछ बहुत अच्छी दशा में नहीं हैं। यदि दिल्ली के ही दैनिकों को पंजाबी अपनावें तो भी कुछ प्रचार हो सकता है। इस ओर भी पंजाबियों की रुचि बढ़ाने का यत्न करना चाहिये।

७—मैं एक बात से बड़ा प्रसन्न हूं और वह यह है कि हिन्दू स्त्रियाँ एक दम हिन्दी पढ़ रही हैं। यह बड़ी ही उत्तम बात है। स्त्रियाँ घरों की स्वामिनी हैं। यदि उन की भाषा हिन्दी हो गयी—यदि माताओं की भाषा हिन्दी हो गयी, तो हिन्दी का 'मातृभाषा' नाम चरितार्थ हो जायगा। मैं ने देखा है कि जिस घर में स्त्रियां

हिन्दी पढ़ी हों, वहां पुरुषों को झख मार कर हिन्दी सीखनी पड़ती है और कितनी ही बार पतियों को पत्नियों के सामने शिष्य बनते देखा गया है। इस के अतिरिक्त हिन्दीशिक्षित माताओं की सन्तान कभी हिन्दी से अनभिज्ञ नहीं हो सकती। इस कारण मैं हिन्दू कन्याओं को हिन्दी पढ़ाने के कार्य को बहुत महत्वपूर्ण और आवश्यक समझता हूं। ऐसा करने से हमारी अगली सन्तति एक दम हिन्दी-भाषी पैदा होगी और प्रत्येक घर में मानों हम कई हिन्दी-प्रचारक नियुक्त कर देंगे।

इन और इसी प्रकार के अन्य उपायों से हिन्दी-प्रचार के लिये संगठित रूप से अनवरत उद्योग होना चाहिये। मेरा विश्वास है कि यदि पूरे उत्साह से पंजाब के हिन्दू इस कार्य को उठा लें तो वे इसे पार लगा सकते हैं। वास्तव में, इस कार्य की ओर उन का ध्यान बलपूर्वक आकृष्ट ही नहीं किया गया है। आर्यसमाजों और सनातनधर्म-सभाओं को तो आपस के खण्डन-मण्डन से फुर्सत नहीं, और हिन्दूसभाएँ अछूतोद्धार के ही काम में गलतां पेचां हैं, और इधर हिन्दुओं की जीवनी-शक्ति और उनके धर्म-भावों की खान उन की मातृ-भाषा का गला घुट रहा है। ये सब काम भी होते रहें, किन्तु हिन्दी-प्रचार का काम बन्द न होना चाहिये।

हिन्दुओं को याद रखना चाहिये कि बिना हिन्दी जाने उन के हिन्दुत्व की भी पूर्ति नहीं होती। गीता का उर्दू तर्जुमा पढ़ कर या उर्दू में लिखी सन्ध्या की पुस्तक से वेदमन्त्रों क महाभ्रष्ट उच्चारण सीख कर क्या सनातनधर्मी और क्या आर्यसमाजी कोई भी अपने आर्य धर्म की वास्तविक संस्कृति से संस्कृत नहीं हो सकता। ज़ौक़ और ग़ालिब की गज़लों में अपना स्वर मिला कर आप बेदर्द दिलवर की क़ब्र पर आंसू बहाना सीख सकते हैं, किन्तु यदि भगवान् के मोहन रूप पर गोपियों की तरह मस्त होना चाहते हो तो सूरदास की शरण जाना होगा। यदि मर्यादा पुरुषोत्तम के अलौकिक जीवन के अमर उपदेशों से कृतकृत्य होना है तो तुलसी की कविता-सरिता के अमृत-रस का पान करना सीखो।

जब यह सत्य है कि भारत के राष्ट्र के उदय और विकास के लिये राष्ट्र-भाषा हिन्दी, और हिन्दुओं के अभ्युदय के लिये मातृ-भाषा हिन्दी का प्रचार आवश्यक है तब समझ में नहीं आता कि सिवाय आलस्य या अज्ञान के और कौनसा कारण है, जो हिन्दुओं को हिन्दी-प्रचार से इस प्रकार उदासीन रख रहा है। पंजाब की वीरभूमि पर बसनेवाले वीर हिन्दू अपने अदम्य उत्साह और कार्य करने की अपनी अप्रमेय शक्ति के लिये सारे देश में नेकनाम हैं। उन्हें अपने उज्ज्वल मस्तक से यह कलङ्क भी धो देना चाहिये और हिन्दी-माता के उद्धारार्थ कटिबद्ध होकर उत्साहपूर्वक कार्यारम्भ कर देना चाहिये। वाणी के ईश भगवान् आपके इस पवित्र कार्य में सहायक होंगे।

मैं चाहता हूं और आशा करता हूं कि पंजाब का हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अपने कार्य में सफल होगा और पंजाब में हिन्दी प्रचार के कार्य को आगे बढ़ायेगा।

मेरा निश्चय है कि वह दिन आयेगा जब स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रभाषा के अपने पुराने सिंहासन पर हमारी प्यारी मातृभाषा आसीन होगी और उसके द्वारा भारत का आर्य-मस्तिष्क संसार में उसी प्रकार अपने अमूल्य विचारों और सनातन सभ्यता का प्रचार करेगा, जैसा कभी पहले संस्कृत के द्वारा किया था।

पन्द्रहवीं स्थायी समिति का तीसरा विशेष अधिवेशन

पन्द्रहवीं स्थायी समिति की नियमावली की ८२ धारा के अनुसार एक विशेष (तीसरा) अधिवेशन रविवार मिति वैशाख शु० ३ संवत् १९८२ वि०, ता० २६ अप्रैल सन् १९२५ ई० को ४। बजे से सम्मेलन-कार्यालय में निम्नलिखित सदस्यों की उपस्थिति में हुआ—

१—श्री बा० पुरुषोत्तमदासजी टंडन, प्रयाग
२—श्री अध्यापक रामदासजी गौड़, काशी
३—श्री बा० रामचन्द्रजी वर्मा, काशी
४—श्री पं० भागीरथप्रसादजी दीक्षित, काशी
५—श्री बा० शालिग्रामजी वर्मा, प्रयाग
६—श्री पं० देवीप्रसादजी शुक्ल, प्रयाग
७—श्री बा० गंगाप्रसादजी उपाध्याय, प्रयाग
८—श्री पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल, प्रयाग
९—श्री पं० गिरिजादत्तजी शुक्ल "गिरीश", प्रयाग
१०-श्री बा० शीतलासहायजी, प्रयाग
११-श्री बा० केदारनाथजी गुप्त, प्रयाग
१२-श्री सरदार नर्मदाप्रसादसिंहजी, प्रयाग
१३-श्री वियोगीहरिजी, प्रयाग
१४-श्री प्रो० ब्रजराजजी, प्रयाग

१५–श्री पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी, प्रयाग
१६–श्री पं० लक्ष्मीनारायणजी नागर, प्रयाग
१७–श्री चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्मा, प्रयाग
१८–श्री अध्यापक पं० रामरत्नजी, प्रयाग
१९–श्री पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी, प्रयाग
२०–श्री पं० रामजीलालजी शर्मा, प्रयाग
२१–श्री पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी (सहायक मन्त्री)

नियमानुसार श्री बा० पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

१—प्रधान मंत्रीजी का यह प्रस्ताव उपस्थित हुआ कि विशेष परिस्थिति उपस्थित होने के कारण पंजाब तथा सिन्ध प्रान्तों में हिन्दी-प्रचार के लिए लाहौर में एक प्रान्तीय-कार्यालय स्थापित करके उन प्रान्तों में हिन्दी प्रचार का कार्य आरम्भ कर दिया गया है। अतः इस वर्ष इसके खर्च के लिए २०००) स्वीकार किए जायँ।

सरदार नर्मदाप्रसादसिंहजी ने इस पर आपत्ति करते हुए कहा कि इस विषय पर निर्णय करने का अधिकार नियमावली की ८२ धारा के अनुसार स्थायी समिति को नहीं है। इसपर बहुमत से यह निश्चित हुआ कि स्थायी समिति को उक्त धारा के अन्तगत यह अधिकार है कि वह इस विषय पर विचार करे, अतएव इसपर विचार किया जाय। तदनन्तर यह प्रस्ताव इस निश्चय के साथ बहुसम्मति से स्वीकृत हुआ कि यह रुपया सम्मेलन के साधारण कोष में से दिया जाय।

२—हिन्दी-विद्यापीठ की उपसमिति द्वारा प्रेषित हिन्दी-विद्यापीठ की योजना विचारार्थ उपस्थित हुई। पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी ने इस योजना के सम्बन्ध में कहा कि सम्मेलन की नियमावली की किसी धारा के अन्तर्गत स्थायी समिति को यह अधिकार नहीं है कि वह इस प्रकार की योजना पर विचार कर सके। अन्त में बहुमत से इसपर विचार करना निश्चित हुआ।

योजना के विषय में दो मत थे। एक उपसमिति के पक्ष में, दूसरा ट्रस्ट के पक्ष में। अन्त में बहुसम्मति से उपसमिति द्वारा ही हिन्दी-विद्यापीठ का प्रबन्ध करना निश्चित हुआ।

निश्चित हुआ कि स्थायीसमिति के समक्ष हिन्दी-विद्यापीठ की योजना उपस्थित करने के लिए एक उपसमिति बनायी जाय, जो एक सप्ताह के भीतर योजना तैयार करके स्थायीसमिति में विचारार्थ उपस्थित करे। इस उपसमिति के निम्नलिखित महानुभाव सदस्य नियुक्त हुए—

१—श्री० बा० शालिग्रामजी वर्मा, प्रयाग
२—श्री० बा० गंगाप्रसादजी उपाध्याय, प्रयाग
३—श्री० पं० रामचन्द्रजी वर्मा, काशी
४—श्री० पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी, प्रयाग।
५—श्री० अध्यापक पं० रामरत्नजी, प्रयाग
६—श्री० चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्मा, प्रयाग
७—श्री० पं० रामजीलालजी शर्मा, प्रयाग

पं० रामजीलालजी शर्मा इस समिति के संयोजक नियुक्त हुए।

३—प्रधान मन्त्रीजी ने सूचना दी कि कलकत्ता-सम्मेलन की लेखमाला कार्यालय में आ गयी है, अब उसके प्रकाशित करने का प्रबन्ध सम्मेलन को करना चाहिए और इसका व्यय पुस्तक-प्रकाशन खाते से दिया जाय।

निश्चित हुआ कि पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी को अधिकार दिया जाय कि वे इसका सम्पादन करके इसे प्रकाशित करें और उन्हें एतदर्थ पुरस्कार दिया जाय। जब यह पुस्तक छपकर तैयार हो, तब इस पर पुरस्कार देने का विषय स्थायीसमिति के समक्ष उपस्थित हो।

४—प्रबन्ध मन्त्रीजी का वह पत्र उपस्थित हुआ, जिसमें उन्हों ने संग्रहालय की पुस्तकें सम्मेलन-भवन से बाहर अवलोकनार्थ देने न देने के विषय में स्थायी-समिति का मत जानना चाहा है। इस पर निश्चित हुआ कि संग्रहालय की पुस्तकें बाहर के लिए न

दी जायँ। जिन्हें आवश्यकता हो, वे यहीं आकर पुस्तकें देख सकते हैं।

५—प्रधान मन्त्रीजी ने सूचना दी कि कलकत्ते की हिन्दी-पुस्तक एजंसी के मालिक श्रीबैजनाथजी केडिया सम्मेलन के स्थायी सदस्य होना चाहते हैं। उनका स्थायी सदस्य शुल्क २५०) आगया है।

निश्चित हुआ कि ये महानुभाव नियमानुसार सम्मेलन के स्थायी सदस्य बना लिये जायँ।

६—निश्चित हुआ कि जब तक हिन्दी-विद्यापीठ की योजना निश्चित न हो तब तक उसका प्रबन्ध निम्नलिखित सदस्यों की एक उपसमिति करे—

१—श्री बा० पुरुषोत्तमदासजी टंडन, प्रयाग

२—श्री बा० गंगाप्रसादजी उपाध्याय, प्रयाग

३—श्री प्रो० व्रजराजजी, प्रयाग

४—श्री पं० रामजीलालजी शर्मा, प्रयाग

५—श्री चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्मा, प्रयाग (संयोजक)

७—प्रधान मन्त्रीजी ने बंगाल में हिन्दी-प्रचार की आवश्यकता प्रकट करते हुए कहा कि यदि इस समय बंगाल में हिन्दी-प्रचार करने का कार्य आरम्भ किया जाय तो श्रीआशुतोष एम. ए. केवल १००) मासिक पुरस्कार पर योग्य कार्यकर्त्ता मिल सकते हैं, इनके द्वारा बंगाल में बड़ी शीघ्रता से हिन्दी का वायुमण्डल बन सकता है।

इस पर निश्चय हुआ कि यदि बंगाल में हिन्दी-प्रचार के लिए विशेष रूप से कुछ धन मिल जाय तो कलकत्ते में कार्यालय खोलकर हिन्दी-प्रचार का कार्य आरम्भ कर देना चाहिए और इस कार्य में प्रचार-समिति संवत् १९८२ अन्त तक २०००) तक व्यय कर सकती है।

तदनन्तर सभापति को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई।

रामजीलाल शर्मा
प्रधानमन्त्री, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

पञ्जाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का द्वितीय अधिवेशन

(पहला दिन)

३ मई को प्रातःकाल ८ बजे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पंजाब, का द्वितीय वार्षिकोत्सव आरम्भ हुआ। बिना टिकट कोई अन्दर नहीं घुस सकता था और इसी कारण जनता में अधिक भीड़ न होकर चुने हुए लोगों की अच्छी उपस्थिति थी। बाहर से बा० पुरुषोत्तमदासजी टण्डन, पं० रामजीलालजी शर्मा, पं० रामरत्नजी, पं० मौलिचन्द्रजी शर्मा आदि कितने ही गण्यमान्य सज्जन उपस्थित थे। प्रतिनिधियों की संख्या भी अच्छी थी। अधिकतर लोग दर्शक या स्वागत-समिति के सभासद थे। स्त्रियों का समुदाय बहुत अधिक था और उसे देखकर लोग कह रहे थे कि पंजाब में हिन्दी जो स्त्रियों की भाषा कही जाती है उसका यह एक और प्रमाण है।

जालन्धर के कन्या-महाविद्यालय की कन्याओं के एक मनोहर गान से कार्य प्रारम्भ हुआ। स्वागत-समिति के अध्यक्ष श्री पं० जगन्नाथजी सयाल एम० ए०, एल० एल० बी० ने अपना भाषण पढ़ सुनाया। तत्पश्चात् सभापति के लिये श्रीमान् पं० दीनदयालुजी शर्मा का प्रस्ताव हुआ; अनुमोदन और समर्थन के बाद पण्डितजी ने जयघोष के बीच सभापति का आसन ग्रहण किया।

दिन चढ़ गया था, इससे सभापति का भाषण तीसरे पहर के लिये स्थगित कर दिया गया।

४ बजे फिर गान से काररवाई प्रारम्भ हुई। इस समय भीड़ बहुत थी। सभापतिजी ने अपना लिखित भाषण पढ़ने के लिये पं० मौलिचन्द्रजी शर्मा एम० ए०, एल० एल० बी० को कहा। पं० मौलिचन्द्रजी ने ऊँचे स्वर से भाषण पढ़ सुनाया जिसे जनता ने बड़े चाव से सुना और बीच-बीच में तालियों तथा धन्य-धन्य के शब्दों से उसका आदर किया। भाषण के बाद कवि-सम्मेलन का कार्य आरम्भ हुआ। श्रीमणिरामजी गुप्त, सेठ शिवकुमारजी केडिया उपप्रधान स्वागत-समिति, कुमारी विद्याधरीजी विशारदा, पं० भगवतीचरण शर्मा, ला० लालचन्दजी, श्रीपरमानन्दजी शास्त्री मुल्तान, पं० उदयशंकरजी भट्ट, कुमारी सुशीला देवी विशारदा, पं० चेतरामजी, श्री वंशीधर विद्यालंकार आदि ने कविताएँ पढ़ीं। कविताएँ रोचक थीं और जनता ने उन्हें बहुत पसन्द किया।

तत्पश्चात् सम्मेलन के प्रधानमंत्री पं० रामजीलालजी शर्मा ने सम्मेलन के कार्य का विवरण जनता को सुनाया। उन्होंने मद्रास में हिन्दी-प्रचार के कार्य तथा बंगाल में वैसा ही एक प्रचार-कार्यालय खोलने के विचार की बात कही। हिन्दी की सस्ती पुस्तकों के प्रकाशन का भी उन्होंने ज़िक्र किया तथा विद्यापीठ की स्थापना और सम्मेलन-परीक्षाओं के प्रचलन आदि विषयों पर जनता को प्रकाश पहुँचाया। इस प्रकार सम्मेलन के कार्यों से जनता को अभिज्ञ करने के बाद उन्होंने हिन्दी-प्रचार के लिये ओजस्वी शब्दों में अपील की जिसका जनता पर प्रभाव पड़ा। उन के भाषण के बाद सम्मेलन की बैठक स्थगित की गयी।

रात्रि को कवि-दरबार का अभिनय दिखाया गया। अभिनेता लाहोर के विद्यार्थी आदि थे। राजा भोज की सभा में आधुनिक कवियों की कविताएँ सुनाई गयीं। एक चूरणवाले और तीन पंजाबियों का अभिनय लोगों ने खूब पसन्द किया। कविताओं का चुनाव कुछ बहुत बढ़िया न था, फिर भी लोगों के मनोरंजन के लिये बहुत था। रात को ११ बजे लोग उठकर गये।

(दूसरा दिन)

४ मई को कन्याओं के संगीत से प्रातःकाल ६ बजे कार्यारम्भ हुआ। रात से ही बराबर आंधी चल रही थी और सभा के समय बूंदें आ जाने से कार्यवाही अन्दर हाल में की गई। उपस्थिति अच्छी थी। कुछ उपयोगी प्रस्तावों के स्वीकृत हो जाने के बाद तीसरे पहर फिर सम्मेलन की बैठक हुई। कन्याओं के गान के पश्चात् श्रीयुत जयचन्द्रजी विद्यालङ्कार ने पिछले वर्ष की रिपोर्ट सुनायी। तत्पश्चात् श्रीयुत बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डन ने एक लम्बे व्याख्यान में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का इतिहास, उसका कार्य और उसके कार्य की आवश्यकता और महत्त्व बतलाया तथा हिन्दी-प्रचार के लिये सनातनधर्मियों, आर्यसमाजियों तथा सिखों सभी से अपील की। आपका भाषण डेढ़ घण्टे तक होता रहा और जनता पर उसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

अन्त में सभापतिजी ने अपना अन्तिम भाषण किया। उन्होंने शब्द और उससे जगत् की उत्पत्ति आदि के गूढ़ विषय का प्रतिपादन करके समझाया कि दैवी और प्राकृतिक लिपि यदि कोई है तो वह देवनागरी ही है। पाणिनि के माहेश्वर सूत्रों को प्राकृतिक नियमों से सिद्ध किया और समझाया कि मनुष्य के कण्ठ से निःसृत भाषा की वर्णमाला वही है जो हिन्दी की है। इसके पश्चात् आपने शब्द की महिमा, उसके अनादित्व और गीता में भगवान् के वचन "अक्षराणामकारोस्मि" का व्याख्यान किया तथा ओंकार की महिमा बतलाते हुए सनातनधर्मियों और आर्यसमाजियों, जो दोनों ही ओंकार के उपासक हैं, तथा सिखों, जिनका मंगलाचरण ही है—"एक ओंकार सतगुरु प्रसाद" को अपील की कि वे अपनी दैवी भाषा हिन्दी को अपनावें। आपके भाषण से सब सम्प्रदायों के लोग गद्गद् हो उठे और चारों ओर उत्साह छा गया।

तत्पश्चात् सभापतिजी तथा महावीर-दल आदि को डाक्टर परशुरामजी ने स्वागतकारिणी समिति की ओरसे धन्यवाद दिया।

तत्पश्चात् हिन्दी माता की आरती जालन्धर-कन्याविद्यालय की कन्याओं ने बड़े मीठे स्वर में गायी और सम्मेलन समाप्त हुआ।

(हिन्दू संसार)

रायपुर ज़िला परिषद् में राष्ट्रभाषा संबन्धी प्रस्ताव

गत अप्रैल मास की १६ ता० को मध्यप्रदेश के रायपुर ज़िले की राजनीतिक परिषद् हुई थी। उसके अध्यक्ष का आसन शोभित किया था राष्ट्रभाषा हिन्दी के सच्चे-सेवक सुप्रसिद्ध देशभक्त श्री० स्वामी सत्यदेवजी ने। परिषद् में कई महत्वपूर्ण प्रस्तावों के साथ एक प्रस्ताव राष्ट्रभाषा हिन्दी के संबंध का भी स्वीकृत हुआ। प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए विद्यावयोवृद्ध श्री० सप्रेजी ने कहा कि "विदेशी अंग्रेजी भाषा के बदले कांग्रेस की सारी कार्रवाई—व्याख्यान, निबंध, रिपोर्ट आदि—हिन्दुस्तानी भाषा में हो। इस से जनता में राजनीति पर प्रेम उत्पन्न होगा और शिक्षित समाज से घनिष्ठता बढ़ेगी। शर्म की बात है कि अपने देश में हमें इस तरह का प्रस्ताव उपस्थित करना पड़ता है। यह हमारी स्वाभाविक दशा का सूचक है। इंग्लैण्ड में अंग्रेजी और फ्रांस में फ्रैंच के लिये प्रस्तावों की आवश्यकता नहीं पड़ती। वे सब आज़ाद देश हैं। हम आज़ादी खो बैठे हैं। यदि देश आन्दोलन का संकल्प करले तो कानपुर-कांग्रेस में इस प्रस्ताव का असर दिखलाई पड़े। अन्य भाषा-भाषियों के लिये भी इस में गुंजायश है।"

भारतवर्ष के बंगाल, गुजरात, उड़ीसा, विशेषतः मद्रास के राष्ट्रीय नेताओं को उक्त प्रस्ताव पर अभी से ध्यान देना चाहिए। जिससे आगामी कांग्रेस के अवसर पर एक विदेशी भाषा की शरण लेकर "Please English" की रटन न लगानी पड़े।

हिन्दी-उर्दू पर देशभक्त 'सावरकर' बैरिस्टर

आज अंगरेज़ों की, बबर्चियों [बटलर लोगों] की भाषा की दृष्टि से, जो दशा है वही हिन्दुओं की भाषा के सीखे हुए मुसलमानों की दशा उस ज़माने में थी। बबर्ची लोग जिस प्रकार अंगरेज़ी के बोलते हिन्दी में हैं; पर उस में नाम और विशेषण अंगरेज़ी के घुसेड़ देते हैं उसी प्रकार मुसलमानी राज्यकाल में मुसलमान नौकरों ने अरबी, फ़ारसी, तुर्की भाषा के नाम और विशेषण हिन्दी भाषा में घुसेड़ दिये। इसलिये जिस प्रकार 'इंग्लिश' से बाबर्ची इंग्लिश की उत्पत्ति हुई उसी प्रकार हिन्दी भाषा से उर्दू भाषा की उत्पत्ति हुई है। उर्दू शब्द से ही उस भाषा की वर्णसंकरता का बोध होता है। मुसलमान लोग पहले-पहल सैनिक-समूहों के रूप से हिन्दुस्थान में घुसे। उनके धंधों से हजारों हिन्दू नौकर-चाकर दास-दासियों का सम्बन्ध होने के कारण उन में हिन्दी भाषा का प्रचार हुआ और बोलते-बोलते उसमें अरबी, फ़ारसी, तुर्की आदि भाषाओं के शब्दों का मिश्रण होने से 'विकृत हिन्दी' की उत्पत्ति हुई, और उस भाषा का नाम 'छावनी की हिन्दी' अर्थात् उर्दू नाम पड़ा। क्योंकि तुर्की भाषा में उर्दू शब्द छावनी, सेना इस अर्थ में व्यवहृत (इस्तेमाल) होता है। अँगरेजी का 'होर्ड' शब्द भी उर्दू का रूपान्तर है।

मुसलमान लोग पहले-पहल पञ्जाब व सिंध प्रांत की ओर से हिन्दुस्थान में घुसे और वहां की सर्वसाधारण में फैली हुई हिन्दी भाषा, उसके तत्कालीन स्वरूप में ही, उन्हें सीखनी पड़ी। इसलिये आजकल मुसलमान जो भाषा बोलते हैं वह वास्तव में हिन्दी ही भाषा है। उत्तर हिन्दुस्थान में बड़े-बड़े ब्राह्मण-पण्डितों के घर के बाल-बच्चों तक में हिन्दू लोगों की मातृभाषा हिन्दी होने के कारण उन्हें यह नहीं बतलाना पड़ता कि मुसलमान लोग जो भाषा बोलते हैं वह हिन्दी, हिन्दुओं की है। परन्तु दक्षिण भारत में हिन्दुओं की मातृभाषा कनाड़ी, मराठी आदि होने के कारण यदि कोई मुसलमान

हिन्दी बोलता है तो उस तरफ़ के हिन्दू लोग समझते हैं कि यही मुसलमानी भाषा है, परन्तु यह बड़ी भूल है।

(कर्मवीर)

पंजाब में हिन्दी-प्रचार

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के उपदेशक और हिन्दी-प्रचारक पं० प्रभुदयालुजी शर्म्मा पंजाब प्रान्तीय सम्मेलन के बुलाने पर ता० १६ मार्च से ५ मई तक पंजाब प्रान्त में रहे। इस वर्ष पंजाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन फीरोज़पुर में था। अतः उसी को सफल बनाने के लिये उपदेशकजी फीरोज़पुर तथा उसके समीपवर्ती स्थानों में भ्रमण करके प्रचार करते रहे। उपदेशकजी ने २८। २६ मार्च को दो व्याख्यान फीरोज़पुर शहर में हिन्दी और हिन्दू जाति विषय पर दिये। उपस्थिति संतोषजनक थी।

वहाँ से आप फाजलका गये और वहाँ भी बाज़ार में एक व्याख्यान हिन्दी विषय पर दिया। श्रीस्वामी केशवानन्दजी की सहायता से १०८ प्रतिनिधि तथा १५ स्वागत-सदस्य बनाये और १७५) प्राप्त किये। वहाँ से मकलोटगंज गये और वहाँ भी एतत्संबंधी प्रचार किया। तदनंतर बहावलनगर गये। वहाँ ला० जेठारामजी के उद्योग से आर्य्यसमाज में एक व्याख्यान हिन्दी तथा सम्मेलन विषय पर दिया। वहाँ भी १० प्रतिनिधि बने। वहाँ से पंचकोशी नाम के गाँव में गये। पंजाबप्रान्त में इस ग्राम में हिन्दी का अच्छा प्रचार है। वहाँ दो व्याख्यान हुए। फिर आप अबोहर मंडी आये। वहाँ आर्य्यसमाज तथा बाज़ार में खूब प्रचार हुआ और ४० प्रतिनिधि तथा ५ स्वागत-सदस्य बने।

अबोहर से मलोट और गीदड़बाह आये। वहाँ भी एक-एक व्याख्यान दिया। मलोट से दो तथा गीदड़बाह से छः प्रतिनिधि बनाये। तदनन्तर भटिंडा से प्रचार कर आप जैतू गये, जो एक

प्रसिद्ध स्थान है। वहाँ आप कुछ लोगों से मिले, पर व्याख्यान न हो सका। वहां से फ़ीरोज़पुर लौट आये।

फ़ीरोज़पुर आने पर यह ज्ञात हुआ कि सम्मेलन के कार्य्य में कुछ शिथिलता है, अतः उपदेशकजी यहां ही डट गये और रईसों, वकीलों, अध्यापकों, विद्यार्थियों से मिल कर धन-संग्रह का कार्य्य किया। १५ दिन में इतना धन प्राप्त हो गया जो कार्य्य के लिये काफ़ी था। १,२,३ मई को द्वितीय पंजाब प्रान्तीय सम्मेलन सानन्द समाप्त हो गया।

इस प्रकार ५ मई को लुधियाना उपदेशकजी आये और एक दिन वहां प्रचार कर हरिद्वार, गोला गोकरण आदि स्थानों में होते तथा वहां प्रचार करते हुए १५ मई को प्रातःकाल हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-कार्य्यालय में आगये।

संयुक्त प्रान्त में हिन्दी-प्रचार

तारीख १७ मई को श्रीयुक्त पं० प्रभुदयालुजी शर्म्मा उपदेशक पंजाब से निवृत्त हो प्रयाग से इटावा गये। इटावे में श्री बा० सूर्य्य नारायणजी के आप अतिथि हुए। वहाँ ३ दिन तक आपने हिंदी-प्रचार किया और श्रीचौधरी गोपालकृष्णजी एम. ए. वकील की सहायता से हिन्दी-सहायक निधि में १०) दान मिले। वहाँ की नागरी-प्रचारिणी सभा का कार्य शिथिल है। उसका भी निरीक्षण किया। उसकी पुस्तकें बाबू सूर्य्यनारायणजी बी. ए. के घर पर रक्खी हैं और नगद धन ५००) के लगभग बाबू साहब की ही दूकान पर जमा है। इसकी व्यवस्था नियमानुसार होनी चाहिये।

इटावे से आप हाथरस आये और यहाँ भी प्रचार किया। यहां के रईसों से आप मिले। सहायक निधि में ५) प्राप्त हुए। तदनंतर वृन्दावन गये। इस वर्ष यहाँ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन होगा। इसलिये यहां २३ मई को एक सभा श्री गोस्वामी राधाचरणजी महाराज के स्थान पर हुई, जिसमें सम्मेलन संबंधी

अनेक आवश्यक बातों पर विचार हुआ। यहाँ १, २ दिन रह कर आपने और भी सम्मेलन सम्बन्धी कार्य्य किया।

वृन्दाबन से उपदेशकजी आगरा गये। वहाँ जिन सज्जनों ने सम्मेलन को दान दिया, पर जिन से वह धन प्राप्त नहीं हुआ, उन सभी दाताओं के पास आप श्रीयुक्त डा० मिट्ठनलालजी को लेकर गये और धन-प्राप्ति का यत्न किया, पर समय उपयुक्त न होने से कुछ भी धन प्राप्त न हो सका।

आगरे से आप शिकोहाबाद गये और एक दिन वहाँ हिन्दी-विषय पर बाज़ार में व्याख्यान दिया। वहाँ से मैनपुरी आये। वहाँ श्री चतुर्वेदी उमरावसिंहजी की सहायता से दो व्याख्यान वहाँ के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता श्री बाबू श्यामसुन्दरलालजी बी. ए. वकील के सभापतित्व में आपने दिए तथा ४ सदस्य बनाये जिन के नाम लिखे जाते हैं—

१—श्री बाबू श्यामसुन्दरलालजी बी. ए.
२—श्री बाबू ब्रजविहारीलालजी बी. ए.
३—श्री पंडित अमरनाथजी रईस
४—श्री पं० कैलाशचन्द्रजी

आशा है, हमारे उत्साही सदस्य सम्मेलन के उद्देश्यों के प्रचार का यथेष्ट यत्न करेंगे। मैनपुरी में "चतुर्वेदी माथुर पुस्तकालय" का भी आपने निरीक्षण किया।

यहाँ से आप फर्रुख़ाबाद आये और श्री पंडित रामदुलारेलालजी अवस्थी बी. ए. वकील के अतिथि हुए। आपकी सहायता से यहाँ के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता श्रीचतुर्वेदी रामदुलारेलालजी एम. ए. वकील के सभापतित्व में एक व्याख्यान हिन्दी और हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन विषय पर दिया। श्रोतागण सम्मेलन के इस कार्य को सुन कर, कि वह हिन्दी-प्रचार में कितना उद्योग कर रहा है, सम्मेलन को साधुवाद देने लगे, और उसी समय

सम्मेलन के ४, ५ सदस्य बने जो वहाँ के प्रतिष्ठित सज्जन हैं। श्री चतुर्वेदी रामदुलारेलालजी एम. ए. तथा श्री सेठ पुरुषोत्तम नारायणजी रईस भी सदस्य बनने का वचन दे चुके हैं।

फर्रुखाबाद से उपदेशकजी अरवल होकर कन्नौज आये। यहाँ हिन्दी की स्थिति साधारण है। यहाँ एक व्याख्यान देकर दशहरा के दिन कुछ लोगों से मिले और प्रचार किया। दो दिन वहाँ और रह कर और लोगों से मिल-कर हिन्दी के सम्बन्ध में कुछ जागृति उत्पन्न की। कन्नौज में श्री बा० हरिहरनाथजी टंडन उत्साही नवयुवक हैं।

कन्नौज से आप चौबेपुर आये। यहाँ एक साधु के पास कुछ पुस्तकें हैं। उनके विषय में विचार कर ब्रह्मावर्त होते आप १४ अप्रैल को लखीमपुर पहुँचे। वहाँ कुछ साधारण प्रचार आदि कर के १६ अप्रैल को आप प्रातःकाल प्रयाग पहुँचे।

१८ अप्रैल से ३० अप्रैल तक आप मिर्ज़ापुर, बनारस आदि में सम्मेलन के उद्देश्यों का प्रचार करेंगे, और फिर २०, २५ जुलाई के बाद विहार प्रदेश में भ्रमण करेंगे।

लक्ष्मीधर वाजपेयी
प्रचार मंत्री, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन,
प्रयाग

दक्षिण भारतीय हिन्दी-परीक्षाओं का फल

दक्षिण भारतीय षण्मासिक हिन्दी-परीक्षाओं का, जो गत फाल्गुन शुक्ल १३, सं० ८१ रविवार को इस प्रान्त के लगभग ४१ केन्द्रों में हुई थीं, परीक्षाफल प्रकाशित हो गया। सूची नीचे परिचयार्थ दी जाती है—

परीक्षा सशुल्क	आवेदन पत्र आये.	उत्तीर्ण.
प्रचारक खंड-१	९	६
राष्ट्रभाषा	३४	२०
प्रवेशिका	५३	४४
प्राथमि	२५७	२१५
	३५३	२८१

हृषीकेश शर्म्मा
परीक्षार्थी

जर्मनी और इंगलैण्ड में देवनागरी-प्रचार❀

हिन्दीप्रेमियों का कर्तव्य

देवनागरी–अक्षर आर्यावर्त में सब से प्रसिद्ध अक्षर हैं, परन्तु प्रजा उनकी महत्ता को न समझ कर उनके प्रचार में सुस्ती करती है। हम को झूठा अभिमान तो किसी बात का भी नहीं होना चाहिये, परन्तु सत्यता पर श्रद्धा करना आवश्यक है। ज़रा ध्यान दो कि इंगलैण्ड के एक महाविद्वान् क्या लिखते हैं:—

"देवनागरी-अक्षर सर्वोत्तम हैं"

मि० आईज़क टेलर, एम० ए०, लिट- डी०, औन एल० एल० डी०, कैनन (पादरी) यौर्क, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "दी हिस्टरी आफ़ दी ऐलफेबेट" (अक्षर-इतिहास) में लिखते हैं (देखो एडीशन २, १८९९, वौल्युम २ पृष्ठ २८९):—

❀ 'हिन्दू संसार' में श्रीयुक्त प्रोफ़ेसर अहलुवालिया गोपालजी ने अपनी चिट्ठी में "जर्मनी और इंग्लैण्ड में देवनागरी-प्रचार" संबन्धी जो विचार प्रकट किये हैं, उन्हीं का यहां संकलन किया गया है। प्रोफ़ेसर साहब ने योरोप में देवनागरी-प्रचार विषयक जो कार्य किया है, वह परम प्रशंसनीय है। हमारे अन्य प्रवासी हिन्दी-प्रेमियों को आपका अनुकरण करना चाहिए।

—संपादक

"यह गम्भीर और सुन्दर अक्षर, जो कि इन लेखों (रिकौर्ड्स) में बरते गये हैं (इन लेखों का सब प्राचीन स्तूपोंपर हस्तलिखित महान् सिलसिला है), संसार के अक्षरों में अपनी वैज्ञानिक महत्ता के कारण कोई मुक़ाबिला नहीं रखते। बड़े, सादे, उच्च, सम्पूर्ण यह अक्षर स्मरण करने में आसान हैं, तुरन्त पढ़े जा सकते हैं और इनको एक के भ्रम में दूसरा समझना कठिन है। यह आवाज़ की श्रेणी के अनुसार बारीकियों को बिलकुल ठीक ढंगसे प्रकट करते हैं। इन बारीकियों को संस्कृत व्याकरणकारों ने उस समय की महान् भाषा में, ध्वनिविज्ञान से, मालूम किया था। उन सब बनावटी अक्षरों में से, जो कि नवीन विद्वानों ने उपस्थित किये हैं, कोमलता, नवीनता, सम्पूर्णता और ठीक होने में इनसे बढ़कर कोई नहीं।"

आर्य्यावर्त और संसार में देवनागरी-अक्षरों की सत्यता और महत्ता को प्रकट करो। इसका अमली प्रचार करो। इस बात का आन्दोलन करो कि आर्य्यावर्त की सब भाषाएं देवनागरी-अक्षरों में लिखी जायं। मराठी तो आज कल भी देवनागरी अक्षरों में लिखी जाती है, गुजराती और देवनागरी में बहुत ही थोड़ा भेद है। गुरुमुखी और बंगला इससे बहुत मिलती-जुलती हैं। तामिल और तेलेगू भी इससे काफ़ी मेल रखती हैं।* केवल उर्दू अक्षर छोड़ने चाहियें। हरएक हिन्दू† का यथाशक्ति इनका प्रचार करना धर्म है। इस बात का भी आन्दोलन करो कि निम्नलिखित भाषाओं में देवनागरी अक्षर ग्रहण किये जायं:—चीनी, जापानी, रूसी, फारसी और अरबी। इन भाषाओं को बोलनेवाली प्रजाओं को, क्या आज और क्या कल, अपने अक्षर छोड़कर कोई और परदेशी अक्षर ग्रहण करने पड़ेंगे। लैटिन अर्थात् रोमन अक्षर के ग्रहण करवाने का बहुत प्रचार हो रहा है। क्या देवनागरी अक्षरों की

* यह बात नहीं है। हम इसे मानने में असमर्थ हैं।

† 'हिन्दू' ही क्यों—हिन्दुस्तानी मात्र का धर्म है। —संपादक

सत्यता प्रकट न की जायगी? मैंने यथा-शक्ति देवनागरी का प्रचार डौएश्चलाएड (जर्मनी) में किया है और अब इंगलैण्ड में करता हूं। लगभग १०० पुरुषों को यह अक्षर सिखाये हैं। भाषा सिखाने के वास्ते ठीक पुस्तकें नहीं हैं। जो सज्जन देवनागरी-अक्षर और भाषा के विदेशों में प्रचार करने में दिलचस्पी लें वह निम्नलिखित पते पर पत्र व्यवहार करें। सब देवनागरी के प्रेमियों को चाहिये कि वह हिन्दी के पुराने पत्र और पुस्तकें मुफ्त बांटने के लिये निम्नलिखित पतेपर भेजें—

हमारा पता—

Ahluwalia Gopalji
c/o American express Co.
London, s. w. I

अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की शाखा

हिन्दी-हितैषिणी सभा

द्वारा संचालित

श्रीशारदा-सदन पुस्तकालय, श्रीगांधी-वाचनालय तथा मिलन-मन्दिर, लालगंज, (मुज़फ़्फ़रपुर)

हिन्दी-हितैषिणी-सभा

उद्देश्यः—राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा राष्ट्रीय लिपि देवनागरी की पुष्टि तथा प्रचार का प्रबन्ध करना और उसके लिये आवश्यक संस्थाओं को संस्थापित तथा संचालित करना।

संरक्षकः—जो सज्जन सभा के उद्देश्य-साधनों में विशेष सहायता, धन वा अपनी अन्य उपयोगी योग्यता से करेंगे, वे इसके संरक्षक होंगे।

सदस्यः—जो सज्जन कम से कम ॥) मासिक वा ३) वार्षिक चन्दा सभा को देंगे, वे इस के असाधारण सदस्य होंगे और उन्हें कार्य्य-कारिणी-समिति के सदस्य होने का अधिकार होगा और जो सज्जन कम से कम ।) मासिक वा १) वार्षिक चन्दा देंगे वे इसके साधारण सदस्य होंगे और उन्हें केवल कार्य्य-कारिणी समिति के सदस्यों के चुनने का अधिकार होगा।

श्रीशारदा-सदन पुस्तकालय

यहां से प्रतिदिन नियमित समय में प्रत्येक परिचित व्यक्ति को एक वार एक पुस्तक तथा मासिक पत्र-पत्रिकाएं एक सप्ताह तथा साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाएं एक दिन रात भर के लिये पढ़ने को दी जाती हैं।

श्रीगांधी-वाचनालय

यहां पाठक सुविधा के साथ बैठ कर नियमित समय पर पुस्तक तथा पत्र-पत्रिकाएं पढ़ते हैं।

मिलन-मन्दिर

मेल बढ़ाने के निमित्त नियमित समय पर सब का मिलन-मन्दिर में एकत्र हो ऐक्य-भाव सम्बर्धन के लिये संगीत, पद्य-पूर्ति और व्याख्यानादि देना।

जगन्नाथप्रसाद साहु,
मन्त्री।

बलिया की हिन्दी-प्रचारिणी सभा में स्वीकृत प्रस्ताव

गत २४-२५ अप्रैल सन् १९२५ ई० को बलिया-हिन्दी-प्रचारिणी सभा का द्वितीय वार्षिक अधिवेशन साहित्यरत्न श्रीमान् पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय के सभापतित्व में सानन्द समाप्त हुआ। सभा ने इस अधिवेशन में नीचे लिखे प्रस्तावों को स्वीकृत किया—

१—(क) यह सभा युक्तप्रान्त की गवर्नमेंट से अनुरोध करती है कि वह प्रत्येक ज़िले में कम से कम एक हिन्दी हाईस्कूल खोलने की कृपा करे, जिसमें जन-साधारण उच्च कोटि की शिक्षा हिन्दी भाषा द्वारा सरलता से प्राप्त कर सकें।

(ख) यह सभा इस प्रान्त की हिन्दी-संस्थाओं से अनुरोध करती है कि वे भी इस के अनुरूप या इसी प्रस्ताव को अपने सदस्यों द्वारा स्वीकृत कराकर गवर्नमेंट के पास भेज कर इस सभा को उस की सूचना देने की कृपा करें।

२—यह सभा युक्तप्रान्त की गवर्नमेंट से अनुरोध करती है कि इस प्रान्त के जन-समुदाय की सुविधा-दृष्टि से हिन्दी में भी गवर्नमेंट गज़ट प्रकाशित करने की व्यवस्था करे।

३—यह सभा गवर्नमेंट तथा व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों से प्रार्थना करती है कि जो लोग कौन्सिलों में हिन्दी में बोलना या प्रस्ताव करना चाहते हैं उनको इस का अवसर दिया जावे—मुख्यतः उन लोगों को भी जो अंगरेज़ी का भी ज्ञान रखते हैं।

४—हिन्दी भाषा एवं नागरी लिपि सम्बन्धी जितने प्रस्ताव हिन्दू-महासभा द्वारा कलकत्ते की बैठक में पास हुए हैं उन से यह सभा पूर्ण सहमत है और उनको कार्य्यान्वित करने के हेतु यथासाध्य चेष्टा करना अपना ध्येय समझती है।

प्रस्ताव यों हैं:—

(क) महासभा संयुक्तप्रान्त की हिन्दूसभाओं का ध्यान प्रान्तिक मुसलिम लीग के गत अधिवेशन में स्वीकृत उस प्रस्ताव की ओर आकृष्ट करती है जिसमें ज़िला और म्यूनिस्पल बोर्डों से हिन्दी के स्थान में पुनः उर्दू के प्रयोग की बात कही गई है, और उन्हें यह आदेश देती है कि लीग के इस भ्रमपूर्ण प्रस्ताव को कार्य्यान्वित होने से, सब प्रकार के उचित उपायों से, रोकने का यत्न करें।

(ख) यह सभा संस्कृत के लेखकों और प्रकाशकों से प्रार्थना करती है कि वे अपनी पुस्तकें प्रान्तिक लिपि में नहीं बल्कि देवनागरी लिपि में लिखें और प्रकाशित करें।

(ग) हिन्दी भाषा और ख़ास कर के नागरी लिपि सीखें जिस में हिन्दुओं के धर्म्मग्रन्थ लिखे हैं।

५—यह सभा बलिया की जनता, विशेषतः अध्यापकों, से प्रबल अनुरोध करती है कि वे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं को अपनावें।

६—यह सभा बलिया के वकील-मुख़्तारों से पुनः प्रबल अनुरोध करती है कि वे निजी तथा अदालती व्यवहार देवनागरी लिपि में करें—इस विषय का एक प्रार्थना पत्र भी भेजा जावे।

भाषाभूषण—लेखक—स्वर्गीय श्रीमान् जोधपुर-नरेश महाराज यशवंत सिंहजी; संपादक श्रीयुत बाबू व्रजरत्नदासजी; मंत्री—काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा; प्रकाशक-श्री पं० रामचंद्र पाठक, व्यवस्थापक पाठक एण्ड संस, राजा दरवाजा काशी; डबल क्राउन साइज़, पृष्ठसंख्या १०८; काग़ज पुष्ट, छपाई चित्ताकर्षिणी; सचित्र; मूल्य ॥)

इस २१२ दोहों वाली छोटी-सी पुस्तिका का हिन्दी-साहित्य के अलंकार-विषय में अच्छा स्थान है। जोधपुर-नरेश महाराज यशवंतसिंहजी साहित्य के प्रकांड पंडित और अनन्य काव्य रसानुगामी थे। इस पुस्तिका में उन्होंने गागर में सागर भरने का प्रयत्न किया है। एक ही दोहे के पूर्वार्द्ध में अलंकार का लक्षण और उस के उत्तरार्द्ध में उसका उदाहरण दिया गया है। जैसे—

अतिशयोक्ति रूपक जहाँ केवल ही उपमान।
कनक-लता पर चंद्रमा धरे धनुष द्वै बान॥

सहृदयवर बाबू व्रजरत्नदासजी ने इसके संपादन में यथेष्ट और प्रशंसनीय परिश्रम किया है। भूमिका में आपने शब्द-शक्ति, अलंकार, ग्रन्थ-परिचय और कवि-परिचय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। अंत में प्रत्येक दोहे पर यथेष्ट टिप्पणियाँ दी गई हैं। टिप्पणियों में अलंकारों के लक्षण विवेचन और विस्तार के साथ लिखे गये हैं। अनुक्रमणिका में अलंकारों के अंगरेज़ी पर्याय दिये गये हैं जिन में मतभेद होने की बहुत-कुछ गुञ्जायश है। पुस्तक समस्त साहित्य-सेवियों, विशेषतः विद्यार्थियों, के बड़े काम की है। ऐसी सुन्दर

और उपादेय पुस्तक के प्रकाशन के लिये हम प्रकाशक को अनेक हार्दिक धन्यवाद देते हैं !

पांचाली-परिणय—लेखक—श्रीयुत सदाशिव दीक्षित साहित्याचार्य; पता—सदाशिव दीक्षित, सनातन धर्म कालेज, लाहौर; डबल क्राउन साइज़, पृष्ठसंख्या १०३, छपाई और काग़ज सुन्दर; मूल्य ॥)

७ सर्ग का यह एक खंड काव्य है। विषय नाम ही से ज्ञात हो जाता है। उपजाति, मालिनी, वसंततिलका आदि संस्कृत छंदों में इस काव्य की रचना की गई है। दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि लेखक महोदय को अपनी इस रचना में बहुत कम सफलता मिली है। संस्कृत-शब्दों और लंबे-लंबे समासों के बाहुल्य से हिन्दी-रचना का प्रकृत सौन्दर्य नष्ट-सा हो गया है। कृत्रिमता बहुत आ गई है। भाव-गांभीर्य छिप-सा गया है। दो-चार पंक्तियां देखिये—

"दीर्घोष्ण निश्वास विषएणचित्त
प्रज्ञात्त भूपाहृत सर्व वित्त"

× × × × × × ×

"प्राकेलि सौहार्द्द विकृष्ट चित्त"

× × × × × × ×

"वे एकदा दुष्ट निषाद वामा। जीवान्त काला विषदातु कामा"

इन पंक्तियों को हम कैसे हिन्दी-रचना में स्थान दें ? इस प्रकार के शब्दाडंबर में न पड़ कर यदि लेखक महोदय प्रसादगुणमयी सरल सरस भाषा में इस काव्य का प्रणयन करते, तो उन्हें अधिक सफलता मिलती।

चना चबेना—लेखक—श्रीयुत पं० ईश्वरीप्रसादजी शर्मा; प्रकाशक-श्री बाबू शिवपूजन सहायजी, व्यवस्थापक—सरस-साहित्य-माला, आरा (बिहार); डबल क्राउन साइज़ पृष्ठसंख्या १२८; काग़ज पुष्ट, छपाई सुन्दर; मूल्य १)

भूतपूर्व "मनोरंजन"-संपादक पंडित ईश्वरीप्रसादजी शर्मा हास्य रस के चुटकुले लिखने में सिद्धहस्त हैं। इस पुस्तक में पंडितजी के हास्य-रसपूर्ण पद्यों का संग्रह किया गया है। सभी

पद्यों में मनोरंजन की मात्रा मिलती है। साथ ही कुछ-न-कुछ उपदेश भी प्राप्त होता है। पुस्तक पठनीय और उपादेय है।

"साहित्यानन्द"

प्राप्ति-स्वीकार

निम्नलिखित पुस्तकें भी प्राप्त हो गयी हैं। प्रेषक महोदयों को हार्दिक धन्यवाद!

१-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का विशेष अधिवेशन—(कार्यविवरण और लेखमाला) संपादक—श्री पं० हृषीकेश शर्मा; प्रकाशक—स्वागत-कारिणी समिति, काकिनाड़ा—आंध्र प्रदेश, मद्रास; पृष्ठ १७६; मूल्य १)

२-भारतीय भोजन—लेखक—श्री पं० हरिनारायण शर्मा आयुर्वेदाचार्य; संपादक—श्री वैद्य बांकेलालजी गुप्त; संपादक 'धन्वन्तरी'; प्रकाशक—कार्य-संचालक श्री धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़—(अलीगढ़); पृष्ठ संख्या ७६; मूल्य ।॥)

३-राष्ट्रभाषा हिंदी का प्रथम पुष्प—लेखक—श्री पं० रामानन्द शर्मा; प्रकाशक—श्री पं० रामानन्द शर्मा, हिन्दी-प्रचारक, गुंटूर, मद्रास; पृष्ठ ५८; मूल्य ≡)

४-रसायन-संहिता—लेखक—श्री स्वामी प्रबोधानंद जी; प्रकाशक—वैद्यभास्कर श्री बांकेलाल गुप्त, विजयगढ़ (अलीगढ़) पृष्ठ ८८; मूल्य ॥।=)

५-कलवार-केसरी—चैत्र-वैशाख का संयुक्त अंक; सचित्र; पता—कलवार-केसरी कार्यालय, ६६९, सआदतगंज रोड, लखनऊ; मूल्य ।=)

६-क्या इस्लाम शांतिदायक है ?—लेखक और प्रकाशक श्रीस्वामी मंगलानंदपुरी, आर्यसमाज, कानपुर; पृष्ठसंख्या ३२, मूल्य =)॥

७-ब्रह्म यज्ञ (संध्या)—भावार्थ तथा अँगरेज़ी अनुवाद सहित, अनुवादक—श्रीस्वामी मंगलानंदपुरी, आर्यसमाज, कानपुर; प्रकाशक—श्री पं० नरदेवशर्मा, सरस्वतीन्द्र पुस्तकालय, काशी; पृष्ठ सं० १४, मूल्य)॥

८-सप्तश्लोकी गीता और गीता का एक श्लोक—प्रकाशक श्रीस्वामी मंगलानंदपुरी, अतरसुइया, प्रयाग। पृष्ठ ८, मूल्य ।)

—संपादक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्य-विवरण

तथा

लेखमालाएँ

प्रथम सम्मेलन की लेखमाला	॥)	चतुर्दश सम्मेलनकी लेखमाला	॥
द्वितीय " "	१)	प्रथम वर्ष का कार्य विवरण	।)
तृतीय " "	।॥)	द्वितीय " "	।)
चतुर्थ " "	।॥)	तृतीय " "	।=)
पंचम " "	।।)	चतुर्थ " "	॥)
षष्ठ " "	।॥)	पंचम " "	।॥)
सप्तम " "	॥=)	षष्ठ " "	।)
अष्टम " "	१)	सप्तम " "	।=)
नवम " "	१॥)	अष्टम " "	।)
दशम " "	।।)	नवम " "	।=)
द्वादश " "	१)	दशम " "	॥)
त्रयोदश " "	१)	त्रयोदश" "	॥)

अन्य पुस्तकों के नवीन संस्करण

निम्नलिखित पुस्तकें, बहुत दिनों से अप्राप्य थीं, अब उनके नवीन संस्करण छपकर तैयार हैं। जिन्हें आवश्यकता हो, तुरन्त लिखकर मँगालें—

द्वितीय सम्मेलन का कार्य-विवरण प्रथम भाग	।)
" " " द्वितीय भाग (लेखमाला)	१)
हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	।=)
सूरदास की विनय-पत्रिका (सटिप्पण)	≡)

पता—

मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित
सूरजप्रसाद खन्ना के प्रबन्ध से हिन्दी-साहित्य प्रेस प्रयाग में मुद्रित।

आवश्यक सूचनाएँ

[१]

जो महाशय इस कार्यालय में किसी वस्तु के मँगाने के लिए पत्र अथवा टिकट भेजें और उनको सम्मेलन से ऐच्छित वस्तु अथवा समयानुसार पत्रोत्तर न मिले, तो उन्हें चाहिये कि दूसरा पत्र भेजते समय पहले पत्र का पूरा हवाला तिथि और तारीख सहित अवश्य लिखें। अन्यंथा कार्यालय उचित और शीघ्र उत्तर देने में असमर्थ होगा।

प्रधान मंत्री
हिन्दी साहित्य-सम्मेलन प्रयाग।

[२]

जो परीक्षार्थी कोटा केन्द्र से मध्यमा परीक्षा में सर्व प्रथम आयेगा उसको नार्मल स्कूल कोटा के श्री ठाकुर कौशलसिंह साहनी की ओर से सम्मेलन एक रौप्य पदक प्रदान करेगा। यह क्रम पांच वर्ष तक चलेगा।

[३]

जो परीक्षार्थी खैर केन्द्र से प्रथमा तथा मध्यमा में सर्व प्रथम आवेंगे, उनको खैर (अलीगढ़) के श्री पं० रूपराम शर्म्मा विशारद की ओर से सम्मेलन क्रमशः पांच तथा दस रुपयों के एक एक कल्याण रौप्य पदक प्रदान करेगा। यह क्रम पांच वर्ष तक चलेगा।

परीक्षा मंत्री
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
प्रयाग।

तार का पता—"सम्मेलन" इलाहाबाद रजिस्टर्ड नं० ए. ६२६

भाग १२ अङ्क ११, आषाढ़ सं० १९८२ वि०

संपादक

वियोगी हरि

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

वार्षिक मूल्य २) प्रत्यंक ≡)

विषय-सूची

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित

सूरजप्रसाद खन्ना के प्रबन्ध से हिन्दी-साहित्य प्रेस प्रयाग में मुद्रित।

सम्मेलन-पत्रिका के नियम

१—'पत्रिका' प्रत्येक मास की पूर्णिमा को प्रकाशित हो जाती है। यदि किसी मास की कृष्णा १० तक उस मास की पत्रिका न मिले, तो पत्र द्वारा सूचना देनी चाहिए।

२—'पत्रिका' का वर्ष भाद्रपद से प्रारम्भ होता है। वर्ष के बीच में, किसी भी मास में, ग्राहक होने पर उस वर्ष के पूर्व मासों के अंक अवश्य लेने पड़ते हैं। डाक-व्यय-सहित पत्रिका का वार्षिक मूल्य २=) है। २) मनीआर्डर द्वारा भेजने से अधिक सुभीता होता है।

३—यदि दो एक मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकख़ाने से प्रबन्ध कर लेना चाहिये, और यदि बहुत दिनों के लिए बदलवाना हो, तो हमें उसकी सूचना देनी चाहिए, अन्यथा 'पत्रिका' न मिलने के लिए हम उत्तरदायी न होंगे।

४—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें—"सम्पादक सम्मेलन पत्रिका, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र—"प्रचार-मन्त्री हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से और पत्रिका का मूल्य, विज्ञापन की छपाई आदि का द्रव्य "अर्थमंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से आना चाहिए।

५—प्राप्त कविता और लेखों के घटाने, बढ़ाने एवं प्रकाशित करने न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है।

सम्मेलन-पत्रिका में
विज्ञापन की दर

	१ मास	६ मास	एक वर्ष
एक पृष्ठ	५)	२५)	४५)
आधा पृष्ठ	३)	१५)	२८)

आवश्यक सूचना

६—सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की बिक्री पर कमीशन की दर निम्नलिखित है—

(क) १०) से नीचे की पुस्तकों पर कुछ भी कमीशन नहीं दिया जाता।

(ख) १०) से २५) तक की पुस्तकों पर दो आना रुपया कमीशन दिया जाता है।

(ग) २५) से ऊपर १००) तक २०) सैकड़ा।

(घ) १००) से ऊपर, २५) सैकड़ा।

(ङ) ५००) या अधिक की पुस्तकें लेने पर तृतीयांश कमीशन अर्थात् ३३।-)४ सैकड़ा।

(नोट) सम्मेलन से सिर्फ सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें बेची जाती हैं, अतः सर्वसाधारण को चाहिए कि वे सम्मेलन से केवल सम्मेलन द्वारा प्रकाशित ही पुस्तकें मगावें। अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें हमारे यहाँ नहीं मिलतीं।

सुलभ-साहित्य-माला की पुस्तकें

हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—श्री० मिश्रबन्धु

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ, उसने कौन-कौन से रूप पकड़े, किन-किन बाधाओं एवं साधनों का उसे सामना करना पड़ा, वर्त्तमान परिस्थिति क्या है, आदि गम्भीर विषयों का पता इस पुस्तक से भलीभाँति चलता है। अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। "मिश्रबन्धु-विनोद" रूपी महासागर से मथनकर यह इतिहासामृत निकाला गया है। यह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में स्वीकृत है। तृतीय संस्करण, पृष्ठसंख्या १०८, मूल्य।=)

भारतगीत

लेखक—पं० श्रीधर पाठक

पाठकजी की रसमयी रचना से किस सहृदय साहित्य-रसिक का हृदय रसप्लावित न होता होगा? आपकी गणना वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य के महारथियों में है। आपकी राष्ट्रीय कविता नवयुवकों में जातीय जीवन सञ्चार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक पाठकजी के उन गीतों का संग्रह है, जिन्हें उन्होंने समय-समय पर स्वदेश-भक्ति की उमंग में आकर लिखा है। इसकी प्रस्तावना साहित्य-मर्मज्ञ बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठसंख्या ६४, मूल्य =)

भारतवर्ष का इतिहास [प्रथम खण्ड]

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६०० संवत् पूर्व से ५० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है। अबतक हिन्दी में भारतवर्ष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था। विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहाँ के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। मध्यमा परीक्षा के इतिहास विषय में यह पुस्तक निर्दिष्ट है। जिल्दवाली पुस्तक का, जिसकी पृष्ठसंख्या ४०६ है, मूल्य केवल १।।) है।

राष्ट्रभाषा

संपादक—श्री 'भारतीय हृदय'

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न उपस्थित किया था कि, क्या हिन्दी राष्ट्रभाषा हो सकती है? इसके उत्तर में भारत के प्रत्येक

प्रान्त के बड़े-बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपात-रहित सम्मतियाँ दी थीं कि निःसन्देह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने योग्य है। उन्हीं सब अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इसके विरोधियों का भी यथेष्ट खण्डन हुआ है। इस विषय के व्याख्यानों का भी इसमें सङ्कलन कर दिया गया है। हिन्दीभाषा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक प्राणस्थानीय नहीं तो क्या है? पृष्ठसंख्या २००, मूल्य ॥)

शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस सम्बन्धी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह। इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें। महाराष्ट्रपति शिवाजी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का यदि चित्र देखना हो, तो एक बार इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइए। शब्द एवं भाव-काठिन्य दूर करने के लिये कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलङ्कार आदि साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाली आवश्यक बातों का इसमें उल्लेख कर दिया गया है। साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है। पृष्ठसंख्या ५४, मूल्य ≡)

सरल पिङ्गल

ले०— { श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद

इस पुस्तक में पिङ्गलशास्त्र के गूढ़ रहस्यों को सरल और सुन्दर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छन्दों के उत्तम उदाहरण भी दिये गये हैं। अन्त में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्दर्शन करा दिया गया है। पृष्ठ-संख्या ५८, मूल्य ।)

सूरपदावली (सटिप्पण)

श्री सूरदासजी के १०० अत्युत्तम पदों का अपूर्व संग्रह है। मूल्य ।)

भारतवर्ष का इतिहास [द्वितीय खण्ड]

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

इसमें ५०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का वर्णन किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान-पतन के क्रम का पता इस पुस्तक से जैसा कुछ चलता है, यह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू-समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि जानने योग्य आवश्यक विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः प्राप्त हो सकता है। सुन्दर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठसंख्या ४४०, मूल्य २।)

पद्य-संग्रह

संपादक { श्री ब्रजराज एम्० ए, बी० एस-सी., एल्-एल्० बी०
श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम्० एस्-सी०

आधुनिक खड़ी बोली के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सुन्दर संग्रह। ये कविताएँ विद्यार्थियों के बड़े काम की हैं। संग्रह सामयिक और उपादेय है। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के साहित्य में स्वीकृत है। पृष्ठसंख्या १२८, मूल्य ।≡)

संक्षिप्त सूरसागर

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

सूरदासजी-रचित सूरसागर से ५०० पद-रत्न चुनकर इसमें एकत्र किये गये हैं। जहाँ तक हो सका है, कई प्रतियों से पदों का पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी गयी है। अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और

सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिये लालायित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूरकर हिन्दी-साहित्य-रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य परिचय जोड़ा गया है। उनकी जीवनी की मुख्य-मुख्य घटनाओं का पूरा-पूरा उल्लेख आगया है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएँ भी लिखी गयी हैं। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत है। एण्टिक कागज़ का जिल्ददार संस्करण, पृष्ठसंख्या ४२५, मूल्य २)

विहारी-संग्रह

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

कविवर विहारीलाल की सतसई से प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह छोटा सा संग्रह तैयार किया गया है। जहाँ तक सम्भव हुआ है, इसमें श्रृंगाररस के दोहों का समावेश नहीं किया गया है, किन्तु ऐसे दोहों का संग्रह किया गया है, जो बिना किसी सङ्कोच के बालक-बालिकाओं को पढ़ाये जा सकते हैं। पृष्ठसंख्या ६४, मूल्य ≡)

व्रज-माधुरी-सार

सम्पादक—श्री वियोगी हरि—इस पुस्तक का विषय इसके नाम ही से प्रकट होता है। इसमें व्रजभाषा की कविता का सार सङ्कलन किया गया है। इस संग्रह में चार विशेषताएँ हैं:—

(१) इसमें सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय सत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया गया है।

(२) इसमें कुछ ऐसे कवियों की रचनाओं का रसास्वादन भी कराया गया है जो अभी तक कहीं प्रकाशित नहीं हुई थीं।

(३) इस ग्रन्थ में यथेष्ट पाद-टिप्पणियां लगा दी गयी हैं, जिनकी सहायता से साधारण पाठक भी लाभ उठा सकते हैं।

(४) इसके प्रारम्भ में प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवनचरित और उसकी कविता की संक्षिप्त आलोचना भी की गई है।

पृष्ठसंख्या ६३२, मूल्य जिल्दवाले संस्करण का केवल २)

पद्मावत (पूर्वार्द्ध)

सम्पादक—श्री लाला भगवानदीन

यह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत का पूर्वार्द्ध है। इस भाग में पहले खण्ड से लेकर ३४वें खण्ड तक का समावेश हुआ है। सम्पादक महोदय ने इस ग्रन्थ में इतनी पादटिप्पणी लगा दी हैं कि अब इस प्राचीन काव्य का रसास्वदान करना प्रत्येक कविता-प्रेमी के लिए सुलभ हो गया है। अन्त में एक संक्षिप्त शब्दकोश भी जोड़ दिया गया है। पृष्ठसंख्या लगभग २००; मूल्य साधारण जिल्द का १) और जिल्दवाली का १।)

सूरदास की विनयपत्रिका

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

यद्यपि 'विनय-पत्रिका' नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ महात्मा सूरदासजी का नहीं है तथापि सूरसागर में विनय-सम्बन्धी जो पद मिलते हैं, उन्हीं के आधार पर सौ उत्तमोत्तम एवं मनोरम पदों का संकलन करके इसका 'विनय-पत्रिका' नाम दिया गया है। क्रम तुलसीदासजी की विनय-पत्रिका का रक्खा गया है। अन्त में संक्षिप्त शब्दार्थ भी दे दिया है। पृष्ठ-संख्या ७४, मूल्य केवल ≡)

पता—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्टबाक्स नं० ११, प्रयाग

भाग १२ } आषाढ़, संवत् १९८२ { अङ्क ११

बिरह

पिव देखे बिन क्यूँ रहौं, जिय तलफै मेरा।
सब सुख आनँद पाइये, मुख देखौं तेरा॥
पिव बिन कैसा जीवना, मोहि चैन न आवै।
निर्धन ज्यूँ धन पाइये, जब दरस दिखावै॥
तुम बिन क्यूँ धीरज धरों, जौलौं तोहि न पाऊँ।
सन्मुख ह्वै सुख दीजिए, बलिहारी पा जाऊँ॥
बिरह बियोग न सहि सकौं, काइर घट काचा।
पावन परसन पाइये, सुनि साहिब साँचा॥
सुनिये मेरी बीनती, इब दरसन दीजै।
दादू देखन पावही, तैसैं कुछ कीजै॥

—दादू दयाल

राज-नीति-सार*

कवित्त

चाहौ धन, धाम, भूमि, भूषण, भलाई भूरि,
सुजस सहूर युत रैयत कों लालियो।
तोड़ादार[1] घोड़ादार[2] बीरन सों प्रीति करि,
सत्रुन कों जीति रनभूमि सों न चालियो॥
सालियो उदंडिन कों, दंडिन कों दीजै दंड,
करिकै घमंड कबौं दीनन पै न घालियो।
बिन्ती छत्रसाल जू की होवै जो नरेस देस,
रैहै न कलेस लेस मेरो कह्यौ पालियो॥

—महाराज छत्रसाल

अनुराग-वाटिका

पद

पियारे, धन्य तिहारो प्रेम।
साँचेहु बिना प्रेम बसुधा पै झूठे नीरस नेम॥
भर्यौ अगम सागर कहुं, तहँ खेलति उमगि हिलोर।
ता सँग झूलत झूलना कोइ नैन-रँगीली-कोर॥
मानस महँ झरना झरत इक रस-रस रसिक रसाल।
मधु-समीर-आँगुरिन पै कोइ बिहरत मत्त मराल॥

---

* बुंदेलखंड-केसरी महाराज छत्रसाल का रचा हुआ यह कवित्त है। एक ही छंद में आपने किस कौशल से सारी राजनीति को अंकित कर दिया है, इसे कहने की ज़रूरत नहीं। महाराज छत्रसाल की रची हुई कुछ और कविता मिली है। यथावकाश प्रकाशित की जायगी। —[संपादक]

१. पैदल। २. सवार।

बिरह-कमल फूल्यौ कहूं, चहुँ छायौ दरस-पराग।
बँध्यौ बावरो अलि अधर तहँ लहत सनेह-सुहाग॥
धरी कहूं इक आरसी, अति अदभुत अलख अनूप।
उझकि-उझकि देखत कोई तहँ धूप-छाँह कौ रूप॥
अरी प्रेम की पीर! तू जब मचलति सहज सुभाय।
करि चख-पूतरि कौन तोहि तब लाड़ लड़ावत आय॥
उठी उमगि घन-घटा कहुँ, पै रही हियें घुमराय।
परति फुही अँखियान में, यह कैसी प्रेम-बलाय॥
कहा कहौं वा नगर की कछु रीति कही नहि जाय।
हेरत हिय-हीरा गई यह हेरनि हाय! हिराय॥
इक मरजीवा मरमी बिना यह मरम न समुझै कोय।
दिलग-तीर की पीर बिन कोइ कैसे मरमी होय॥

❦❦❦
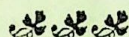
कैसे वह मूरति बिसराऊँ।
नैन पीउमय पीउ नैनमय, किमि दोउन बिलगाऊँ॥
स्याम-रूप-अंजन कोयन तें क्योंकरि धोय बहाऊँ!
किमि वह उरझीली चितवन इन अँखियन तें सुरझाऊँ॥
वाकी मरम-माधुरी में रमि कित चित अनत रमाऊँ?
यह मन मुग्ध बँध्यौ उन अलकनि, कैसे फंद छुड़ाऊँ॥
वह पद-पदुम-पराग पान कै कत विषयन लगि धाऊँ?
हरि-अनुराग-सरोवर तजि अब क्यों जग-कूप खनाऊँ॥

❦❦❦
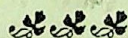
द्रगन पै काहे करत गुमान?
कबहूं जो सूधे नहिं हेरत, खींचे रहत कमान॥
कहा भयौ जो तुअ अँखियन पै घूमत भोरे भ्रंग।
झलकत रस-आसव कोरन में, छलकत मादक रंग॥
उरझीले ढीले पलकन कों क्यों झांपत झुकि झूमि।
खुभी खुमारी इन कोयन में, लेत घुमारी घूमि॥
जानत यहै, तिहारे नैननि बसत बसीकर मंत्र।

याही तें तुम्र विषम बिंसासिनि चितवनि भई स्वतंत्र ॥
जोर जुलुम करि तो नैननि ने लूटि लई सब ठौर।
पै लुटाय दीनों जिन सरबस वै नैना कछु और ॥
धनि! जो अँखियाँ मधु-मखियाँ ह्वै गई बूड़ि मद-धार।
तिनकी परख कहा तू जानै अरे रसिक रिझवार ॥
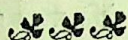
प्रानधन! सो धन क्यों नहिँ देत।
जाहि देत तेहि जनमरंक पै द्रवत आय बिन हेत ॥
विषय-बिलास आस सुरपुर की रही न अब चित चाह।
देखत में अति सीतल लागत, छुवत करत उर दाह ॥
बिन माँगे ही उमगि लुटावत भुक्ति मुक्ति नित नाथ।
पै निज भक्ति देत बिरियाँ क्यों बढ़त न आगे हाथ ॥
परम प्रेम-रस-रतन जतन करि राख्यौ क्यों प्रभु! गोय।
बिन नग बिरह-मूँदरी कब की परी, सुनत नहिँ कोय ॥

प्यारे! अब कछु चाह रही न।
केवल एक साध मन की, सो कैसेहु जाति कही न ॥
उर अंतर कोमल कुसुमन की करि कल कुञ्ज-कुटीर।
छिरकौं छिन-छिन तापै दृग भरि विमल बिरहको नीर ॥
परमासक्ति सेज सुचि सुन्दर तहँ छल छांड़ि बिछाय।
तापै पग पखारि पौढ़ाऊँ प्रीतम! तोहि रिझाय ॥
भाव-भरित सुरभित सुमनन की ललित माधुरी-माल।
पलक-आँगुरिन तें पहिराऊँ मोहन रसिक रसाल ॥
झर झर झरै प्रेम-पद मानस-सर बिच उठै हिलोर।
बिहरै हृदय-हंस तहँ मेरो नित अनुराग-बिभोर ॥
निगमागम-कृत बिधि-निषेध कौ रहै न चित कछु भान।
यह मन-मधुप करै नित तेरो रूप-सुधा-रस-पान ॥

(क्रमशः)

वि० ह०

पद्य-पंचक

(१)

हरिगौ समूल हूल वाही घटिका तें सबै,
रंगभूमि भारत को रंग ही बिगरिगौ।
जरिगौ दवागिनि सों तन मन धन सब,
शांत सुख प्रान्त गृह युद्ध तें पजरिगौ ॥
झरिगौ सुभाग भव्य भाल ते प्रकाशमान,
भीषण विभीषिका समाज भौन भरिगौ।
परिगौ अभेद्य-पाश जबतें हिये-प्रसून,
कलुषित फूट को प्रवेश कीट करिगौ ॥

(२)

भानु-तेज तापित ह्वै रैनि-मान छीन होत,
पावस के हंस लौं हिमकन बिलाते हैं।
हरित पात पियरे ह्वै वायु के झकोरों से,
भूल भूल "संकर" अपूर्व भर लाते हैं ॥
दिन द्वै माहिं वृक्ष-बेलि नग्न ह्वै कैं चारु,
केलि समै कामिनि सकंत लौं लखाते हैं।
ग्रीषम सुहावन के आवन पै डार डार,
पात मन भावन नवीन सरसाते हैं ॥

(३)

ग्रीषम के ताप सों अँगार बने घूमते जो,
होती कहुँ शरण न शीतल दिगन्त की।
पावस की वारि-झर बीच परि मारे जाते,
करि जाते शेष निज कीरति अनन्त की ॥
डरि जाते शरद के शीतल महातल से,
दबि जाते हिम-राशि भीतर हिमन्त की।
उरझि मुरझि जाते शिशिर समीरन में,
दाया न जो होती अलि बीरन बसन्त की ॥

(४)

बरती रहैंगी बस प्रेम व्रत नेम ही से,
करती रहैंगी काम कामना बिहाये सब।
धरती रहैंगी ध्यान धारणा समाधि,
अरु हरती रहैंगी व्याधि बाधा ठुकराये सब॥
चरती रहैंगी सदा बिरहा-बयारि बिच,
भरती रहैंगी मोद मौन मन लाये सब।
राखैं या न राखैं प्रेम प्रीतम हमारे जानि,
नेम हम कठिन कठोर ठहराये अब॥

(५)

प्रेम-सरवर में ही पावैं उतपत्ति हम,
प्रेम ही के मारुत से स्वासित बनी रहैं।
प्रेम-परिवार में ही लालन हमारा, होय
प्रेम-पंक बीच बस पालित बनी रहैं॥
प्रेम-पंथ की ही हम पथिका सदैव रहैं,
प्रीतम के प्रेम ही में साबित बनी रहैं।
कामना यही है, टेक एक अवशेष यही,
अन्त तक प्रेम-परिचालित बनी रहैं॥

—शम्भूदयाल सक्सेना विशारद "शंकर"

गोविन्द-चन्द्रिका

हमारे परम मित्र साहित्य-रसिक गरौली-अधीश श्रीमान् दीवान बहादुर चंद्रभानुसिंहजी के समीप हमने हाल में एक बड़ी सुन्दर पुस्तक देखी है। उसका नाम है "गोविन्द-चन्द्रिका"। इस पुस्तक के लेखक श्री वैष्णव इच्छाराम नामक कोई सज्जन हैं। लेखक महाशय का कुछ भी वृत्त ज्ञात नहीं। केवल इतना मालूम होता है कि यह

बुन्देलखंड-निवासी तथा विरक्त श्रीवैष्णव थे। इनका रचना-काल, जैसा कि गोविन्द-चन्द्रिका से मालूम हुआ है, संवत् १८४७ है।* संभव है, इनका जन्म संवत् १८२० के लगभग हुआ हो। इसके अतिरिक्त हमें इनके संबंध की कोई और बात मालूम नहीं।

गोविन्दचन्द्रिका की जो प्रति हमने देखी है, वह संवत् १९०८ की लिखी हुई है। पुस्तक के अंत में लिखा है—

"मार्ग बदि ७ रवौ संवतु १९०८ वि० मुः करहरा लिष्यतं लाला ढांकन गरौली तथा लिष्यते लाला जवाहर सिंघ जैसी प्रति पाई तैसी लिषी मम दोष न दीयते।"

पुस्तक में ४५ प्रकाश (अध्याय) हैं। लेखक पिंगल शास्त्र के अच्छे ज्ञाता जान पड़ते हैं। महाकवि केशवकृत रामचंद्रिका के अनुसार इस चंद्रिका में भी विविध छन्दों का समावेश पाया जाता है। श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध के पूर्वार्द्ध की कथा इस पुस्तक में है। इसके १३ प्रकाश तो बहुत ही सुन्दर हैं। पीछे के प्रकाशों में कुछ शिथिलता आ गई है। भाषा में माधुर्य और सजीवता है। भावों में उच्चता और गंभीरता है। शैली चुटीली है। पाठकों के चित्त विनोदार्थ हम गोविन्द-चन्द्रिका में से कुछ छन्द नीचे उद्धृत करते हैं।

छप्पय

घर घर बिहरन-जोग भये अब दोऊ भैया।
गुहि अलकैं मुख चूमि मातु नित लेति बलैया॥
धोती पहिरि पुनीत, पैंच सिर रुचिर बनावैं।
मनिमय कंठन कंठ, कलित कलगी छवि छावैं॥
नील पीत पट, हँसन मुख, असन लसन बरनै न कोउ।
सुन्दर स्यामल गौर तनु मानहुँ इन्द्र उपेन्द्र दोउ॥
[६ प्रकाश]

दोहा—श्री गोविन्द सु चंद्रिका बेद-चंदिका गाथ।
संबत मुनि श्रुति वसु ससी जनम भयो इक साथ॥

हरि गीतिका

हे केतकी इन तू लखे कहि नंदनंदन स्याम हैं।
मुसक्यान सौं छबि रावरी जनु लै लई अभिराम हैं॥
हे मालती, हे जाति, जूही सुनौ चितु दै कान कों।
कहुँ लुके छुद्रावरन गहि मनहरन देखे कान कों॥
करबीर, हे मंदार, चंदन करौ सीतल हीतलै।
दरसाइ जुक्त सुगंध कहँ राखे हमारे मीत लै॥
हे तालमाल तमाल तू हरि परसि स्याम लता कही।
यदि भेद जानति तुलसिका नहिं कहति मौनहिं गहि रही॥
हे बिटप बेलि सफूल फूले पनस फल ललिता लई।
बिन स्यामसुन्दर परसि ऐसी फूल तुमकों क्यों भई॥
मृग-बधू नैन प्रसन्न तुम्हरे, लखे तुम नँदलाल हैं।
न दुराव कौ अब दाँव हम सब बिरह बस बेहाल हैं॥
हे कदंबक अंब निबक जंब जान न दर्द कों।
श्रमहरन काहे देत कहि नहिं स्याम तन बेदर्द को* ॥

[१२ प्रकाश]

रोला

जो पै स्याम सुजान एकरस हैं सब माहीं।
तौ हमरे ह्वै नैन सिरावत हैं कत नाहीं॥
तुम हरि कों निरवैव कहौ निर्गुन श्रुति गायो।
मुहि देखत नँदरानि पानि गहि दूध पियायो॥
माखन खायो चोरि ओखरी लाइ बँधायो।
जिनकों तुम विज्ञान अखंडित सिखवन आयो॥

---

* यह वर्णन नंददास-कृत रास-पंचाध्यायी के वर्णन से बहुत मिलता है। — संपादक

तिन सों हम बन माहिं सुमन-बैनी गुँथवाई।
ते अब ह्वै गये अगम अगोचर मधुपुर जाई ॥
[२० प्रकाश]

रुक्मिणी की पत्रिका

गीतिका

कबिन सों अरु कोविदन सों महत गुन सुनि रावरे।
भयो मो मन लीन चरननि लाज तजि हे साँवरे ॥
धृष्टता नहिं मानबी, मन आनबी करुना घनी।
कौन अस कुल-करनिका जो तुमहिं नहिं चाहै धनी ॥
परी परबस लेहु जदुपति बिपति-खंडन धाइ कैं।
सदा पूरनकाम तुम निज बानि की लव लाइ कैं ॥
गुप्त आवन एक रथ प्रभु होइ, जिहि न खुलै कहूं।
उमा-पूजन आइहौं तब पाइहौं दरसन महूँ ॥
भुजन के बल लेहु हरि, हरि जथा बलि निज स्यारतें।
दीनबंधु निकारियै मुहि धरम संकट गार तें ॥
देत स्यारहिं रुक्म बरबस किंकरी मृगराज की।
असुर देखत मरौं नहिं तौ हौंहुँ नहिं जदुराज की ॥
भोर जो नहिं आइबी तौ पाइबी जीवत नहीं।
परी बिपदा दास दासिन आजु लौं प्रगटे तहीं।
[२३ प्रकाश]

दंडक

कृष्णजू की कीरति की सूरति न गाई जाइ,
सुरति लगाये लागै आन छबि छार सी।
हंसिनी सी, हीरद सी, हिम सी, हिमांचल सी,
देवधुनि-धारा, छीर-पारावार-पार सी ॥

'इच्छाराम' रामराज्य, संख, चक्र, सत्य, सेस,
रवि-वाजि, इन्द्रगज, इन्दु-सोभा-सार सी।
हरसी, हरासी, हरगिरिसी, सुसरदसी,
पारदसी, नारदसी, सारद उदार सी॥
[३३ प्रकाश]

रामलीला छन्द

कंठ गदगद बचन बोल्यो दसा बरनि न जाइ।
कहौ हरि बलि जाउँ बल मुहि दीन कस बिसराइ॥
कबहुँ लेते मोरि सुधि निज व्रजन तें व्रजराइ।
धाइ-नाते धाइ कैं कहुँ मोहि मिलते आइ॥
राजकुल अब नात मानत, लगे लाल लजान।
कहैं सिगरे सीलसागर तुम्हें करुनाबान॥
मोहि बिसरत कबहुँ नाहीं फटत छाती नाहिं।
अजहुँ छौना तुअ खिलौना धरे सब घर माहिं॥
लकुट तेरी बाँसुरी जब लखौं स्रंगी बेनु।
परत कल नहिं पूत, सिसु बिनु जिमि लवाई धेनु॥
गुंजमाला कुंज बिरची पुंज मनि-संजुक्त।
मोर-पाखन कौ मुकुट जिहि लगे लाखन मुक्त॥
नागमनि की जुगल कंठी, जुगल माल बिसाल।
धरी तेरी सेज पै तुअ गरे की गोपाल॥
[४१ प्रकाश]

अनुकूल छन्द

बार बार सुत बदन निहारै।
कहत न बनै, चलै नहिं पारै॥
तन मन सब सुधि बुधि बिसराई।
गदगद कंठ नैन भर लाई॥

देखि दसा पितु की मनमोहन।
बहुत प्रबोध कीन भरि छोहन॥
गोपी चितै चहूँ दिसि गोपी।
मानहुँ दीन दसा सब लोपी॥
करुना करि करुना-बरुनालै।
पुनि पुनि निरखैं मदनगुपालै॥
ऊरध सांसन लैंहिं अघाई।
अब जनि कृष्ण कहै घर जाई॥
बाल-सखा जे प्रानपियारे।
तेऊ ठाढ़ रहे मन मारे॥

रोला छन्द

तब जसुमति धरि धीर कंठ भरि बचन उचारे।
मुहि न तजौ अब पुत्र प्रान के प्रान-अधारे॥
तुम बिनु स्याम सुजान मोहि जग लागत सूनो।
पाऊँ सुर-पुर-भोग तऊ दिन दिन दुख दूनो॥
सुनहु देवकी भगिनि! अगिनि-बरिबौ सहिलैं हैं।
हरि-बियोग-उद्वेग आजु अब सहे न जैहैं॥
हौं दासी तुअ दीन, तुही हरि की महतारी।
नीच टहल करि रहौं मोहि है सौंह तिहारी॥
अतिसै आरत बैन हीय सहि गये न स्यामै।
सहसा जसुदा साथ चले उठि ब्रज के धामै॥
रही देवकी जोय सुनत जदुबंसी धाये।
महरि माय के साथ नाथ दूरहि कढ़ि आये॥

[४१ प्रकाश]

☬

गंधान छन्द

नाम भजौ मन काम तजौ तब तोष बसैजू।
तोष बसै तब कर्म नसै भवभर्म नसै जू॥

भर्म नसे तें भक्ति लसै तब सर्न लहैगी।
सर्न गहे प्रभु-चर्न गहे भव-भीति बहैगी॥

दोहा

जो मैं जो मोतें कछू सो सब प्रभु की बस्तु।
को मैं का अरपन किये भयो समुझि सुभमस्तु॥

[४५ प्रकाश]

यह दो-चार नमूने हैं। कैसे हैं, सो शब्द-रत्नों के जौहरी परख लेंगे। देखें, गोविन्द-चन्द्रिका-कार को कवियों की किस श्रेणी में स्थान मिलता है!

पद्माकर

पद्माकर के संबंध में कुछ कहने के पहले उनका संक्षिप्त परिचय दे देना परमावश्यक है। ये माथुर शाखा के तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता मोहनलाल भट्ट थे। जो 'सागर' में रहते थे। वहीं पर इनका जन्म संवत् १८१० विक्रमीय में हुआ था। मोहनलाल भट्टजी का सागराधिप रघुनाथराव के यहां बड़ा सम्मान था। पद्माकर का वास्तविक नाम "प्यारेलाल" था। कवि के सुपुत्र होने के कारण ये १६ वर्ष की ही अवस्था में कविता करने लगे थे। ये जिस बात को जैसा देखते थे उसका वैसा ही वर्णन अपनी कविता में करते थे।

पहिले ये रघुनाथराव के ही यहाँ रहते थे। पर पीछे से किसी कारण वश अनबन हो जाने से बांदा चले गये। बांदा इन के पूर्वजों का निवासस्थान था। वहाँ पर सुँगरा-निवासी 'नोने अर्जुन' ने इन्हें अपना दीक्षा-गुरू बनाया। यहीं बांदा में इन्होंने 'अनूप गिरि' उपनाम "हिम्मत-बहादुर" की प्रशंसा में "हिम्मत-बहादुर-विरुदावली" नामक ग्रन्थ की रचना की। कुछ दिनों में रघुनाथराव ने

इन्हें पुनः बुलाया। परन्तु ये कुछ दिन के पश्चात् फिर रूठ गये। तब ग्वालियर गये। वहाँ से जयपुराधीश प्रतापसिंहजी ने इन्हें बुला लिया। जब प्रतापसिंहजी का स्वर्गवास हो गया तो वहाँ से भी चलने का विचार किया। किन्तु जयपुराधीश के सुयोग्य पुत्र जगतसिंह ने इन्हें रोका और इनका समुचित सत्कार किया। इन्हों ने भी उनके मनोरञ्जनार्थ "जगद्विनोद" की रचना की। यहीं पर इन्हें सच्चा कवि-सम्मान प्राप्त हुआ और तभी से इन की ख्याति भी खूब हो गयी।

कुछ दिनों पीछे इन्हें कुष्ट रोग होगया। बस ये फिर वहाँ से चल पड़े और बांदा आये। दवा की, पर कुष्ट अच्छा न हुआ। तब इन्हों ने "राम-रसायन"* और "प्रबोध-पचासा" की रचना की। तब तक कुष्ट अच्छा हो गया था। फिर ये चरखारी के राजा रतनसिंह के यहां मिलने गये, परन्तु उन्हों ने मिलने से इन्कार कर दिया। इससे इन्हें बड़ी ग्लानि हुई और ये गंगाजी की सेवा में कानपूर चले गये। मार्ग में ही इन्हों ने "गंगा लहरी" बना डाली। कानपूर जाने पर इन का कुछ दिन में देहान्त हो गया। इनका शरीर-पात सं० १८९० विक्रमीय में हुआ।

इन्हों ने कुल ९ ग्रन्थ बनाये। १-हिम्मत बहादुर विरुदावली। २—जगद्विनोद। ३—पद्माभरण। ४—जयसिंह-विरुदावली। ५—आलीजा प्रकाश। ६—हितोपदेश गद्य पद्यमय अनुवाद। ७—राम रसायन। ८—प्रबोध प्रचासा। ९—गंगालहरी।

इनमें ४, ५, ६ नं० के ग्रन्थ अप्राप्य हैं। शेष ६ मुद्रित हो चुके हैं। इन्हीं में से कुछ उदाहरण देकर कविवर पद्माकर की कविता का संक्षिप्त विवेचन करते हैं।

---

* इस ग्रन्थ के कर्त्ता कोई दूसरे 'पद्माकर' मालूम होते हैं।

—संपादक

"हिम्मत बहादुर विरुदावली"

यह इनका सर्व प्रथम ग्रन्थ है। एक तो ये स्वयम् वीर और योद्धा थे, दूसरे जिस समय यह ग्रन्थ रचा गया उस समय इनका नव यौवन भी था। अतएव वीर रस में यह उच्च कोटि का काव्य सका। जो लोग इन्हें केवल शृंगार रस का ही कवि कहते हैं उन्हें "हिम्मत बहादुर विरुदावली" अवश्य पढ़नी चाहिये। विस्तार-भय से एक छन्द देते हैं—

हरिगीतिका

नृप धीर बीर बली बढ्यो, सजि सेन समर सुखेल की।
सुनि बंब बीरन की बढ़ी, हिय हास बर बगमेल की॥
पृथुरित्ति नित्ति सुचित्त दै, जग जित्ति कित्ति अनूप की।
वर वरनिये विरुदावली, हिम्मत बहादुर भूप की॥

इस छन्द की खासकर अन्तिम पंक्तियाँ बीरों को फड़काने के लिए काफ़ी हैं।

"जगद्विनोद"

जगद्विनोद इन का सब से उत्तम ग्रन्थ है। इसी के द्वारा इनका पाण्डित्य प्रदर्शित होता है। यह नायिका भेद का ग्रन्थ है। काव्य पढ़नेवाले नौसिखिये प्रायः सर्व प्रथम यही ग्रन्थ पढ़कर साहित्य-क्षेत्र में उतरते हैं। कारण यह है कि यह ग्रन्थ स्पष्ट रीति से लिखा गया है। इसके पढ़ने से ये शृङ्गार के घोर कवि ज्ञात होते हैं। कुछ उदाहरण लीजिये :—

सुकुमारता वर्णनः—

कवित्त

सुन्दर सुरंग नैन सोभित अनंग रंग,
अंग अंग फैलत तरंग परिमल के।
बारनि के भार सुकुमारि को लचत लंक,
राजत पर्यंक पर भीतर महल के॥
कहै पदमाकर बिलोकि जन रीझैं जाहि,
अम्बर अमल के सकल जल थल के।

कोमल कमल के गुलाबन के दल के,
सो गड़ि जात पायँन बिछौना मखमल के॥

अब इससे बढ़कर सुकुमारता क्या होगी ?

नायिका तालाब में तैर रही है, कवि उसका रूपक त्रिवेणी से बांधता है:—

सवैया

जाहिरै जागत सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी।
त्यों पदमाकर हीर के हारन गंग-तरंगन की सुखदेनी॥
पायँन के रंग सों रँगि जाति सों भाँति ही भाँति सरस्वतिसेनी।
पैरै जहाँ ही जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल मैं होति त्रिवेनी॥

एक विरहिणी की दशा दूती कह रही है—

कवित्त

दूर ही ते देखत बिथा मैं वा वियोगिन की,
आई भले भाजि ह्याँ इलाज मढ़ि आवैगी।
कहै पदमाकर सुनो हो घनश्याम जाहि,
चेतत कहूं जो एक आह कढ़ि आवैगी॥
सर सरितान को न सूखत लगैगी देर,
ऐती कछु जुलुमिनि ज्वाला बढ़ि आवैगी।
ताके तन ताप की कहौं मैं वात कहाँ मेरे
गात ही छुए ते तुम्हें ताप चढ़ि आवैगी॥

खूब रही! उसके पास जानेमात्र से ही दूतीको इतना ज्वर हो गया है कि यदि घनश्याम उसे छू लें तो उन्हें ज्वर चढ़ आवे! धन्य पद्माकर! अत्युक्ति की हद कर दी।

होली का वर्णन देखिये—

सवैया

फाग के भीर अभीर फिरैं सुगुविन्दहि लै गई भीतर गोरी।
भाइ करी मन की पदमाकर ऊपर नाय अबीर की झोरी॥

छीनि पितम्बर कंमरतें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कह्यो मुसुकाय लला ! फिरि आइहौ खेलन होरी॥

इस छन्द में " लला ! फिरि आइहौ खेलन होरी " में जान सी पड़ी है। सचमुच इन कतिपय पंक्तियों के द्वारा पाठक गोपियों की विजय का आनन्द केवल पढ़कर स्वयम् प्राप्त कर सकता है। लोग कहते हैं, यह घटना स्वयम् इन्हीं (पद्माकर) पर ही बीती थी। यही कारण है कि इनकी कविता और उत्तम हुई। इस स्वच्छन्दता और प्रत्यक्षदर्शिता ने इन्हें एक उत्तम कवि होने का मार्ग परिष्कृत कर दिया। होली पर एक कवित्त और देखियेः—

कवित्त

एकै संग धाये नंदलाल औ गुलाल दोऊ,
दृगन गये जो भरि आनंद मढ़ै नहीं।
धोय धोय हारी ' पद्माकर ' तिहारी सौंह,
अब तो उपाय एकौ चित्त में चढ़ै नहीं॥
कैसी करौं कहाँ जाऊँ कासों कहौं कौन सुनै,
कोऊ तो निकासो जासों दरद बढ़ै नहीं॥
ऐरी मेरी वीर ! जैसे तैसे इन आँखिन तें
कढ़िगो अबीर, पै अहीर तो कढ़ै नहीं॥

यह कवित्त भी खूब चुटीला है। इसमें भाव की पर्याप्त मात्रा है। साथ ही इसमें एक रहस्य भी है। वह यह कि लोग कहते हैं कि राजा रघुनाथ राव के दरबार में एक दिन कवि-सम्मेलन था। सभी कवि उत्तम-उत्तम छन्द सुना रहे थे। इन्हों ने अपना उपर्युक्त कवित्त सुनाया। पूछा, इसमें नायिका कौन सी है। भिन्न भिन्न नायिकाएँ लोगों ने बतलाईं। वहीं पर इनके साले बैठे थे उन्हें दिल्लगी सूझी। उन्होंने कहा " ठीक ठीक नायिका-निरूपण हम करते हैं। इसमें नायिका पद्माकर की बहिन हैं। क्योंकि इन

कहती हैं "पद्माकर तिहारी सौंह" और "वीर"। सब लोग हँस पड़े। ये लज्जित हो गये। उसी समय से प्रतिज्ञा की कि अब "बीर" शब्द का प्रयोग हो अपनी कविता में न करेंगे। आगे इन्होंने किया भी यही। क्योंकि आगे की कविता में ऐसा नहीं पाया जाता।

अब जगद्विनोद के कुछ दोहे भी देखिये। क्या ये बिहारी के दोहों के टक्कर के नहीं कहे जा सकते?

दोहा

कछु गज गति के आहटनि, छिन छिन छीजत सेर।
बिधु बिकास बिकसत कमल, कछू दिनन के फेर॥

मुग्धा का यौवनागम है। उसे कवि ने विरोधाभासालंकार द्वारा क्या खूबी से दर्शाया है!! यहां पर गज-गति से चाल, सेर से कटि, बिधु से मुखमण्डल और कमल से नेत्र का अभिप्राय है। इस दोहे पर तो कवि की क़लम चूमने को मन होता है।

एक प्रवासी नायक ने प्रेयसी की सुधि नहीं पायी थी। संयोग से कोई परिचित मिला। उस से पूछा, गाँव का समाचार कैसा है? वह उत्तर देता है।

दोहा

बरषत मेह अछेह अति, अवनि रही जल पूरि।
पथिक! तऊ तुव-गेह ते, उठति भभूकनि धूरि॥

नायक समझ गया कि नायिका जीवित है और विरह से व्याकुल है। इसमें भी विरह का अच्छा वर्णन है। विस्तार-भय से और दोहे नहीं दिये जा सकते।

"पद्माभरण"

यह अलंकार का एक उत्तम ग्रन्थ है। 'जगद्विनोद' की भाँति इसमें भी उदाहरण उत्तम और स्पष्ट हैं।

परिसंख्या का उदाहरण—

दोहा

नृपति राम के राज्य में है वसूल दुख मूल।
लखियत चित्रन में लिख्यो संकर के कर सूल॥

"राम रसायन"

यह वस्तुतः वाल्मीकीय रामायण का हिन्दी पद्यात्मक अनुवाद है। इसकी भाषा कुछ शिथिल है। कुछ लोग कहते हैं कि यह पद्माकर कृत नहीं है परन्तु ऐसी बात नहीं है। इसमें शैथिल्य अवश्य है पर पद्माकृत यह है इस में सन्देह नहीं। क्योंकि दतिया में रहने वाले इनके वंशधरों द्वारा यह बात भली भाँति ज्ञात हो चुकी है*। राम रसायन केवल तीन काण्ड प्राप्य हैं जो "भारत जीवन प्रेस, काशी" से प्रकाशित हो चुके हैं। तुलसीदासजी का अनुकरण इस में किया गया है। कथा दोहा, चौपाइयों में है। उदाहरण के निमित्त दो चौपाइयाँ दी जाती हैं—

आश्रम निकट विटप जे भारे। तिन महँ झूलत कीर निहारे।
भरि भरि भुजन विटपतें भेटैं। प्रेम विवस दुख सकल समेटैं॥
सीत निवारन हित चहुँ पासैं। देखी बहु उपरन की रासैं।
नीरस तरु इन्धन की ढेरी। त्यों लागी आश्रम चहुँ फेरी॥

"प्रबोध-पचासा"

इस ग्रन्थ में ईश्वर की बन्दना की गई है। इसमें पचास छन्द हैं जो उस के नाम से ही प्रकट हैं। यह इन का सुन्दर ग्रन्थ है। इस की कविता प्रौढ़ और ओजमयी है। छन्द हृदय पर गहरी चोट करते हैं। एक बार पढ़ने से बराबर पढ़ने का चित्त होता है। कहते हैं। कुष्ट रोग के नाश के निमित्त इन्होंने इसे ईश्वर बन्दना में बनाया था। इस के पढ़ने से इन की आंतरिक ग्लानि टपकी सी पड़ती ज्ञात होती है। ऐसा प्रकट होता है कि ये जीवन से

* पर केवल यही प्रमाण काफ़ी नहीं है।

—संपादक

निराश हो गये थे। प्रसाद गुण भी इस में पूर्ण है। दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

कवित्त

उकुति अनेक ही पै एकहू न कही परै,
　　टेक तो हमारी केहूँ हू तें सठिन है।
कहै पदमाकर न छाया है छमा की ऐसी,
　　काया कलि क्रोध मोह माया की मठिन है।
यातें गुह गीध लौं सो बीधियो न मों सो राम,
　　मेरी मति घोर या कठोर कमठिन है।
लंका गढ़ तोरिबे तें रावन सों रोरिबो तें,
　　मोहिं भव-बन्धन तें छोरिबो कठिन है॥

व्याध हू तें बिहद असाधु हौं अजामिल तें,
　　गुह तें गुनाही कहौ तिन में गनाओगे।
स्यौरी हौं न गिद्ध हौं न केवट कहूं को त्यौं न
　　गौतम तिय हौं जापै पग धरि आओगे।
राम सों कहत पदमाकर पुकारि तुम
　　मेरे महा पापन कौ पारहू न पाओगे।
सीता सी सती को तज्यो झूठोई कलंक सुनि,
　　सांचोई कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे?

पद्माकर की सूझ कैसी होती थी यह इन छन्दों से ज्ञात है। क्या पतितोद्धारक राम ने इतने पर भी उन पर दया न की होगी?

"गंगा लहरी"

गंगा लहरी भी प्रबोध-पचासा की ही कोटिका ग्रन्थ है। इसमें गंगाजी की प्रशंसा वर्णित है। "व्याज-स्तुति" अलंकार अधिक है। प्रायः सम्पूर्ण पुस्तक के ⅞ में यही अलंकार है। यह मार्ग चलते बनाया गया है' तो भी इसकी प्रौढ़ता प्रशंसनीय है। उदाहरण लीजिये:—

कवित्त

लाइ भूमिलोक तें जसूस जबरई जाइ,
जाहिर खबर करी पापिन के मित्र की।
कहत "पद्माकर" बिलोकि यम कही कै,
बिचारो तो करमगति ऐसे अपवित्र की॥
जौ लौं लगे कागद बिचारन कछुक तौ लौं,
ताके कान परी धुनि गंगा के चरित्र की।
वाके सीस ही ते ऐसी गंगधार बही जामैं,
बही बही फिरी बही चित्र औ गुपित्र की॥

अधिक उदाहरणों की आवश्यकता नहीं। गंगा लहरी का प्रत्येक छन्द एक दूसरे से बढ़कर है।

× × × × × ×

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि ये उच्च श्रेणी के कवि थे। इनकी कविता में धारा-प्रवाह बहुत उत्तम है। साथ ही चौथे चरण में जान सी पड़ी रहती है। इनका कोई ऐसा छन्द ही नहीं है जो नवीनता से खाली हो। दो कवित्त और नीचे दिये जाते हैं।

रघुनाथ राव की दान प्रशंसा :—

कवित्त

संपति सुमेर की कुवेर की जो पावै ताहि
तुरत लुटावत विलम्ब उर धारै ना।
कहै पदमाकर सुहेम हय हाथिन के,
हलके हजारन के बितरि बिचारै ना॥
गज गंज-वकस महीप रघुनाथ राव,
याही गज धोखे कहूँ काहू देय डारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोय रही,
गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना॥

यह इनका सर्वप्रथम रचित कवित्त है, जो १६ वर्ष की अवस्था में बनाया गया था। इस पर प्रसन्न होकर रघुनाथराव ने १ लक्ष-मुद्रा, साज-सामान सहित हाथी और एक घोड़ा दिया था।

तलवार की प्रशंसा :—

कवित्त

पाहन तें दूनी और त्रिगुनी त्रिशूलन तें,
　　त्रिछिन तें चौगुनी चलाक चक्र चाली तें।
कहै पदमाकर महीप रघुनाथ राव !
　　ऐसी समसेर-सेर सत्रुन पै घाली तें॥
पंच गुनी पब्ब तें पचीस गुनी पावक तें,
　　प्रगट पचास गुनी प्रलय-प्रनाली तें।
साठ गुनी सेस तें सहस्र गुनी स्रापन तें,
　　लाख गुनी लूक तें करोर गुनी कालीं तें॥

मुर्दा दिल भी इसको सुन कर एक बार फड़क उठेगा। फिर वीर की तो बात ही न्यारी है।

× × × × × ×

ये भाषा, प्राकृत और संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। इन्हों ने तुकान्तों के निमित्त शब्दों को विकृत नहीं किया, किन्तु अनुप्रास और यमक के फेर में कहीं-कहीं भाव को चौपट कर दिया है। भाषा इनकी ब्रज और बुंदेलखण्ड की मिली हुई है, जैसा होना स्वाभाविक था। कवित्त-बाज़ लोग अब भी इन के कवित्त और सवैये अधिक मात्रा में याद करते हैं। यह इनकी कविता की उत्तमता का उदाहरण है।

इन्हें कविता द्वारा धन भी खूब प्राप्त हुआ। महाराज दौलतराव सेंधिया ने भी इन्हें खूब रुपया दिया था। ये बड़े शौकीन थे। राजाओं के संसर्ग में रहने के कारण ये भी राजाओं के से रहते थे। इनके दो पुत्र मिहीलाल और अम्बालाल (अंबुज) थे। कविवर गजाधर इन के पौत्र और मिहीलाल के पुत्र थे। इनके

वंशज अब तक दतिया में रहते हैं। उनमें कवि भी हैं जिनके नाम "कृपाकर" और "प्रभाकर" हैं।

ठाकुर (लाला) और इन से एक बार हिम्मतबहादुर के दरबार में सामना हो गया था। वहां ठाकुर ने इन्हें बातों में नीचा दिखा दिया था। हिम्मत बहादुर ने इनसे पूछा, कि "कहो ठाकुर की कविता कैसी होती है?" इन्हों ने कहा "कविता तो सुन्दर होती है पर शब्द हलके होते हैं।" ठाकुर ने चट उत्तर दिया। ठीक है, "शब्दों के हलकेपन के कारण हमारी कविता उड़ी उड़ी फिरती है किन्तु भारी पन के कारण तुम्हारी कविता उड़ नहीं सकती।" लज्जित हो गये।*

इनकी कविता कैसी सुन्दर, सरस और ओजमयी होती थी यह सभी जानते हैं और काव्य-मर्मज्ञ तो इन की प्रतिभा के क़ायल ही हैं।

—विश्वनाथप्रसाद मिश्र "मुकुन्द"

वैदिक ग्रन्थों में श्रीकृष्ण

बङ्गाल एशियाटिक सोसायटी की ग्रन्थमाला में श्रीयुत एच. सी. राय लिखते हैं, कि आम तौर से बहुत लोग यह नहीं जानते, कि वासुदेव कृष्ण देवकी-पुत्र का नाम महाभारत और पुराणों के अतिरिक्त कम से कम दो वैदिक ग्रन्थों में भी पाया जाता है। तैत्तिरीय आरण्यक में निम्नलिखित श्लोक है—

"नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्"

---

* पद्माकर की जीवन-सम्बन्धी घटनाओं का अधिकांश भाग श्रीयुक्त लाला भगवानदीनजी सम्पादित "हिम्मत बहादुर विरुदावली" से लिया गया है, एतदर्थ मैं उनका अनुगृहीत हूं। —लेखक।

इस श्लोक में वासुदेव (कृष्ण) का ही नाम नहीं लिया है, बल्कि यह दिखाया है कि वे नारायण हैं। कितने ही विद्वानों का कथन है, कि इस आरण्यक में यह श्लोक पीछे का जोड़ा हुआ है। परन्तु एक दूसरे वैदिक ग्रन्थ में भी कृष्ण का हवाला है, और उस ग्रन्थ की प्राचीनता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। छान्दोग्य उपनिषद् (३, १७, ४ में) एक ऋषि घोर आङ्गिरस और उनके शिष्य कृष्ण देवकी-पुत्र का वर्णन है। ग्रीअर्सन, गार्व, वान श्रिरो-डर, बंकिमचन्द्र चटर्जी और बहुत से विद्वानों ने यह ठीक ही माना है, कि छान्दोग्य उपनिषद में वर्णित उक्त कृष्ण देवकी पुत्र वही श्रीकृष्ण हैं जो महाभारत में कहे गये हैं। परन्तु रायल एशिया-टिक सोसायटी के पत्र में मि० पारजिटर ऐसा नहीं मानते। वे कहते हैं कि "कृष्ण और देवकी-पुत्र ये सब साधारण नाम थे। किसी भी मनुष्य के यह नाम हो सकते थे। केवल दो आदमियों के नाम एक होने से महाभारत के कृष्ण और उक्त उपनिषद् के कृष्ण को एक मानना ठीक नहीं है। ऐसे तो इङ्गलेण्ड के इतिहास में राजा प्रथम जेम्स और प्रिटेण्डर जेम्स को भी कोई एक मान सकता है, केवल इसलिये, कि उन दोनों की माताओं का नाम मेरी था। या प्रथम जार्ज, दूसरे जार्ज और चौथे जार्ज इन तीनों को एक ही आदमी कह सकते हैं; क्योंकि उन तीनों की माताओं का नाम सोफ़िया था।"

मि० पारजिटर का यह कहना ठीक है, कि कृष्ण साधारण नाम था। कृष्ण नाम के दो आदमी भले ही हो सकते हैं किन्तु दो आदमियों का नाम कृष्ण देवकी-पुत्र होना ज़रा दूर की बात है और उन दोनों को भिन्न मानने के लिये स्पष्ट प्रमाण चाहिये। मि० पारजिटर ने अंग्रेजी इतिहास में से जो उदाहरण दिये हैं वे यहां लागू नहीं होते। क्योंकि यूरोप के एक घराने के कई राज-कुमारों का अक्सर एक ही नाम हुआ करता है। उनके यहां दो जेम्स, तीन जार्ज भले ही हों, परन्तु भारत के यादवकुल में कृष्ण। देवकी-पुत्र नाम के दो कुमार नहीं हुए। फिर मि० पारजिटर ने

यह साबित नहीं किया कि देवकी-पुत्र भी साधारण नाम था। हमारे समस्त धार्मिक ग्रन्थों में आदि से अन्त तक कृष्ण देवकी पुत्र एक ही महात्मा का नाम रहा है।

मि० पारजिटर समझते हैं कि केवल नाम एक होने से हम उपनिषद् और महाभारत के कृष्ण को एक मानते हैं। यह बात नहीं है। उन दोनों की एकता के और भी प्रमाण हैं। डाकृर राय चौधरी ने अपने ग्रन्थ वैष्णवों के प्राचीन इतिहास में दिखाया है कि वे दोनों कृष्ण देवकी पुत्र एक ही थे और उनके द्वारा छान्दोग्य में जो उपदेश है, उसीकी छाया भगवद्गीता में है। छान्दोग्य में कृष्ण देवकी-पुत्र को ईश्वर की महिमा बताते हुए ऋग्वेद का निम्न-लिखित ऋचा सिखाया गया।

"आदित्यवर्णस्य रेतसः उद्वयन्तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तर स्वः पश्यन्त उत्तरं देवं देवत्रा सूर्यमगन्मत् ज्योतिरुत्त ममिति ज्योतिरुत्तममिति"

इसी ऋचा की छाया पर भगवद्गीता में ईश्वर का वर्णन श्रीकृष्ण इस प्रकार करते हैं:—

"सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्"
भ. गी. अ. ८-श्लो. ६।

"ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।" भ. गी. अ. १३ श्लो. १८

तप, दान, आर्ज्जव, अहिन्सा और सत्य वचन इन सबका उपदेश छान्दोग्य में घोर आङ्गिरस ऋषि ने अपने शिष्य कृष्ण देव-की पुत्र को जिन शब्दों में किया प्रायः वे ही गीता में उद्धृत हैं।

"दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम्॥"

छांदोग्य के घोर ऋषि जिस आंगिरस घरानेके थे उसका सम्ब-न्ध भोज घराने से था, जो ऋग्वेद के समान प्राचीन था (३, ५३, ७)

ऐतरेय ब्राह्मण और महाभारत के पाठक जानते हैं कि भोज सात्वत जाति की एक बलवान उपजाति थी और कृष्ण भी सात्वत जाति के थे। अपने जाति भाई भोजों को बचाने के लिये ही कृष्ण ने संकर्षण की सहायता से कंस को परास्त किया। ऐसे प्रमाणों के होते यही माना जा सकता है कि भोजों से सम्बन्ध रखने वाले आंगिरस के शिष्य कृष्ण देवकी-पुत्र वही सात्वत कृष्ण थे जो भोज नरेशों के वंशज थे और जिन्होंने अपने गुरु घोर ऋषि के उपदेशों की छाया अपनी भगवद्गीता में दिखायी है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि गीता में कई जगह छान्दोग्य और मुण्डक उपनिषद् (२७) में वैदिक यज्ञों को व्यर्थ बताया है। इसी प्रकार गीता (२, ४२, ४५) में भी बहुत से वैदिक कृत्यों को अनावश्यक कहा है और उनके करनेवालों को 'कामात्मानः स्वर्गपराः' कहा है।

एक और बात ध्यान देने योग्य है। छान्दोग्य उपनिषद् के कृष्ण देवकी-पुत्र के गुरु सूर्य्यवंशी थे और सदा सूर्य्य की ही आराधना करते थे। महाभारत के कृष्ण देवकी-पुत्र के स्थापित भागवत धर्म की बहुत सी बातें सूर्य्य से ही सम्बन्ध रखती हैं। डाकूर राय चौधरी ने शान्तिपर्व का एक श्लोक उद्धृत किया है, जिसमें लिखा है कि प्राचीनकाल में सात्वत धर्म का प्रचार सूर्य्य ने ही किया था—

"सात्वंत विधिमास्थाय प्राक् सूर्य्य मुखनिःसृतम्।"
म. भा. १२, ३३५, १८

ऊपर की इन सब बातों से स्पष्ट है कि उपनिषद् और महाभारत के कृष्ण एक ही थे।

[श्रीवेङ्कटेश्वर]

पंद्रहवीं स्थायीसमिति का चतुर्थ अधिवेशन

पंद्रहवीं स्थायीसमिति का चतुर्थ अधिवेशन रविवार मिति ज्येष्ठ शु० ८ सं० १९८२ वि० ता० २१ मई सन् १९२५ ई० को ५ बजे दिन से सम्मेलन-कार्यालय में निम्नलिखित सदस्यों की उपस्थिति में हुआ—

श्रीयुत रामचन्द्रजी वर्मा, काशी
पं० भागीरथप्रसादजी दीक्षित, लखनऊ
श्रीयुत शिवप्रसादजी गुप्त, काशी
पं० गिरजादत्तजी शुक्ल, 'गिरीश', प्रयाग
श्री वियोगी हरिजी, प्रयाग
चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्मा, प्रयाग
पं० लक्ष्मीनारायणजी नागर, प्रयाग
अध्यापक पं० रामरत्नजी, आगरा
पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी, प्रयाग
पं० रामजीलाल शर्मा, प्रयाग
पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी (सहायक मंत्री)

सर्व-सम्मति से श्रीयुत शिवप्रसादजी गुप्त ने सभापति का आसन ग्रहण किया। विचारणीय विषयों पर बाहर के निम्नलिखित सदस्यों की आई हुई सम्मतियाँ पढ़ी गईं।

श्रीयुत् सैयद अमीरअली 'मीर', विटकुलीहैंडलूम फैक्टरी, सी०पी०
पं० ज्वालादत्तजी शर्मा, किसरौल, मुरादाबाद

पं० गोविन्दनारायणजी आसोपा, जोधपुर
श्रीयुत रामेश्वरीप्रसाद राम बाढ़, पटना
पं० बाबूरामजी शर्मा, बुलन्दशहर
पं० श्यामविहारी मिश्र, लखनऊ
पं० बालमुकुन्दजी त्रिपाठी, जबलपुर

१—हिन्दी-विद्यापीठ की योजना के उद्देश्य 'क' भाग पर देर तक विचार होता रहा। अन्त में बहुसम्मति से जो निश्चय हुआ उसका रूप इस प्रकार रहा—

१—(क) हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा संचालित परीक्षाओं के लिये विद्यार्थी तैयार करने के उद्देश्य से, हिन्दी भाषा द्वारा, साहित्यिक, वैज्ञानिक, चारित्रिक, शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक और अर्थकरी शिक्षा देना।

'ख' भाग के विषय में सर्व-सम्मति से निश्चय हुआ कि 'खेतीबारी' के अन्त में तथा 'अन्य आवश्यक कलाओं' ये शब्द और जोड़ दिये जायँ। तदनुसार इसका यह स्वरूप स्वीकृत हुआ—

(ख) शिक्षावस्था में ही विद्यार्थियों को भरण-पोषण के सम्बन्ध में स्वावलम्बी बनाने के उद्देश्य से खेती-बारी तथा अन्य आवश्यक कलाओं की विशेष शिक्षा देना।

(२) योजना का द्वितीय प्रस्ताव सर्व-सम्मति से निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुआ—

हिन्दी-विद्यापीठ के संचालन और सुप्रबन्ध के लिए ११ सज्जनों की एक समिति होगी, जिसका नाम हिन्दी-विद्यापीठ-समिति होगा और जिसका कार्य-काल तीन वर्ष का होगा।

(३) योजना के तृतीय प्रस्ताव का 'क' भाग ज्यों का त्यों निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुआ—

हिन्दी-विद्यापीठ-समिति का चुनाव इस प्रकार होगा।

(क) सम्मेलन के प्रधानमंत्री, प्रबन्ध-मंत्री और परीक्षा-मंत्री अपने पद की हैसियत से समिति के सदस्य होंगे।

'ख' भाग के विषय में चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्मा ने यह संशोधन उपस्थित किया कि 'इनके अतिरिक्त स्थायी समिति अपने सदस्यों में से ५ सदस्यों का निर्वाचन करेगी'—इस वाक्य में इतना और जोड़ दिया जाय कि 'जो तीन वर्ष तक हिन्दी-विद्यापीठ-समिति के सदस्य रहेंगे (चाहे बीच में, स्थायी समिति में, उनका स्थान रिक्त ही क्यों न हो जाय)। संशोधन सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ और तदनुसार यह 'ख' भाग निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुआ:—

(ख) इसके अतिरिक्त स्थायीसमिति अपने सदस्यों में से ५ सदस्यों का निर्वाचन करेगी, जो तीन वर्ष तक हिन्दी-विद्यापीठ-समिति के सदस्य रहेंगे (चाहे बीच में स्थायीसमिति में उनका स्थान रिक्त ही क्यों न हो जाय)।

'ग' भाग के विषय में सभापति महोदय ने यह संशोधन उपस्थित किया कि पंक्ति २ में 'अपनी' के स्थान पर 'समिति की' पंक्ति ३ में 'निवाचन कर लें' के बाद 'जो ३ वर्ष तक हिन्दी-विद्यापीठ-समिति के सदस्य रहेंगे' चतुर्थ पंक्ति में 'नहीं है' के स्थान पर 'न होगा' एवं 'सदस्य ही हों' के आगे 'किन्तु हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के उद्देश्यों से इनकी पूर्ण सहानुभूति होनी आवश्यक है'—ये संशोधन तथा परिवर्द्धन कर दिये जायँ। संशोधन स्वीकृत हुआ और तदनुसार यह 'ग' भाग सर्व-सम्मति से निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुआ—

(ग) इन आठ सदस्यों के लिए यह आवश्यक होगा कि वे समिति की निर्दिष्ट संख्या की पूर्ति के लिए तीन और सदस्योंका निर्वाचन कर लें, जो तीन वर्ष तक हिन्दी-विद्यापीठ-समिति के सदस्य रहेंगे। इन तीन सदस्यों के लिए यह आवश्यक न होगा कि वे स्थायीसमिति के सदस्य ही हों। किन्तु हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के उद्देश्यों से इनकी पूर्ण सहानुभूति होनी आवश्यक है।

योजना का प्रस्ताव ४ सर्व-सम्मति से ज्यों का त्यों निम्नलिखित रूप में निश्चित हुआ—

(४) यदि अवधि के भीतर किसी सदस्य का स्थान रिक्त हो जाय तो उसकी पूर्ति के लिए यह आवश्यक होगा कि शेष अवधि के लिए उसी समुदाय के नियमानुसार उसका निर्वाचन कर लिया जाय, जिस समुदाय का वह सदस्य था।

योजना के प्रस्ताव ५ के विषय में श्रीयुत रामचन्द्रजी वर्मा ने यह संशोधन उपस्थित किया कि इसमें 'उक्त समिति का एक व्यवस्थापक होगा', इन शब्दों के स्थान पर ये शब्द कर दिये जायँ 'हिन्दी-विद्यापीठ के कार्य-संचालन के लिए एक व्यवस्थापक होगा'। संशोधन सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ और तदनुसार योजना का पञ्चम प्रस्ताव निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुआ—

(५) हिन्दी-विद्यापीठ के कार्य-संचालन के लिये एक व्यवस्थापक होगा, जिसका चुनाव यह समिति स्वयं अपने सदस्यों में से करेगी।

योजना का प्रस्ताव ६ सर्वसम्मति से ज्यों का त्यों निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुआ—

(६) समिति का काम सदा बहुसम्मति से और कम से कम ५ सदस्यों की उपस्थिति में होगा।

(७) योजना के प्रस्ताव ७ के विषय में सभापतिजी ने यह परिवर्तन उपस्थित किया कि इसमें 'हिन्दी विद्यापीठ का हिसाब किताब सम्मेलन में रहेगा और खाता अलग रहेगा' इन शब्दों को इस रूप में परिवर्तित कर दिया जाय कि 'हिन्दी-विद्यापीठ का धन, चाहे वह कहीं से प्राप्त हो, इसी कार्य में लगाया जायगा और इसका पृथक् खाता इसके नाम से सम्मेलन की बही में रहेगा।' परिवर्तन सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

योजना का प्रस्ताव ८ ज्यों का त्यों, सर्व-सम्मति से, निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुआ—

(८) हिन्दी-विद्यापीठ के आय-व्यय का वार्षिक चिट्ठा, कार्य्य-विवरण तथा आगामी वर्ष के लिए आय-व्यय का अनुमान-पत्र

(बजट) बनाकर यह समिति स्थायी-समिति से प्रतिवर्ष स्वीकृत कराया करेगी।

योजना के प्रस्ताव ६ के विषय में बाबू रामचन्द्रजी वर्मा ने यह संशोधन उपस्थित किया कि इसके 'यह समिति हिन्दी-विद्यापीठ के नियम बनाकर स्थायीसमिति से स्वीकृत करा लेगा।'—इन शब्दों को इस रूप में परिवर्तित कर दिया जाय—

'यह समिति हिन्दी-विद्यापीठ के लिए समय-समय पर नियम और उपनियम बनाकर स्थायीसमिति से स्वीकृत करा लिया करेगी।' संशोधन सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

पं० रामजीलाल शर्मा ने इसमें यह परिवर्द्धन उपस्थित किया, जो सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ कि 'स्थायीसमिति को हिन्दी-विद्यापीठ के नियमों और उपनियमों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन और परिवर्द्धन आदि करने का पूर्ण अधिकार रहेगा।'

सभापति महोदय ने इसके पश्चात् निम्नलिखित परिवर्द्धन उपस्थित किया जो सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ—

यदि कभी स्थायीसमिति हिन्दी-विद्यापीठ के उद्देश्यों में परिवर्तन और परिवर्द्धन करना चाहेगी तो उसे इसके लिए एक विशेष अधिवेशन इस कार्य के लिए एक मास की सूचना देकर बुलाना होगा और उस अधिवेशन की गण-पूरक-संख्या (कोरम) १५ होगी।

इस प्रकार सम्पूर्ण ६वाँ प्रस्ताव निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुआ-

६—(क) यह समिति हिन्दी-विद्यापीठ के लिए समय-समय पर नियम और उपनियम बनाकर स्थायीसमिति से स्वीकृत करा लिया करेगी।

(ख) स्थायीसमिति को हिन्दी-विद्यापीठ के उपनियमों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन और परिवर्द्धन आदि करने का पूर्ण अधिकार रहेगा।

(ग) यदि कभी स्थायीसमिति हिन्दी-विद्यापीठ के उद्देश्यों में परिवर्तन और परिवर्द्धन करना चाहेगी, तो उसे एक विशेष अधि-

वेशन इसी कार्य के लिए एक मास की सूचना देकर बुलाना होगा और उस अधिवेशन की गण-पूरक-संख्या १५ होगी।

योजना का १० वाँ प्रस्ताव सर्व-सम्मति ज्यों का त्यों निम्न-लिखित रूप में स्वीकृत हुआ—

(१०) हिन्दी-विद्यापीठ-समिति स्थायीसमिति के अधीन समझी जायगी और बिना स्थायीसमिति की स्वीकृत के हिन्दी-विद्यापीठ की व्यवस्था में किसी प्रकार के परिवर्तन करने का अधिकार उसे न होगा।

२—उपर्युक्त योजना स्वीकृत हो जाने के अनन्तर हिन्दी-विद्यापीठ के लिए सदस्यों के निर्वाचन का विषय उपस्थित हुआ। सभापति महोदय ने इसके विषय में निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किया, जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ—

२—हिन्दी-विद्यापीठ-समिति के सदस्यों के निर्वाचन का विषय आगामी अधिवेशन में उपस्थित हो और सूचना के साथ स्थायी समिति के वर्तमान सदस्यों की सूची भेजकर सदस्यों से प्रार्थना की जाय कि वे कृपया इसमें समिति के लिए ५ सदस्यों के नाम चुनकर सूचित करें।

३—श्रीप्रबन्ध-मंत्रीजी ने प्रस्ताव किया कि स्थायीसमिति के मिति कार्तिक कृ० ३० सं० १९८१ वि० अधिवेशन में स्वीकृत ८ वें मन्तव्य के अनुसार, हिन्दी-विद्यापीठ-समिति के संगठन के पश्चात्, प्रचलित वर्ष के लिए, स्थायीसमिति हिन्दी-विद्यापीठ का आय-व्यय का अनुमान-पत्र जबतक स्वीकृत करे, तबतक के अनिवार्य व्यय के लिए १००) देना स्वीकार किया जाय और यह रुपया विद्यापीठ खाते के नाम डाला जाय। पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया और पं० लक्ष्मीनारायणजी नागर ने इसका विरोध किया। अन्त में प्रस्ताव बहुसम्मति से स्वीकृत हुआ।

तदनन्तर सभापति महोदय को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई।

रामजीलाल शर्मा
प्रधानमंत्री

बंगाल में हिन्दी

महात्माजी का वक्तव्य

हिन्दी के कुछ प्रेमी इस बात पर सन्तुष्ट नहीं है कि मैं बंगाल में केवल लोगों से हिन्दी बोलने पर ज़ोर देता रहूँ और अब तक सभाओं में उसकी हिमायत करता रहूँ। बंगाल-साहित्य-परिषद् की सभा में कुछ चुने हुए लोग थे। पर उसमें भी अंग्रेज़ी के विद्वानों की अनुमति लेकर मैंने हिन्दी में ही अपना भाषण किया। किन्तु हिन्दी के ये प्रेमी तो मुझ से यह भी चाहते हैं कि मैं बंगाल में हिन्दी पढ़ाने का तथा हिन्दी-प्रचार का भी उद्योग करूँ, जैसा कि मेरे द्वारा मद्रास प्रांत में हुआ है। पर मुझे दुःख है कि मैं उनकी इच्छा को पूर्ण नहीं कर सकता। मेरी साधन-सामग्री अब ख़तम होने को आ गई है। फिर कलकत्ते में हिन्दी जाननेवालों की एक भारी तादाद है। उस महलों के नगर में हिन्दी के अख़बार भी हैं। इसलिए कलकत्ते के हिन्दी-प्रेमियों को चाहिए कि वे उसका भार उठा लें। उनके पास धन और विद्वज्जन दोनों हैं। बंगाल के तमाम मुख्य-मुख्य केन्द्रों में वे हिन्दी-पढ़ाई का प्रबंध कर सकते हैं। अवश्य ही ऐसी किसी हलचल से सहानुभूति होगी। परन्तु इसका संगठन स्थानीय उत्साही लोगों के ही द्वारा होना चाहिए। यदि दक्षिण और बंगाल हिन्दी को अपनाने के लिए तैयार किए जा सकें, तो सारे भारत के लिए एक भाषा का प्रश्न आसानी से हो जायगा। किसी जगह मैंने इस कठिनाई को अनुभव नहीं

किया कि मेरी टूटी-फूटी हिन्दी को समझने में लोगों को दिक़त होती है।

कालेज में हिन्दी

प्रेसिडेन्सी कालेज की गणना कलकत्ते के अग्रगण्य कालेजों में है। अब तक प्रेसिडेन्सी कालेज में हिन्दी-भाषा-भाषी छात्रों की शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। इसलिए हिन्दी-भाषा-भाषीवालों को इसमें भर्ती होने में बड़ी अड़चन पड़ती थी। इस वर्ष वहाँ के प्रधानाध्यापक मि० स्टेपेनशन की चेष्टा में कालेज में हिन्दी पढ़ाने के लिए एक अध्यापक नियुक्त करने का प्रबन्ध किया गया है। यह प्रबन्ध तब ही सफल होगा जब हिन्दी-भाषा-भाषी छात्र मैट्रिकुलेशन-परीक्षा में योग्यतापूर्वक उत्तीर्ण हो प्रेसिडेन्सी कालेज में बहुसंख्या में भर्तीहों। आशा है, हिन्दी-भाषा भाषी छात्र इस अवसर का उपयोग करेंगे।

—देवीप्रसाद खेतान

श्रीमद्दयानन्द-कालेज और हिन्दी

निस्सन्देह वह अत्यन्त शुभ घड़ी थी जब कि आर्यसमाज के महानुभावों ने ऋषि दयानन्द की स्मृति में श्रीमद्दयानन्द कालेज खोलने का निश्चय किया। यदि विचार-दृष्टि से देखा जाय तो पता लगेगा कि आर्यसमाज की उन्नति और सामान्यतः हिन्दुओं का उद्धार दयानन्द-कालेज की उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ-साथ होता चला आया है और चला जायगा। अविद्या के निराकरण, सत्य के प्रकाश कुरीतियों के नाश तथा हिन्दुओं के पुनरुद्धार के लिए जो अपूर्व काम कालेज ने किया है, हम आज उसका उल्लेख नहीं करते। प्रत्युत हम एक साधारण बात से दर्शाना चाहते हैं कि किस प्रकार से कालेज ने न केवल पंजाब या आर्यसमाज को ही संघटित किया है, प्रत्युत अखिल भारतवर्ष की जातीयता के निर्माण में भी बहुत सहायता दी है।

ऋषि दयानन्द पहला संशोधक था जिसने बूढ़े भारत के रोग-निदान को यथार्थ समझा। जहाँ उसने इस रोग के निराकरण के लिए प्राचीन वैदिक साहित्य का प्रचार किया वहाँ उसने जाति संघटित करने के लिए एक राष्ट्रभाषा का अमोघ प्रयोग भी हमें बताया। ऋषि के दिल में भारत के स्वावलम्बन की इच्छा अत्यन्त प्रबल थी। जिस जातिके भाव भिन्न हों उस जातिमें किसी प्रकार की उन्नति स्वप्न-मात्र है। भावों की एकता के लिए भाषा का एक होना आवश्यक है, अतः ऋषि ने आर्यसमाज के उपनियमों में हिन्दी या आर्यभाषा प्रत्येक आर्य के लिए अनिवार्य नियत की।

दयानन्द-कालेज के संस्थापकों ने इस मर्म को समझा और कालेज में प्रत्येक विद्यार्थीके लिए हिन्दी-पढ़ना अनिवार्य कर दिया। यह बात इस समय हमें साधारण प्रतीत होती है परन्तु ज़रा उस अवस्था की ओर ध्यान दीजिए जो कालेज खुलने के समय पंजाब में थी।

मुसलमानों का पंजाब पर अधिक अधिकार रहा है, अतः स्वभावतः यहाँ पर उर्दू का अधिक प्रचार था और अभी तक भी है। सरकारी महकमों में उर्दू की ही पूछ थी। हिन्दुओं के अन्दर भी बड़े-बड़े उर्दू और फ़ारसी के पंडित होते थे और उस समय आजकल से भी अधिक प्रायः लोग सरकारी नौकरी के लिए पढ़ते थे। ऐसी अवस्था में कालेज के संस्थापकों का यह निश्चय उनकी अपूर्व बुद्धिमत्ता और साहस का परिचय देता है।

शुद्ध भावों और महान् आशाओं से प्रेरित किया हुआ यह काम शनैः शनैः, परन्तु दृढ़ता से, जड़ पकड़ता गया। ज्यों-ज्यों आर्यसमाज के शिक्षा-विभाग का विस्तार हुआ, त्यों-त्यों हिन्दी का प्रचार भी उत्तरोत्तर उन्नति करता गया। कालेज की स्थापना ने एक ऐसी प्रवृति की, नींव धरी कि थोड़े ही काल में न केवल आर्यसमाज की अनेक संस्थाएँ क़ायम होगईं; प्रत्युत अन्य लोगों ने भी उत्साहित होकर अपनी-अपनी संस्थाएँ खोलदीं। इस समय हमारा यह विषय नहीं कि दयानन्द-कालेज का प्राइवेट संस्थाओं पर क्या प्रभाव

पड़ा। परन्तु हम यह दर्शाना चाहते हैं कि सब आर्यस्कूलों ने हिन्दी के प्रचार में सराहनीय काम किया। सनातनधर्म के स्कूलों ने भी हिन्दी को अपनाया। इस समय आर्यसमाज की संस्थाओं में जितने विद्यार्थी हिन्दी पढ़ते हैं उतने, यदि हम ग़लती नहीं करते, सम्भवतः सारी अन्य संस्थाओं में भी न होंगे।

दूसरी विशेष बात जिसका हम यहाँ ज़िकर करना चाहते हैं साहित्य के विषय में है। हमें इस बात पर संतोष है कि आर्यस्कूल और कालेज हिन्दी के साहित्य की वृद्धि में भी यत्न करते हैं। दयानन्द-कालेज लाहौर का रिसर्च विभाग विशेषतः उल्लेखनीय है। हम संचालकों को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते कि उन्होंने यह निश्चय करके कि इस विभाग की पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित की जायँ, अपनी विलक्षण बुद्धि और हिन्दी के तईं सच्ची कृतज्ञता का परिचय दिया है।

जो जाति अपनी भाषा को छोड़कर दूसरी भाषा में लिखती और सोचती है वह शीघ्र ही नष्ट हो जाया करती है। हम प्रति दिन देखते हैं कि भारतवासियों के अतिरिक्त प्रायः सभी विद्वान् अपनी जाति की भाषा में ही लिखते हैं। अँगरेज विद्वानों के लेख जर्मन पत्रिकाओं में भी अँगरेज़ी ही में छपते हैं। हमारा ठीक उस कृतघ्न मनुष्य का सा हाल है जिसकी माता तो भूखी मर रही है; परन्तु वह दूसरों को मिठाई खिला रहा है! अतः अपनी भाषा को छोड़-कर साहित्य की वृद्धि के लिए अन्य भाषा का आश्रय लेना सर्वथा पाप है। जो जो संस्थाएँ इस अंश में हिन्दी का प्रयोग करती हैं वे अपने धर्म का पालन करती हैं और प्रशंसा की पात्र हैं।

दयानन्द-कालेज ने इस बात में भी सब के लिए एक मिसाल क़ायम की है जिसका सब संस्थाओं तथा लेखकों को अनुकरण करना चाहिए। हमारी जाति का गौरव और उन्नति इसी बात में है कि यदि हमारे विचार अन्य लोग जानना चाहें तो वे हमारी भाषा के द्वारा जानें, न कि हमारा यह यत्न हो कि हम उनकी ही भाषा में अपने विचारों को प्रकट करें।

परन्तु हम दयानन्द-कालेज तथा आर्यसमाज के शिक्षा-विभाग से कुछ अधिक आशा रखते हैं। आज हमारे इस बढ़ते हुए गौरव का जन्म दिन है। आज वह शुभ घड़ी है जब कि पवित्र आत्माओं ने इस प्रवृति का संचार किया था। ऐसे शुभ अवसर पर विचारी हुई बात अवश्य कल्याणकारी होगी। इस भाव से प्रेरित होकर हम एक-दो विचार पेश करने का साहस करते हैं।

हिन्दी की यथोचित उन्नति तब तक नहीं हो सकती जब तक इसे शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया जाता। हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि प्रायः लोग हिन्दी जानते हुए भी इसका प्रयोग नहीं करते। कारण क्या? बाल्य-काल में जो संस्कार मन पर पड़ते हैं उन्हीं पर प्रायः मनुष्य का भविष्य बहुत कुछ निर्भर करता है। जन-संख्या-विवरण से विदित होता है कि बालकों को पहले उर्दू पढ़ायी जाती है। जो बालक अपनी शिक्षा को उर्दू से आरंभ करता है उस के लिए यह असम्भव नहीं तो कठिन तो अवश्य है कि वह हिन्दी को अपना सके। यह हो सकता है कि वह हिन्दी भली भांति लिख पढ़ सके; परन्तु उस के प्राइवेट जीवन में उर्दू की ही प्रधानता रहेगी; क्योंकि निरंतर वह उर्दू का ही अभ्यास करता रहा है। उसकी शिक्षा का माध्यम उर्दू होने से हिन्दी का साम्राज्य उसके मनोमन्दिर में स्थापित नहीं हो सकता।

शिक्षा का माध्यम न होने से हिन्दी-साहित्य को भी बड़ी भारी हानि पहुँच रही है, और इसके प्रतिकूल उर्दू के साहित्य की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। सन् १९१२—२१ तक पंजाब में ६२८२ पुस्तकें उर्दू की प्रकाशित हुई हैं; परन्तु क्या शोक का स्थान नहीं कि इन दश वर्षों में हिन्दी में केवल ७४८ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। यह हिन्दी की शोचनीय अवस्था तभी दूर हो सकती है जब कि हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय।

प्रायः कहा जाता है कि पंजाब में अभी उर्दू के बिना निर्वाह नहीं हो सकता। माता-पिता अपने बच्चों को राजकार्य-सूत्रवश उर्दू पढ़ाते हैं, अतः हिन्दी शिक्षा का माध्यम नहीं हो सकती।

हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि अभी हम उर्दू के बिना निर्वाह नहीं कर सकते। परन्तु हम तो यह चाहते हैं कि कम से कम आर्य तथा हिन्दू-स्कूलों में जो स्थान इस समय उर्दू को दिया जाता है वह हिन्दी को दिया जाय, उर्दू के स्थान में हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय और उर्दू को वैकल्पिक बना दिया जाय। जिसकी इच्छा हो उर्दू पढ़े या न पढ़े। हमारा तो यहाँ तक भी विचार है कि यदि गौणरूप से सब को ही उर्दू पढ़ा दी जाय तो कोई बुरी बात नहीं। जहाँ इस परिवर्तन से हिन्दी की वृद्धि होगी वहाँ पर बालकों का भी बोझ कम हो जायगा। हिन्दू-बालकों के लिए स्वभावतः हिन्दी उर्दू से सुगम है। आवश्यकता यह है कि माता-पिता इस परिवर्तन के मर्म को समझें। उनके बच्चे पाँचवीं या आठवीं श्रेणी पास करने के पश्चात् तो सरकारी नौकरी प्राप्त नहीं कर सकते। नहीं, उन्हें उस समय उर्दू की आवश्यकता होती है। अतः हम नहीं समझ सकते कि आर्य तथा हिन्दू लोग क्यों अपने बच्चों की शिक्षा उर्दू से आरम्भ करते हैं। हमारी स्कीम के अनुसार जिस समय उनके बालक नौकरी या किसी कारोबार के योग्य होते हैं तो उन्हें उर्दू का पर्याप्त ज्ञान हो जाता है। अतः आज, इस शुभ दिन में, हम यह विचार आर्य तथा हिन्दू-जनता के सामने प्रस्तुत करते हैं, और आशा करते हैं कि वे इस मर्म को समझकर अपनी सन्तान और जाति को उन्नत करेंगे।

परन्तु हम समाप्त करने से पूर्व संस्थाओं के संचालकों के चरणकमलों में भी अपने प्रार्थना-पुष्प का उपहार समर्पण करना चाहते हैं।

सर्वसाधारण लोग प्रायः दीर्घदर्शी नहीं हुआ करते। प्रत्येक देश और काल में महापुरुष ही जातियों को उन्नति की ओर ले जाया करते हैं। महापुरुषों की दीर्घ दृष्टि आगामी काल को शीघ्र देख लेती है, अतः वे जाति को नई और उपयोगी बातों को ग्रहण करने के लिए प्रेरणा करते हैं। शिक्षा-विभाग में ऐसे महापुरुषों की अधिक आवश्यकता है; क्योंकि प्रत्येक जाति का भविष्य उसकी शिक्षा पर

आश्रित है। यही कारण है कि संसार में महापुरुष शिक्षा-विभाग की ओर अधिक ध्यान देते रहे हैं और दे रहे हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे महापुरुष अवश्य इन बातों को सोच रहे हैं और समय-समय पर हमें नये विचार दे रहे हैं। यह इन्हीं महानुभावों के विचार का परिणाम है कि लाहौर के दयानन्द-हाईस्कूल में हिन्दी का साम्राज्य है।

परन्तु हमारी उत्कट इच्छा है कि लाहौर से बाहर भी आर्य स्कूलों में हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बना दिया जाय। यह सम्भव है कि ऐसा करने में कष्ट हो; परन्तु अन्त में इससे हमारे स्कूलों की हर प्रकार से उन्नति होगी।

दयानन्द-कालेज की प्रबन्ध-कर्तृ-सभा ने सम्भवतः इसे कर्म में परिणत करने के विचार से ही दयानन्द-कालेज जालंधर के साथ जे० वी० श्रेणी खोली है। इसमें हिंदी पढ़ानेवाले अध्यापक तैयार किये जायँगे और उनकी शिक्षा का माध्यम हिंदी होगा। यह क्लास पहली जून के शुभ दिन आरम्भ होगी। हम आनन्द से अनुभव करते हैं कि इस अत्यन्त आवश्यक कार्य का कालेज-कमेटी ने प्रशंसनीय आरम्भ किया है। संस्थाओं के संचालक प्रायः हिंदी पढ़ानेवालों के अभाव की शिकायत किया करते हैं। अब उनकी शिकायत दूर हो जायगी और हम आशा करते हैं कि अब वे पहली श्रेणी से उर्दू का स्थान हिंदी को देने में देरी न करेंगे।

परन्तु इसके साथ ही संचालक महानुभावों से अनुरोध-पूर्वक हम यह भी प्रार्थना करते हैं कि वे इस बात का निश्चय करलें कि उनके स्कूल में कोई अध्यापक ऐसा न हो जो हिन्दी से अनभिज्ञ हो।

अतः हम आशा करते हैं कि दयानन्द-कालेज-कमेटी ने कर्म रूप में जो हमारे सामने हिंदी को शिक्षा का माध्यम बनाने की मिसाल क़ायम की है, उसका अनुसरण करती हुई आर्यजनता तथा आर्यसंस्थाओं के संचालक शीघ्र ही हिंदी को शिक्षा का माध्यम बनाने का आज कालेज के जन्म-दिन पर निश्चय करके

कालेज और ऋषि के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति का परिचय देंगे।

हम दयानन्द-कालेज की प्रबन्ध-कर्तृ-सभा को इसके लिए हार्दिक धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि वे हिन्दी को उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए यत्न करते रहेंगे।

रामचन्द्र शर्मा एम० ए०

[आर्य-जगत]

हिन्दी का ह्रास

["तरुण राजस्थान" में श्रीयुत् पं० शिवकुमारजी लिखते हैं—]

जोधपुर-राज्य में राष्ट्रभाषा हिन्दी है और तदनुसार प्रायः सर्वत्र हिन्दी ही में कार्य होता है। परन्तु कुछ काल से अंग्रेजी भाषा अपना अधिकार बैठा रही है। कोष-विभाग और आडिट आफिस में, जिसके अध्यक्ष एक अंग्रेज़ महाशय हैं, हाल ही में सब कार्य अंग्रेज़ी में होने लगे हैं। सुनते हैं, बाहिर हकूमतों में भी हिन्दी-बहीखातों के स्थान में अंग्रेज़ी कैशबुकादि प्रवृत्त होनेवाली है। यदि ऐसा होगया तो मारवाड़ को और साथ में मातृभाषा हिन्दी को बड़ी क्षति पहुँचेगी। अतः देश के विद्वान् इस ओर ध्यान दें। हिन्दू-राज्य में हिन्दी पर इस प्रकार अन्याय न हो, ऐसा प्रबन्ध करें।

आगरा की नागरी-प्रचारिणी सभा

१—सभा की ओर से एक पुस्तकालय और एक वाचनालय सभा-भवन में स्थापित है। संध्या समय नित्य वाचनालय खुलता है। उपस्थिति पूर्वापेक्षा बहुत बढ़ गई है। ३०—३२ समाचार-पत्र आते हैं। पुस्तकालय में क़रीब ७०० पुस्तकें मौजूद हैं। शीघ्र ही और भी २००—२५० पुस्तकें आनेवाली हैं।

२—कवि-सम्मेलन समय समय पर होता रहता है। आगरे के तमाम साहित्य-प्रेमी इसमें भाग लेते हैं। व्याख्यान और लेखपढ़न भी होता है।

३—अदालतों में हिन्दी-प्रचार का कार्य यथासम्भव हो रहा है। विशेष कार्य आगामी मास से प्रारम्भ होगा।

४—सम्मेलन-परीक्षाओं के लिए एक विद्यालय स्थापित है, जिसमें प्रथमा और मध्यमा की पढ़ाई होती है। गतवर्ष ६० परीक्षार्थी परीक्षा देना चाहते थे। इस वर्ष भी इतने ही तैयार हो जावेंगे।

५—नगर में हिन्दी का प्रचार करने की ओर सदा सभा प्रयत्नशील रहती है।

६—सभा के पास बड़े ही अच्छे स्थान पर भूमि का एक बड़ा भाग है, जिस पर एक बिशाल भवन बनने की ज़रूरत है। सभा ने इसके लिए अलवर और अवागढ़-नरेश से प्रार्थना की है। आशा है, इसमें उसे सफलता मिलेगी।

७—और भी कितने ही काम सभा करना चाहती है, पर द्रव्याभाव के कारण असमर्थ है।

—महेन्द्र, मंत्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

सम्मेलन का सोलहवाँ अधिवेशन सौभाग्य से इस बार श्री ब्रजबिहारी, गोवर्धनधारी, मुरारी की ललित लीलाभूमि, ब्रज-भाषा की केंद्रस्थली, कालन्दी कूल, वंशीबट-निकट, केकी कलरव-कूजित वृन्दाबनमें होनेवाला है; जहां ब्रजभाषा साहित्यागार श्रद्धेय श्री राधाचरण गोस्वामीजी महाराज स्वयं विराजमान हैं। अतएव सभापति भी अबके ऐसा होना चाहिये जो ब्रजभाषा का विद्वान, रसिक, अनुरागी या कवि हो। मैं समझता हूँ कि निम्नलिखित

महोदयोंमें वृन्दावनी सम्मेलन के सभापति होनेकी पूर्ण योग्यता है। ये अपने अपने गुणों से सम्मेलन को सफल और सार्थक बनाने में समर्थ हैं। मैंने यही पांच नाम सम्मेलन की स्थायीसमिति को भेजे हैं—

[१] मंगलाप्रसाद-पारितोषिक-प्राप्त श्री पं० पद्मसिंह शर्मा

[२] सुकवि श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' बी० ए०

[३] मंगलाप्रसाद-पारितोषिक-प्राप्त रायबहादुर पंडित गौरी-शंकर-हीराचंद ओझा

[४] महामहोपाध्याय पंडित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी शास्त्री, व्याकरणाचार्य।

[५] व्याख्यान-वाचस्पति पण्डित दीनदयालु शर्मा।

(१) पं० पद्मसिंहजी संस्कृत, उर्दू, हिन्दी के सिवा व्रज-भाषा के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। आपने विहारी सतसईपर टीका लिखी है जिसकी भूमिका पर ही सम्मेलन ने मं० प्र० पा० प्रदान कर आप को सम्मानित किया है। आप समालोचक भी हैं। आप की रचना बड़ी ही रुचिर होती है।

(२) रत्नाकरजी तो व्रजभाषा-साहित्य के रत्नाकर ही हैं। आपने भी विहारी-सतसई पर बड़ी अच्छी टीका लिखी है जो अभी छप रही है। आप अंग्रेज़ी, संस्कृत, फ़ारसी और हिन्दी के पंडित हैं। आप व्रजभाषा के सर्व्वश्रेष्ठ कवि हैं। आपके कवितापाठका ढंग ही निराला है। आप जिस समय कविता-पाठ करते हैं, मन मुग्ध हुए बिना नहीं रहता।

(३) ओझाजी सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता हैं। आप अपने विषयके अद्वितीय विद्वान् हैं। आप को भी मं० प्र० पा० मिल चुका है। आप हिन्दी के बड़े प्रेमी हैं। आप जो कुछ लिखते हैं, हिन्दी में लिखते हैं। पीछे अंगरेज़ी में उल्था करते हैं।

(४) चतुर्वेदीजी संस्कृतके धुरन्धर विद्वान हैं। आपने "संस्कृत-चन्द्रिका" और "हिन्दी-ब्रह्मचारी" का सम्पादन योग्यतापूर्वक कई

वर्षों तक किया है। आजकल भी आप "चतुर्वेदी" नामक हिन्दी पत्रका सम्पादन करते हैं। आप संस्कृतके सिवा हिन्दीमें भी अच्छी कविता करते हैं। आप जयपुर रहकर भी व्रजभाषा-भाषी हैं और उसके अनुरागी हैं। आप सुवक्ता भी हैं। आपके व्याख्यान बड़े हृदयग्राही होते हैं।

(५) शर्मा जी का जीवन हिन्दी-सेवामें ही बीता है। अटक से कटक और कर्णाटकसे काश्मीरतक आपने हिन्दी का डंका बजा दिया है। आपकी वाणी से हिन्दी का बड़ा उपकार हुआ है। आप प्रसिद्ध सुवक्ता हैं। आपके व्याख्यानों में हज़ारोंकी भीड़ होती है। इसके सिवा आप व्रजभाषा तथा व्रजभूमि के बड़े भक्त हैं। व्रजमें आप का प्रभाव भी अच्छा है। द्वितीय पंजाब-प्रादेशिक हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति भी इस बार हो चुके हैं।

आशा है, सम्मेलन-हितैषी और व्रजभाषानुरागी इन्हीं पाँचों के लिये सम्मति देंगे।

निवेदक—
जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी

षोड़श हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

हिन्दी-साहित्य-प्रेमियों से निवेदन

१६ वें हिन्दी सा० स० की स्वागत समिति ने सम्मेलन की सफलता के लिये निम्न लिखित समितियां बनाई हैं:—

(१) प्रचार-समिति, (२) अर्थ-समिति, (३) साहित्य-समिति (४) साहित्य-प्रदर्शन-समिति, (५) स्वागत-प्रबन्ध-समिति, और (६) पण्डाल-समिति।

साहित्य-प्रदर्शन-समिति—हिन्दी-साहित्य-सम्बन्धी प्रकाशित अप्रकाशित ग्रन्थों, सामयिक पत्र-पत्रिकाओं, शिला-लेखों, ताम्र-पत्रों तथा सिक्कों आदि के संग्रह और अधिवेशन के अवसर पर उन्हें प्रदर्शित करने की व्यवस्था करेगी।

साहित्य-समिति—कवि-सम्मेलन, कवि-दरबार, सम्पादक-सम्मेलन और उपयोगी विषयों पर विद्वानों द्वारा गवेषणा-पूर्ण निबन्ध लिखवाने की व्यवस्था करेगी।

सम्मेलन के अधिवेशन पर प्रायः कवि-सम्मेलन भी हुआ करता है। किन्तु अभी तक इसका क्षेत्र अत्यन्त परिमित रहा है और उसे २२ करोड़ हिन्दुओं की मातृभाषा तथा ३३ करोड़ भारतीयों की राष्ट्रभाषा के कवियों का सम्मेलन तो क्या, छोटा-मोटा प्रांतीय कवि-सम्मेलन कहते भी संकोच होता है। स्वागत-समिति का विचार है कि इस बार इसे अखिलभारतीय स्वरूप दिया जाय और ऐसी व्यवस्था की जाय, जिससे उक्त सम्मेलन हिन्दी-भाषियों के अभिमान की वस्तु हो सके। सभी लब्ध-प्रतिष्ठ कवियों और कविता-प्रेमियों को आमंत्रित करने तथा उनकी सम्मति उपलब्ध करने की व्यवस्था की जा रही है। आशा है, काव्य-प्रेमी सज्जन इस महत्वपूर्ण कार्य में स्वागत-समिति को अपना सहयोग देंगे।

सम्पादक-सम्मेलन का विचार भी इधर कई वर्षों से हो रहा है। हिन्दी-साहित्य की श्री-वृद्धि और सुरक्षा के लिए हिन्दी-पत्रों के सम्पादकों का संगठित होना आवश्यक है। स्वागत-समिति का विचार है कि सम्मेलन के अधिवेशन के समय सम्पादक-सम्मेलन भी किया जाय। किन्तु समिति के इस निश्चय का कार्यान्वित होना हिन्दी-पत्र-सम्पादकों के सहयोग पर निर्भर है। सम्पादक-सम्मेलन का स्वरूप क्या रहे, उसका कार्य-क्रम क्या होगा, आदि आदि बातों का निश्चय हमारे विद्वान् सम्पादक भली प्रकार कर सकते हैं। हिन्दी-पत्र-सम्पादकों से इस कार्य में सहयोग करने का अनुरोध है। आशा है, वे इसकी सफलता के लिए अभी से उद्योग करेंगे।

प्रति वर्ष की भाँति सम्मेलन के अवसर पर पढ़े जाने के लिए निबन्ध लिखवाने की व्यवस्था इस वर्ष भी हो रही है। किन्तु इस वर्ष इस बात की ओर विशेष ध्यान रखा गया है कि निबन्धों के विषय कम हैं और आये हुये सभी उपयोगी निबन्ध पढ़े जायँ। विद्वान

लेखकों, कवियों और साहित्य-प्रेमियों से इस ओर ध्यान देने को हमारा साग्रह अनुरोध है।

(१) सर्व-सम्मति से निश्चय हुआ कि १६ वें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्वागत-कारिणी-समिति के सदस्यों का शुल्क १) एक रुपये से बढ़ाकर ५) रु० कर दिये जावें।

(२) सर्व-सम्मति से निश्चय हुआ कि स्वागत-कारिणी-समिति के सभासदों के लिए मथुरा ज़िले को जो हद रक्खी गई थी, वह उठा दी जाय।

निवेदकः—

वृन्दाबन (मथुरा) — देवीप्रसाद सकसेना, अ० प्रधान मन्त्री

अमितगति-श्रावकाचार—लेखक—श्रीमदमितगतिआचार्य; वचनिकाकार—श्री पं० भागचन्द्रजी; प्रकाशक—श्रीराजमल बड़जात्या, मन्त्री—मुनि श्री अनंतकीर्ति दि० जैन ग्रन्थमाला, कालबादेवी, बंबई; डबलक्राउन साइज़ पृष्ठ-संख्या ४४०; कागज़ सुन्दर और पुष्ट, छपाई चित्ताकर्षिणी; सजिल्द, मूल्य १॥=)

मुनि श्री अनंत कीर्ति दि० जैन ग्रन्थमाला का यह दूसरा ग्रन्थ है। पहला ग्रन्थ इस माला में 'मूलाचार' प्रकाशित हुआ है, जिसका जैन-समाज में प्रचुर आदर हुआ है। श्रीअमितगति आचार्य दो हुए हैं। एक तो मुंजराजा के शासन-काल में—११ वीं विक्रमीय शताब्दि में—हुए और दूसरे इनके गुरु के गुरु आचार्य नेमिषेण के गुरु थे। यही अमितिगति आचार्य 'श्रावकाचार' के कर्त्ता माने जाते हैं।

जैन-साहित्य में इस संस्कृत-ग्रन्थ का अच्छा मान है। श्रावकों के आचारों का इसमें बड़ा ही सुन्दर विवेचन किया गया है। ग्रन्थ पंद्रह परिच्छेदों में विभक्त हैं। जिनमें क्रमशः श्रावकाचार का वर्णन किया गया है। इसके टीकाकार महोदय एक प्रतिष्ठित और ख्यातिनामा जैन पंडित हैं। टीका की भाषा पंडिताऊ पुरानी हिन्दी है, जो स्वाध्याय-प्रेमियों को आज भी खूब पसन्द आती है। वचनिका कहीं-कहीं पर अस्पष्ट सी हो गई है। कदाचित प्राचीन टीका-शैली या वाक्यविन्यास से ऐसा हुआ हो।

जैन-समाज जिस उत्साह और प्रेम से अपना लुप्तप्राय अमूल्य साहित्य आजकल प्रकाशित कर रहा है उसके लिए वह शतशः धन्यवाद का पात्र है।

स्त्री-कर्त्तव्य-शिक्षा—लेखक—श्री पंडित छबिनाथ पांडेय; प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य-कार्यालय, ५१-५२, बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता; डिमाई आठपेजी साइज़; पृष्ठ-संख्या ४०८; क़ागज़ पुष्ट, छपाई सुन्दर; सजिल्द २।), रेशमी जिल्द २॥)

स्त्री-कर्त्तव्य पर आजकल अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। बहुत-सी तो उनमें बिल्कुल ही साधारण हैं, कुछ ऊँचे दरजे की हैं। यह पुस्तक बहुत ऊँची तो नहीं; पर साधारण भी नहीं है। गृहिणी गृह की शोभा, स्त्री-शिक्षा, गृहिणी-कर्त्तव्य, घर की सफ़ाई, गहना या आभूषण, पति-पत्नी-सम्बन्ध, गर्भाधान, सौरी घर, बाल-चिकित्सा, बालकों की शिक्षा, स्त्री-रोग-चिकित्सा, व्यंजन विधान, गृह-शिल्प आदि आवश्यक विषयों पर लेखक ने प्रकाश डाला है। इनमें से कुछ विषयों का तो बहुत अच्छा विवेचन किया है। बाल-चिकित्सा और बालकों की शिक्षा पठनीय है। व्यंजन विधान बहुत साधारण है। भाषा सरल और शैली सुन्दर है। सब मिलाकर पुस्तक पढ़ने योग्य है।

सीता की अग्नि-परीक्षा—लेखक—श्री राय कालीप्रसन्न घोष बहादुर विद्यासागर; अनुवादक—श्रीठाकुर देवबली सिंह; प्रकाशक—हिन्दी-पुस्तक-भवन, १८१ हरीसन रोड, कलकत्ता; डबलक्राउन साइज़, पृष्ठ संख्या १२०; काग़ज़-छपाई साधारण; मूल्य ॥=)

स्वर्गीय रायबहादुर कालीप्रसन्न घोष विद्यासागर बंगाली साहित्य के एक असाधारण लेखक थे। इस छोटी सी पुस्तक में उन्होंने इस बात को प्रमाणित करने की यथेष्ट चेष्टा की है कि सीता जी की अग्नि-परीक्षा केवल कवि-कल्पना ही नहीं है किन्तु वह एक सच्ची और महत्वपूर्ण प्रामाणिक घटना है। पुस्तक में दो परिच्छेद हैं। पहला काव्य और इतिहास की दृष्टि से तथा दूसरा

विज्ञान की प्रामाणिकता से लिखा गया है। दोनों ही परिच्छेद रमणीय हैं। ग्रन्थकार महोदय में एक साथ ही काव्य, इतिहास और विज्ञान की ऊँची प्रतिभा झलकती है। करुण रस का बड़ा ही प्रभावोत्पादक चित्र खींचा है। पढ़ते-पढ़ते तन्मयता का आनंद आ जाता है। जी चाहता है कि एक बार लेखक की लेखनी चूम ले। इसी प्रकार वैज्ञानिक प्रमाणों द्वारा सीताजी की अग्नि-परीक्षा सत्य घटना-मूलक प्रमाणित करने का सुयोग्य लेखक ने जो प्रयत्न किया है वह भी उनके प्रकांड पांडित्य का पूर्ण परिचय देता है। प्रस्तुत पुस्तक-जैसी ऊँची पुस्तकें हमारे देखने में तो बहुत ही कम आई हैं। प्रत्येक काव्य, इतिहास और विज्ञान-प्रेमी को यह पुस्तक अवश्यमेव पढ़नी चाहिए। ढेर के ढेर उपन्यासों और गल्पों के अनुवादकों एवं प्रकाशकों को इस ग्रन्थ-रत्न के अनुवादक और प्रकाशक का अनुकरण कर ऊँचे साहित्य का प्रणयन और प्रकाशन करना चाहिए।

मुक्तधारा—लेखक—कविसम्राट् श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर; अनुवादक—श्री रमाचरण; प्रकाशक—श्री पंडित शिवनारायण मिश्र—प्रकाश पुस्तकालय, कानपुर; डबलक्राउन साइज़; पृष्ठ-संख्या ११४; काग़ज़ छपाई साधारणतः संतोष-जनक, मूल्य १)

'प्रकाश-पुस्तक-माला' की यह ३० वीं पुस्तक है। मूल-लेखक के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। रवीन्द्र बाबू ने इस छोटे से नाटक में स्वतंत्रता की सच्ची भावाभिव्यक्ति बड़ी ही सुन्दरता से अंकित की है। कल्पना कल्पनातीत है, इसमें संदेह नहीं। दार्शनिक और सामाजिक दोनों ही उच्च भावों का इसमें सामंजस्य किया गया है। अनुवाद भी साधारण रूप से अच्छा है। पद्यानुवाद हमें संतोष-जनक प्रतीत नहीं हुआ। कहीं-कहीं पर गद्य भी अस्पष्ट सा हो गया है। इस नाटक का एक अनुवाद अन्यत्र भी प्रकाशित हुआ है। वह भी साधारण ही रहा है। ऐसे ग्रन्थों के अनुवाद में योग्यतम लेखकों को हाथ लगाना चाहिए, यह हमारा नम्र निवेदन है।

प्राचीन भगवद् गीता—लेखक (?) और प्रकाशक—श्री स्वामी मङ्गलानंदपुरी, सन्यासी—अतरसूया प्रयाग; डबलक्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ९२; काग़ज़-छपाई साधारण; मूल्य ।≈) सजिल्द ॥)

इस भगवद् गीता में कुल ७० श्लोक हैं। यह गीता बालीद्वीप में कवि-लिपि में लिखी प्राप्त हुई है, जिसके सम्बन्ध में डाकृर नरहर गोपाल सर देशाई महाशय ने सन् १९१४ ई० के जुलाई के Modern Review में The Bhagwad Gita from the Island of Bali शीर्षक लेख में अपने विचार प्रकट किये थे। बालीद्वीप जावाद्वीप के पास है। वहां जाकर देशाई महोदय ने इस सत्तर श्लोकी गीता का सब से पहले दर्शन किया और उस पर अपने विचार भी प्रकट किये। गीता-रहस्य में स्वर्गीय लोकमान्य तिलक महाराज ने इस विषय पर कुछ महत्वपूर्ण पंक्तियाँ लिखी हैं, जिनके पढ़ने से मालूम होता है कि वह इसे प्रामाणिक मानने में बहुत हिचकते थे। स्वामी मंगलानंदजी ने २८ पृष्ठों में यह सिद्ध करने के लिये कि गीता सत्तर श्लोकी ही है, अच्छा विवेचन किया है। पर यह सब देखने पर भी हम यह मानने के लिए असमर्थ ही हैं कि मूल गीता सत्तर श्लोकी है। सत्तर श्लोकों में गीता की ठीक-ठीक संगति नहीं बैठती। और यह भी कुछ युक्तियुक्त नहीं समझ पड़ता है कि सत्तर श्लोकों के अतिरिक्त जितने भी श्लोक वर्त्तमान गीता में मिलते हैं, वे सब प्रक्षिप्त या टीका रूप में हैं। फिर भी यह एक नवाविष्कार है। आशा है, इस पर विवेचन करके विद्वान् लोग किसी निश्चित सिद्धान्त पर अवश्य पहुँचेंगे। 'रिसर्च'-प्रेमियों को गीता का यह नवाविष्कृत संस्करण ज़रूर देखना चाहिए।

—"साहित्यानंद"

आवश्यक सूचना

निम्नलिखित सज्जनों को सम्मेलन-पत्रिका का जो अंक भेजा जाता है, वह वापस आता है। अतः निवेदन है कि ये महानुभाव अपना ठीक पता लिखने की कृपा करें।

१—श्रीमंत्री हिन्दी-साहित्य-परिषद, कलकत्ता

२—श्रीयुत ला० राधेलालजी, मा० गेंदामल प्रभुदयालु, अम्बाला शहर

३—श्रीयुत आनरेबुल रायसाहब श्री गोविन्दलालजी पुरोहित आनरेरी मैजिस्ट्रेट, जबलपुर

४—श्री मंत्री नागरी-प्रचारिणी-सभा, कलकत्ता

आवश्यकता

शाखा-गुरुकुल कुरुक्षेत्र ज़िला करनाल के लिए एक ऐसे अध्यापक की आवश्यकता है जो उच्च कक्षाओं में हिन्दी पढ़ा सके, साथ ही कविता तथा निबन्ध-लेखन आदि का अभ्यास करा सके। वेतन ३०) से ४५) मासिक तक योग्यतानुसार दिया जायगा। सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण होनेवाले आवेदकों के आवेदन-पत्रों पर विशेष ध्यान दिया जायगा।

भारतीय-राजस्व अर्धमूल्य में

सम्मेलन-पत्रिका के ग्राहकों को विशेष लाभ

श्रीयुत भगवानदासजी केला ने कृपा पूर्वक अपनी 'भारतीय राजस्व'-नामक पुस्तक सम्मेलन-पत्रिका के ग्राहकों को अर्द्ध मूल्य में देने का निश्चय किया है। इसमें भारत की आर्थिक पराधीनता और आर्थिक स्वराज्यकी आवश्यकता आदि महत्वपूर्णप्रश्नों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

सम्मेलनपत्रिका के अर्थशास्त्र-प्रेमी ग्राहकों को केलाजी की इस कृपा से लाभ उठाना चाहिए।

पता—श्रीयुत भगवानदास केला

प्रेममहाविद्यालय, वृन्दाबन

प्रचार-मंत्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।

आवश्यक सूचनाएँ

[१]

विवरण पत्रिका के पृष्ठ २७ में मुद्रित सूचना के अनुसार शुल्क भेजने की अन्तिम तिथि के २ मास पूर्व तक न छपने के कारण इस वर्ष प्रथमा--मध्यमा परीक्षा में नीचे लिखी पुस्तकों से प्रश्न-पत्र नहीं दिये जायँगे।

प्रथमा परीक्षा

(१) धर्म-शिक्षा (हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग)
(२) गुप्त-निबन्धावली (भारतमित्र कार्यालय, कलकत्ता)

मध्यमा परीक्षा

(१) हिन्दी-काव्यमें नवरस (हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग)
(२) शिवसिंहसरोज (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ)
(३) यूरोपीय दर्शन (पाण्डेय रामावतार शर्मा)

प्रथमा की संख्या २ तथा मध्यमा की संख्या १,२,३ की पुस्तकों के बजाय उसी विषय की विवरण- पत्रिका में दी हुई शेष पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए। प्रथमा के धर्मशास्त्र विषय का अध्ययन केवल सं० १९८२ के लिए नीचे लिखी पुस्तकों से करना चाहिए—

(१) समाचार और नीति (पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी दारागंज, प्रयाग)
(२) बाल-मनुस्मृति (इण्डियन प्रेस , प्रयाग)

[२]

प्रायः परीक्षार्थी परीक्षा-शुल्क करेन्सी नोटों द्वारा सादे लिफ़ाफे में भेज दिया करते हैं। यदि ऐसे पत्र बीच में मारे जायँ और सम्मेलन-कार्यालय तक न पहुँचे तो इस के लिए भेजनेवाले ही उत्तरदायी होंगे। हमारा अनुरोध है कि शुल्क मनीआर्डर द्वारा अथवा बीमा द्वारा आना चाहिए।

[३]

जो परीक्षार्थी गोरखपुर-केन्द्र से प्रथमा और मध्यमा परीक्षा में सर्व-प्रथम आयेगा उसको नागरी-प्रचारिणी-सभा अलीनगर, गोरखपुर की ओर से सम्मेलन क्रमशः गिरिधर पदक तथा पुरुषोत्तम पदक प्रदान करेगा।

परीक्षामंत्री
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

तार का पता—"सम्मेलन" इलाहाबाद रजिस्टर्ड नं० ए. ६२६.

सम्मेलन-पत्रिका

सम्मेलन
की
मुख पत्रिका

भाग १२ अङ्क १२, श्रावण सं० १९८२ वि०

संपादक
वियोगी हरि

प्रकाशक
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

वार्षिक मूल्य २) प्रत्यंक ≡)

विषय-सूची

सम्मेलन की पुस्तकों पर कमीशन

[पु० प्र० समिति के आ० शु० १४ सं० १९८२ वि० के अधिवेशन में निश्चित ६वें मन्तव्य के अनुसार]

समस्त हिन्दी-पुस्तक-प्रकाशकों तथा विक्रेताओं को इस विज्ञप्ति द्वारा सूचना दी जाती है कि अब से सम्मेलन की प्रथमा, मध्यमा तथा उत्तमा परीक्षा के पाठ्य ग्रंथों में स्वीकृत पुस्तकों की १००) या इससे अधिक की माँग पर २५) सैकड़ा कमीशन और साधारण पुस्तकों की ५००) या इससे अधिक की माँग पर तृतीयांश (⅓) कमीशन दिया जायगा।

रामजीलाल शर्मा
संयोजक पुस्तक प्रकाशन-समिति

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित
सूरजप्रसाद खन्ना के प्रबन्ध से हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग में मुद्रित

सम्मेलन-पत्रिका के नियम

१—'पत्रिका' प्रत्येक मास की पूर्णिमा को प्रकाशित हो जाती है। यदि किसी मास की कृष्णा १० तक उस मास की पत्रिका न मिले, तो पत्र द्वारा सूचना देनी चाहिए।

२—'पत्रिका' का वर्ष भाद्रपद से प्रारम्भ होता है। वर्ष के बीच में, किसी भी मास में, ग्राहक होने पर उस वर्ष के पूर्व मासों के अंक अवश्य लेने पड़ते हैं। डाक-व्यय-सहित पत्रिका का वार्षिक मूल्य २=) है। २) मनीआर्डर द्वारा भेजने से अधिक सुभीता होता है।

३—यदि दो एक मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकखाने से प्रबन्ध कर लेना चाहिये, और यदि बहुत दिनों के लिए बदलवाना हो, तो हमें उसकी सूचना देनी चाहिए, अन्यथा 'पत्रिका' न मिलने के लिए हम उत्तरदायी न होंगे।

४—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें—"सम्पादक सम्मेलन पत्रिका, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र—"प्रचार-मन्त्री हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से और पत्रिका का मूल्य, विज्ञापन की छपाई आदि का द्रव्य "अर्थमंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से आना चाहिए।

५—प्राप्त कविता और लेखों के घटाने, बढ़ाने एवं प्रकाशित करने न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है।

सम्मेलन-पत्रिका में विज्ञापन की दर

	१ मास	६ मास	एक वर्ष
एक पृष्ठ	५)	२५)	४५)
आधा पृष्ठ	३)	१५)	२८)

आवश्यक सूचना

६—सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की बिक्री पर कमीशन की दर निम्नलिखित है—

(क) १०) से नीचे की पुस्तकों पर कुछ भी कमीशन नहीं दिया जाता।

(ख) १०) से २५) तक की पुस्तकों पर दो आना रुपया कमीशन दिया जाता है।

(ग) २५) से ऊपर १००) तक २०) सैकड़ा।

(घ) १००) से ऊपर, २५) सैकड़ा।

(ङ) ५००) या अधिक की पुस्तकें लेने पर तृतीयांश कमीशन अर्थात् ३३।−)४ सैकड़ा।

(नोट) सम्मेलन से सिर्फ सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें बेची जाती हैं, अतः सर्वसाधारण को चाहिए कि वे सम्मेलन से केवल सम्मेलन द्वारा प्रकाशित ही पुस्तकें मगावें। अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें हमारे यहाँ नहीं मिलतीं।

सुलभ-साहित्य-माला की पुस्तकें

हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—श्री० मिश्रबन्धु

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ, उसने कौन-कौन से रूप पकड़े, किन-किन बाधाओं एवं साधनों का उसे सामना करना पड़ा, वर्त्तमान परिस्थिति क्या है, आदि गम्भीर विषयों का पता इस पुस्तक से भलीभाँति चलता है। अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। "मिश्रबन्धु-विनोद" रूपी महासागर से मथनकर यह इतिहासामृत निकाला गया है। यह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में स्वीकृत है। तृतीय संस्करण, पृष्ठसंख्या १०८, मूल्य ।≈)

पता—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग

भारतगीत

लेखक—पं० श्रीधर पाठक

पाठकजी की रसमयी रचना से किस सहृदय साहित्य-रसिक का हृदय रसप्लावित न होता होगा ? आपकी गणना वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य के महारथियों में है। आपकी राष्ट्रीय कविता नवयुवकों में जातीय जीवन सञ्चार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक पाठकजी के उन गीतों का संग्रह है, जिन्हें उन्होंने समय-समय पर स्वदेश-भक्ति की उमंग में आकर लिखा है। इसकी प्रस्तावना साहित्य-मर्मज्ञ बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठसंख्या ६४, मूल्य ≡)

भारतवर्ष का इतिहास [प्रथम खण्ड]

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६०० संवत् पूर्व से ५० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है। अबतक हिन्दी में भारतवर्ष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था। विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहाँ के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। मध्यमा परीक्षा के इतिहास विषय में यह पुस्तक निर्दिष्ट है। जिल्दवाली पुस्तक का, जिसकी पृष्ठसंख्या ४०६ है, मूल्य केवल १।।) है।

राष्ट्रभाषा

संपादक—श्री 'भारतीय हृदय'

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न उपस्थित किया था कि, क्या हिन्दी राष्ट्रभाषा हो सकती है ? इसके उत्तर में भारत के प्रत्येक

प्रान्त के बड़े-बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपात-रहित सम्मतियाँ दी थीं कि निःसन्देह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने योग्य है। उन्हीं सब अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इसके विरोधियों का भी यथेष्ट खण्डन हुआ है। इस विषय के व्याख्यानों का भी इसमें सङ्कलन कर दिया गया है। हिन्दीभाषा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक प्राणस्थानीय नहीं तो क्या है? पृष्ठसंख्या २००, मूल्य ॥)

शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस सम्बन्धी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह। इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें। महाराष्ट्रपति शिवाजी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का यदि चित्र देखना हो, तो एक बार इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइए। शब्द एवं भाव-काठिन्य दूर करने के लिये कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलङ्कार आदि साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाली आवश्यक बातों का इसमें उल्लेख कर दिया गया है। साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है। पृष्ठ-संख्या ५४, मूल्य ≡)

सरल पिङ्गल

ले०—{ श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद

इस पुस्तक में पिङ्गलशास्त्र के गूढ़ रहस्यों को सरल और सुन्दर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छन्दों के उत्तम उदाहरण भी दिये गये हैं। अन्त में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्दर्शन करा दिया गया है। पृष्ठ-संख्या ५८, मूल्य ।)

सूरपदावली (सटिप्पण)

श्री सूरदासजी के १०० अत्युत्तम पदों का अपूर्व संग्रह है। मूल्य ।)

भारतवर्ष का इतिहास [द्वितीय खण्ड]

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

इसमें ५०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का वर्णन किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान-पतन के क्रम का पता इस पुस्तक से जैसा कुछ चलता है, यह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू-समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि जानने योग्य आवश्यक विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः प्राप्त हो सकता है। सुन्दर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठसंख्या ४४०, मूल्य २।)

पद्य-संग्रह

संपादक { श्री ब्रजराज एम्० ए, बी० एस-सी., एल्-एल्० बी०
श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम्० एस्-सी० }

आधुनिक खड़ी बोली के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सुन्दर संग्रह। ये कविताएँ विद्यार्थियों के बड़े काम की हैं। संग्रह सामयिक और उपादेय है। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के साहित्य में स्वीकृत है। पृष्ठसंख्या १२८, मूल्य ।≡)

संक्षिप्त सूरसागर

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

सूरदासजी-रचित सूरसागर से ५०० पद-रत्न चुनकर इसमें एकत्र किये गये हैं। जहाँ तक हो सका है, कई प्रतियों से पदों का पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी गयी है। अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और

सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिये लालायित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूरकर हिन्दी-साहित्य-रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य परिचय जोड़ा गया है। उनकी जीवनी की मुख्य-मुख्य घटनाओं का पूरा-पूरा उल्लेख आगया है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएँ भी लिखी गयी हैं। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत है। एण्टिक कागज़ का जिल्ददार संस्करण, पृष्ठसंख्या ४२५, मूल्य २)

विहारी-संग्रह

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

कविवर विहारीलाल की सतसई से प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह छोटा सा संग्रह तैयार किया गया है। जहाँ तक सम्भव हुआ है, इसमें श्रृंगाररस के दोहों का समावेश नहीं किया गया है, किन्तु ऐसे दोहों का संग्रह किया गया है, जो बिना किसी सङ्कोच के बालक-बालिकाओं को पढ़ाये जा सकते हैं। पृष्ठसंख्या ६४, मूल्य ≡)

ब्रज-माधुरी-सार

सम्पादक—श्री वियोगी हरि—इस पुस्तक का विषय इसके नाम ही से प्रकट होता है। इसमें ब्रजभाषा की कविता का सार सङ्कलन किया गया है। इस संग्रह में चार विशेषताएँ हैं:—

(१) इसमें सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय सत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया गया है।

(२) इसमें कुछ ऐसे कवियों की रचनाओं का रसास्वादन भी कराया गया है जो अभी तक कहीं प्रकाशित नहीं हुई थीं।

(३) इस ग्रन्थ में यथेष्ट पाद-टिप्पणियां लगा दी गयी हैं, जिनकी सहायता से साधारण पाठक भी लाभ उठा सकते हैं।

(४) इसके प्रारम्भ में प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवनचरित और उसकी कविता की संक्षिप्त आलोचना भी की गई है।

पृष्ठसंख्या ६३२, मूल्य जिल्दवाले संस्करण का केवल २)

पद्मावत (पूर्वार्द्ध)

सम्पादक—श्री लाला भगवानदीन

यह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत का पूर्वार्द्ध है। इस भाग में पहले खण्ड से लेकर ३४वें खण्ड तक का समावेश हुआ है। सम्पादक महोदय ने इस ग्रन्थ में इतनी पादटिप्पणी लगा दी हैं कि अब इस प्राचीन काव्य का रसास्वदान करना प्रत्येक कविता-प्रेमी के लिए सुलभ हो गया है। अन्त में एक संक्षिप्त शब्दकोश भी जोड़ दिया गया है। पृष्ठसंख्या लगभग २००; मूल्य साधारण जिल्द का १) और जिल्दवाली का १।)

सूरदास की विनयपत्रिका

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

यद्यपि 'विनय-पत्रिका' नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ महात्मा सूरदासजी का नहीं है तथापि सूरसागर में विनय-सम्बन्धी जो पद मिलते हैं, उन्हीं के आधार पर सौ उत्तमोत्तम एवं मनोरम पदों का संकलन करके इसका 'विनय-पत्रिका' नाम दिया गया है। क्रम तुलसीदासजी की विनय-पत्रिका का रक्खा गया है। अन्त में संक्षिप्त शब्दार्थ भी दे दिया है। पृष्ठ-संख्या ७४, मूल्य केवल ≡)

भाग १२ } श्रावण, संवत् १९८२ { अंक १२

हिंडोला

ए दोउ झूलत रंग-हिँडोरें।
दसरथ-सुत अरु जनक-नन्दनी, चितवनि में चित चोरें॥
नान्हीं-नान्हीं बूँद पौन पुरवैया, बरसत थोरें-थोरें।
हरि-हरि भूमि घटा झुकि आई, सरजू लेत हिलोरें॥
हय-दल, पैदल, गज-दल, रथ-दल कोटि बने चहुँ ओरें।
उपबन माहिं मधुर सुर बोलैं, कोकिल, मोर, चकोरें॥
रतन-जड़ित एक बन्यौ हिंडोरा, रेसम लागीं डोरें।
अरस-परस दोऊ झूलि झुलावैं इक सांवर इक गोरें॥
सुघर सखी खींचति उरझति तेहि अपनी-अपनी ओरें।
तुलसिदास अनुकूल जानिकैं सियजू हँसीं मुख मोरें॥

—गो० तुलसीदास

अनुराग-वाटिका

पद

जाय पथिक ! एती कहि दीजो ।
कैसेहु सुधि दिवाय माधव कों जुग-जुग जग जस लीजो ॥
"भैया ! जबतें गये, यहां की बहुरि न कछु सुधि कीनी ।
ऐसी निठुराई की पाटी कहां लला ! पढ़ि लीनीं ॥
सुमिरि-सुमिरि तुम्र बाल-केलि वह अँखियाँ भरि-भरि आवैं ।
अजहुँ तिहारे बैन तोतरे मनहुँ सुधा बरसावैं ॥
बड़े-बड़े दग अमल कमल लौं चंचल चारु चितौनी ।
वह मुसकानि-माधुरी कैसेहु बिसरति नहिं रस-स्रोनी ॥
कलित कपोलनि धूरिभरी वै अलकैं पलक न भूलैं ।
लाल-लाल कर-कंज ललित नित इन नैननि में झूलैं ॥
लखि-लखि छौना ! बालखिलौना बढ़त बिरह-दुख दूनो ।
छायो रहत अँधेरो चहुँदिसि, लागत आँगन सूनो ॥
भये स्यामघन ! तुम्र कुंजन के परन पीत बिन पानी ।
धरी तिहारी अजहुँ लाड़िले ! बकुल-माल मुरझानी ॥
साँचेहु मोसम निठुर न या जग, कहौं न ठकुरसोहाती ।
तो खेलन की ठौर देखि जो फटति न पाहन-छाती ॥
ह्वैहै सोधौं कौन द्यौस जब तोहि अंक भरि लैहौं ।
चूमि-चूमि मुख अलक लड़ैते ! बार-बार बलि जैहौं ॥
कब सँवारि उरझीली अलकैं पुलकित हिय न उमैहौं ।
अंजन आँजि चपल दग-कोरनि भाल दिठौना दैहौं ॥
अपने करनि जेंवाय मधुर कछु माखन-चाखनहारे ।
साध सफल करिहौं कब मन की मोहन प्रानदुलारे ॥

कैसी बानि परी यह तेरी ।
बात-बात पै मचलि जात जो, कही न मानत मेरी ॥

अपनी धुन में रहत लला ! नित, सुनत न सीख पराई ।
एतो बड़ो भयो, पै अजहूं छाँड़त नहिं लरिकाई ॥
नैक बात पै रूठि जात जब रिस सों भौंह चढ़ाये ।
लेत मोर मुख रुख रूखो करि, बोलत नाहिं बुलाये ॥
साँचेहु मोहन ! अबलौं तेरे मन की थाह न पाई ।
कहा खीझ अरु कहा रीझ तुम क्यों नहिं देत बताई ॥

कब को धर्‌यो कलेवा, काहे जेंवत नाहिं कन्हैया !
कैसी प्रकृति भई यह तेरी, खीझत क्यों बल-भैया ॥
नित उठि भोरहि तैं काहे तू मोसों रारि मचावै ?
नैक बात पै मचलि जात तब कैस्यौ हाथ न आवै ॥
कहा भयो जो लै भाज्यौ तुम दाऊ चकरी तेरी ?
लाय देउँगी चकरी-डोरी अबहीं तोहि घनेरी ॥
लाल भई आँखें कजरारी रोवत-रोवत लाला !
कलित कपोल भये कारे, त्यों टूटि गई बनमाला ॥
छूटि गई तुम चुटिया लाँबी नागिनिसी लहरावै ।
बिथुरि रहीं अलकैं मुख-पंकज भ्रंग-पुंज मँड़रावै ॥
लेहु लला ! सुरझाय अलक यह कुंडल सों उरझानी ।
धूरि-धूसरित भयो अंग सब, कहा करत मनमानी ॥
उठि बैठे अब अलकलड़ैतो माखन-चाखनहारो ।
जो भावै सो करै कलेवा मेरो प्रानदुलारो ॥
अपने छगनमगन पै जाऊँ बार बार बलिहारी ।
मति खीझै अब मोहन मेरो, तू जीत्यौ, हौं हारी ॥

लालन, क्यों न अब सुधि लेत ?
लेत सुधि अब क्यों न मोहन ! बिछुरि दिन दुख देत ॥
बिलग होत न रहे हम-तुम कबहुँ पल भरि स्याम !
गये सो अब बिन तुम्हारे बीति केते जाम ॥

वह बिपिन-बिचरन-बिनोद, प्रमोद जमुना-कूल।
गयो भूलि तुम्हैं लला ! वह कहा बीनन फूल॥
बिकल बालसखान कों अब किन धरावत धीर !
क्यों न भेंटत आय भुज भरि प्रानधन ! बलबीर॥

कब मिलि है एरे छरछंदी ! मेरे प्रानलला !
केते द्यौस गये बिन देखे तो मुख-चंद-कला॥
या गरीब की सुधि अब क्यों तू लैहै लाल ! भला !
क्यों न देत बरसाय आय पुनि मंजुल नेह-झला॥

आँखि बचाय फिरत भाज्यो कित एरे निपट छली !
ऊधम करि अब कहाँ छिपैगो, चहुँ दिसि कुंज-गली॥
अधिक अँधेरो मो उर-अंतर मनु संपुटित कली।
लैहौं तोहि लुकाय लला ! तहँ—चोरहिं ठौर भली॥

कर छुड़ाय कित भाजि रह्यौ अब, नाहिंन ठौर कहीं।
चपल चलाक ढीठ तोसो पुनि आवत हाथ नहीं॥
छोड़ूँगी नहिं कैसेहु, ज्यों-त्यों बहियाँ आजु गहीं।
दै गुलचा गालन में लालन ! भरिहौं डाँड़ यहीं॥

मेरे नवल लाल की कैसी बानिक आजु बनी।
रुचिर स्वेद-कन झलकैं मुख पै अलकैं धूरि-सनी॥
कुसुम-अलंकृत कलित कलेवर, कर कंदुक कमनी।
चितवनि चारु चपल, मृदु बिहँसनि, किलकनि सरस घनी॥

(क्रमशः)

वि॰ ह॰

कविवर राव रणधीरसिंह साहब

राव रणधीरसिंह साहब हिन्दी-साहित्यके एक छिपे हुए रत्न थे। बुंदेलखंड में, नौगाँव छावनी के समीप, गरौली नाम की एक जागीर है। वहीं के आप अधिप थे। पहले आप दीवान-बहादुर थे। रीवाँ-धिप स्वर्गीय महाराजा रघुराजसिंह ने आपको "रावसाहब" की उपाधि दीथी। राव साहब का जन्म संवत् १८१० में हुआ। विद्या-व्यसन आपको बचपन से ही था। श्रीरामचंद्रजी के अनन्य भक्त और सच्चे सनातनधर्मी थे। स्वभाव नम्र और उदार था। सत्य-निष्ठा तो आपकी अनुकरणीय थी। झूठसे कोसों भागतेथे। कहतेहैं, जहां-जहां वह रहे, वहां के लोग आज भी झूठ से डरते हैं।

आपके केवल एक संतान हुई, जिनका नाम दीवान-बहादुर चंद्रभानुसिंहजी है। श्रीमान् दीवान-बहादुर चंद्रभानुसिंहजी भी एक सुकवि और सत्साहित्य-सेवी हैं। सम्मेलन-पत्रिका के पाठकों ने माघ अंक में आपकी रची प्रेम-सतसई के कुछ सुन्दर और सरस दोहे पढ़े होंगे। राव रणधीरसिंह साहब अल्पावस्था में ही—संवत् १८४१ में—अपने पिताजी के सामने ही स्वर्गवासी होगये।

आप हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृतके भी विद्वान् थे। पर कविता हिन्दी में ही करते थे। आपके बनाये तीन ग्रन्थ हमने देखे हैं—(१) गुण-मंजरी, (२) मानस-दीपिका और (३) राघवचन्द्रिका। आज हम अपने पाठकों को राघवचन्द्रिका के सम्बन्ध की कुछ सूचना देंगे।

राघवचन्द्रिका में कवि ने श्रीरामचन्द्रजी के चरित को विस्तार-पूर्वक अंकित किया है। गो० तुलसीदास की तरह आपने भी शिव-उमा सम्वाद तथा भुशुंडि-गरुड़-सम्वाद द्वारा 'रामायण' की कथा बाँची है। गोस्वामीजी का आपने पद-पद पर अनुकरण किया है। छंद भी रामचरितमानस की नाईं दोहा, चौपाई और हरिगीत का आदि हैं। कहीं-कहीं पर स्वतन्त्र कल्पना भी देख पड़ती है। भाषा

का प्रवाह अच्छा और शैली मनोरंजिनी है। नीचे राघवचन्द्रिका में से आपकी कुछ कविताएँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

दोहा

तैंतालीस प्रकास में राम भानुकुल केत।
चित्रकूट गिरि जाइहैं सिय सौमित्र समेत॥

(वाल्मीकि-बचन)

चौपाई

कथा-मानसर मन जिहि हंसा। तवगुन-मुक्ता चुगत प्रसंसा॥
तिहिके हृदय बसहु रघुराया। सँग सौमित्रि सिया सुखदाया॥
मातु पिता सुत तिय जिहि त्यागा। संतन चरनकमल अनुरागा॥
तिहि मन-मंदिर लखन समेता। बसहु जाय सिय-कृपा-निकेता॥
तव छवि-बारि जासु मन मीना। बसहु राम तिहि उर-लखि दीना॥
हृदय-उदधि जिनकर रघुबीरा। कथा तुम्हारि बिपुल सरि-धीरा॥
भरत अघाइ न जिह मन चारी। तिहि उर बसहु सुविपिन बिहारी॥
करहिं जग्य देवहिं दुज दाना। तव पद अरपन करि भगवाना॥
तिनके उर-पुर अनुज समेता। बसहु सु राम भानुकुल-केता॥

दोहा

काम क्रोध मद मोह नहिं, हरष-बिषाद-उदास।
बसहु निरन्तर अनुज-जुत तिहि उर सीय-निवास॥
जिमि कामी कामिनि-सुछबि रहत सदा लवलीन।
ऐसिय तव छबि-सिंधु महँ नित जिनके मन मीन॥
तिनके उर-पुर जाय प्रभु सिय सौमित्रि समेत।
बसहु द्यौसनिसि प्रेमधर राम भानुकुल केत॥

चौपाई

लखहिं तुच्छ जे इन्द्र-बिलासा। करहिं न मन ब्रह्मादिक-आसा॥
तव रासादिक लखहिं निरन्तर। बसहु राम सिय तिन उर अंतर॥
कथा-कलापहिं सुनहिं सुनावैं। चरनकमल नित हिय मँह ध्यावैं॥
तिन-उर मानस सीय समेता। सानुज बस तहँ कृपा-निकेता॥

सब सन यहि मांगहिं कर जोरी। होइ राम-पद-प्रीति न थोरी॥
तिन उर डेरा करहु कृपाला। सानुज सीय सुदीन-दयाला॥
तिन में अधिक लखहिं तव दासा। तिन उर बसहु चराचर बासा॥

दोहा

जिन मन-चातक दरस-घन-हित निंदहिं सरि-बारि।
प्रेम-सुस्वाती-बुंद-जल करहिं पान रस-धारि॥
तिन मन-मानस-कंज-मृदु मधुप होय रघुबीर।
बसहु निरंतर लखन-जुत कृपासिंधु रनधीर॥

× × × ×

(शिव-वचन)

चौपाई

सुनहु प्रिया! बटतर रघुनायक। बैठे कमल-करनि धनु-सायक॥
छबि लावन्य बरनि नहिं जाई। सोहति सीय समीप लुभाई॥
उत्तर दिशि लखि जनककिसोरी। करि प्रियजनसुधिबिकलबहोरी॥
लखि सिय बिकल बिकल रघुराया। नरजिमि चरित करत सुखदाया॥
कह प्रभु प्रिये! कमल-दल-लोचनि। किमि दुख करहु सुरति-दुति-मोचनि॥
सुनि सिय कहति सकुच सिर नाई। अहो प्राननायक रघुराई॥
नाथ साथ सब सुक्ख भलाई। केवल एक सोच अधिकाई॥
नाहिं सखी-गन-हास-बिलासा। यहै सोच इक जगत-प्रकासा॥

दोहा

एती सुनत कृपालु प्रभु, भरे बिलोचन चार।
अद्भुत रूप दिखाइयौ, बिपिन-लतन गोपार॥
पूर्व रूप धरि प्रगटीं, सोभा बरनि न जाइ।
जूथ अनेकनि नागरीं, कवि-कुल देखि लजाइ॥

चौपाई

पंकज, मोती, कूर्म सुहाये। रंभा-खंभनि चारु लजाये॥
मृगनायक, श्रीफल दुतिहीना। रिछ[1] रिछेस[2] मन भये मलीना॥

१. ऋक्ष=तारा। २. ऋक्षेश=चंद्रमा।

कंबु, बँधूक, कोकिला, सुकगन । धनुष, स्याममखतूल, तड़ित छन॥
रति-दुतिहरतिदिव्यसखि-जन-छबि । बरनिसकहिं तिन्हकहहुकौनकबि॥
बैस किसोर सुसिंधुर-गामिनि । प्रभु-मुखजोवहिंइकटकभामिनि॥
मनहुँ दृगनि पट दीन्ह त्यागी । भरे बिलोचन रस-अनुरागी॥
तृपित न होहिं राम-छबि देखी । बिधु-मुख भईं चकोर बिसेखी॥
पराभक्ति यह सुनहु खगेसा । होहिं बिमत्त देखि अवधेसा॥
तिहि समान धनि नहिं जग कोई । जो सुख चहइ लहइ सुख सोई॥
पराभक्ति बिन राम कृपाला । दुभुज किसोर नमिलहिं दयाला॥

दोहा

सखा सखी के भाव सों, सेवहिं जे रघुबीर ।
ते संतत कौसलपुरी, रह प्रभु सँग मतिधीर ॥

चौपाई

सखिन्ह मत्त लखि राम कृपाला । मृदुल बचन कह दीनदयाला॥
नभपुर बादि जानि केहि लागी । आईं यहाँ सुमुखि अनुरागी॥
हौं मद-मत्सर-दुख-सुख-हीना । उदधि-बिरक्ति कियो मन-मीना॥
पिता-बचन पालत बन बासा । जाहु सुमुखि! इतपुजइहिनआसा॥
राम-बचन सुनि भई गति कैसे । लघु जल मीन बिकल अति जैसे॥
भरि-भरि नैन सु लेहिं उसाँसा । रघुबर बिन जिमि जमपुर-बासा॥
धरि धीरज बोलीं पिकबैनी । जोरि पानि मृग-सावक-नैनी॥
हम नभपुर चल सुनहु पियारे । अचल राम तव चरन निहारे॥
सिव-सुक-मन-मानस-कल हंसा । करि न सकत जिन निगम प्रसंसा॥
हम किहि भाँति कहहिं तिन गाई । अबला जाति सुनहु रघुराई॥
सदा मलिन मति नाथ! हमारी । भक्ति न जानहिं ग्यान-बिचारी॥
सरन-सुखद सुनि तुमरी बाना । लै निज सरन द्रवहु भगवाना॥

दोहा

सरनागत-आरति-हरन, जय कृपालु रघुबीर ।
पाहि पाहि, हम सरन हैं, हरहु नाथ बड़पीर ॥

सर्व रमत, सब रमत कृपाला । आनँदधाम मुकुंद दयाला॥
नाहिं ग्यान नहिं विषय गुसाईं । इक रस आप परापर-साईं॥

पूरन करत मनोरथ जन के। द्रवहु नाथ अब भावक मनके ॥
अनुचित उचित न करहु विचारा। दासहेत यह पिरन[1] तुम्हारा ॥

छंद

यह पिरन तुह्मरो सरन हित,
स्रुति, सनक, सिव अज गावहीं।
मुनि, सिद्ध, ग्यानी, जोगिगन,
तव चरन-पंकज ध्यावहीं ॥
जय नाथ, कौसलराज, करुनासिंधु,
जय सुखधाम हे।
छबि अंग अंगनि काम लाजहि,
श्याम राम नमामहे ॥

दोहा

भक्तबछल प्रभु परापर-रमन आतमाराम।
परितोषीं अबला सकल प्रिया राम सुखधाम ॥
सांत, निरंजन, निरुजप्रभु, निर्मल, अज, गोतीत।
सास्वत, सच्चित, स्वयं प्रभु करत चरित्र पुनीत ॥
तड़ित-वारिधर, कनक-तरु—नीलकूट, रति-काम।
इन सब छबि निंदत सहज प्रिया सखिन्ह-छबि राम ॥

चौपाई

खग मृग मत्त भये छबि देखी। द्रग-पट रोकि रहे जु बिसेखी ॥
बन-सुचि-सोभा बरनि न जाई। बिटप बिसाल लता-समुदाई ॥
पारिजात, मंदार, तमाला। चंपक, नाग असोक, रसाला ॥
दाड़िम, नीबू, कदलि सुहाये। कदँब आदि बट बरनि न जाये ॥
कुसुमित कलित सघन कल पाता। चलत सुहावन त्रिविध सुवाता ॥
गुंजहिं चंचरीक चहुँ ओरा। बोलहिं कोकिल पिक सुक मोरा ॥
पयसरि सुरसरि बहइ सुहाई। प्रफुलित नलिनि लसति सुखदाई ॥
क्रीड़त कूजत सारस हंसा। बक चक्र चकवी जे खग-बंसा ॥

१, प्रण

दोहा

मगन सकल रघुबीर-छबि, दसा बरनि नहिं जाइ।
करहिं गान कल नागरीं, नटैं सु भाव बताइ॥

चौपाई

नव भूषन साजहिं नव अंगा। चंदबदनि अँग उमग अनंगा॥
कमल करनि सोहत बहु बाजा। हिलिमिलि नृत्यहिं सुमुखि-समाजा॥
भौंह तानि चल चखनि चलावैं। काम-कला करि राम रिझावैं॥
जिहि प्रभु जोगी ध्यान न पावैं। नेति-नेति निगमागम गावैं॥
सो प्रभु करत रुचिर अति लीला। खगपति ! भक्तहेत बड़सीला॥
सबतें भिन्न सदा सब बासी। निरगुन सगुन सिद्ध सुखरासी॥
सो प्रभु सोह सखिन्ह बिच कैसे। उडुगन मध्य कलानिधि जैसे॥
रोम-रोम लज कोटिन्ह कामा। छबि-सागर सुंदर अभिरामा॥
कमल करनि फेरहिं धनुसायक। लीला ललित करहिं रघुनायक॥
कुसुम-बिभूषन बिबिध सुहाये। अंग अंग पहिरहिं सुखदाये॥
राम-दरस-घन-चातकि बाला। तृपित न होहिं देखि जगपाला॥
करहिँ गान कल दिव्य भामिनी। नटहिं परसपर नागगामिनी॥

दोहा

देखि रहस-घन राम छवि जे सब रागिनि राग।
सखी रूप धरि प्रगट भे खगपति ! अति अनुराग॥
जूथ सुकोटिन कोटि लखि सखियन के रघुबीर।
बिपुल रूप धरि रमे प्रभु सुनहु प्रिया ! मतिधीर॥

चौपाई

सदा एकरस एकहि रूपा। दुभुज किसोर कौसला-भूपा॥
कुंभ अनेक एक रवि-छाहीं। ऐसेहि प्रमदनि राम दिखाहीं॥
मरत सदा सब भूतनि रामा। यह बड़ चरित नाहिं सुखधामा॥
प्रमदनि बीच सोह हरि कैसे। रतिगन काम बिपुल रम जैसे॥
बिहवल सकल राम-छबि देखी। पुलकहिं अंग भाग बड़ लेखी॥
राम सखिन बिच-बिच किमि सोहैं। घन अरु चपल दोउ मन मोहैं॥

बरनि न जाय रास-रुचिराई। रमा रमाधर रहे लुभाई॥
कोटि-कोटि मनु भानु-प्रकासा। मनहुँ कोटि सत चंद विकासा॥

दोहा

सारँगि, बीन, मृदंग, डफ बाजे बजे अनेक।
नटहिं नागरी गान करि रह्यौ छाय रस एक॥

चौपाई

भईं मत्त सब सुमुखि सुलोचनि। नाग-गामिनी रति-दुति-मोचनि॥
स्वेद-सुबुंद सोह मुख कैसे। राजिव-दलनि ओस-कन जैसे॥
सिथिल देखि सब सखिन-समाजा। कौतुक कीन एक रघुराजा॥
हनुमदादि नृम[1] सखा अनूपा। प्रगट कीन सब कौसल-भूपा॥
गौर स्याम तन बैस किसोरा। रूपरासि खगपति! चितचोरा॥
नीलोत्पल कुंदन-दुति-हारी। इंदु तामरस सकुचि निहारी॥
नख-दुति मोती जुही लजावै। कूर्म-पृष्ठ पद बरनि न जावै॥
नूपुर मननि-जटित छबि देहीं। कल रव मुनिन-चित्त हरि लेहीं॥
जंघा उरू सुछबि अति नीका। कटि मृगपति-कटि-दुति कर फीका॥
धोती असन पीत जरतारी। नील पीत अंबर छबिकारी॥
किंकिनि कलित उदर त्रयरेखा। बरनि न जाय मनोहर भेखा॥
सिंह कंध, दर कंठ सुहाये। कंठा रुचिर बरनि नहिं जाये॥

दोहा

सुमन-माल, बनमाल कल षट मुकुताहल-माल।
हिय अतिही छबि देति लखि मुनि-मन होहिं निहाल॥

चौपाई

भुज अजानु अङ्गद छबि देहीं। गजरा, मुँदरि मोल मन लेहीं॥
बदन मयंक सुकोपम नासा। दसन अधर कल सुन्दर हासा॥
मकराकृत कुण्डल कल कानन। तेजरासि लाजहिं लखि भानन॥
कमल नयन, भ्रुव धनुष समाना। भाल तिलक मनहर हरिजाना॥
कीट-मुकुट-छबि बरनि न जाई। उडुपति, नलिन नवीन लजाई॥
स्याम केस घन कुंचित सोहैं। मधुकर-पंक्ति देखि मन मोहैं॥

---

१ नर्म, अंतरंग।

दोहा

अस सुरूप प्रभु-सखन कौ, प्रभु-छबि बरनि न जाइ।
अङ्ग-अङ्ग झख-धुज लजत, उपमा को कवि लाइ॥

चौपाई

प्रिया बजावहिं बाजे नाना। भौंह चलाइ करहिं कल गाना॥
नटहिं अनेकनि भाव बतावैं। रामचन्द्र कौ चित्त चुरावैं॥
होहिं मगन छबि-धाम बिलोकी। तरनि-उदय जिमि कोकबिसोकी॥
कोउ नटै कोउ नैन चलावै। कोउ कमल-कर ताल बजावै॥
कोउ छत्र कोउ चामर लीने। कोउ प्रभु-भुज गहि आनँदभीने॥
हग सौं हग, कर सौं कर जोरी। कौतुक करहिं सबै चित चोरी॥
मुरलि आदि बाजहिं कल बाजा। बिहवल सब लखि छबि रघुराजा॥
कोउ कुसुम-चय झोरनि लीने। बरसावहिं प्रभु पै रसभीने॥
बिहवल होहिं राम-छबि देखी। भुजभरि लावहिं हृदय बिसेखी॥
कोउ तिया गन मान छुड़ावैं। पानि पकरि कैं राम मिलावैं॥

दोहा

सखी भाव नृम सखा के हैं नर परम सुजान।
अस कौतूहल ध्यान महँ देखहिं नित हरिजान॥
तिन सम धन्य न आन कोउ भजैं जे अस रघुबीर।
भूरि भाग प्रभु-पारषद वंदत प्रभु रनधीर॥

चौपाई

कोउ सखिन कर भेष बनाई। रमहिं राम-सँग मोद बढ़ाई॥
कोउ कोकिला बोलहिं मोरा। कोउ सिथिल लखि छबिचितचोरा॥
जूथजूथमिलिसुमुखिसुलोचनि। नटहिं सखनसँगरति-दुति-मोचनि॥
बरन्यौ रास न जाय भवानी। निगमागम नहिं सकत बखानी॥
परितोषीं रघुबर सब बाला। जदपि एक रस, दीनदयाला॥
निरविकार,निरमल, जगदीसा। सेवत जासु चरन अज ईसा॥
अवतारी-मनि आनँदधामा। दुभुज किशोर, परापर रामा॥
अचल, सच्चिदानन्द, कृपाला। जनमत नहिं लय होत बृथाला॥

तुरिया बयस परावर, स्वामी । अखिलेसुर प्रभु अंतरजामी ॥
भक्तिप्रेम-बस लीला करहीं । दासनि उर प्रमोदनित भरहीं ॥

दोहा

पुत्रभाव जेहि भक्ति दृढ़ तन के सुत रघुबीर ।
सख्य भाव के सखा, तिमि नारिभाव पति धीर ॥
दास भाव के स्वामि हैं कारन-रहित कृपालु ।
दुभुज किशोर परात्पर खगपति रामदयालु ॥

× × ×

उपर्युक्त विहार-वर्णन रासपंचाध्यायी से ख़ूब मिलता है । इस वर्णन में एक विशेषता है । वह यह कि कवि ने मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी का रास-विहार वर्णन करते हुए भी उनकी मर्यादा की रक्षा की है । वर्णन कैसा चुटीला और सरस है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं । कविता-लालित्य का निर्णय हम भावुक पाठकों पर ही छोड़ते हैं ।

एक और उद्धरण देकर हम यह लेख समाप्त करते हैं—

दोहा

मग-लोगनि सुख देत अति बनिता-बन्धु समेत ।
चले जात रघुबर मुदित सहज भानु-कुल-केत ॥

चौपाई

बरखहिं सुमन करहिं घन छाहीं । कामधाम-छवि बरनि न जाहीं ॥
जटा-मुकुट मुनि-पट कटि सोहैं । सोभारासि काम मन मोहैं ॥
बदन मयंक, दसन छबि नीकी । चितवनि चारु प्रान मनु जीकी ॥
अस छबि देखि पुलकि नर नारी । पूँछहिं मोचि बिलोचन-बारी ॥
देखि एक बट सुन्दर छाईं । सानुज सिया रुपे[1] जग-साईं ॥
आइ जानकिहिं सब पुर नारी । पूंछहिं सकुचि नैन भरि बारी ॥

१ ठहर गये ।

गौर स्याम सुन्दर मृदु गाता। कहहु सुमुखि! कासन कसनाता॥
सुनिसिय सकुचिमनहिमुसुकानी। धरा बिलोकन लगी भवानी[1]॥
मधुर बचन बोली मृग-लोचनि। आदिसक्ति त्रय-ताप-बिमोचनि॥

दोहा

गौर गात गुनधाम मृदु सो लघु देवर जानि।
बहुरि बदन तृन ओट करि नयन सुपिय तन तानि॥

चौपाई

खंजन-मीन-कमल-दुति छीनी। उपमा नयन नाथ कवि दीनी॥
सुनि मृदु बचन सकल हरषानी। इक टक देखहिं सारंगपानी॥
हे सखि! ससुर सासु इन कैसी। पठई बिपिन मृदुल तिय ऐसी॥
विधु-दुति छीनि कमल मृदु चाही। ससुर सासु जीवत कस राही॥
मधुर बचन कहि सिय समुझाई। लछमन लख्यौ सुरुख रघुराई॥
लोगन बन-मग पूंछन लागे। भये बिकल जानेसि सब त्यागे॥
पूँछि पंथ सिय-लखन-समेता। बिपिन चले उठि कृपा-निकेता॥
लगे नारिनर संग अनेकू। समुझावा रघुबीर विवेकू॥
विधि-गति कछू जानि नहिं जाई। तजि संसय ग्रह जावहु भाई॥
बरबस फिरहिं सकल मग लोगा। बिकल अधीर कृपालु-वियोगा॥

दोहा

मग-लोगनि सुख देत इमि राम भानुकुल-कंत।
चले जात देखत बिपिन सिय-सौमित्रि-समेत॥

१ पार्वती से अभिप्राय है।

स्थायीसमिति का पाँचवाँ अधिवेशन

पंद्रहवीं स्थायीसमिति का पाँचवाँ अधिवेशन रविवार मिति आषाढ़ शुक्ल ७, संवत् १६८२ विक्रमी, तदनुसार ता० २८ जून सन् १६२५ ई० को ५॥ बजे सम्मेलन-कार्यालय में निम्न-लिखित सदस्यों की उपस्थिति में हुआ—

श्रीयुत् पं० नन्दकुमारदेवजी शर्मा, कलकत्ता
" पं० छबीलेलालजी गोस्वामी, वृन्दाबन
" पं० भागीरथ प्रसादजी दीक्षित, लखनऊ
" पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी, प्रयाग
" पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल, प्रयाग
" सरदार श्रीनर्मदाप्रसादसिंहजी, प्रयाग
" पं० लक्ष्मीनारायणजी नागर, प्रयाग
" बाबू शीतलासहायजी, प्रयाग
" अध्यापक पं० रामरत्नजी, आगरा
" चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसाद शर्मा, प्रयाग
" पं० रामजीलालजी शर्मा, प्रयाग
" पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी (सहायक मंत्री)

सर्व-सम्मति से श्रीयुत् पं० नन्दकुमारदेवजी शर्मा ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

१—गत अधिवेशन का कार्य-विवरण पढ़ा गया और सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

२—स्थायीसमिति के मिति ज्ये० शु० ८ सं० १९८२ वि० के अधिवेशन में स्वीकृत हिन्दी-विद्यापीठ की नियमावली के नियम ३, भाग ख, के अनुसार, हिन्दी-विद्यापीठ के लिये स्थायीसमिति के सदस्यों में से ५ सदस्यों के निर्वाचन का विषय उपस्थित हुआ। इस विषय में अनुपस्थित एवं बाहिरी निम्नलिखित सदस्यों की आयी हुई सम्मतियां पढ़ी गयीं—

श्रीयुत् पं० गोविन्दनारायणजी शर्मा आसोपा, जोधपुर
श्रीयुत् पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी, कलकत्ता

तदन्तर सर्व-सम्मति से हिन्दी-विद्यापीठ के लिए निम्नलिखित सदस्य निर्वाचित हुए—

श्रीयुत् बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन, लाहौर
श्रीयुत् पं० श्यामबिहारी मिश्र, लखनऊ
श्रीयुत् पं० रामनारायणजी मिश्र, काशी
श्रीयुत् बाबू शालिग्रामजी वर्मा, प्रयाग
श्रीयुत् पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी, प्रयाग

३—षोड़श हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन वृन्दाबन का समय निश्चित करने का विषय उपस्थित हुआ। इस विषय में बाहरी सदस्यों में से निम्न-लिखित अनुपस्थित सदस्यों की आयी हुई सम्मतियाँ पढ़ी गयीं—

पं० रघुबरदयालुजी शर्मा शास्त्री, लाहौर
पं० जयचन्द्रजी विद्यालंकार, लाहौर

श्रीयुत् पं० छबीलेलालजी गोस्वामी ने कहा कि सम्मेलन की स्वागत-कारिणी-समिति ने सम्मेलन की तिथियाँ मिति कार्तिक शु० १४, पूर्णिमा तथा मार्गशीर्ष कृष्ण १ सं० १९८२ वि०, तदनुसार ता० ३०—३१ अक्टूबर तथा १ नवम्बर सन् १९२५ ई०, निश्चित की हैं। परन्तु इन्हीं तिथियों में सनातनधर्म का तृतीय प्रान्तिक सम्मेलन लाहौर में होने के कारण सर्व-सम्मति से निश्चित हुआ कि वृन्दाबन-सम्मेलन की तिथियाँ मार्ग शीर्ष कृष्ण ७-८-९ सं० १९८२ वि०, तदनुसार ता० ७-८-९ नवम्बर सन् १९२५ ई०, रक्खी जायँ।

४—षोड़श हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन वृन्दाबन के लिए सर्व-सम्मति से निम्नलिखित निबन्ध-सूची निश्चित हुई—

१. हिन्दी-साहित्य में ब्रजभाषा का स्थान और उसका भविष्य
२. हिन्दी-साहित्य-निर्माण में वृन्दाबन का स्थान
३. मथुरा का ऐतिहासिक महत्व
४. हिन्दी में अन्तर्राष्ट्रीय भाषा होने की योग्यता
५. हिन्दी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य
६. हिन्दी भाषा में अर्थशास्त्र
७. हिन्दी भाषा में राजनीति
८. हिन्दी-साहित्य-सेवियों की कठिनाइयाँ और उनके दूर करने के उपाय
९. भारतीय भाषाएँ, उनका उद्गम, विकास और आधुनिक स्थिति।
१०. हिन्दी-साहित्य की वर्तमान अवस्था
११. हिन्दी में उच्च शिक्षा की पाठ्य पुस्तकें
१२. आधुनिक हिन्दी-कविता
१३. भारतीय राष्ट्र-निर्माण में हिन्दी का स्थान
१४. प्राचीन भारत में शिल्प-विद्या
१५. साहित्य द्वारा सभ्यता का अनुशीलन
१६. हिन्दी के पत्रों का इतिहास और वर्तमान स्थिति
१७. हिन्दी के वर्तमान सुलेखक और कवि
१८. भारत की वर्तमान लिपियों से नागरी लिपि की तुलना
१९. अदालतों में हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपि के प्रचार के उपाय।
२०. उच्चारण से नागरी वर्णमाला का वैज्ञानिक सम्बन्ध
२१. अलंकारों का महत्व
२२. नवरस-निरूपण
२३. समालोचना की आवश्यकता और शैली

२४. समाज और साहित्य

२५. प्राचीन और अर्वाचीन भारत

२६. हिन्दी में ग्राम्य कविता

२७. राष्ट्रमिति

२८. सम्पादन-कला

२९. सम्पादन-कला की शिक्षा का पाठ्य-क्रम

३०. हिन्दी में मुद्रणकला की शिक्षा

३१. हिन्दी-लेखक-संघ (आवश्यकता और कार्य्यक्षेत्र)

५—हिन्दी-विद्यापीठ के लिए मिति श्रावण कृ० १ सं० १९८२ वि० से चैत्र कृ० ३० सं० १९८२ वि० तक का आय-व्यय अनुमान-पत्र का मसविदा चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्मा ने निम्नलिखित रूप में उपस्थित किया—

आय	व्यय		
१००००) डिस्ट्रिक्टबोर्ड इलाहाबाद से प्राप्त	प्राप्त सहायता का व्यय		
	१००००)	आवश्यक सामान	
		८ जोड़ी बैल	१५००)
		४ देशी और ४ मिट्टी पलटनेवाले हल	३००)
		फावड़ा, कुदाली, हँसिया, खुरपी, फरुही, हेंगा, दो हैरो तथा अन्यान्य कृषि-यन्त्र	२००)
		करबी काटने की मशीन	१००)
		सिंचाई के यन्त्र चरसा, नार, गड़ारी, बाल्टी, चनेपंप, रहट इत्यादि	२५०)
		एक बैलगाड़ी	१००)

पशुशाला, गोदाम, दफ़्तर कृषि-यन्त्रों का दालान, स्थायी मज़दूरों तथा ओवर-सियर के रहने का मकान २५००)

फ़सलों के बीज तथा विशेष खाद के लिए १५००)

मूलधन के रूप में भूमि के लिए ३५५०)

१००००)

७६०४) सम्मेलन के साधारण कोष से प्राप्य

४१०४) हिन्दी-विद्यापीठ

अध्यापक साहित्य विषयक १००) मा० ८००)
" इतिहास-भूगोल ४०) ५०) " ४००)
" गणित-विज्ञान ४०) ५०) " ४००)
" धर्मशास्त्र-संस्कृत ४०) ५०) " ४००)
रसोइया ८)-१०) + भोजन ८०)
कहार ८) मासिक + भोजन ६४)
चौकीदार १०) " ८०)
मल्लाह १५) " १२०)
माली १५) " १२०)
बेलदार १०) " ८०)
लेखक २५)-४०) मासिक २००)
खेती-निरीक्षक ४०) ५०) " ४००)
मेहतर ८) मासिक ६४)
चपरासी १२)-१५) मासिक ९६)

छात्रवृत्ति १० विद्यार्थियों को
५) से १०) मासिक + ५ फ़ी ८००)

४१०४)

२०००) सामान-हिन्दी विद्यापीठ

रसोई के बर्तन	१५०)
अन्न रखने के बर्तन	२००)
रोशनी	१००)
सामान पाठशाला	८००)
बाग़ का सामान	२००)
फुटकर	५५०)
	२०००)

१५००) मरम्मत मकान, ज़मीन तथा कुवाँ

कुल १७६०४)

अर्थमंत्रीजी ने कहा कि स्थायीसमिति के सदस्यों के पास हिन्दी-विद्यापीठ के आय-व्यय-अनुमान-पत्र का यह प्रस्तावित रूप सम्मत्यर्थ नहीं भेजा गया, अतः इसका विचारार्थ उपस्थित होना अनियमित है। पं० भागीरथप्रसादजी दीक्षित ने इसका विरोध करते हुए कहा कि स्थायीसमिति के गत अधिवेशन में भी हिन्दी-विद्यापीठ के अनिवार्य्य-व्यय के लिए १००) स्वीकृत करते समय यही प्रश्न उपस्थित हुआ था और अन्य आवश्यक विषयों में लेकर समिति ने इसकी स्वीकृत दी थी।

सरदार नर्मदाप्रसादसिंहजी ने कहा कि सभापति महाशय अपनी रूलिंग द्वारा इसे उपस्थित करें। सभापति महोदय ने कहा इस प्रश्न पर मेरी रुलिंग की आवश्यकता नहीं। जब गत अधिवेशन में १००) की स्वीकृत समिति दे चुकी है, तो उसी सिद्धान्त के अनुसार यह विषय उपस्थित हो सकता है। अन्त में बहुसम्मति से इसपर विचार करना निश्चित हुआ। इसी अवसर पर प्रो०

व्रजराजजी उपस्थित हुए और अपना विरोध का मत प्रकट करके चले गये।

६—सरदार नर्मदाप्रसादसिंहजी ने प्रस्ताव किया कि डिस्ट्रिक्ट्-बोर्ड से स्वीकृत व्यय विशेषज्ञ द्वारा उपस्थित किया हुआ है। अतः यह स्वीकार किया जाय। व्यय के सम्बन्ध में हिन्दी-विद्यापीठ-समिति को यह अधिकार दिया जाय कि वह इस स्वीकृत बजट के अन्तर्गत किसी मद्द की बचत दूसरी मद्द में आवश्यकतानुमार व्यय करे। प्रस्ताव बहुसम्मिति से स्वीकृत हुआ।

सरदार नर्मदाप्रसादसिंहजी ने बजट के सम्बन्ध में यह संशोधन उपस्थित किया कि डिस्ट्रिक्ट्बोर्ड द्वारा स्वोकृत व्यय की ७ वीं मद्द में जो २५००) दिये हुए हैं, उसी में से १५००) मकान-मरम्मत ज़मीन तथा कुवां के लिए रक्खा जाय, शेष उसी मद्द के लिए रहेगा। संशोधन सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

अर्थ-मंत्री जी ने यह संशोधन उपस्थित किया कि फुटकर व्यय की मद्द में ५५०) के स्थान पर २५०) रक्खे जायँ। संशोधन सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

इस प्रकार मितिश्रावणकृष्ण प्रतिपदा संवत् १६८२ वि० से चैत्र कृ० ३० सं० १६८२ वि० तक हिन्दी-विद्यापीठ के लिए आय-व्यय का अनुमान पत्र निम्न-लिखित रूप में स्वीकृत हुआ—

आय	व्यय
१००००) डिस्ट्रिक्ट्बोर्ड इलाहाबाद से प्राप्त	प्राप्त सहायता का व्यय
	१००००) आवश्यक सामान तथा कृषि-निरीक्षक
	८ जोड़ी बैल　　१५००)
	४ देशी तथा ४ विदेशी, मिट्टी पलटने वाले हल　　३००)

फावड़ा कुदाली, हँसिया, खुरपी, फरुही, हेंगा दो हैरो तथा अन्यान्य आवश्यक कृषि तथा बाग़ के सामान २००)

करबी काटने की मशीन १००)

सिंचाई के यन्त्र—चरसा, नार, गड़ारी, बाल्टी, चनेपंप रहट इत्यादि आवश्यकतानुसार २५०)

एक बैल-गाड़ी १००)

मरम्मत मकान, ज़मीन तथा कुवां के एवं स्थायी मज़दूरों तथा ओवरसियर के रहने के मकान आदि १५००)

फ़सलों के बीज तथा विशेष खाद के लिए ११००)

कृषिनिरीक्षक ४०)-५०) मासिक ४००)

५०-६० एकड़ भूमि के लिए ४५५०)

१००००)

२५००) सम्मेलन के साधारण कोष से प्राप्त

२७०४) चन्दे से प्राप्य

३५०४) हिन्दी-विद्यापीठ

अध्यापक

साहित्य विषयक	१००)	मा० ८००)
इतिहास-भूगोल	४०)-५०)	" ४००)
गणित-विज्ञान	४०)-५०)	" ४००)
धर्मशास्त्र-संस्कृत	४०)-५०)	" ४००)
रसोइया ८)	१०) + भोजन	८०)
कहार	८) + "	६४)

चौकीदार	१०)	मासिक	८०)
मल्लाह	१५)	मासिक	१२०)
माली	१५)	मासिक	१२०)
बेलदार	१०)	मासिक	८०)
लेखक	२५)-४०)	"	२००)
मेहतर	८)	"	६४)
चपरासी	१२)-१५)	"	९६)

छात्रवृत्ति

१० विद्यार्थियों को ५)-१०) मासिक ८००)

३७०४)

१५००) सामान हिन्दी-विद्यापीठ

रसोई के बर्तन	१५०)
अन्न रखने के बर्तन	२००)
रोशनी	१००)
सामान पाठशाला	८००)
फुटकर	२५०)

१५००)

१५२०४)

१५२०४)

६—प्रधानमंत्रीजी ने प्रस्ताव किया कि डिस्ट्रिक्टबोर्ड से प्राप्त सहायता के १००००) के अतिरिक्त २५००) सम्मेलन के जनरल-फ़ंड से दिया जाय और शेष २७०४) प्राप्त करने के लिए चन्दे का प्रबन्ध किया जाय। अर्थ-मंत्रीजी ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। अन्त में बहुसम्मति से उपर्युक्त प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

७—प्रधानमन्त्रीजी ने सूचित किया कि कलकत्ते के जूट एण्ड गनी ब्रोकर्स लिमिटेड के श्रीयुत् ज्वालप्रसादजी ने सम्मेलन में विचारार्थ एक मामला भेजा है। वह इस प्रकार है—

श्रीयुत् गिरिधरजी शुक्ल (६४ काटन स्ट्रीट) ने श्रीयुत् सुन्दरलालजी की अनुवाद की हुई एक पुस्तक, जिसका नाम 'सभ्यता महा-रोग' है, उनकी इच्छानुसार कलकत्ता की हिन्दी-पुस्तक-एजन्सी के मालिक श्रीयुत बैजनाथजी केडिया को प्रकाशनार्थ दी और उनको उसका कापीराइट, सदा के लिए ११) रु० फ़ार्म के हिसाब के पुरस्कार पर लिख दिया। पुरस्कार की बात तै होते समय प्रकाशक ने बतलाया कि पुस्तक अन्दाज़न ३० फ़ार्म की होगी और इसी आशय का एक पत्र भी उसने अनुवादक के पास भेजा। परन्तु पुस्तक छपने पर २४ फ़ार्म की हुई। श्रीगिरिधरजी शुक्ल का कथन है कि पुस्तक का अन्दाज़ लगाते समय २२ पंक्तियाँ प्रति पेज रखने का विचार ध्यान में रक्खा गया था; परन्तु पुस्तक छापी गयी है २८ पंक्तियाँ प्रति पेज देकर। यह व्यवहार कलकत्ते के पुस्तक-प्रकाशन के चलन के विरुद्ध है। इसके अतिरिक्त इसमें अनुवादक को ७१॥) की हानि होती है। प्रकाशक का कथन है कि कापीराइट में इस बात का कहीं उल्लेख नहीं है कि हमें अमुक संख्या में प्रति पेज पंक्तियाँ रखनी होंगी। अतएव हमें सुविधानुसार उसका छपाई सम्बन्धी कार्य करने का अधिकार है। हमने और भी पुस्तकें इसी तरह छापी हैं। हम प्रति पेज २२ पंक्तियाँ रखने के लिए किसी तरह से बाध्य नहीं हैं।

इस पर सर्व-सम्मति से निश्चय हुआ कि यह समिति सम्मेलन के प्रधानमंत्री पं० रामजीलालजी शर्मा, प्रबन्ध-मंत्री चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसाद शर्मा तथा परीक्षा-मंत्री अध्यापक पं० रामरत्नजी की एक समिति नियुक्त करके उसे इसका निर्णय करने का अधिकार देती है।

तदन्तर सभापति महोदय को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई।

रामजीलाल शर्मा

प्रधानमंत्री

विहार प्रादेशिक
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
का
कार्य्य-विवरण

(सं० १९८०—८१ वि०)

विहार प्रादेशिक सम्मेलन अपने पंचम वर्ष को सकुशल और निरापद रूप से समाप्त कर षष्ठ वर्ष में पदार्पण कर रहा है। किसी शिशु के जन्म के बाद से उसके आरम्भिक पांच वर्ष प्रायः बहुत ही चिन्ताजनक हुआ करते हैं। पंचमवर्ष समाप्त होते ही माता-पिता की चिन्ता शनैः शनैः दूर होने लगती है और कुछ वर्ष बीते जब उसके अवयव सुदृढ़ होने लगते हैं तो वे एक दम निश्चिन्त हो जाते हैं। इसी प्रकार इस शिशु-सम्मेलन का पंचमवर्ष सकुशल समाप्त होते देख हृदय में एक प्रकार का सन्तोष होता है और अवश्य ही यह प्रसन्नता की बात है। विहार की ऊसर भूमि में, जहां संस्थाओं के संचालकों को उन संस्थाओं के संचालन में पग-पग पर कठिनाइयाँ होती हैं, किसी संस्था का पांच वर्षों तक स्थिर रहना और अपनी अवस्था और बाल-शक्ति के अनुसार कार्य्य करना कम गौरव की बात नहीं है और यही इसके समुज्ज्वल भविष्य का सूचक भी है।

वर्ष का आरम्भ और कार्य्य-विभाग

पटने के पंचम अधिवेशन में, जो सफलता पूर्वक श्रीमान् पं० चन्द्रशेखरधर मिश्र के सभापतित्व में हुआ था, उसवर्ष के लिए निम्नलिखित कार्य्य-क्रम निश्चित किया गया थाः—

१. सिंहभूमि में प्रचार करना।

२. विहार प्रान्त के अन्तर्गत सम्बद्ध संस्थाओं का स्थापन करना।

३. सम्मेलन-परीक्षाओं को सर्व-प्रिय बनाना।

इन कार्य्यों के अतिरिक्त सम्मेलन ने दो उपसमितियों का भी संघटन किया था जिनमें एक का कार्य्य था उसी आश्विन मास तक विचार कर ऐसी योजना देना जिसमें सम्मेलन पुस्तक-प्रकाशन का काम शीघ्र और सफलतापूर्वक अपने हाथ में ले। और दूसरे प्रस्ताव के साथ संघटित उप-समिति का काम था कि विहार प्रान्त भर में हिन्दी के विविध अङ्गों की दशा का ज्ञान प्राप्त कर इस सम्मेलन के सम्मुख एक रिपोर्ट उपस्थित करे जिससे पता चले कि इस प्रान्त में हिन्दी की उन्नति हो रही है या अवनति। पहली उपसमिति के संयोजक थे श्रीयुत पं० राधाकृष्ण झा तथा दूसरी के श्रीयुत बा० शार्ङ्गधरसिंह।

यहाँ उपर्युक्त कार्यों के सम्बन्ध में विचार किया जायगा कि इस वर्ष भी स्थायीसमिति उन कार्य्यों के सम्पादन में कहाँ तक सफल हुई।

स्थायी समिति की जीवन-अवधि

स्थायीसमिति द्वारा किये कार्य्यों पर विचार करने के पूर्व यह भी जान लेना आवश्यक है कि इस वर्ष की स्थायीसमिति की जीवन-अवधि कितने दिनों की हुई। स्थायीसमिति एक वर्ष के लिए संघटित हुआ करती है और इस का वर्ष कार्तिक से आश्विन तक

का होता है। पटने में कई अनिवार्य्य कारणोंसे सम्मेलन का अधिवेशन प्रायः डेढ़ वर्ष के बाद हुआ और मुज़फ़्फ़रपुर में नियमानुसार सम्मेलन विलम्ब न कर निश्चित समय में ही हो रहा है। अतएव इस वर्ष की स्थायीसमिति की जीवन-अवधि (वैसाख से आश्विन तक) केवल ६ महीने की हुई है।

सिंहभूमि में प्रचार

प्रादेशिकसम्मेलन के सम्मुख (उसके उद्देश्यों के देखने से) उन भिन्न-भिन्न स्थानों में जहाँ हिन्दी का प्रचार नहीं है, हिन्दी का प्रचार करना सब से आवश्यक और दुरूह कार्य्य है। उसके लिए प्रभूत धन, अनेक उत्साही स्वार्थत्यागी कार्य्य-कर्त्ता तथा निरन्तर अध्यवसाय की आवश्यकता है। सम्मेलन ने अपनी आर्थिक तथा अन्य प्रकार की अवस्थाओं पर विचार कर इस वर्ष सिंहभूमि में ही प्रचार करना निश्चत किया। प्रायः प्रत्येक वर्ष प्रचार के सम्बन्ध में प्रस्ताव होते थे और वे प्रस्ताव सम्मेलनकी आर्थिक दुरवस्थाके कारण रद्दीके टोकने में फेंक दिये जाते थे, किन्तु इस वर्ष सम्मेलनके प्राण-स्वरूप श्री बाबू राजेन्द्रप्रसादजी तथा श्रीयुत बाबू बद्रीनाथ वर्मा का ध्यान देश के अनेक महत्वपूर्ण कार्योंमें निरंतर लगे रहने परभी इस ओर गया और कुछ रुपये का प्रबन्ध आप दोनों महानुभावों ने कृपाकर कर दिया। फल इसका यह हुआ कि इस बार सिंहभूमि में स्थायीसमिति प्रचार के कार्य का श्रीगणेश करनेमें समर्थ हो सकी है। इसके कार्यके लिए एक प्रचारक नियुक्त किये गये हैं, जो इस समय हिंदी-प्रचार का कार्य चक्रधरपुर, चाइबासा तथा जमशेदपुर में सफलता के साथ कर रहे हैं। सिंहभूमि उत्कल तथा विहार के अंचल पर ही अवस्थित हैं। वहाँ की मातृभाषा हिन्दी है और व्यवहार में आनेवाली भाषा भी हिन्दी ही है। हाँ, वहाँ उड़िया भाषा के भी बोलनेवाले कुछ अवश्य हैं, जो बहुत दिनों से प्रयत्न कर रहे हैं कि सिंहभूमि आदि ज़िले उत्कल प्रान्तमें मिला दिये जायँ। वहाँ के हिन्दी-भाषा-भाषी सदासे इसका विरोध करते आ रहे हैं।

चाहे जो हो, इस झगड़े से प्रादेशिकसम्मेलन को कुछ मतलब नहीं है। हमें तो वहाँ राष्ट्र भाषा के भाव से ही हिन्दी का प्रचार करना है। हमें उड़िया या बंगला किसी से भी विरोध नहीं है। प्रान्तीय भाषाएँ अपने-अपने प्रान्त में खूब उन्नत हों, किन्तु हिन्दी वहाँ राष्ट्रभाषाके नाते पहुँचेगी। सम्मेलन का तो यह पूर्ण विश्वास है कि शीघ्र ही हिन्दी सफलतापूर्वक-उत्कल प्रान्त के मध्य में भी पहुँच जायगी और इसी राष्ट्रभाषा के भाव से हमारे प्रचारक को वहाँ सभी प्रकार के लोगों से—हिन्दी, बँगला एवं उड़िया भाषा-भाषी सज्जनों से—सहायता मिल रही है। किन्तु एक प्रचारक से सिंहभूमि में प्रचार का कार्य कभी नहीं चल सकता। एक साथ ही चार-पाँच प्रचारक निरन्तर काम करें तो सिंहभूमि और मानभूमि आदि ज़िलों में हिन्दी का प्रचार कुछ वर्षों में ही हो जाय। इसके लिये धन की पूरी आवश्यकता है। धन के लिए स्थायी समिति ने अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मंत्री को भी लिखा था, जिन्होंने कृपाकर विश्वास दिलाया है कि वे शीघ्र भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रचार-समिति द्वारा कुछ सहायता दिलाने का प्रयत्न करेंगे। यदि उसी प्रकार विहार प्रान्त के धनी-मानी सज्जन उदारता दिखाकर सम्मेलन को यथेष्ट रूप से सहायता दें तो प्रचार का काम सफलता-पूर्वक चल निकले।

विहार प्रान्त के अन्तर्गत सम्बद्ध संस्थाओं की स्थापना

गतवर्ष तक प्रादेशिक सम्मेलन से सम्बद्ध केवल एक संस्था—छपरे की शारदा-नव-युवक-समिति—थी। जिस समय प्रादेशिक सम्मेलन ने पटने में स्थायीसमिति को प्रान्तभर में भिन्न-भिन्न स्थानों में सम्बद्ध संस्थाएँ क़ायम कराने का आदेश दिया उस समय से स्थायीसमिति के कुछ सदस्यों ने हिन्दी-सभाएँ स्थापित करने का भार उठाया। स्थायीसमिति ने भी अपने सभी सदस्यों से अपने अपने ज़िले में सम्बद्ध ज़िला-हिन्दी-सभाएँ क़ायम कराने की

प्रार्थना की और उसी का फल है कि गोगरी में हिन्दी-सभा और मुंगेर में हिन्दी-साहित्य-सभा क़ायम हुई। दोनों सभाएँ श्रीयुत पं० भागीरथमिश्र जी के सदुद्योग से स्थापित हुईं। किन्तु मुंगेर की ज़िला-हिन्दी-साहित्य-सभा के क़ायम कराने में श्रीयुत बा० कालिकाप्रसादजी का मुख्य हाथ था। बाढ़ के श्रीयुत बाबू रामेश्वरीप्रसादराम ने वहाँ की नागरी-प्रचारिणी-सभा को, जिसके वे प्रधान मंत्री हैं, सम्मेलन से सम्बद्ध कराने का निश्चय किया और वह संस्था सम्बद्ध भी हो गयी है। यद्यपि ऊपर की दोनों संस्थाएँ अभीतक सम्बद्ध नहीं हुई हैं, किन्तु दोनों ने सम्मेलन से सम्बद्ध कराने का निश्चय कर लिया है। चम्पारण के हिन्दी-प्रेमियों ने फिर इस साल ज़िला-सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन 'देश'—सम्पादक श्रीयुत बाबू मथुराप्रसादजी के सभापतित्व में, बेतिया में, किया। इस ज़िला-सम्मेलन ने थारु और धांगड़ जातियों में, जो उस ज़िले के अन्यभाग में रहती हैं, हिन्दी के प्रचार करने का निश्चय कर लिया है। ज़िला-सम्मेलन के सौभाग्य से उन्हें कुछ ऐसे उत्साही हिन्दी-प्रेमी मिल गये हैं, जो हिन्दी-प्रचार के लिए निरन्तर कार्य्य कर रहे हैं। उसने प्रादेशिक सम्मेलन से नियमानुसार सम्बद्ध करा लेने का भी निश्चय कर लिया है। भागलपुर-हिन्दी-सभा के प्रधान श्रीयुत बाबू गोकुलानन्दप्रसाद वर्मा तथा उसके मंत्री श्रीयुत पं० शिव दुलारे मिश्र दोनों ने हिन्दी-सभा को सम्बद्ध कराने की इच्छा प्रकट की है। प्रधानमंत्री तथा मौ० लतीफ़हुसैन के हिन्दी-प्रचार के निमित्त विहारशरीफ़ जाने पर वहाँ का विहार-हिन्दी-पुस्तकालय सम्मेलन से सम्बद्ध हो गया। अतएव दो संस्थाएँ-नागरी-प्रचारिणी सभा, बाढ़ तथा विहार-हिन्दी-पुस्तकालय, विहारशरीफ़—सम्बद्ध हो गयीं तथा चम्पारण-जिला-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, मुंगेर-जिला-हिन्दी-सभा तथा भागलपुर-हिन्दी-सभा इन तीनों संस्थाओं ने सम्बद्ध कराने का निश्चय कर लिया है। आशा है, अन्य संस्थाओं के कार्य्यकर्त्ता भी सम्बद्ध होने की उपयोगिता को समझकर शीघ्र अपनी संस्थाओं के सम्बद्ध करा लेने का निश्चय कर लेंगे।

सम्मेलन-परीक्षाओं को सर्व प्रिय-बनाना

स्थायीसमिति ने अपनी बैठक में यह निश्चय किया था कि परीक्षाओं को सर्व प्रिय बनाने के लिए स्थान-स्थान पर केन्द्र खुलवाने का प्रयत्न किया जाय और प्रान्त भर के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा म्युनिसिपल बोर्डों से प्रार्थना की जाय कि वे अपने बोर्ड के छात्रों तथा शिक्षकों को सम्मेलन-परीक्षाओं में सम्मिलित कराने के लिए उत्साहित करें। यह भी निश्चय हुआ था कि प्रान्त के दोनों मिनिस्टरों से भी इस सम्बन्ध में मिला जाय। किन्तु कई कारणों से ये दोनों ही कार्य्य नहीं हो सके। केन्द्र खुलवाने के प्रयत्न किये गये और आशा थी कि इस बार बगहा, (चम्पारण) मोतीहारी और विहारशरीफ में केन्द्र खुल जायँगे। बगहा और मोतीहारी में तो स्वयं प्रधानमंत्री ने जाकर इसके लिए प्रयत्न किया था, किन्तु ठीक गर्मी की छुट्टी के अवसर पर आवेदन-पत्र भेजने की अन्तिम तिथि पड़ने के कारण उन स्थानों में केन्द्र नहीं खुल सके। हां, इस बार केवल दो स्थानों में—सीतामढ़ी और गोगरी में—केन्द्र खुल सके। पूर्व वर्ष के अनुसार रविवार का क्लास (Sunday class) दो-तीन महीने तक ठिकाने से चला, किन्तु अनभिज्ञता तथा परीक्षार्थियों की असावधानी से यह बंद हो गया। इस वर्ष प्रथमा परीक्षा में १० तथा मध्यमा परीक्षा में ५ परीक्षार्थियों ने शुल्क भेजे, किन्तु दुर्गा-पूजा की छुट्टी में परीक्षा-तिथि पड़ने के कारण मध्यमा परीक्षा में ५ तथा प्रथमा परीक्षा में ५ सम्मिलित हुए।

दो उपसमितियाँ

सम्मेलनाधिवेशन के अवसर पर सम्मेलन द्वारा दो उपसमितियों का संगठन हुआ। एक उपसमिति (जिसके नियोजक श्रीयुत पं० राधाकृष्ण झा थे) का कार्य था कि एक स्कीम बनावे जिससे अच्छी-अच्छी हिन्दी-पुस्तकें लिखी जाकर व्यापारिक रूप से प्रकाशित करायी जा सकें। दूसरी उपसमिति का कार्य था विहार भर में हिन्दी की गत बीस वर्षों में उन्नति वा अवनति का पता लगाना। इसके नियोजक श्रीयुत बाबू शार्ङ्गधरसिंह थे।

दोनों समितियों के नियोजक के पास उचित समय पर सूचना दे दी गयी और तत्सम्बन्धी काग़ज़-पत्र उनके पास भेज दिये गये, किन्तु विशेष दुःख के साथ कहना पड़ता है कि उन दोनों महानुभावों को कार्य करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। कई बार इस सम्बन्ध में तक़ाज़े के पत्र उनके पास भेजे गये और एक बार स्वयं प्रधान मंत्री ने जाकर उन्हें उसका स्मरण दिलाया, किन्तु वे लोग इस प्रकार अपने कार्य में एकान्त रूप से लगे रहे कि वे समय इसके लिये नहीं निकाल सके। सम्भव है कि अगले वर्ष वे यथेष्ट समय दे सकें और दोनों उपसमितियों के कार्य कुशलतापूर्वक चलें।

पुस्तकालय और वाचनालय

सम्मेलन का पुस्तकालय और वाचनालय पूर्व वर्ष के अनुसार बराबर तीन घण्टे तक खुला रहा। पूर्व वर्ष पुस्तकालय में ८१४ पुस्तकें थीं, अब इस साल बढ़ाकर ९६१ पुस्तकें हो गई हैं। इस वर्ष में ६६॥) की पुस्तकें मोल ली गयीं।

सम्मेलन के सदस्य

पटना सम्मेलनाधिवेशन के अवसर पर कुछ सज्जनों ने सदस्य बनाकर सम्मेलन को सहायता देने का वचन दिया था। उसी के अनुसार सभी प्रतिज्ञा करनेवाले सज्जनों के पास नियमावली; सदस्य बनने के फ़ार्म तथा रसीद-बही भेजी गई, किन्तु खेद है कि विहारशरीफ़ के श्रीयुत पं० छेदीलाल झा को छोड़कर किसी का भी ध्यान उस ओर नहीं गया। श्रीयुत पं० छेदीलालजी झा के प्रोत्साहन से विहारशरीफ़ के मान्य व्यक्ति श्रीयुत बाबू लक्ष्मीचन्द सुचन्ती, श्रीयुत बाबू चुन्नीलाल जी तथा श्रीविहार-हिंदी-पुस्तकालय के मन्त्री श्रीयुत बाबू राधाकृष्ण बी० एल्० की सहायता से ७७।) रुपये वहाँ से प्राप्त हो सके। गत वर्ष सम्मेलन के स्थायी ५ तथा साधारण ३४ सदस्य थे, किन्तु इस वर्ष यह बढ़कर स्थायी ७ और साधारण ६१ हो गये हैं।

अन्य कार्य्य

गतवर्षों के अनुसार इसवार भी श्रावण शुक्ल सप्तमी को तुलसी जयन्ती का उत्सव बड़े समारोह के साथ मुजफ्फरपुर के स्थानीय वकील श्रीयुत बाबू लक्ष्मीनारायण गुप्त के सभापतित्व में हुआ। गोस्वामीजी के चित्र का जुलूस बाजे के साथ नगर में निकला और नगर-भ्रमण करने के बाद एक विराट् सभा हुई। उस सभा में स्थानीय जी० बी० बी० कालिज तथा संस्कृत-कालिज के अनेक अध्यापक, नगर के रईस तथा वकील आदि अन्य हिन्दी-प्रेमी उपस्थित थे। उसी अवसर पर साहित्य-परिषद् की बैठक हुई, जिसमें तुलसीदासजी पर कई कविताएं और समस्या-पूर्तियाँ हुईं।

आर्थिक अवस्था

सम्मेलन की आर्थिक अवस्था गत वर्ष की तरह अति शोचनीय रही। पग-पग पर सम्मेलन के आवश्यक कार्यों के सम्पादन तक में स्थायीसमिति को आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। साथ के आय-व्यय निरीक्षक द्वारा परीक्षित आय व्यय के चिट्ठे से पता लगेगा कि कैसी आर्थिक दुरवस्था स्थायीसमिति की है। सम्मेलन का अपना कोई ऐसा स्थायी कोष भी नहीं है जिसकी सहायता से इसका कार्य्य अबाध्य रूप से चल सके। इस ओर सम्मेलन के सभी हितैषियों का ध्यान जाना चाहिए।

अन्तिम निवेदन

उपर्युक्त बातों से पता लगेगा कि स्थायीसमिति इस ६ महीने की अवधि में क्या कार्य्य कर सकी है। सम्मेलन का उद्देश्य महान है और उसे विहार प्रान्त तथा उड़ीसा में बहुत बड़े और महत्वपूर्ण कार्य्य करने हैं। यदि आप लोग सदा सहानुभूति-पूर्ण नेत्रों से इसकी ओर देखते रहेंगे तथा इसके मन्तव्यों को कार्य्य रूप में परिणत कराने में तनिक भी सहायता स्थायी-समिति को देते रहेंगे, तो अवश्य सम्मेलन सफलता के मार्ग पर बहुत अग्रसर हो जायगा।

आय	व्यय
४४।-) गत वर्ष की रोकड़	६॥≡) स्टेशनरी
१०७) दान खाते जमा	२२॥-) डाक-व्यय
६१) स्वागत-समिति खाते	१७॥≡) फुटकर
५०) स्थायीसमिति खाते	२०॥) यात्रा
४४) साधारण सदस्य-शुल्क खाते	२३६) वेतन
४) सम्बद्ध शुल्क खाते	१५१) प्रेस
३६०॥=) सम्मेलन को जिनका देना है उनका जमा	२३॥=)॥ तुलसी-जयन्ती
	६६॥=) पुस्तक
५६) बा० नोखेलाल चौधरी	५।-)॥ पत्र-पत्रिका
१२५) क्लर्क का जमा	२) प्रचार
३५।=) रुपया चपरासी का जमा	५६) कार्यालय किराया
१७।।।) पुस्तक-भवन बनारस-वाले का जमा	६११-)
४) पं० रामवृक्ष शर्मा का जमा	५६।।।=) रोकड़ बाकी
१०६॥) विजय प्रेस का जमा	
१०) विहार-बन्धु प्रेस का जमा	६७०॥≡)
३६०॥=)	
६७०॥≡)	

श्रीरामधारीप्रसाद

—प्रधान मंत्री

बलिया-हिन्दी-प्रचारिणी सभा

आषाढ़ कृष्ण ८ संवत् १९८२ वि० को बलिया-हिन्दी-प्रचारिणी सभा की स्थायीसमिति की प्रथम बैठक श्रीमान् पं० मदनमोहन छँगाणीजी के सभापतित्व में बाबू महादेवप्रसादजी की कोठी पर हुई। नीचे लिखे सभासद उपस्थित थे—

१—पं० मदनमोहन छँगाणी, २ पं० दूधनाथ उपाध्याय ३ पं० बलदेव उपाध्याय ४ पं० शीतल मिश्र विशारद, ५ बाबू हरिकृष्ण राय बिशारद ६ बाबू रामसिंह ७ पं० जगदेव द्विवेदी, ८ बाबू भगवतीसिंह, ९ बाबू बलदेवसिंह। १० बाबू महादेवप्रसाद, ११ बाबू महिपालबहादुरसिंह। १२ बाबू रत्नसिंह तथा १३ बाबू शिवशंकरसिंह।

१—अदालतों में हिन्दी-लेखक नियुक्त करने के विषय में निर्णय हुआ कि प्रथम १२ जुलाई सन् १९२५ ई० को बलिया के वकील मुख़ारों की एक सभा कराई जाय जिससे अदालती कार्रवाई उन लोगों के उद्योग से अनिवार्य्य रूप से हिन्दी में हुआ करे।

२—ज़िले के अन्तर्गत पुस्तकालयों का सम्बन्ध सभा से शीघ्र कैसे हो? इसके लिए नियम आदि बनाने को श्री बाबू हरिकृष्णराय विशारद तथा श्रीबाबू महादेवप्रसादजी नियुक्त किये गये।

३—सभा के स्थायी कोष में ५०००) एकत्रित करने के लिये केन्द्रीय सदस्यों से प्रार्थना की गई तथा नीचे लिखे सज्जनों का एक भ्रमणकारी डेपुटेशन बनाया गया—

१. बाबू महादेवप्रसाद, २. पं० दूधनाथ उपाध्याय, ३. पं० मदनमोहन छँगाणी, ४. बाबू महिपालबहादुरसिंह, ५. रामराजसिंह, ६. बाबू हरिकृष्णराय विशारद, तथा ७. शिवप्रसादसिंह विशारद।

४—प्रस्तावों को कार्य रूप में परिणत कराने के लिए बराबर प्रयत्न और आन्दोलन करते रहने का निश्चय हुआ।

५—वार्षिक अधिवेशन के स्थान-निर्णय के सम्बन्ध में निश्चित हुआ कि जब तक किसी केन्द्र से निमंत्रण नहीं आता, तब तक बलिया ही उसका उपयुक्त स्थान है।

६—वार्षिक अधिवेशन के नियम बनाने का भार श्रीबाबू महिपालबहादुरसिंह तथा श्रीबाबू हरिकृष्णरायजी को सौंपा गया—

७—पुस्तक-प्रकाशन-समिति के नियम बनाने के लिए श्री बाबू महिपालबहादुरसिंह, श्रीबाबू गुरुभक्तसिंह, श्री पं० उदयनारायण त्रिपाठी और बाबू हरिकृष्णराय विशारद नियुक्त हुए।

अन्त में सभापति को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई।

शीतलमिश्र विशारद
सहायक मंत्री
हिन्दी-प्रचारिणी सभा, बलिया

आन्ध्र जातीय शिक्षा-मण्डल में हिन्दी

राष्ट्रीय आन्दोलनों की धूम मचाने में, जातीय भावों के प्रसार में, आन्ध्र देश का क़दम सब से आगे रहा करता है। हिन्दी-प्रचार को ही लीजिये। दक्षिण भारत में राष्ट्रभाषा के प्रचार का आरम्भ आज से सात साल पहले हुआ था। तमिल, केरल और कर्नाटक अभी कोसों पीछे है; आन्ध्र के गाँव-गाँव में हिन्दी का सन्देश सुन लीजिये। जहाँ मुश्किल से दस-पांच 'तुरक-भाषा' (हिन्दी-प्रचार से पहले आन्ध्र लोग हिन्दी भाषा को 'तुरक-भाषा' कहा करते थे, हिन्दी का नाम शायद ही कोई जानता रहा हो) बिगड़ी हुई मुसलमानी हिन्दी जाननेवाले इधर-उधर तलाश करने पर मिलते वहाँ, पचासों-सैकड़ों की बात नहीं, हजारों नर-नारी युवा और दस-बारह साल के बालक अच्छी काम चलाऊ हिन्दी बोलनेवाले मिलेंगे। नागरी लिपि का प्रचार भी बे-हद बढ़ा है।

पाठकगण समाचार-पत्रों में पढ़ चुके होंगे कि मद्रास-सरकार आन्ध्र देश के लिए एक अलग विश्व-विद्यालय की स्थापना करने जा रही है। उसने आन्ध्र-विश्व-विद्यालय के लिये लोक-मत जानने के अर्थ एक कमीशन भी नियुक्त किया है। उसका काम महीनों से जारी है। इस भावी विश्व-विद्यालय के लिये जगह भी तालाशी जा रही है। कोई राजमहेन्द्री को, कोई बेजवाडा को, कोई वैशाखपट्टम को—इस प्रकार अपने-अपने प्रयोजन और सौकर्यानुसार सभी स्थल निर्देश कर रहे हैं। अन्त में सरकार की मर्ज़ी ही आन्ध्र-यूनिवर्सिटी के लिए कोई जगह पसंद कर चुन लेगी। एक ओर जहाँ गवर्नमेन्ट की तरफ़ से

आन्ध्र में अलग यूनिवर्सिटी क़ायम करने की कोशिश हो रही है वहाँ दूसरी तरफ़ आन्ध्र का देश-हितैषी राष्ट्रीय दल "आन्ध्र-राष्ट्रीय जातीयशिक्षा-मण्डल" की स्थापनाकर अपने देश के बच्चों की क़ौमी तालीम के सवाल को शीघ्र हल करलेने की चेष्टा कर रहे हैं। उक्त 'मण्डल' की एक बैठक कुछ दिन पहले, गुन्टूर में, श्रीहरि सर्वोत्तमरावजी की अध्यक्षता में हुई थी। आन्ध्र देश में एक आदर्श राष्ट्रीय विश्व-विद्यालय की स्थापना करना 'मण्डल' का लक्ष्य है। हमें यह जानकर महान् हर्ष हुआ कि उक्त अधिवेशन में राष्ट्रभाषा हिन्दी को पाठ्य-क्रम में उचित स्थान दिया गया और मद्रास हिन्दी साहित्य-सम्मेलन-प्रचार कार्यालय के परीक्षा-पाठ्यक्रम को शिक्षा-मण्डल स्वीकार करता है। तदर्थ अनेक धन्यवाद! सरकार के हिन्दी को 'हौआ' समझने के कारण हम अभीतक मद्रास-विश्व-विद्यालय में उसका प्रवेश न करा सके। परन्तु हमारे हृदय में आशा-दीपक जलही रहा है, बुता नहीं। अपने हिन्दी-प्रेमी आन्ध्र बन्धुओंसे हमें बड़ी भारी आशा है। उत्साही आन्ध्र तरुण और वयोवृद्ध देशहितैषी विद्वान् अवश्य ही अपने विश्व-विद्यालय में अन्य भाषाओं के साथ भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी को उचित सम्मान दिलाने के यशोभागी बनेंगे।

(हिन्दी-प्रचारक)

लखनऊ विश्व-विद्यालय

हिन्दी प्रेमियों को यह सुनकर अत्यन्त हर्ष होगा कि लखनऊ विश्व-विद्यालय ने भी बी० ए० की कक्षाओं में हिन्दी को एक विषय मानकर स्थान दे दिया है। अवध-वासियों के लिए यह परम सौभाग्य की बात है। यह प्रान्त एक प्रकार से उर्दू का केन्द्र माना जाता है और लखनऊ नगर में तो उर्दू का पूरा प्राधान्य है। ऐसी दशा में हिन्दी को स्थान देना बड़े साहस का कार्य है। तदर्थ पं० बदरीनाथजी भट्ट को, जो कि इस विश्व-विद्यालय में हिन्दी के प्रोफ़े-

सर हैं, इस सफलता पर हम बधाई देते हैं। विश्व-विद्यालय को चाहिए कि अगामी वर्ष एम्० ए० तथा आनर्स में भी हिन्दी को उचित स्थान प्रदान करे जैसा कि अन्य विश्व-विद्यालयों ने किया है। अवध प्रान्त कुछ समय पूर्व हिन्दी का एक बड़ा भारी केन्द्र रहा है। इस प्रान्त के समान हिन्दी के कवि भारत के किसी भाग में नहीं हुए। नवयुवकों को चाहिए कि बहुत बड़ी संख्या में बी० ए० में हिन्दी लेकर विश्व-विद्यालय में प्रविष्ट हों, जिससे हिन्दी को प्रोत्साहन मिले और उसका गौरव बढ़े।

एक दूसरी बात की ओर भी विश्व-विद्यालय के संचालकों तथा अवध के रईसों का ध्यान आकर्षित करना ज़रूरी है। इस विश्व-विद्यालय में प्राच्य विभाग का विषय खुल गया है, जिसमें फ़ारसी-अर्बी को तो स्थान दे दिया गया है परन्तु संस्कृत तथा प्राकृत को कुछ भी स्थान नहीं मिला। यह बड़े आश्चर्य की बात है। अरबी-फ़ारसी को स्थान देना और संस्कृत-प्राकृत के सदृश भाषाओं को स्थान न मिलना घोर अन्याय की बात है। सुना गया है कुछ ऐसे प्रान्तीय व्यक्ति भी इस विश्व-विद्यालय में घुस आये हैं जो हिन्दी का विरोध करते है। इन अकारण वैरियों से हिन्दी की रक्षा करनी चाहिए। इस विश्वविद्यालय ने अभी हिन्दी को पूर्ण रूप से स्वतंत्र विषय नहीं माना है। उसे संस्कृत के अन्तर्गत माना है। इसमें भी हिन्दी का अपमान ही है। पूर्ण रूप से स्वतंत्र मानकर उसे स्थान देना चाहिए, जैसा कि अन्य विश्व-विद्यालयों ने किया है। आशा है, विश्व-विद्यालय के संचालक गंभीरता-पूर्वक इन बातों पर विचार करेंगे।

भागीरथप्रसाद दीक्षित

काशी-विद्यापीठ

बड़ी खुशी की बात है कि बनारस के प्रसिद्ध देशभक्त श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्त ने राष्ट्रीय शिक्षा के लिए १० लाख रुपया दान दे

कर अभी एक ट्रस्ट-रजिस्ट्री करायी है; जिसकी आमदनी, जो पाँच हज़ार रुपये मासिक होती है, बनारस के काशी-विद्यापीठ को दी जाती है। काशी-विद्यापीठ ऐसी संस्था है जहाँ देश के बच्चों को प्रेमपूर्वक सच्ची राष्ट्रीयशिक्षा ऊँचे से ऊँचे पैमाने तक मातृभाषा में दी जाती है। विद्यार्थियों को हिन्दी, इतिहास, अर्थ-शास्त्र राजशास्त्र, क़ानून, गणित, ज्योतिष, दर्शनशास्त्र, संस्कृत आदि विषय में शिक्षा देने के अलावा शिल्प और दस्तकारी भी सिखाई जाती है। बनारस के धुरन्धर विद्वान् विद्यापीठ के अध्यापक हैं। विद्यालय १ ली जुलाई से को खुल गया है।

धर्मवीर

अध्यापक गणित, काशी

स्वर्गीय पं० सत्यनारायण कविरत्न

धाँधूपुर में चित्रोद्घाटन-समारोह

हिन्दी-समाचार-पत्रों के पाठकों को कविरत्नजी का परिचय देने की आवश्यकता नहीं। उनके जीवन का अधिकांश भाग धाँधूपुर ग्राम में, जो ताजगंज के निकट ही है, बीता था। गत १६ जुलाई रविवार को नागरी-प्रचारणी सभा, आगरा के प्रयत्न से अनेक साहित्य-प्रेमी धाँधूपुर पधारे। जानेवाले सज्जनों में से कुछ के नाम यहाँ दिये जाते हैं। साहित्योपाध्याय पं० गणेशीलालजी सारस्वत, साहित्यरत्न पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल एम्० ए०, एम्० एल्० सी०, पं० व्रजनाथ गोस्वामी, सेठ अचलसिंह एम्० एल्० सी०, श्रीकृष्णलाल लवानियाँ, श्रीरामप्रसाद गर्ग, रामस्वरूपजी शास्त्री, श्रीकपूरचन्द जैन, श्रीगोविन्ददास गुप्त बी० ए०, श्रीरामनिवासजी पोद्दार बी० ए० तथा श्रीमहेन्द्र आदि।

बाहर से आनेवालों में श्रीयुत् पंडित पद्मसिंहजी शर्मा और पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी के नाम उल्लेखनीय हैं। सम्पूर्ण उपस्थिति लगभग २०० के थी। ताजगंज और आस-पास के ग्रामों से भी लोग आये थे।

सभापति का आसन श्रीयुत पं० गणेशीलालजी सारस्वत ने ग्रहण किया था। मंगलाचरण के पश्चात् उन्होंने अपने प्रारम्भिक भाषण में कहा—"सत्यनारायण से मेरा २६ वर्ष तक परिचय और सम्बन्ध रहा। एफ़० ए० में जब वे एक बार फ़ेल हो चुके थे तो मेरे पास उन्होंने सालभर संस्कृत पढ़ी थी। जब उत्तीर्ण हुए तो मुझसे उन्होंने कहा—"पण्डितजी, दूसरे अध्यापक केवल पढ़ाते ही हैं; पर आप पढ़ाते भी हैं और आशीर्वाद भी देते हैं। तभी तो मैं उत्तीर्ण होगया।" सत्यनारायण की कविता में रस, जो कविता की जान है, पाया जाता है। मुझे उनकी एक कविता का विशेष रूप से स्मरण है। सेण्ट जान्स-कालेज में उन्होंने फिजी-प्रवासी भारतीयों की दुर्दशा का वर्णन करते हुए जो हृदयद्रावक कविता पढ़ी थी उसने मुझे रुला दिया था। खेद की बात है कि सत्यनारायण के जीवन में मैं यहाँ नहीं आ सका। आज उनकी मृत्यु के बाद आया हूँ। पर सत्यनारायण मरे नहीं, वे जीवित हैं और अपनी कविता द्वारा वे चिरकाल तक जीवित रहेंगे।"

तदनन्तर पं० बनारसीदास चतुर्वेदी का भाषण हुआ। अपने भाषण के अन्त में चतुर्वेदीजी ने पं० पद्मसिंहजी शर्मा से प्रार्थना की कि वे मन्दिर में चलकर सत्यनारायणजी के चित्र का उद्घाटन करें। सब लोग मन्दिर में गये। जिस समय चित्र का उद्घाटन किया गया, उपस्थित जन-समुदाय का हृदय गद्गद् होगया! धाँधूपुर के निवासी सत्यनारायण के अनेक मित्रों के नेत्र सजल होगये!

तत्पश्चात् पं० पद्मसिंह जी शर्मा का भाषण हुआ। शर्माजी ने कहा—"जैसा कि इस समय की कार्यवाही से प्रकट है, हम सब लोग, जिनमें अनेक साहित्य-प्रेमी और कविरत्नजी के मित्र हैं, उनके चित्र के उद्घाटन के लिये यहाँ एकत्र हुए हैं। चित्रोद्घाटन तो बहुत से मौक़ों पर हुए होंगे और वहाँ बड़ी धूमधाम रही होगी, पर श्रद्धा तथा विश्वास की दृष्टि से यह समारोह अद्वितीय कहा जा सकता है।"

"खेद की बात है कि अब साहित्य-सेवा में भी व्यापार का भाव घुस गया है। पार्टियाँ बन गई हैं। अनेक साहित्य-सेवियों को केवल रुपये कमाने की धुन है। सत्यनारायणजी उन इने-गिने साहित्य-सेवियों में थे जिन्होंने रुपया या कीर्ति की इच्छा के बिना साहित्य-सेवा की। कवि लोग स्वयं तो जीवित ही रहते हैं; पर दूसरों को भी ज़िन्दगी दे जाते हैं। दुर्भाग्य की बात है कि ज़माने ने अनेक उद्भट कवियों की क़द्र नहीं की और उन्होंने जो कवितायें अपने दिल के खून से लिखी थीं, वे सब नष्ट हो गईं। क़द्र करना तो विलायतवाले जानते हैं। वहाँ पुराने कवियों की एक-एक चीज़ हज़ारों रुपयों में ख़रीदी जाती है और सुरक्षित रक्खी जाती है। अनेक साहित्य-सेवी उन स्थानों की तीर्थयात्रा करते हैं। पर हम लोग अपने साहित्य-सेवियों को बिल्कुल उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। हमारी हिन्दू जाति कृतज्ञता के लिए इतिहास में सदा से प्रसिद्ध रही है। जब शाहजहाँ बादशाह को उनके लड़के औरंगजेब ने क़ैद कर दिया था और उसे बजाय स्वच्छ पानी के पोश्त का पानी पीने के लिये भेजता था उस समय शाहजहाँ ने औरंगज़ेब के पास एक पद्य भेजा था, जिसका अभिप्राय यह था कि एक तो हिन्दू लोग हैं जो अपने मरे हुए पितरों को पानी देते हैं और एक तुम हो जो अपने ज़िन्दा बाप को पानी नहीं देते।"

"कृतज्ञता हिन्दू लोगों का प्राचीन धर्म है। श्राद्ध-तर्पण इत्यादि आत्मिक सम्बन्ध के सूचक हैं। इसी कारण यह बात और भी खेद-जनक है कि हम लोग इस गुण को भूलते जाते हैं।"

"यदि किसी मित्र की प्रशंसा उसके सामने करना अनुचित न हो, तो मैं कहूंगा कि पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने आदर्श कार्य किया है। उन्होंने सत्यनारायणजी की सेवा विचित्र प्रेम से की है। उन्होंने सत्यनारायण के एक-एक पर्चे को अत्यन्त परिश्रम के साथ संग्रह किया है और उनके पद्यों को नष्ट होने से बचाया है। उन्होंने सत्यनारायणजी का एक जीवनचरित्र भी लिखा है, जो छप रहा है। कविरत्नजी का जीवन दुःखान्त था, पर मैं उन्हें सौभाग्यशाली

समझता हूँ कि उन्हें चतुर्वेदी जी जैसे सहायक मिले। चित्रोद्घाटन की प्रथा एक साधारणसी बात है; पर हम हिन्दीवालों के लिए यह अनुकरणीय है क्योंकि यह हमें कृतज्ञता प्रकट करने का अवसर प्रदान करती है।"

"कविरत्न की कविता ही उनकी उत्तराधिकारिणी है और उस कविता के साथ धाँधूपुर का नाम भी अमर हो गया है। मैं इस ग्रामवासियों से और आगरा-निवासियों से प्रार्थना करूँगा कि वे प्रतिवर्ष सत्यनारायण के स्मरण में कोई उत्सव किया करें और उनकी जन्म-तिथि मनावें।"

पंडित पद्मसिंहजी के भावपूर्ण भाषण के बाद श्रीयुत महेन्द्रजी ने सत्यनारायणजी के विषय में अपने स्मरण बतलाये और कविरत्न जी की सहृदयता, सहानुभूति और तत्काल काव्य-रचना-शक्ति के उदाहरण दिये। पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने जो काम कविरत्न जी के लिए किये हैं, उन्हें बताते हुए आपने चतुर्वेदीजी को धन्यवाद दिया। आपने यह भी कहा कि नागरी-प्रचारिणी-सभा आगरा कविरत्नजी का जयन्ती-उत्सव प्रतिवर्ष मनाती है। सभा-भवन में भी सभा ने उनका चित्र रक्खा है तथा शीघ्र ही सभा प्रान्त की साहित्यिक खोज का काम अपने हाथ में लेनेवाली है।

इसके बाद श्रीयुत गोविंददासजी गुप्त ने सत्यनारायणजी के विषय में बहुत कुछ निवेदन किया और ग्रामवासियों को अपने बालकों को शिक्षा प्रदान करने का उपदेश दिया।

अन्त में सभापति पं० गणेशीलाल जी सारस्वत ने पं० पद्मसिंहजी शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी तथा अन्य समागत सज्जनों को धन्यवाद दिया। सभा विसर्जित होने के बाद एकत्रित ग्रामवासियों से श्रीयुत गोस्वामी ब्रजनाथ शर्मा ने प्रार्थना की कि वे मन्दिर में सत्यनारायण के नाम पर एक पाठशाला खोलें और वहाँ अपने छोटे-छोटे बालकों को पढ़ावें।

फिर सब लोगों ने उन स्थानों को, जहाँ सत्यनारायणजी रहते-बैठते, लिखते-पढ़ते थे, देखा। मंदिर के ऊपर से ताज का

अनुपम दृश्य देखते ही बनता है और दर्शकों के हृदय में यह भाव आये बिना नहीं रहता कि सचमुच धांधूपुर चारों ओर के प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण कवि के लिये एक उपयुक्त स्थान है। इस प्रकार यह धाँधूपुर-यात्रा सानन्द समाप्त हुई।
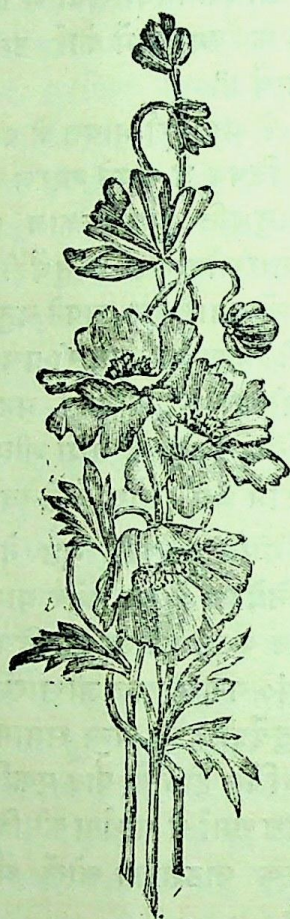
वर्ष-समाप्ति—इस अंक के साथ पत्रिका का बारहवाँ वर्ष समाप्त होता है। परमात्मा की कृपा से राष्ट्रभाषा के लिए यह वर्ष बुरा नहीं रहा। राष्ट्रभाषा हिन्दी के सम्बन्ध की बहुत-कुछ आवश्यक सूचनाएँ पत्रिका के "हिन्दी-जगत" शीर्षक स्तम्भ द्वारा पाठकों को प्राप्त हुई होंगी। साहित्यिक चर्चा भी थोड़ी-बहुत प्रायः प्रत्येक अंक में रही है, जिसके लिए हम उन सुलेखकों और सुकवियों के चिर कृतज्ञ हैं, जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर हमें अपने साहित्यिक लेखों एवं कविता द्वारा अविस्मरणीय सहायता पहुँचाई है। आशा है, हमारे लेखक महोदय अपनी अमूल्य साहित्य-सेवा द्वारा पत्रिका के आगामी वर्ष में भी इसी तरह हमारा हाथ बटाएँगे। पत्रिका के कई अंक इस वर्ष, कुछ तो हमारी निजी झंझटों के कारण और कुछ प्रेस इत्यादि की शिथिलता से, विलम्ब से प्रकाशित हुए, जिसका हमें हार्दिक परिताप है। आशा है, पत्रिका के ग्राहक-अनुग्राहक इस पर विशेष ध्यान न देकर हमें क्षमा करेंगे।

वृन्दावन-सम्मेलन—सम्मेलन के तीन ही मास रह गये हैं। धीरे-धीरे वह दिन भी आ जायगा। पत्रों में इस सम्बन्ध का ज़ोरों का आन्दोलन होना चाहिए। यह तो हमें विश्वास है कि इस वर्ष का सम्मेलन होगा साहित्यिक। कारण कि स्वागत-कारिणी-समिति के अध्यक्ष हैं हिन्दी-साहित्य के धुरन्धर विद्वान् पंडित राधाचरण गोस्वामी, और उपसभापतियों में लब्धप्रतिष्ठ साहित्य-सेवी पंडित किशोरीलाल गोस्वामी का ही नाम लेना पर्याप्त होगा। स्वागत-कारिणी-समिति के प्रधानमंत्री पंडित छबीलेलाल गोस्वामी भी

एक ही उत्साही और उद्यमी कार्यकर्ता हैं। स्थान का कुछ कहना ही नहीं। व्रज-वृन्दावन को यदि हम साहित्य की जन्म-भूमि कहें तो अत्युक्ति न होगी। ऐसी परिस्थिति में सम्मेलन का सभापति भी कोई प्रकांड साहित्य-सेवी ही चुना जायगा। हमें तो प्रत्यक्ष देख पड़ता है कि वृन्दाबन में सम्मेलन अनुपम होगा। कवि-सम्मेलन, साहित्य-प्रदर्शिनी आदि का भी अपूर्व दर्शन मिलेगा, ऐसी आशा है। पर यह सब काम हिन्दी-समाचार-पत्रों के हाथ में हैं। वे चाहें तो उसे आशातीत सफल बना सकते हैं। पत्र-संपादकों से हमारा सानुनय अनुरोध है कि वह अपने प्रतिष्ठित पत्रों में अभी से इस सम्बन्ध का यथेष्ट आन्दोलन करना आरम्भ कर दें।

बृहत्-संग्रहालय—खेद का विषय है कि हिन्दी-संसार का इस ओर जैसा चाहिए वैसा ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ। संग्रहालय में प्रकाशित पुस्तकें, निस्सन्देह, इस वर्ष कुछ अधिक आई हैं। बहुत-सी तो ऐसी पुस्तकें संग्रहालय में रखी गई हैं जो एक प्रकार से अप्राप्य हो रहीं थीं। हस्तलिखित पुस्तकें बहुत कम संख्या में आई हैं। हस्तलिखित पुस्तकों में 'हितसिद्धान्त' प्रेमदास कृत प्रेमसागर' और 'रतनसागर' ऊँची पुस्तकें हैं।

प्राचीन लुप्तप्राय जाति-सर्वस्व साहित्य के संरक्षण के लिए एक ऐसे सुदृढ़ और आदर्श भवन की आवश्यकता है, जो चिरकाल पर्यन्त हिन्दी-संसार की एक सम्पत्ति रहेगा। दृढ़सं-कल्प की आवश्यकता है। हिंदी-संसार यदि चाहे तो एक ही दिन में बृहत्संग्रहालय के लिए एक भव्य भवन निर्मित कर सकता है। क्या हम यह आशा नहीं कर सकते कि भवन-निर्माण का कार्यारम्भ अब होकर ही रहेगा ? प्रत्येक राष्ट्रभाषा-प्रेमी और साहित्य-सेवी का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह संग्रहालय के निमित्त तन, मन और धन से सम्मेलन की यथासाध्य सहायता करे। लुप्तप्राय हस्तलिखित पुस्तकें आर्थिक सहायता के बिना प्राप्त नहीं हो सकतीं। ऐसा हमारा विश्वास है। हम

आशावादी हैं और इसी भित्ति पर हम तो उस स्वर्ण दिवस की प्रतीक्षा बड़ी लालसा के साथ कर रहे हैं जब एक आदर्श 'संग्रहालय' देखकर हमारा हृदय जातीय भावुकता से परिप्लुत हो फूला न समायगा।

सत्साहित्य—इस वर्ष हिन्दी-साहित्य का बहुत-कुछ परिष्कृत रूप देखने में आया है। प्रकाशन-कार्य की गति कुछ मंद रही है, पर दो-चार ऐसे अमूल्य रत्न प्रकाश में आये हैं, जिनसे हमारा मस्तक गौरव से उन्नत हो गया है। भाषा-विज्ञान पर श्रद्धेय बाबू श्यामसुंदरदास के निबन्ध, उपन्यासों में सिद्धहस्त प्रेमचंद-लिखित 'रंगभूमि', बाबू विश्वंभरनाथ खत्री का 'हिन्दी-लोकोक्ति-कोष' काव्य-मर्मज्ञ लाला भगवानदीन की, केशव-कृत कविप्रिया पर 'काव्य-प्रकाश' नाम की टीका, दानवीर बाबू शिवप्रसादजी गुप्त की 'पृथिवी-प्रदक्षिणा' आदि अच्छे ग्रन्थ इस वर्ष प्रकाशित हुए हैं। ऐसे उत्कृष्ट ग्रन्थों का साहित्य-जगत् में जितना आदर हो, थोड़ा है। हमें आशा है कि हमारे सुलेखक एवं प्रकाशक ऐसे ही ऊँचे ग्रन्थों का निर्माण तथा प्रकाशन कर हिन्दी-साहित्य-भाण्डार की यथेष्ट पूर्त्ति करेंगे।

प्रिया-प्रकाश—लेखक तथा प्रकाशक—श्रीयुक्त लाला भगवानदीनजी, प्रोफ़ेसर, हिन्दू-विश्व-विद्यालय, काशी; मिलने का पता—मैनेजर, साहित्य-भूषण कार्यालय, काशी; डबलक्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ४४२; काग़ज़ और छपाई सुन्दर; मूल्य २), सजिल्द २॥)।

महाकवि केशवदास-कृत कविप्रिया पर साहित्य-रसिक लाला जी ने यह सुन्दर टीका लिखी है। अभी कुछ दिन हुए, आपने 'केशव-कौमुदी' के नाम से रामचन्द्रिका पर एक बहुत अच्छी टीका लिखी थी। केशवदास की कवि-प्रिया और रसिक-प्रिया पर सिवा दो-एक पुराने ढर्रे की टीकाओं के कोई समीचीन टीका नहीं मिलती थी। लालाजी ने आज वह कमी पूरी कर दी, जिसके लिए हिन्दी-संसार उनका सदा ऋणी रहेगा। लालाजी ने उन्हीं महाकवि केशव की लिखी रसिक-प्रिया की भी टीका लिखने की, अपने वक्तव्य में, सूचना दी है। हिन्दी-जगत् के लिए यह कम सौभाग्य की बात नहीं है। कविप्रिया में सोलह प्रभाव व अध्याय हैं। काव्य के गुण; दोष, काव्यालंकार, वर्ण्यालंकार, भूमि-भूषण-वर्णन, षट्ऋतु, राज्यश्रीभूषण, मास-वर्णन तथा चित्र आदि का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। वास्तव में, इस ग्रन्थ में कवि का आचार्यत्व भली भाँति देख पड़ता है। इसमें संदेह नहीं कि यह ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य-भांडार का एक अनुपम रत्न है। ऐसे ऊँचे ग्रन्थ पर टीका लिखना सहज काम नहीं। पर हमारे श्रद्धेय लाला जी ने इस दुरूह कार्य में खूब सफलता प्राप्त की है। कहीं-कहीं पर थोड़ा-बहुत मतभेद होते हुए भी हम यह कहने को तैयार हैं कि

लालाजी की साहित्य-मर्मज्ञता सचमुच ही बड़ी ऊँची और प्रामाणिक है। टीका का क्रम आपका यह है—शब्दार्थ, भावार्थ और विशेष। 'विशेष' में आपने कहीं-कहीं पर बड़े मार्के की टिप्पणियाँ लिखी हैं। पाठ-संशोधन में भी जान पड़ता है, आपने अच्छा परिश्रम किया है। हमारी सम्मति में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन एवं उन विश्व-विद्यालयों को, जहाँ ऊँची कक्षाओं में हिन्दी को स्थान मिल गया है, अपने-अपने पाठ्य-क्रम में यह ग्रन्थ अवश्य रखना चाहिए।

पराग—[गंगा-पुस्तक-माला का ४५ वाँ पुष्प] लेखक—श्रीयुत पंडित रूपनारायण पांडेय; प्रकाशक—गंगा-पुस्तक-माला-कार्यालय, २९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ; डबलक्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या १४३; काग़ज़ पुष्ट, छपाई सुन्दर; मूल्य ॥), रेशमी जिल्द १)।

कविरत्न पंडित रूपनारायण पांडेय की सरस कविताओं का यह एक सुन्दर संग्रह है। पांडेयजी की कविताएँ खड़ीबोली के साहित्य में एक प्रतिष्ठित स्थान रखती हैं, इसमें संदेह नहीं। इस संग्रह में आपकी ५६ सुन्दर कविताएँ संग्रहीत की गई हैं। कुछ कविताएँ तो इतनी सरस और भावमयी हैं कि उन्हें बार-बार पढ़ने को मन होता है। देश-सेवा, जीवन-संग्राम, कारागार, बन-बिहंगम, तिलक-तिरोधान, और कुछ राष्ट्रीयगीत हमें बहुत पसंद आये हैं। पुस्तक के अंत में कुछ समस्या-पूर्तियाँ भी संकलित की गई हैं। एक छन्द समस्या-पूर्ति का नीचे दिया जाता है। देखिए, कितना सुन्दर है—

"नागर अकेला, बेला यह तो मिलन ही की,
चल, कर बेर ना रँगीली अब रत्ती भर।
यों हरसिंगार त्यागि सावनी मनावनी क्यों,
कीन्हों पियाबासा नीमराजी की ख़बर पर।
तू न कबौं सनकी यों, कुंद भई कैसी मति,
अथएपै चंद न रहैगी परी सूने घर।

कम रख मान मेरी, अन जान परी,
पाकर कदम सेव, पी पर न रूसा कर ॥

फूलों के नाम कवि ने किस खूबी के साथ उक्त छंद में रखे हैं, देखते ही बनता है।

यह 'पराग' सचमुच ही साहित्य-मधुकरों को अपनी ओर आकर्षित करेगा।

पद्य-प्रसून—लेखक—साहित्यरत्न श्री पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय; प्रकाशक-हिंदी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय (दरभंगा); पृष्ठ-संख्या २७५; काग़ज़ पुष्ट, छपाई सुंदर; सजिल्द मूल्य १।)

कविवर उपाध्यायजी के सरस पद्यों का यह एक सुन्दर संग्रह है। उपाध्यायजी के कवित्व पर कौन संदेह कर सकता है? आप की प्रतिभा वास्तव में ऊँची और मनोमुग्धकारिणी है। आप क्लिष्ट से क्लिष्ट भाषा से लेकर सरल से सरल भाषा में गद्य और पद्य लिख सकते हैं और उसमें उन्हें बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त होती है। हिन्दी-संसार को उपाध्यायजी की रचनाओं पर अभिमान है। वास्तव में, वह एक युग के कवि हैं। उन्हींकी सुन्दर कविताओं का इस पुस्तक में संकलन किया गया है। पावन-प्रसंग, जीवन-स्रोत सुशिक्षा-सोपान जीवनी-धारा, जातीयता-ज्योति विविधविषय आदि विषयों में कविताएँ विभक्त की गई है। अंत में 'बाल-विलास' नाम के विभाग में बाल-सम्बन्धी कविताओं का बड़ा सुन्दर संग्रह किया गया है। कुछ कविताओं को छोड़कर और सभी ऊँची, भावमयी, ललित और सरस हैं। प्रकाशक महोदय ने उपाध्यायजी की सुन्दर कविताओं का संग्रह प्रकाशित कर वास्तव में प्रशंसनीय कार्य किया है, जिसके लिये हम उन्हें बधाई देते हैं। उपाध्यायजी की ब्रजभाषा की प्राचीन कविताएँ भी इसी प्रकार प्रकाशित कर दी जायँ तो अच्छा हो। हिन्दी के अन्य सुकवियों की सुन्दर कविताओं के इसी प्रकार संग्रह प्रकाशित कर क्या हमारे पुस्तक-प्रकाशक पद्य-प्रसून के प्रकाशक का अनुकरण करेंगे?

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्य-विवरण

तथा

लेखमालाएँ

प्रथम	सम्मेलन	की लेखमाला	॥।)	चतुर्दश सम्मेलन की लेखमाला			॥)
द्वितीय	,,	,,	१)	प्रथम वर्ष का कार्य विवरण			।)
तृतीय	,,	,,	।॥)	द्वितीय	,,	,,	।)
चतुर्थ	,,	,,	॥)	तृतीय	,,	,,	।=)
पंचम	,,	,,	॥)	चतुर्थ	,,	,,	॥)
षष्ठ	,,	,,	॥।)	पंचम	,,	,,	॥।)
सप्तम	,,	,,	॥=)	षष्ठ	,,	,,	।)
अष्टम	,,	,,	१)	सप्तम	,,	,,	।=)
नवम	,,	,,	१॥)	अष्टम	,,	,,	।)
दशम	,,	,,	॥)	नवम	,,	,,	।=)
द्वादस	,,	,,	१)	दशम	,,	,,	॥)
त्रयोदश	,,	,,	१)	त्रयोदश	,,	,,	॥)

अन्य पुस्तकों के नवीन संस्करण

निम्नलिखित पुस्तकें, बहुत दिनों से अप्राप्य थीं, अब उनके नवीन संस्करण छपकर तैयार हैं। जिन्हें आवश्यकता हो, तुरन्त लिखकर मँगालें—

द्वितीय सम्मेलन का कार्य-विवरण प्रथम भाग	।)
,, ,, ,, द्वितीय भाग (लेखमाला)	१)
हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	।=)
सूरदास की विनय-पत्रिका (सटिप्पण)	≡)

पता—मंत्री, हिन्दी साहित-सम्मेलन, प्रयाग

—·—

सम्मेलन-विशारद-मंडल

सम्मेलन-परीक्षा के विशारद और रत्न पदवीधारियों से निवेदन है कि, वे अपना वर्त्तमान पता और परिस्थिति का पूरा-पूरा विवरण लिखकर सम्मेलन-कार्यालय में भेज दें। साथ ही यह भी सूचित करें कि किस संवत् में उन्होंने उपाधि प्राप्त की थी; और कृपा करके अपनी क्रम-संख्या भी लिखें।

हमारा विचार है कि हम अपने सब पदवीधरों का एक संघ स्थापित करें; और यदि हमारे पदवीधर महाशयगण हमको यथोचित सहायता देंगे, तो हम वृन्दावन के आगामी सम्मेलन के अवसर पर उनका एक विशेष अधिवेशन करने का भी प्रयत्न करेंगे।

रामरत्न अध्यापक
परीक्षा-मंत्री
लक्ष्मीधर वाजपेयी
प्रचार मंत्री
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

श्रीमङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक

गत वर्ष उपर्युक्त पारितोषिक दर्शन-विषयक ग्रन्थ पर दिया जानेवाला था। परन्तु निर्णय न हो सकने के कारण वह पारितोषिक गत वर्ष नहीं दिया जा सका। इस वर्ष उसके दिये जाने का प्रबन्ध किया जा रहा है। निर्णय की सूचना समाचार-पत्रों में प्रकाशित कराई जायगी।

इसके अतिरिक्त चौथा पारितोषिक इस वर्ष विज्ञान-विषयक होगा। इस विषय के ग्रन्थों का संग्रह हो रहा है। विज्ञान विषयक ग्रन्थ आने की अवधि भाद्री पूर्णिमा है। गणित, रसायन, भौतिक शास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, कृषिविज्ञान आदि विषय के ग्रन्थ भी विज्ञान के ही अन्तर्गत माने जायँगे। शीघ्र ही निर्णायकों का निर्वाचन किया जायगा। ऐसा प्रबन्ध किया जा रहा है कि वृन्दाबन-सम्मेलन में विज्ञान-विषयक पारितोषिक भी दिया जाय।

आशा है, इस वर्ष दोनों विषय के पारितोषिक वृन्दावन-सम्मेलन में प्रदान किये जायँगे।

भाद्र कृष्ण १४,
सं० १९८२ वि०

रामजीलाल शर्मा
संयोजक
श्रीमङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक-समिति
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

तार का पता—"सम्मेलन" इलाहाबाद   रजिस्टर्ड नं० ए. ६२६.

भाग १३ अङ्क १, भाद्रपद सं० १९८२ वि०

संपादक

वियोगी हरि

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

प्रत्यंक ≡)

वार्षिक मूल्य २)

विषय-सूची

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित
सूरजप्रसाद खन्ना के प्रबन्ध से हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग में मुद्रित

सम्मेलन-पत्रिका के नियम

१—'पत्रिका' प्रत्येक मास की पूर्णिमा को प्रकाशित हो जाती है। यदि किसी मास की कृष्णा १० तक उस मास की पत्रिका न मिले, तो पत्र द्वारा सूचना देनी चाहिए।

२—'पत्रिका' का वर्ष भाद्रपद से प्रारम्भ होता है। वर्ष के बीच में, किसी भी मास में, ग्राहक होने पर उस वर्ष के पूर्व मासों के अंक अवश्य लेने पड़ते हैं। डाक-व्यय-सहित पत्रिका का वार्षिक मूल्य २=) है। २) मनीआर्डर द्वारा भेजने से अधिक सुभीता होता है।

३—यदि दो एक मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकखाने से प्रबन्ध कर लेना चाहिये, और यदि बहुत दिनों के लिए बदलवाना हो, तो हमें उसकी सूचना देनी चाहिए, अन्यथा 'पत्रिका' न मिलने के लिए हम उत्तरदायी न होंगे।

४—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें—"सम्पादक सम्मेलन पत्रिका, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र—"प्रचार-मन्त्री हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से और पत्रिका का मूल्य, विज्ञापन की छपाई आदि का द्रव्य "अर्थमंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से आना चाहिए।

५—प्राप्त कविता और लेखों के घटाने, बढ़ाने एवं प्रकाशित करने न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है।

सम्मेलन-पत्रिका में
विज्ञापन की दर

	१ मास	६ मास	एक वर्ष
एक पृष्ठ	५)	२५)	४५)
आधा पृष्ठ	३)	१५)	२८)

आवश्यक सूचना

६—सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की बिक्री पर कमीशन की दर निम्नलिखित है—

(क) १०) से नीचे की पुस्तकों पर कुछ भी कमीशन नहीं दिया जाता।

(ख) १०) से २५) तक की पुस्तकों पर दो आना रुपया कमीशन दिया जाता है।

(ग) २५) से ऊपर १००) तक २०) सैकड़ा।

(घ) १००) से ऊपर, २५) सैकड़ा।

(ङ) ५००) या अधिक की पुस्तकें लेने पर तृतीयांश कमीशन अर्थात् ३३।−)४ सैकड़ा।

(नोट) सम्मेलन से सिर्फ सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें बेची जाती हैं, अतः सर्वसाधारण को चाहिए कि वे सम्मेलन से केवल सम्मेलन द्वारा प्रकाशित ही पुस्तकें मगावें। अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें हमारे यहाँ नहीं मिलतीं।

सुलभ-साहित्य-माला की पुस्तकें

हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—श्री० मिश्रबन्धु

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ, उसने कौन-कौन से रूप पकड़े, किन-किन बाधाओं एवं साधनों का उसे सामना करना पड़ा, वर्त्तमान परिस्थिति क्या है, आदि गम्भीर विषयों का पता इस पुस्तक से भलीभाँति चलता है। अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। "मिश्रबन्धु-विनोद" रूपी महासागर से मथनकर यह इतिहासामृत निकाला गया है। यह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में स्वीकृत है। तृतीय संस्करण, पृष्ठसंख्या १०८, मूल्य।=)

भारतगीत

लेखक—पं० श्रीधर पाठक

पाठकजी की रसमयी रचना से किस सहृदय साहित्य-रसिक का हृदय रसप्लावित न होता होगा? आपकी गणना वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य के महारथियों में है। आपकी राष्ट्रीय कविता नवयुवकों में जातीय जीवन सञ्चार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक पाठकजी के उन गीतों का संग्रह है, जिन्हें उन्होंने समय-समय पर स्वदेश-भक्ति की उमंग में आकर लिखा है। इसकी प्रस्तावना साहित्य-मर्मज्ञ बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठसंख्या ६४, मूल्य ≡)

भारतवर्ष का इतिहास [प्रथम खण्ड]

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६०० संवत् पूर्व से ५० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है। अबतक हिन्दी में भारतवर्ष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था। विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहाँ के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। मध्यमा परीक्षा के इतिहास विषय में यह पुस्तक निर्दिष्ट है। जिल्दवाली पुस्तक का, जिसकी पृष्ठसंख्या ४०६ है, मूल्य केवल १॥) है।

राष्ट्रभाषा

संपादक—श्री 'भारतीय हृदय'

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न उपस्थित किया था कि, क्या हिन्दी राष्ट्रभाषा हो सकती है? इसके उत्तर में भारत के प्रत्येक

प्रान्त के बड़े-बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपात-रहित सम्मतियाँ दी थीं कि निःसन्देह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने योग्य है। उन्हीं सब अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इसके विरोधियों का भी यथेष्ट खण्डन हुआ है। इस विषय के व्याख्यानों का भी इसमें सङ्कलन कर दिया गया है। हिन्दीभाषा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक प्राणस्थानीय नहीं तो क्या है ? पृष्ठसंख्या २००, मूल्य ॥)

शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस सम्बन्धी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह। इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें। महाराष्ट्रपति शिवाजी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का यदि चित्र देखना हो, तो एक बार इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइए। शब्द एवं भाव-काठिन्य दूर करने के लिये कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलङ्कार आदि साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाली आवश्यक बातों का इसमें उल्लेख कर दिया गया है। साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है। पृष्ठसंख्या ५४, मूल्य ≡)

सरल पिङ्गल

ले०— श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद

इस पुस्तक में पिङ्गलशास्त्र के गूढ़ रहस्यों को सरल और सुन्दर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छन्दों के उत्तम उदाहरण भी दिये गये हैं। अन्त में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्दर्शन करा दिया गया है। पृष्ठ-संख्या ५८, मूल्य ।)

सूरपदावली (सटिप्पण)

श्री सूरदासजी के १०० अत्युत्तम पदों का अपूर्व संग्रह है। मूल्य ।)

भारतवर्ष का इतिहास [द्वितीय खण्ड]

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

इसमें ५०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का वर्णन किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान-पतन के क्रम का पता इस पुस्तक से जैसा कुछ चलता है, यह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू-समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि जानने योग्य आवश्यक विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः प्राप्त हो सकता है। सुन्दर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठसंख्या ४४०, मूल्य २।)

पद्य-संग्रह

संपादक { श्री व्रजराज एम्० ए, बी० एस-सी., एल्-एल्० बी०
श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम्० एस्-सी० }

आधुनिक खड़ी बोली के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सुन्दर संग्रह। ये कविताएँ विद्यार्थियों के बड़े काम की हैं। संग्रह सामयिक और उपादेय है। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के साहित्य में स्वीकृत है। पृष्ठसंख्या १२८, मूल्य ।=)

संक्षिप्त सूरसागर

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

सूरदासजी-रचित सूरसागर से ५०० पद-रत्न चुनकर इसमें एकत्र किये गये हैं। जहाँ तक हो सका है, कई प्रतियों से पदों का पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी गयी है। अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और

सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिये लालायित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूरकर हिन्दी-साहित्य-रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य परिचय जोड़ा गया है। उनकी जीवनी की मुख्य-मुख्य घटनाओं का पूरा-पूरा उल्लेख आगया है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएँ भी लिखी गयी हैं। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत है। एण्टिक काग़ज़ का जिल्ददार संस्करण, पृष्ठसंख्या ४२५, मूल्य २)

विहारी-संग्रह

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

कविवर विहारीलाल की सतसई से प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह छोटा सा संग्रह तैयार किया गया है। जहाँ तक सम्भव हुआ है, इसमें शृंगाररस के दोहों का समावेश नहीं किया गया है, किन्तु ऐसे दोहों का संग्रह किया गया है, जो बिना किसी सङ्कोच के बालक-बालिकाओं को पढ़ाये जा सकते हैं। पृष्ठसंख्या ६४, मूल्य ≡)

ब्रज-माधुरी-सार

सम्पादक—श्री वियोगी हरि—इस पुस्तक का विषय इसके नाम ही से प्रकट होता है। इसमें ब्रजभाषा की कविता का सार सङ्कलन किया गया है। इस संग्रह में चार विशेषताएँ हैं:—

(१) इसमें सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय सत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया गया है।

(२) इसमें कुछ ऐसे कवियों की रचनाओं का रसास्वादन भी कराया गया है जो अभी तक कहीं प्रकाशित नहीं हुई थीं।

(३) इस ग्रन्थ में यथेष्ट पाद-टिप्पणियां लगा दी गयी हैं, जिनकी सहायता से साधारण पाठक भी लाभ उठा सकते हैं।

(४) इसके प्रारम्भ में प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवनचरित और उसकी कविता की संक्षिप्त आलोचना भी की गई है।

पृष्ठसंख्या ६३२, मूल्य जिल्दवाले संस्करण का केवल २)

पद्मावत (पूर्वार्द्ध)

सम्पादक—श्री लाला भगवानदीन

यह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत का पूर्वार्द्ध है। इस भाग में पहले खण्ड से लेकर ३४वें खण्ड तक का समावेश हुआ है। सम्पादक महोदय ने इस ग्रन्थ में इतनी पादटिप्पणी लगा दी हैं कि अब इस प्राचीन काव्य का रसास्वदान करना प्रत्येक कविता-प्रेमी के लिए सुलभ हो गया है। अन्त में एक संक्षिप्त शब्दकोश भी जोड़ दिया गया है। पृष्ठसंख्या लगभग २००; मूल्य साधारण जिल्द का १) और जिल्दवाली का १।)

सूरदास की विनयपत्रिका

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

यद्यपि 'विनय-पत्रिका' नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ महात्मा सूरदासजी का नहीं है तथापि सूरसागर में विनय-सम्बन्धी जो पद मिलते हैं, उन्हीं के आधार पर सौ उत्तमोत्तम एवं मनोरम पदों का संकलन करके इसका 'विनय-पत्रिका' नाम दिया गया है। क्रम तुलसीदासजी की विनय-पत्रिका का रक्खा गया है। अन्त में संक्षिप्त शब्दार्थ भी दे दिया है। पृष्ठ-संख्या ७४, मूल्य केवल ≡)

भाग १३ } भाद्रपद, संवत् १९८२ वि० { अंक १

श्रीरामचन्द्रजी की नीति

कवित्त

निसि दिन जोवै, कबहूँ न सुख सोवै,
अंग बारबार गोवै, वृद्ध वैरी की न भीति है।
दौरति, दुरति, दूरि हू लौं न मुरति नेक,
नैननि नवाये निसदिन उर प्रीति है।
कहै 'शिव' कवि सुख दूनो दरसावै,
दुख दीरघ नसावै, पाइयतु नहिं ईति है।
महाराज रामचंद्र जू की नीति कोऊ कहो,
मेरे जान प्रीति परकीया की पुनीति है॥

—सुकवि शिवप्रसाद

महाराज छत्रसाल का एक कवित्त

द्रौपदी की लाज-काज बसन बढ़ाय दीनों,
गज की पुकार पाय आसु उठि धाये हौ।
भारही के अंडन पै घंटा इक धर्यौ धाय,
भारत में पारथ के सारथी कहाये हौ॥
कहै छत्रसाल प्रहलाद की प्रतिज्ञा राखी,
हिर्नाकुस मार्यौ सो तौ वेदन में गाये हौ।
मेरी बेर देर कैसी कीजी है कृपा के सिंधु !
दीनन पै द्याल तौ हमेस होत आये हौ॥

अनुराग-वाटिका

पद

प्रेम कौ न करु बनिज ब्यापारी।

बिन देखे ही हानि-लाभ निज कैसी करत गँवारी॥
या मग में बटपार लगत हैं, झुकी रैनि अँधियारी।
मति खोलै मन-मानिक इततू, सुनि लै सीख हमारी॥
यहाँ कहाँ वै दरद-जौहरी जिनकी परख नियारी।
लगन-रतन-अनमोल, मोल क्यों सकिहैं आंकि अनारी॥
मति बिसाहि लै रूप-रँगीली यह कौरैं मतवारी।
पछितैहै पुनि पथिक पियारे ! गथ गँवाय इत सारी॥

❧ ❧ ❧

धीरे तें काजर दै भोरी।

जैहैं कटि कोरैं कहुँ जो पै, खुलि जैहै सब चोरी॥
है यह स्याम-रूप कौ काजर मद-रँग-भर्यौ अनेरो।
किरकिरात अँखियन में, तोहू लागत सरस घनेरो॥
याहि आँजि तलफत नहिं केते दरदवंत मतवारे।

रूप-रसिक रिझवार सदा मन-मानिक परखनहारे ॥
वै जैहै तुअ दीठि और ही लोक-वेद तें न्यारी।
स्याम-घटा छावैगी जित-तित मनु सावन-अँधियारी ॥
पुनि-पुनि अंजन आँजति एरी ! कह्यौ न मानति मेरो।
इन मानी नैननि कों क्यों तू करति परायो चेरो ॥

❧ ❧ ❧

हमारी लगन लगौंहीं लाल !

लगि जैहै तुमसों जो कैसेहु करिहै विकल बिहाल ॥
यातें इत ह्वै मति निकसौ अब इन अँखियन के चोर।
छबि-आसवहिं पियावत क्यों हम वैसेहि प्रेम-विभोर ॥
इन नैननि में रोग भयो कछु, पलहु धरत न धीर।
बिन देखे मानत नहिं, ऐसे रूप-रसिक बे पीर ॥
कहा कहैं, या चित चाहक पै प्यारे ! कछु बस नाहिं।
लगन लगाय भयो मतवारो बेगरजी जग माहिं ॥

❧ ❧ ❧

वे दिन कबै बहुरि हैं माई !

सपनो भयौं आज अपनो सुख, अब दुख देत बधाई ॥
रहि-रहि पिय आवत नैननि-मग जोरि सनेह-सगाई।
पल खोलत ही भाजि छिपत कहुँ, फेरि न देत दिखाई ॥
इन कुंजन में बैठि कहा अब करैं बिना रस-राई।
नीरस भयौ सबै ब्रज आली ! घूमत बिरह कसाई ॥
प्रेम-कहानी हू हमरी कोउ सुनत नाहिं चित लाई।
सुरझावत नहिं कोउ अरी, यह कसक-जाल दुखदाई ॥
क्यों वा निरमोही के रँगमें यह द्रग-कोर रँगाई।
अब पछिताए होत कहा सखि ! अँग-अँग आगि लगाई ॥
अनजाने या प्रेम-प्रीति की हौं अलि ! बेलि बढ़ाई।
मनु बिषधर नागिनि निज हाथनि आपन माथ चढ़ाई ॥

काँटे लौं कसकति उर अंतर हिलग-अनी बरियाई।
वाही कठिन सुरति-फंदनि बिच रहे प्रान उरझाई॥
भेंटूँगी भुजभरि कब प्रीतम इन कुंजनि बिरमाई।
कब यह प्यासे द्रग वह छबि-रस करिहैं पान अघाई॥

❀ ❀ ❀

प्रेम की जोपै बेलि बढ़ाई।
सींचन की सुधि लीजौ लालन! जाय न कहुँ मुरझाई॥
जब-कब या हिय-लता-कुंज बिच बिरमौ आय पियारे।
भाव-कुसुम-कलियन की माला धारहु प्रान-दुलारे॥
दरस-सरस-रस सींचि करहु नित नव प्रफुलित फुलवारी।
ललित लहलही लसै सदा यह हरित नेह-रस वारी॥
बिरहातप में दूरि राखियौ जुल बेलि नबेली।
जावैगी कुम्हलाय नैकमें मेरी सहज सहेली॥

❀ ❀ ❀

साधन आन प्रेम सम नाहीं।
साँचेहु या की सरि न मिली कहुँ भुवन चतुर्दस माहीं॥
याकों परसि द्रवत उर अंतर, बहति ब्रह्म-रस-धारा।
होत पुनीत पुन्य जीवन यह, मिलत अनंद अपारा॥
ग्यान, जोग, तप, करम, उपासन साधन सुकृत घनेरे।
भये जाय सब नेह-नगर में बिन दामन के चेरे॥
अन्य सबै साधन मेरे मत मारग कुटिल कँटीले।
राज-डगर इक प्रेम, चलत जहँ स्याम-सुरूप-रँगीले॥

❀ ❀ ❀

बलि, बलि, प्रेम-सरोज-कली।
भई आज मुकुलित मानस-मधि रति-रस-रंग-रली॥
मधुर-मोद-मकरंद-रसिक चहुँ, गूंजत भाव-अली।
प्रीतम-पद-नख-चंद-रूप हित है यह भेंट भली॥

(क्रमशः)

वि० ह०

तुलसी-स्मृति

गज़ल

यादगारी का तेरी आज है जलसा तुलसी !
जहाँ में तेरी हक़ीक़त का है शोहरा तुलसी !!
तेरी ख़ुशबूए-वफ़ा से है मोअत्तर भारत !
गुलशने-हिन्द का पुर-लुत्फ़ तू गुञ्चा तुलसी !!
तू गुलिस्ताने-चमने-हिन्द में सरसब्ज़ हुआ,
ग़ैर मुल्कों में भी सन्दल सा तू महका तुलसी !
मिस्ल आइनः के है तेरी सवानिह उमरी,
मिस्ल सूरज के जहां में तेरा जलवा तुलसी !!
फ़िलसफ़ाना तेरी तसनीफ़ों पे दुनियां 'विह्वल',
चाँद-अख़्तर-सा ज़माने में तू चमका तुलसी !!

—वैद्यनाथ मिश्र 'विह्वल'

श्रीसूरदासजी का एक पद

"सम्मेलन-पत्रिका" के गत वैशाख मास के अंक में एक लेख "सूरदासजी का एक दृष्टिकूटक पद" शीर्षक से निकला है। इस लेख में सूरदासजी के एक पद का पाठ दो स्थलों पर भिन्न भिन्न देखकर उसको शुद्ध करने के निमित्त युक्ति लड़ाई गई है। यद्यपि लेखक ने पद का शुद्ध पाठ निश्चित करने में अधिक तर्क किया है पर अलंकार तथा कवि-परिपाटी द्वारा मिलान न करने से इस में कई भूलें हो गई हैं। पहले तो इस लेख का शीर्षक ही ठीक नहीं है। जिस पदका पाठ निर्णय करने में लेखक ने नाना प्रकार के तर्क कियेहैंवह "दृष्टिकूटक" नहीं है। वस्तुतः वह एक अलंकार है जिसका नाम "रूपकातिशयोक्ति" है। इस अलंकार में कवि परम्परा से निश्चित उपमानों द्वारा ही उपमेयका वर्णन किया जाता है।

भ्रम से अथवा असावधानी से श्रीयुत वियोगी हरि जी ने भी "ब्रज-माधुरी-सार" और "संक्षिप्त सूर-सागर" में बहुत कुछ अशुद्ध पाठ रखा है। साथ ही उन्होंने पद के शब्दों पर जो टिप्पणी की है उसमें भी कहीं-कहीं अर्थ-वैषम्य हो गया है। पाठकों की सुविधा के निमित्त दोनों स्थलों के पाठ भी इस लेख में उद्धृत कर देते हैं।

ब्रज-माधुरी-सार का पाठ :—

सारंग

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज क्रीड़त है, तापर सिंह करत अनुराग॥
हरि पर सरवर सर पर गिरवर, फूले कंज पराग॥
रुचिर कपोत बसै ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग॥
फल पर पुहुप,पुहुप पर पल्लव, ता पर सुक, पिक, मृगमद,काग॥
खंजन, धनुष चन्द्रमा ऊपर, ता ऊपर इक मनिधर नाग॥
अंग अंग प्रति और और छबि, उपमा ताको करत न त्याग॥
सूरदास प्रभु पियहु सुधारस मानौ अधरनि के बड़ भाग॥

बँगला पुस्तक का पाठ :—

धानसी

पेखलुँ एकहि अदभुत राग।
मुगल कङल पर गजवर गीरत
तापर सिंह करत अनुराग॥ ध्रु० ॥
तहिपर सरवर तापर गिरिवर
गिरि फूले कंज पराग।
रसिक-कपोत बसई ताहि ऊपर,
अरुण अमृत फल लाग।
फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव
तापर शुक, मृग, भाग।
युगल धनूक बसइ तहि ऊपर
तापर मणिधर नाग।

इह बिधि शोभा रहत निशिवासर
कबहुँ न करत तियाग।
सूरदास पहुँ रसिक-शिरामणि
बाड़ह सिन्धु-सोहाग ॥

श्रीमान् लाला भगवानदीनजी ने इसी पद को "अलंकार-मंजूषा" में "रूपकातिशयोक्ति" के उदाहरण में उद्धृत किया है। उस पाठ और 'व्रज-माधुरी-सार' के पाठ में विशेष अन्तर न होते हुए भी दोनों की टिप्पणी में भारी भेद है। कई अन्य स्थलों और 'सूरसागरों' में देखने पर भी वही पाठ मिला जो 'व्रज-माधुरी-सार, या 'अलंकार-मंजूषा' के पाठ से अधिकांश में मिलता है। किन्तु ऐसा पाठ कहीं न मिला जो बँगलावाली पुस्तक के पाठ से ज़रा भी मिले। पद का शुद्ध पाठ नीचे दिया जाता है —

सारंग राग

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज क्रीड़त है तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंजपराग।
रुचिर कपोत बसै ताऊपर, ताऊपर अमृत फल लाग ॥
फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव, तापर सुक पिक मृगमदकाग।
खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर, ताऊपर इक मनिधर नाग ॥
अंग अंग प्रति और-और छबि उपमा ताको करत नत्याग।
सूरदास प्रभु पियहु सुधारस मानहु अधरनिको बड़भाग ॥

इस पद के प्रत्येक चरण को ध्यान पूर्वक पढ़िये, कविके कौशल और शब्दों के उचित प्रयोग से आप मुग्ध हो जायँगे। कोई भी शब्द निरर्थक नहीं है। पहला चरण है—'अद्भुत एक अनुपम बाग इस चरण में 'एक' और 'बाग' शब्द बड़े सुन्दर हैं। 'एक' शब्द का अर्थ संख्या और अद्वितीय भी होता है, कवि यहाँ पर दोनों अर्थो को ग्रहर कर रहा है। अर्थात् कवि जिस बाग का वर्णन करने जा रहा है वह अद्भुत है, अद्वितीय है और अनुपम है। ऐसा अर्थ

करने पर यह शंका होगी कि अद्वितीय और अनुपम का एक ही सा अर्थ है; पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात हो जायगा कि वस्तुतः इन दोनों शब्दों के अर्थ में भेद है। कवि ने कहा कि 'बाग अद्भुत' है, साथ ही यह विचार भी उठा कि केवल अद्भुत ही है या और भी विशेषता है। वह विशेषता है अद्वितीयता अर्थात् ऐसा दूसरा बाग ही नहीं है, तब इसकी उपमा किसी बाग द्वारा दी ही नहीं जा सकती, अतएव यह बाग 'अनुपम' है।

इसी प्रकार 'बाग' शब्द भी है। अन्य उपवन और वाटिका आदि शब्द नहीं रखे गये। इसका कारण यह है कि 'उपवन' उस बगीचे का नाम है जिसमें वृक्ष और पुष्प ही मात्र लगे हों, 'वाटिका' उसे कहेंगे जहाँ केवल पुष्प ही लगाये गये हों, किन्तु "बाग" उस बगीचे का नाम है जहाँ वृक्ष, पुष्प तो लगे ही हों साथही वहाँ पशु-पक्षी भी रहते हों या पाले गये हों तथा उद्यान-गृह भी बना हो। इसी कारण इस अद्भुत बाग में सूरदासजी ने पशु, पक्षी, वृक्ष और पुष्प सब का वर्णन किया है। लेख के लेखक ने इस चरण के सम्बन्ध में ब्रज-माधुरी-सार का पाठ समीचीन माना है जो तीसरे नम्बरवाले पद में भी ज्यों का त्यों है।

दूसरे चरण में सूरदासजी लिखते हैं—'जुगल कमल पर गज क्रीड़त है तापर सिंह करत अनुराग'। दो कमलों पर हाथी खेल-वाड़ करता है और हाथी पर सिंह सानुराग (बैठा) है। यहाँ पर कवि अद्भुतता दिखा रहा है कि दो कमलों पर हाथी खेलता है। यह बात अद्भुत है अर्थात् कमलों पर एक साधारण जानवर का खड़ा रहना असंभव है; किन्तु इस बाग में हाथी खड़ाही नहीं, क्रीड़ा करता है अर्थात् चलता-फिरता भी है। यदि क्रीड़त शब्द न होता तो यह भी भाव निकाला जा सकता कि काठ का हाथी होगा। यही बात 'तापर सिंह करत अनुराग, में भी है। क्योंकि अनुराग शब्द न होता तो काठ या किसी धातु का बना सिंह भी बैठा हुआ माना जाता पर 'अनुराग' शब्द कहता है कि वह जीवधारी है।

कवि यहाँ पर राधिकाजी का 'नख-शिख' वर्णन करना चाहता है। वह कहता है कि राधिकाजी के चरण कमलवत् हैं, चाल गजवर वत् हैं और कटि सिंह वत् है। लेख के लेखक ने दूसरे चरण में व्रज-माधुरी-सार के पाठ को उपयुक्त बताया है जो तीसरे नम्बर के पद में भी ज्यों का त्यों है। अतएव इसके विषय में भी हमें कुछ नहीं कहना है।

तीसरे चरण में सूरदासजी लिखते हैं—"हरि पर सरवर सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कंज-पराग"। इस विचित्र बाग में सिंह के ऊपर तालाब, तालाब पर पर्वत और पर्वत पर कमल फूले हैं। यहाँ पर भी वही विचित्रता है जो दूसरे चरण में थी; अर्थात् सिंह के ऊपर एक 'गढ़ई' भी नहीं तो सकती; पर इस विचित्र बाग में 'सर वर' स्थित है। फिर तालाब में एक 'कंकड़ी' भी नहीं तैर सकती; पर इस बाग में पर्वत स्थित है। यदि कोई वर्फ का पहाड़ कहे तो वह नहीं होता और न वह तालाबों में पाया जाता है। वह तो समुद्र में होता है। पर्वत पर वृक्षों की कौन कहे कमल भी फूले हैं।

इस चरण में 'कंज' शब्द बड़ा उपयुक्त है। क्योंकि अद्भुतता में अन्तर न पड़ने पावे इसी बिचार से यह शब्द रखा गया है। कंज का अर्थ है (कं=जल + ज=उत्पन्न होना) जल से उत्पन्न होनेवाला। पर यहाँ जलसे उत्पन्न होने वाले कमल (जल-कमल, कंज) पर्वत पर पैदा ही नहीं हुए हैं फूल भी रहे हैं और पराग-सम्पन्न हैं। कवि का भाव यह है कि राधिका जी की नाभि सरवरवत् और कंचुकी के वेलबूटे फूले कंजवत् हैं। उपमा पक्ष में कंज का एक अभिप्राय यह भी है कि जल में उत्पन्न होनेवाले कमल कई रंग होते हैं और कंचुकी में बेलबूटे भी कई रंग के हैं।

इस चरण के 'कंज' शब्द का अर्थ, वियोगी हरिजी ने 'स्तन' और काव्य-मर्मज्ञ लाला भगवानदीनजी ने 'मुख' किया है; पर पीछे और आगे के चरणों का मिलान करने पर ज्ञात होगा कि ये

२

दोनों ही अर्थ असंगत हैं। 'स्तन' का उपमान कंज को मानने में आपत्ति यह है कि कुचों की उपमा फूले और पराग-युक्त कमल से नहीं दी जाती; क्योंकि उपमान की समता रूप, रंग और गुण के द्वारा उपमेय से दी जाती है। कुचों से और फूले कमलों से इनमें से किसी भी गुण द्वारा समता नहीं होती। साथ ही कवि-परम्परा में कुचों की उपमा केवल 'कमल' या अधिकांश में 'कमल-कलिका' से दी जाती है, प्रफुल्लित कमल से नहीं। फूले कमलों की उपमा कुचों से देना पंथ-विरोधी अंध-दोष है, जिसका वर्णन कवि-प्रिया में महाकवि केशव ने किया है और इस दोष के उदाहरण में वे लिखते हैं—

"कोमल कंज से फूलि रहे कुच देखत ही पति चन्द विमोहै।
बानर से चल चारु विलोचन को ये रचे रुचि रोचन को है॥"

इस उदाहरण से प्रत्यक्ष प्रकट है कि फूले-कंज पराग को कुचों का उपमान मानकर सूरदासजी को दोष का भागी बना देना है, अतएव यह 'स्तन' का उपमान नहीं। साथही 'गिरिवर' को वियोगी हरि जीने छाती (?) का उपमान माना है। किन्तु स्त्रियों या देवियों का 'नख-शिख' वर्णन करने में छाती (वक्षस्थल) का वर्णन नहीं किया जाता; किन्तु 'स्तन' ही का वर्णन किया जाता है। पुरुषों का 'शिख-नख' या देवताओं का 'नख-शिख' वर्णन करने में छाती (वक्षस्थल) का वर्णन किया जाता है और वह समीचीन भी है। एक बात और है कि वक्षस्थल या छाती की उपमा 'गिरि' से दी भी नहीं जाती' बल्कि 'स्तनों' के लिए ही 'गिरि' का प्रयोग होता है।

लालाजी के अर्थ में भी एक आपत्ति है। वह आगे के चरण के मिलाने से ज्ञात होती है। अर्थात्—'रुचित कपोत बसै ता ऊपर' से से मिलान करने पर अर्थ असंगत हो जाता है क्योंकि कपोत की की उपमा गर्दन से दी जाती है। अतएव यदि 'कंज' को 'मुख' मान लें तो फिर मुख के ऊपर गर्दन असंगत हो जायगी। दूसरे सूरदासजी लिखते हैं—'फूले कंज पराग'। यदि 'कंज' को 'मुख' मानेंगे तो 'फूले शब्द के अनुसार कई मुख होजायँगे। सुतराम्

'फूले कंज पराग' को 'कंचुकी पर के बने बेल-बूटों का' ही उपमान मानना समीचीन होगा।

यद्यपि 'व्रजमाधुरी-सार' और तीसरे नम्बर के पद का तीसरा चरण मिलता है; पर फिर भी 'व्रजमाधुरी-सार' वाले चरण में ४ मात्राएँ कम हैं जो 'गिरि पर' इस शब्द द्वारा पूर्ण हो जाती हैं। ज्ञात पड़ता है असावधानी के कारण 'गिरि पर' छपने से रह गया है। लेख के लेखक ने इस चरण का पाठ—व्रज-माधुरी-सार' वाला ही—उपयुक्त माना है।

चौथे चरण में सूरदासजी लिखते हैं—"रुचिर कपोत बसै ता ऊपर ता ऊपर अमृत फल लाग"। बाग की विचित्रता यह है कि उन कमलों पर 'कपोत' वास करता है और 'कपोत' के ऊपर अमृत-फल' (अमरूद) लगा है। कवि का भाव यह है कि राधिका जी की गर्दन कपोत की भाँति सुन्दर है और चिबुक अमृत-फलवत् (अमरूद सदृश) है।

वियोगी हरिजी ने 'अमृतफल' का अर्थ 'मुख' किया है; पर 'अमृतफल' की उपमा 'मुख' से नहीं दी जाती; बल्कि 'चिबुक' से दी जाती है। यदि 'अमृतफल' का अर्थ 'मुख' लिया जायगा तो आगे के चरण 'फलपर पुहुप पुहुप पल्लव ता ऊपर सुक, पिक मृग मद, काग' से मिलाने पर बिगड़ जायगा।

लेख के लेखक श्रीयुत सतीशचन्द्रराय एम्० ए० ने इस चरण के सम्बन्ध में बंगला-पुस्तक के 'रसिक-कपोत और' 'अरुण अमृतफल' शब्दों को अधिक समीचीन समझा है। पर क्या इस स्थान पर 'रसिक' और 'अरुण' शब्द उपयुक्त ज्ञात होता है? नहीं। लेखक ने लिखा है—"........उसकी रसिकता (रसज्ञता) अधर रूपी अमृतफल (?) की प्रार्थना के लिए एकान्त उपयोगी है। 'रुचिर' शब्द से ऐसी 'ध्वनि' नहीं निकलती।" किन्तु जानना चाहिए कि गर्दन की उपमा कपोत के किस गुण से दी जाती है? रसिकता से या रुचिरता से? यदि कपोत के पक्ष में रसिक विशेषण लगा भी लिया जाय; पर गर्दन के पक्ष में रसिक का क्या अर्थ

होगा ? गर्दन में रसिकता नहीं होती, रुचिरता होती है। 'कपोत' की गर्दन अधिक 'रुचिर' होती है इसी से गर्दन की उपमा 'कपोत' से दी जाती है। गर्दन की उपमा 'शंख' से भी दी जाती है पर जब गर्दन की उपमा शंख से दी जाती है उस समय शंख की 'रुचिरता' से तुलना नहीं होती बल्कि उसके 'सुचिक्कन' गुण से होती है। भाव यह कि उपमा किसी उपमान की एक विशेष गुण द्वारा दी जाती है। अतएव 'रसिक' की अपेक्षा 'रुचिर' ही हमें विशेष उपयुक्त जँचता है। साथ ही यह भी समझना चाहिए कि 'कपोत' कभी भी फल की इच्छा नहीं करता। वह 'दाना' (अन्न) अधिक पसन्द करता है। उसी को खाता भी है। आप इसकी परीक्षा कर सकते हैं।

जब 'अमृतफल' का अर्थ 'अमरूद' है तो फिर 'अरुण' विशेषण कदापि ठीक नहीं हो सकता क्योंकि अमरूद 'लाल' (अरुण) न होकर 'पीला' होता है। अतएव अरुण शब्द कवि का 'अभिप्रेत' नहीं वह किसी का गढ़ा हुआ प्रतीत होता है।

लेख के लेखक ने 'अमृतफल' का अर्थ 'अधर' किया सा जान पड़ता है; पर यह नितान्त भ्रम है। क्योंकि 'बिम्बा-फल' के अतिरिक्त अन्य किसी भी फल से अधर की उपमा नहीं दी जाती।

इस चरण में लेखक ने लिखा है कि "ता ऊपर ता ऊपर" दो बार एक ही शब्द के आने से पुनुरुक्ति दोष होजाता है; पर यह बात नहीं है। क्योंकि अन्वय करने पर एक 'ता ऊपर' कपोत के साथ और दूसरा 'अमृतफल' के साथ लगता है। यदि इसे पुनरुक्ति मान जायगा तो सूरदास के इस चरण भर में पुनरुक्ति हो जायगी; क्योंकि ऊपर भी इसी प्रकार एक चरण में दो-दो तीन-तीन 'पर' का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार के प्रयोग को दोष नहीं माना जाता। केशव अपनी 'कवि-प्रिया में लिखते हैं कि यदि 'शब्दों' का अन्वय अन्य शब्दों से हो तो वह पुनरुक्ति नहीं है। उदाहरण में इन्होंने एक दोहा लिखा है जिसे हम उद्धृत करते हैं।

लोचन पैने शरन तें, है कछु तो कह सुद्धि ।
तन बेध्यो, बेध्यो सुमन, बेधी मन की बुद्धि ॥

इसी प्रकार 'ता ऊपर ता ऊपर' का अन्वय भिन्न-भिन्न शब्दों के साथ है । इससे दोष नहीं ।

पाँचवें और छठें चरण देखिये—"फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव तापर सुक पिक मृगमद काग । खंजन धनुष चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर इक मनिधर नाग ।" उस फल पर पुष्प है, पुष्प पर पत्र है, और पत्र पर शुक, पिक, कस्तूरी, काग, खंजन, धनुष स्थित हैं, इन पर चन्द्रमा है और चन्द्रमा पर एक मणिधारी सर्प है । विचित्रता यह है कि पुष्प में फल न होकर फल पर पुष्प है पत्र में पुष्प न हो कर पुष्प पर पत्र है । डाली पर न बैठकर पक्षी पत्र पर बैठे हैं । पक्षियों पर चन्द्रमा है और चन्द्रमा पर एक मणिधरी सर्प है । भाव यह है कि पुष्प के सदृश राधिका जी का गोदना-बिन्दु या पल्लव से (नई कोंपल से मुलायम और साधारण लाल) अधर हैं और तोते सी नाक, कोकिल सी वाणी, कस्तूरी का बिन्दु, काकपक्ष सी पाटी खंजन से नेत्र, धनुष सी भौंहैं, चन्द्रमा सा ललाट, सर्प सी मणियुक्त वेणी है ।

वियोगी हरिजी ने 'पुहुप' को 'चिबुक' का उपमान माना है, पर कवि-परम्परा में 'पुष्प' से 'चिबुक' की उपमा दी नहीं जाती, श्रीराय साहब ने 'पुहुप' को दंत-पंक्ति का उपमान माना है पर दांतों की उपमा 'कुन्द' या 'कुन्द-कली' से दी जाती है, केवल पुष्प से नहीं । यथाः—

१—"कैधों कुन्द-कलिका की अवली अनूप कैधों,
बानी की बिपंच की सुधार धरी सार है ।"

२—"दंतन की अवली सिय की समकुन्द की पांपुरी के
अनुमान है ॥"

३—"प्यारे के दसन देखि देह दसा भूल जात,
कुन्द दँरीन तें अधिक छवि बाढ़ी है ।"

४—"कुन्द-कली, दाड़िम दामिनी" इत्यादि ।

हाँ लेखक के इस वाक्य से हम भी सहमत हैं कि "कवि ने समग्र मुख-मण्डल की तुलना अनावश्यक समझकर छोड़ दी है।"

लेख के लेखक ने एक आपत्ति यह की है कि यदि 'व्रज-माधुरी-सार' का पाठ शुद्ध माना जायगा तो क्रम भंग हो जायगा क्योंकि उस अवस्था में नासिका (सुक) के पश्चात् बोली (पिक) का वर्णन होता है। और काक-पक्ष (काग) के पश्चात् आंख (खंजन) का वर्णन होता है, अतएव बँगला-पुस्तक का पाठ "ता पर शुक, मृग, भाग" ही अतीव उत्तम है। पर उस पाठ के मानने में भी कई आपत्तियाँ हैं। यथाः—

(१) मृग-भाग का क्या अर्थ होगा?

(२) क्या भाग का अर्थ अङ्ग समीचीन होगा?

(३) क्या कई अंगों का वर्णन छूट जायगा?

(४) क्या मृग-भाग का अर्थ मृग-नेत्र लिया जा सकता है?

× × × ×

लेखक की आपत्ति का निवारण कवि का पद ध्यान-पूर्वक पढ़ने से स्वयं हो जाती है। कवि को 'क्रम-भंग' का ध्यान है पर वह इस 'क्रम-भंग' को सुधार कर कुछ अंगों का वर्णन छोड़ना उचित नहीं समझता। किस चतुरता के साथ कवि इस दोष से बचा है ज़रा उस पर भी ध्यान दीजिये। ऊपर के पदों में बराबर 'पर' 'ऊपर' या 'ता ऊपर' आदि पद हैं किन्तु जब क्रम तोड़ना है तब कवि इन शब्दों का प्रयोग न करके एक दम 'सरसरी तौर' कहता है—"ता पर सुक, पिक, मृग मद, काग, खंजन, धनुष, चन्द्रमा"। अर्थात् पढ़नेवाला क्रम बैठा लेगा।

यदि क्रम का अधिक ध्यान हो तो क्रम भी ठीक हो सकता उस दशा में 'पिक' को 'सुक' के पहले रखकर पाँचवें और छठे चरणों का अन्वय एक साथ करना होगा।

अन्वयः—"फल पर पुहुप, पुहुप पर पल्लव ता ऊपर पिक, शुक; खंजन, धनुष, चन्द्रमा ऊपर मृगमद, काग ताऊपर इक मनिधर-

नाग।" किन्तु हमारे विचारे से 'द्रविड़ प्राणायाम' की आवश्यकता ही नहीं क्योंकि इस प्रकार का क्रम-भंग दोष नहीं है।

सातवें चरण का अर्थ सरल है किन्तु आठवें पद में 'व्रज-माधुरी-सार' के पाठ से हमारे उद्धृत पद का पाठ नहीं मिलता। हमारी समझ में "अपने ओष्ठों का बड़ा भागमानों" इस अर्थ में व्रजभाषा का "मानहु अधरनि के बड़ भाग" यह प्रयोग अधिक समीचीन है।

लेख के लेखक के उपसंहार की इस बात से हम भी सहमत हैं कि वियोगी हरिजी कृत 'व्रजमाधुरी-सार' वाले पद में मात्राएं कम हैं। प्रत्येक चरण में टेक को छोड़कर गान परिपाटी से ३२ मात्राएँ होनी चाहिएँ।

लिखने का अभिप्राय यही है कि बँगला-पुस्तक के पाठ से 'व्रज-माधुरी-सार' वाला पाठ अधिक उत्तम है और एक दम शुद्ध तो तीसरे नम्बर के पद का पाठ है। जिसके विषय में हम ऊपर विवेचन कर चुके हैं। साथ ही वियोगी हरिजी और राय साहब के किये गये अर्थ कुछ वैषम्य रखते हैं। जान पड़ता है कि श्री वियोगी हरिजी ने वे अर्थ 'भ्रम' से लिखे हैं। मेरे विचार से उक्त पद में आये शब्दों का अर्थ इस प्रकार होना चाहिए—जुगलकमल= दो कमल, दो चरण। गज=हाथी, मंद चाल। सिंह=शेर, कटि। सरवर=तालाब, नाभि। गिरिवर=पर्वत, कुच। कंज=कमल, कंचुकी के बेल-बूटे। कपोत=कबूतर, कंठ। अमृतफल=अमरूद, चिबुक। पुहुप=पुष्प, गोदना बिन्दु। पल्लव=पत्र, अधर। सुक=तोता, नासिका। पिक=कोकिल, वाणी। मृगमद=कस्तूरी, कस्तूरी-बिन्दु। काग=कौआ काक-पक्ष। खंजन=पक्षी विशेष, नेत्र। धनुष=शस्त्र-विशेष, भौंह। चन्द्रमा=चन्द, ललाट। मणिधरनाग=मणिवाला सर्प, मणियों से सजाई वेणी।

मैंने अपने विचारानुकूल जो बन पड़ा, पद का स्पष्टीकरण किया। आगे काव्य-मर्मज्ञों से प्रार्थना है कि इस पर अपनी अपनी लेखनी चलाकर अनुगृहीत करें; क्योंकि यह कवि-शिरोमणि सूरदास जी का पद है।

—विश्वनाथप्रसाद मिश्र 'मुकुन्द' विशारद

सरस दोहे

कुशल भँवर पदमिनि जरी मित्र विरह की ज्वाल।
किते सरग हमहूं चलब दौर्यौ परम बिहाल॥

अर्थ—विरही नायक ने भ्रमर से कुशल पूँछा (भ्रमरोत्तर) (पद्मिनी) कमलिनी (मित्र-बिरह) सूर्य्य के बिरह से जर गई। नायक ने "मित्र" शब्द से अपने को समझ लिया। फिर पूछा— (किते) कहाँ जाता है? (उत्तर) स्वर्ग। नायक—मैं भी चलूँगा (मरण बाचक) यह कह के परम व्याकुल होकर उसके पीछे दौड़ा (मरण हेतु)।

कल्प विरिछ मधु मँद भसम दैहौं आजु सिराय।
उड़ो पंख फइलाय अलि गिर्यौ धरनि मुरझाय॥

अर्थ में प्रथम भ्रमर वाक्य है।

चख कुञ्जन से निकर गहि आंसु मुकुत अधरात।
सांस पंख सन हंस तोहिं लखन सरग मँडरात॥

अर्थ—अर्द्धरात्रि के समय (मदनाधिक्य काल) नेत्र-रूपी कमलों से निकल के (स्वरूप-दर्शन सायुज्य-भाव) अश्रु-रूपी मोतियों को लिये यह हंस (जीव) श्वास-रूपी पंखों को फैला-कर तुम्हारे दर्शनार्थ अथवा तुम्हें न देखकर (वियोग में) स्वर्ग में मँडराता है—

जरत रुधिर बिरहागि से छुन छुन वाप्प उड़ाय।
चख मँह तव मुखचंद से ओसे बनि दुरिजाय॥

मित्र कहो पदमिनि जरी बिलखि सुन्यों परभात।
जरी परी शशि रेख मँह आसुइ समुद सिरात॥

अर्थ—(मित्र) सूर्य्य-देव कहो, क्या कमलिनी जरी? (तापा-धिक्य ग्रीष्म में) मैंने बिलखिके सुना—(सूर्य्य ने कहा) पद्मिनी तो नहीं जरी (कमलिनी का अर्थ) किन्तु प्रभात काल में (जरी... कहुँ) चन्द्र रेखा (नायिका की कृशता) कहीं पर (आसुइ समुद्र) अश्रु के समुद्र में (आसा-दिशा के समुद्र में) (सिरात) डूब रही थी।

चन्दा लखि तव मुख समुझि दौर्यौं हाथ पसार।
उड़न न पायों भुइँ गिर्यौं ऊपर झरे अँगार॥
शशि परिछाईं देख कहुँ मुकुरहिं उरहिं लगाय।
तोप करहुँ अधरात महँ होस कबहुँ जो आय॥
पदमिनि इत बहु मधु छकीं मिलैं हिलैं खिल जाय।
कीच लिपी भुजगन घिरी तेरे सरवर नाय॥

अर्थ-संकेत—पद्मिनी = कमलिनी और नायका। भुजगन = सर्प और व्यभिचारी पुरुष। तेरे सरवर = तुम्हारे समान। 'तुम्हारे सर में' यहाँ पर नायक नायिका की श्रेष्ठता बतलाकर कैतव भाव से अपनी निर्दोषता प्रमाणित करता है।

आंसु डोर बँध गिर कुहू पलकै पंखन तोर।
भये लाल चुगि २ प्रिये चिनगी नैन चकोर॥

अर्थ—अश्रुओं के डोर में बँध के—अमावस्या में गिर के (विरह भाव) पलक रूपी पंखों को तोड़कर (अर्थान्तर) भावरूप में—पलक पंखों को न तोर (निस्तब्ध भाव) ये मेरे नेत्र रूप चकोर चिनगारी चुगि-चुगि के लाल हो गये हैं। क्योंकि "अत्रानुरूपां तनु रूप ऋद्धिं कार्यनिदानाद्धि गुणानधीते—नैषध तृतीय सर्ग १७ श्लोक।

खप्पर चन्द नखत अछत किरण सूत चहुँ तान।
मोर जगत अधरैन मँह प्रेत अनंग मसान॥

अर्थ सरल है। अनङ्ग (न अंगवाले) शब्द से प्रेत का सार्थकत्व है।

श्रुवा साँस-असुआन झरि आहुत भा तनमोर।
भसम शेष यह मदन मख कीन्हीं नेह निचोर॥
करतल लाल गुलाल से अधम न शिव कहं पूज।
शिव शिव नहिं अच्छत परे जल टारो सुन दूज॥

अर्थ—इस दोहे में खण्डिता नायका और कितव नायक की बातचीत है। प्रश्न—गदेली क्यों लाल है? उत्तर—गुलाल से।

नायिका इसे सुनके केसर-लेपित कुचस्पर्श-जनित रक्तिम समझ गई। बोली—अधम (उत्तर) न शिवजी की पूजा की है (शिवजी पर भी गुलाल चढ़ाई जाती है)......। नायिका—शिव शिव? उत्तर—नहिं (अक्षत परे) चावल पड़े हैं (कपट-भाव से कहता है)। नहिं अक्षत परे—स्तनद्वय क्षत हो गये हैं (जल ढारो सुनद्विज) द्वितीय को समझकर जल ढारा है अथवा (कवि वाक्य से) दूसरी ने (प्रथमेतर नायिका ने) जल बहाया।

घूंघुट मारो हाय में मारो घाव कुघात।
कनक लता कर मूंदिगो सुम शशि बीजुरिपात॥

इस दोहे में बीजुरि पात से—वज्रपात के भाव से—अपना क्लेश प्रकट होता है—

कुंकुम वेल कपोल महँ कुण्डल किरन समेत।
कनक विरिछ भेंटत शशिहिं पावक साखी देत॥
मधु के सँग अथवा कहुँ शशि को धर कर बाँह।
रति खेलत फुल गेंद कँह कल्प विरिछ की छाँह॥
मधु जीती वेलें चमकि भौंरा लुरि-लुरि जात।
सुबरन केसर के सरन डूबो सोन दिखात॥

इस दोहे में सो न—वह नहीं—और सोन = सुवर्ण का भाव है।

हीरा की मुख पै दिये हरी जरी चहुँ फेर।
लीन्हों सोनो पंख अहि शशिहिं सुधाहित घेर॥
हँसी दशन उज्ज्वल कला चमकी अधर अमंद।
कर सन सानत सोन महँ चन्द चूर जनु चंद॥
चान्द्र लरी सन हाथ महँ कनक फूल द्युतिफंद।
गंगतिधार सरोज महँ बाँध्यो काञ्चन चन्द॥
कुण्डल अलकैं लहरि लुरि वेदी रतन जड़ाव।
मनि को धर शशि अरु सुधा चाट रहे कर चाव॥
रेखा कन काञ्चलि सरस स्वर्ण कमल को बीन।
तन्तु तार झनकारती शशि महँ गिरा प्रवीन॥

शशि में इस हेतु—
श्रोतुः श्रुतौयाति सुधारसत्वम्—
नैषध काव्ये—

कारी कारी रैन मँह बीजुरि पन्थ सुझाय।
बरसै रस छन गरज भलि गाज गिरै न लखाय॥

अर्थ—पहिले तो इसमें सीधा वर्षा का वर्णन है।

अर्थान्तर में एक सखी एक कृष्णाभिसारिका नायिका से संभाषण करती है। प्रश्न—कारी अरीक्या कारी रैन मँह? —इस निविड़त तमसावृत रात्रि में गमन करती है? उत्तर— बिजली चमककर मार्ग बतला देती है—चुना (बरसै)। उत्तर—रस (जलएवंरस—श्रृंगार रसादि-बिलासोक) पुनः (छन गरज) छन में गर्जना होती है। उत्तर—(छन गरज भलि) छण-मात्र की गरज भी (स्वार्थ भी) अच्छी होती है। पुनः (गाज गिरै)। उत्तर— (न लखाय) नायक के न देखने पर ही गाज गिरती है, अन्यथा नहीं।

यमकालङ्कार

को जी को जी जी कही जी हरि जी हरिजात।
जी हरि जात न हहरि कै हरि जाहैं हरिजात॥

अर्थ—श्रीकृष्णचन्द्रजी के मथुरा-गमन के समय गोपिकाएँ विलाप करती हैं। यदि (जीहरि) जीव को हरण करके (जीहरि) मन को हरनेवाले कृष्णचन्द्र (जात) जा रहे हैं तो (जीको) जीव को (जी जी) जीवित रह! जीवित रह!!—(को) कौन (कही) कहेगा? अतएव हे हरिजात—हरि = कृष्णचन्द्र जात=उत्पन्न अर्थात् कृष्ण के उत्पन्न प्रद्युम्न अर्थात् अनङ्ग—कामदेव! (हरि जातैं) भगवान के जाते ही तू हहरि के (जीहरि) प्राणों को हरके क्यों नहीं जाता। अर्थात् जब तू कृष्ण का आत्मज है तो उनके जाने पर तू हमारे पास रह कर क्या करेगा? तू हमारे प्राणों को लेकर उनके साथ चला जा।

अर्थान्तर—

ऐ (हरिजात) कामदेव! तू (हहरि के) अच्छी प्रकार हमारे प्राणों को हरके नहीं जाता, अतएव—(तैं) तू (हरिजा) नाश को प्राप्त हो—कब? भगवान के जाते ही।

हियाँ न आयो नाथ तुम शशिहू सूरज होत।
दिशा हरत जब जी जरत बरत दिया की जोत॥

अर्थ स्पष्ट ही है।

कुच कुंकुम कजरो नहीं नाथ विपति पढ़ देख।
कारो नख को कमल के दल पर कारो लेख॥

इस दोहे में विरहिणी (कुच.........नहीं) में शृंङ्गार-हीनभाव के साथ रोदन दिखलाती है। दूसरे में यह लिख के कि हे स्वामी विरह में शरीर की काञ्चनी कान्ति इतनी हत हो गई है कि नख विद्रुम-मञ्जरियाँ इतनी काली पड़ गई हैं कि कोयले की तरह कनक कमल दल में भी कालो रेखा पड़ गई है।

अरुणारी अँखियाँ भई आईं रातन यार।
मन न हुलस तलफत रह्यौं कसकि पिरानी रार॥

इस दोहे में दो मित्रों का संलाप है।

प्रश्न—आपके नेत्र क्यों लाल हो गये हैं? उत्तर—यार (मित्र) रातन (रात को) आ गई हैं। गुप्त-अर्थ—यार रात न आई अर्थात् अभिसार का नायिका रात को नहीं आई। प्रश्न—मन क्यों प्रसन्न नहीं है? उत्तर—(तलफत रह्यौं—कसकि पिरानी) इसमें वह नायिका का विरह और नेत्र की पीड़ा कोएक में ही कहता है। मित्र पुनः पूछता है—पिरानी क्या? रार। तू ने अपनी नायिका से कलह किया है, यही तुझे क्लेश है।

साङ्कर सुवरन कमल मँह सुवरन हंस लुभाय।
सुवरन पाती पीयकर बाँच सुवरन बुताय॥

अर्थ स्पष्ट ही है।

तज तन विरह पयान कर आवत हंसा मोर।
आसु मुकुत चुगि-चुगि चिई मानस मानस तोर॥

पत्र में लिखा है—

विरह न तजत—मुझे विरह नहीं छोड़ता। इसलिये यह मेरा हंस यात्रा करके आ रहा है। यह (तेरे उर में मुक्तावली होगी ही नहीं —शृंगार-हीन भाव) इसलिये आसु (शीघ्र ही) मान-सरोवर में मुक्ता चुग चुग के (तोर मानस) तुम्हारे विहार-मानस में रहेगा।

अर्थान्तर

तन-तज = शरीर को छोड़कर; क्यों ? विरह से यह मेरा हंस (जीव) आ रहा है। इसे कृत्रिम मोती न चाहिये; किन्तु तुम्हारी अश्रु मुक्तावली को चुगकर ही जियेगा। कहाँ ? तुम्हारे मन रूपी मानसर में।

चन्द्र मुखी कोकिल करे कुहू-कुहू सब ठाम।
हूकु कहे छन-छन जरौं कुहू कहै जमधाम॥

हे चन्द्र-मुखि, यह कोकिल प्रत्येक स्थान में कुहू-कुहू करती है। यदि कुहू कुहू के बारम्बार कहने पर "हूकु"—ऐसा शब्द सुन पड़ता है तो हूक सी उठती है। यह ध्वनि "हूकु" कहने पर (छन-छन जरौं) क्षण-क्षण जरता हूँ और रुधिर विरहाग्नि में छन छन जरता है इस से विरहाधिक्य का ज्ञान होता है। पुनः कुहू कहे—अमावस्या—यह शब्द यमधाम को कहता है। नायक ने प्रथम "चंद-मुखी" यह लिखा है। इधर कोकिल का शब्द अमावस्यावाची है। इससे वह विरहिणी की मरण-जनित शङ्का में अपने मरण की इच्छा को प्रकट करता है, अर्थात मैं भी मर जाऊँ।

जबहिं पियत मधु लाल तब चम चम गोद न होत।
पारस परिस लही मनौ लोहो सुबरन जोत॥
गोरे अँग सोने जरी सारी अधिक सुहात।
मनहुं जोति के समुद्र महँ बड़वानल चमकात॥
लिखत कनक बीजुर चलत मिलन जवाहिर होय।
लिपटत ही छिप जात है जोति पुञ्ज महँ सोय॥

स्वामी को देखते ही सोने सी चमकती है—उनकी ओर चलने पर बिजली सी। मदाधिक्य पुनः हाव-भाव-संयुत गमन में विद्यु-

त्स्फुरण की सार्थकता है। मिलने पर जवाहिर लिपटने पर ज्योति समूह में सो सी जाती है ज्ञात नहीं होती आलिङ्गन की प्रगाढ़ता (मद का परमाधिक्य)।

—चन्द्रभानु "विभव"

सत्यनारायण कविरत्न

[अभी उस दिन स्वर्गीय कविरत्न पं० सत्यनारायण का चित्रोद्घाटन सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी श्रीयुत पं० पद्मसिंहजी शर्मा ने कविरत्नजीके निवास-स्थान धाँधूपुर में किया था। उस अवसर पर कविरत्नजी के परमभक्त श्रीयुत पंडित बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने यह भाषण किया था—संपादक]

जो मोसों हँसि मिलै होत मैं तासु निरन्तर चेरौ।
बस गुन ही गुन निरखत तिह मधि सरल प्रकृति को प्रेरौ॥
यह स्वभाव को रोग जानिये मेरो बस कछु नाहीं।
नित नव विकल रहत याही सों सहृदय बिछुरन माहीं॥
सदा दारु योषित सम बेबस आज्ञा मुदित प्रमानै।
कोरो सत्य ग्राम कौ बासी कहा तकल्लुफ जानै॥

उपस्थित सज्जनो,

आज से ७ वर्ष पहले की बात है। इसी स्थान पर, जहाँ मैं खड़ा हुआ हूँ, बैठे हुए सत्यनारायणजी ने अपनी पत्नी सावित्री देवी को यह पद्य सुनाया था। जब सत्यनारायण का देवीजी के साथ पक्का सम्बन्ध होगया था उस समय पं० पद्मसिंहजी ने उन्हें अपने एक पत्र में लिखा था—"किसी तरह का तकल्लुफ न करना। जो कुछ बात पूछनी हो स्पष्टतया पूछ लेना।" इसी पत्र के उत्तर में सत्यनारायणजी ने यह पंक्तियाँ लिखी थीं। १५ अप्रैल सन् १९१८ ई० को यानी अपनी मृत्यु के एक दिन पहले उन्होंने यह पंक्तियाँ सावित्रीजी को सुनाई थीं।

सरलप्रकृति-प्रेरित सहृदय स्वर्गीय सत्यनारायण का सुमधुर स्वभाव ही आज हम सबको धाँधूपुर खींच लाया है। इसी

ग्राम की धूल में खेलते हुए सत्यनारायण जाटों के लड़कों के साथ गाया करते थे।

एक दिना की बात।
कामिनि ने लीला करी, सो सुनियो जुरि मिलि भ्रात॥
शची शारदा रमा भवानी ताकी समता ना करैं।
पैदा भई राजदुलारी।
सो कैसे परगट भई कामिनी ?
जाके माता पितु नहीं, नहीं भ्रात और कन्थ।
कामिन काम बढ़ामिनी जाकूँ गामें ग्रन्थ॥
जनम जब कामिनि ने लीन्यौ, मातु को ढिग नाएँ चीन्यौ।
पिता तिरलोकी में नाएँ। भई माँ पैदा कन्याएँ॥

इसी धाँधूपुरा में कभी मन की मौज में आकर सत्यनारायण कहा करते थे—"देखौ अङ्गरेजनको खेल, निकार्यो माटी मैंते तेल, जरै जस घिय कैसो दिवला।"

सामने जो इमली का वृक्ष दीख रहा है उसके साफ़ पत्तों ने सत्यनारायण के विद्यार्थी-जीवन में एक दुर्घटना करा दी थी। एफ़० ए० की परीक्षा के दिन थे। पद्य का पर्चा था। वर्षा-ऋतु थी। तड़के उठकर खिड़की खोलकर पढ़ने बैठे तो सामने ही इस इमली के स्वच्छ पत्ते दिखलाई पड़े। बस फिर क्या था, पढ़ना छोड़ कविता बनाने लगे!

पौन की सनक घन सघन ठनक चारु,
चंचला चिलकि सतदेव चहुँ चाली है।
बादर की कड़ी झड़ी लगी, चहुँघा सों वर,
बोलत पपैया "पिय पिय" प्रन पाली है।
आतुर सो दादुर उछरि दुर दुर देत,
दीरघ अवाज बाज गाज मतवाली है।
सीतल प्रभात बात, खात हरखात गात,
धोये धोये पातनु की बात ही निराली है॥

इस कविता को बनाने और बार-बार पढ़ने में इतने मस्त होगये कि आपको परीक्षा का कुछ ख़्याल नहीं रहा। इम्तिहान में उत्तीर्ण न हो पाये। बालक सत्यनारायण ने इसी स्थान पर अपनी माता की मृत्यु के बाद ये पद्य बनाये थे—

तेरे बिना मातु को मेरी काजर आँख लगै है।
हाथ पाँव करि ऊजर माता को मुख मोर धुवै है॥
भाँति भाँति के वस्त्र हाथ गहि का मोको पहरै है।
बड़ी फिकर करिके को माता भोजन मोहि करै है॥
हाय मात निज वत्सहिं तजिके कितकों जाय सिधारी।
बिना लिखे तुमरे जल बरसे नयनन ते अति भारी।
जो मैं जानतु ऐसी माता सेवा करत बनाई।
हाय हाय कहा करूँ मात तुव टहल नहीं कर पाई॥

यह वही स्थान है जहाँ पर सत्यनारायण ने उत्तर रामचरित और मालती-माधव के अनुवाद किये थे, जो आज अनेक विश्वविद्यालयों की बी० ए० और एम० ए० की परीक्षाओं के लिये नियत हैं।

इस भूमि का प्रत्येक भाग ब्रजभाषा के अनन्य प्रेमी सत्यनारायण के द्वारा पवित्र हो चुका है। इसलिये, ख़ास कर हम ब्रजवासियों के लिये, तो यह एक तीर्थ-स्थान है।

आप लोगों के सामने, जो सत्यनारायणजी के साथी सहपाठी और मित्र हैं, उनके गुणों का वर्णन करना अनावश्यक है; पर एक बात बतला देना मेरा कर्त्तव्य है। इस धाँधूपुर-यात्रा का विचार मेरे ही मन में उत्पन्न हुआ और मैंने ही आपको यहाँ आने का कष्ट दिया है। इस विचार के आधार में दो बातें हैं—पहली बात तो यह है कि सत्यनारायणजी ने हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की उसके कारण उनके प्रति, उनके स्वर्गीय आत्मा के प्रति, कृतज्ञता प्रगट करना और दूसरी बात यह है कि सत्यनारायण को मैं अपनी मातृभाषा के नवीन और भावी साहित्य-सेवियों के लिये आदर्श मानता हूँ। खेद है कि हमारे यहाँ के अनेक साहित्य-सेवियों में बहिर्मुखता

की स्पिरिट पाई जाती है। उनमें आदर्शवादिता का अभाव है, उनके दिल में रुपया कमाने और बड़े आदमी बनने की धुन है। रुपया कमाना कोई बुरी बात नहीं है, बुराई तो व्यापारिकता के उस भाव में है जो उन लोगों की सहृदयता को नष्ट कर रही है और साथ ही सहित्य-सेवा के पवित्र तीर्थ-स्थान को क्रय-विक्रय का एक बाज़ार बना रही है।

जिन भाषाओं का साहित्य ख़ूब उन्नत हो चुका है उन भाषाओं के लेखकों में यदि व्यापारिकता का यह भाव प्रबल रूप से पाया जावे तो कोई विशेष हानि होने की सम्भावना नहीं है। हमारी भाषा के लिये यह भाव वर्तमान स्थिति में अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होगा।

बीस वर्ष तक निरन्तर निस्वार्थ हिन्दी-साहित्य-सेवा करके सत्य-नारायणजी ने हमारे सामने एक आदर्श उपस्थित कर दिया है और उस आदर्श को ध्यान में रखना हम लोगों का कर्तव्य है। सत्य-नारायण से अधिक योग्य साहित्य-सेवी इस समय भी हमारे यहाँ अनेक विद्यमान हैं और भविष्य में भी होंगे; पर आदर्शवादिता और निस्वार्थ सेवा का वह भाव दुर्लभ ही है। इस भाव के प्रति सम्मान प्रकट करने की प्रेरणा ने हम सब को आज यहाँ उपस्थित कर दिया है। सत्यनारायणजी की कविता की चर्चा करने का न तो यहाँ समय ही है और न उसके लिये उपयुक्त अवसर ही।

यह वही स्थान है जहाँ अपने गृह-जीवन से पीड़ित सत्यनारा-यण के हृदय से यह ध्वनि निकली थी—"क्यों क्यों अनचाहत को संग"। और सामने जो कमरा दीख रहा है वह भी अपना इति-हास रखता है। इसी में मृत्यु-शय्या पर लेटे हुए सत्यनारायण डाक्टर की परीक्षा कर रहे थे, अपने आगरा-निवासी मित्रों की यादकर रहे थे और अधछपे मालती-माधव का विचार कर रहे थे। सत्यनारायण के एक ग्रामीण मित्र ने, जो उनके पास थे मुझ से कहा था कि मृत्यु के पूर्व सत्यनारायणजी ने उनको इशारा किया था कि सावित्री देवी को आँखों के सामने से दूर करदो।

अस्तु, इस प्रकार बिना समुचित चिकित्सा हुए भोले-भाले भैया सत्यनारायण ने सदा के लिये आँखें बन्द कर ली :—

वह कोमल काकली कलित सी सीखी वृन्दा विपिन निवेश।
मस्त कान्ह को कर कर देती हर हर लेती हृदय-प्रदेश॥
राष्ट्र भारती के उपवन में होती रहती थी वह कूक।
कर कर दिये क्रूरताओं के उसने सदा करोड़ों टूक॥
वह कोकिल उड़ गया—गया—वह गया कृष्ण दौड़ो लाओ।
वनदेवी का धन लौटा दो सच्चे नारायण आओ॥

अब मैं सत्यनारायणजी के अनन्य मित्र श्रीमान् पं० पद्मसिंह जी शर्मा से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस चित्र का उद्घाटन करें।

सत्यनारायण के ग्रामीण मित्रों से मैं क्या कहूँ ?

कायर कूर अनिष्ठा नारी चुगल मरौ काऊ जानी ना।
कौआ कुत्ता किरिमि गिंजाई इनकी मौत बखानी ना॥
मरिवौ जगत सराहै राजा साहिर सूर सती को।
रन देखौ करन जती कौ॥

बात बिलकुल ठीक है "मरिवो जगत सराहै राजा, साहिर, शूर, सती को"। आज हम लोग उसी साहिर (शायर, कवि) सत्यनारायण के प्रति अपना आदर भाव प्रकट करने के लिये यहाँ आये हैं।

स्थायीसमिति का छठा अधिवेशन

स्थायीसमिति का छठा अधिवेशन रविवार मिति श्रावण शु० १३ सं० १६८२ वि० तदनुसार ता० २ अगस्तसन् १६२५ ई० को ४ बजे दिन से सम्मेलन-कार्यालय में निम्न-लिखित सदस्यों की उपस्थिति में हुआ—

श्रीयुत बाबू केदारनाथजी गुप्त, प्रयाग
श्रीयुत पं० भागीरथप्रसादजी दीक्षित, लखनऊ
श्रीयुत पं० छबीलेलालजी गोस्वामी, वृन्दाबन
श्रीयुत सरदार नर्मदाप्रसादसिंहजी, प्रयाग
श्रीयुत पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी, प्रयाग
श्रीयुत पं० लक्ष्मीनारायणजी नागर, प्रयाग
श्रीयुत अध्यापक पं० रामरत्नजी, प्रयाग
श्रीयुत चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्मा, प्रयाग
श्रीयुत पं० रामजीलालजी शर्मा, प्रयाग
श्रीयुत पं०भगवतीप्रसाद बाजपेयी (सहायक मंत्री)

सर्व-सम्मति से बाबू केदारनाथजी गुप्त ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

१—गत अधिवेशन का कार्य-विवरण पढ़ा गया और सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

२—वृन्दाबन-सम्मेलनकी स्वागत-कारिणी समिति द्वारा प्रेषित वृन्दाबन-सम्मेलन का कार्य-क्रम उपस्थित हुआ। स्वागत-समिति

की ओर से उसके प्रधानमंत्री पं० छबीलेलालजी गोस्वामी ने प्रस्ताव किया कि वृन्दावन-सम्मेलन के लिए ३ दिनके बजाय ४ दिन का कार्य-क्रम स्वीकार किया जाय । प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ। तदनन्तर सर्व-सम्मति से वृन्दाबन-सम्मेलन के लिए ४ दिन का कार्य-क्रम निम्न-लिखित संशोधित रूप में स्वीकृत हुआ—

प्रथम दिन

शनिवार मार्गशीर्ष कृष्ण ७ सं० १९८२ वि० तदनुसार ता० ७ नवम्बर सन् १९२५ ई०

प्रातः काल ८ बजे से ११ बजे तक

१—नगर-भ्रमण

[१२ बजे से ५ बजे तक]

२—मंगलाचरण

३—भजनगान

४—तार-पत्रादि वाचन

५—स्वागताध्यक्ष का भाषण

६—सभापति का निर्वाचन

७—सभापति का भाषण

८—स्थायीसमिति का कार्य-विवरण

९—विषय-निर्धारिणी-समिति का निर्वाचन

१०—प्रदर्शिनी का उद्घाटन

११—रात्रि में ७ बजे से ९ बजे तक विषय-निर्धारिणी-समिति का अधिवेशन।

दूसरा दिन

रविवार मार्गशीर्ष कृष्ण ८ सं० १९८२ वि० तदनुसार ता० ८ नवम्बर सन् १९२५ ई०

[प्रातःकाल ८ बजे से १२ बजे तक]

१—अध्यापक-सम्मेलन

२—अष्टछाप-सम्मेलन

[१२ बजे से १० बजे रात्रि तक]

३—मङ्गलाचरण

४—निबन्ध-वाचन
५—प्रस्ताव
६—विशेष-भाषण (धन के लिए अपील)
७—मंगलाप्रसाद-पारितोषिक तथा प्रमाण-पत्र, पदक, पारितोषिक और उपाधि-प्रदान

रात्रि में

८—विषय निर्धारिणी-समिति का अधिवेशन
९—धनुर्वेद-क्रीड़ा

तीसरा दिन

सोमवार मार्गशीर्ष कृष्ण ९ सं० १९८२ वि० तदनुसार ता० १० नवम्बर सन् १९२५ ई०

[प्रातःकाल ८ बजे से ५ बजे तक, पुनः रात्रि में ७ बजे से ९बजे तक]

प्रातः काल

१—कवि-सम्मेलन
२—परिचय
३—सम्मेलन की स्थायीसमिति के पदाधिकारियों और सदस्यों का निर्वाचन।

मध्याह्नोत्तर

४—मंगल-गान
५—निबन्ध-वाचन
६—प्रस्ताव
७—व्याख्यान
८—रात्रि में कवि-सभा का दृश्य

चौथा दिन

मंगलवार मार्गशीर्ष कृष्ण १०, सं० १९८२ वि० तदनुसार ता० १० नवम्बर सन् १९२५ ई०

[१२ बजे से ५ बजे तक]

१—कथा
२—विशेष भाषण
३—साहित्य-चर्चा
४—सभापति का अन्तिम भाषण
५—विसर्जन

कार्य-क्रम के दिनों में प्रातःकाल अन्य कितनी ही सभाओं के अधिवेशन भी होंगे और रात्रि में नाटक और रासलीला भी दिखलायी जायगी। इस कार्य-क्रम में परिवर्त्तन करने का अधिकार सामयिक सभापति को होगा।

३—आय-व्यय-अनुमान-पत्र में स्वीकृत किसी प्रधान मद के अन्तर्गत एक उपमद का उपयोग दूसरी उपमद्द में करने का अधिकार स्थायीसमिति को है या नहीं ; यह विषय उपस्थित हुआ और इस पर बाहिरी अनुपस्थित सदस्यों की आई हुई निम्नलिखित महानुभावों की सम्मतियाँ पढ़ी गयीं और उनपर विचार हुआ—

श्रीयुत पं० गोविन्दनारायणजी शर्मा आसोपा बी० ए०, जोधपुर
श्रीयुत पं० बालमुकुन्दजी त्रिपाठी, जबलपुर
श्रीयुत वियोगीहरिजी, पन्ना

प्रो० ब्रजराजजी ने प्रस्ताव किया कि—

गत वर्षों की प्रथा के अनुसार, जब कि आय-व्यय के अनुमान-पत्र में केवल मद्दें ही होती थीं, उपमद्दें नहीं, मद्दों के अन्तर्गत भिन्नभिन्न कार्यों के लिए स्थायीसमिति की आज्ञा से अब तक व्यय होता आ रहा है। इस वर्ष आय-व्यय के अनुमान-पत्र में भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए उपमद्दें भी सम्मिलित हैं। अतः स्थायीसमिति की राय में मद्दों के अन्तर्गत उपमद्दों के व्यय में परिवर्त्तन करने का अधिकार स्थायीसमिति को है। परन्तु इस विषय में कोई स्पष्ट नियम न होने तथा अर्थ-मंत्री को आपत्ति होने के कारण आगामी सम्मेलन तक पिछली प्रथा के अनुसार कार्य किया जाय और आगामी सम्मेलन में इस विषय के लिए निश्चित नियम बना लिया जाय। परन्तु एक प्रधान मद्द का रुपया दूसरी मद्द में व्यय करने का अधिकार स्थायी समिति को भी नहीं है।

चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्मा ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया और पं० लक्ष्मीनारायणजी नागर ने इसका विरोध।

अन्त में श्री अर्थमंत्री जी को छोड़ सर्व-सम्मति से उपर्युक्त प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

४—नियमावली के नियम १८ (इ) के अनुसार सम्मेलन के स्थायी तथा साधारण सदस्यों की नामावली से स्थायी-समिति के लिए दशमांश अर्थात् ५ सदस्य चुनने का विषय उपस्थित हुआ। आयी हुई सम्मतियों का संकलन किया गया और तदनुसार जिन सज्जनों के लिए सर्वाधिक सम्मतियाँ आयीं, उनके नाम पढ़कर सुनाये गये। सर्व-सम्मति से निश्चित हुआ कि इस नामावली में ऐसे भी नाम आये हैं, जिनका चुनाव स्थायीसमिति के लिए सम्मेलन ही में ही हो चुका है। अतः इन मतदाताओं को लिखा जाय कि आप कृपया इस विषय पर फिर से सम्मति दें और सदस्य चुनते हुए इस बात का ध्यान रक्खें कि वे स्थायीसमिति के लिए सम्मेलन से निर्वाचित तो नहीं हैं। इस तरह जो सम्मतियाँ आयें वे स्थायीसमिति की अगली बैठक में उपस्थित हों।

५—प्रधानमंत्रीजी ने सूचना दी कि जम्मू के श्रीमान् हरमुकुन्द जी शास्त्री सम्मेलन के स्थायीसदस्य होना चाहते हैं। उन्होंने नियमानुसार २५०) शुल्क भेज दिया है। चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसाद जी शर्मा के समर्थन के पश्चात् निश्चित हुआ कि ये महानुभाव स्थायी-सदस्य बना लिये जायँ।

६—प्रधान मंत्रीजी ने सूचना दी कि निम्न-लिखित सज्जन सम्मेलन के साधारण सदस्य होना चाहते हैं। इन्होंने नियमानुसार १२) वार्षिक शुल्क के भेज दिये हैं। चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्मा के समर्थन के पश्चात् निश्चित हुआ कि ये महानुभाव साधारण सदस्य बना लिये जायँ।

१—स्वामी कृष्णानन्दजी प्रबन्धक साधु आश्रम, फाजलिका, (पंजाब)।

२—श्रीयुत पं० अमरनाथजी मिश्र, मिश्राना मुहल्ला, मैनपुरी

३—श्रीयुत व्रजबिहारीलाल बी० ए०, एल्—एल्० बी० वकील कटरा, मैनपुरी

४—श्रीयुत चतुर्वेदी पं० कैलाशचंद्रजी पाठक (मैनपुरी) C/o चौबे शालिग्रामजी पाठक एम० ए० डिप्टीकमिश्नर हर्दोई (अवध)

५—श्रीयुत बाबू श्यामसुन्दरलालजी वकील, मैनपुरी

६—श्रीयुत पं० शिवदासजी शर्मा प्रधान आर्य-समाज, मिर्ज़ापुर

७—श्रीयुत बाबू रामनाथजी सेठ एम० ए० एल्—एल्० बी० गऊघाट, मिर्ज़ापुर

८—श्रीयुत लक्ष्मीचंद्रजी सब ओवरसियर पी० डब्ल्यू० डी०, मिर्ज़ापुर

९—श्रीयुत डॉ० पं० गिरधरलालजी दुबे, नया कोठापार्चा, फ़र्रुख़ाबाद

७—प्रधानमंत्रीजी ने सूचना दी कि धुन्धीकटरा, मिर्ज़ापुर के श्रीयुत गंगाप्रसादजी जायसवाल सम्मेलन के हितैषी होना चाहते हैं। इन्होंने नियमानुसार ३) वार्षिक शुल्क के भेज दिये हैं, निश्चित हुआ कि ये महानुभाव हितैषी बना लिये जायँ।

८—काशी के पं० रामनारायणजी मिश्र का वह पत्र उपस्थित हुआ, जिसमें उन्होंने लिखा है कि मैं सम्मेलन की कई समितियों का सभासद चुना गया हूँ, परन्तु किसी बैठक में उपस्थित नहीं हो सका। इसलिए मैं उन सभी समितियों से इस्तीफ़ा देता हूँ। निश्चित हुआ कि इस अवस्था में मिश्रजी का त्याग-पत्र स्थायीस-मिति तथा हिन्दी विद्यापीठ-समिति से स्वीकार किया जाय और परीक्षा-समिति-सम्बंधी त्याग-पत्र परीक्षा-समिति में उपस्थितकिया जाय। क्योंकि परीक्षा-समिति ने उन्हें विशेष रूप से मनोनीत किया था।

सर्व-सम्मति से निश्चित हुआ कि इनके स्थान पर स्थायी-समिति के लिए पं० रामलखनजी शुक्ल बी० ए० प्रोफ़ेसर जमना मिशन कालेज, प्रयाग तथा विद्यापीठ-समिति के लिए बाबू केदारनाथजी गुप्त हेडमास्टर दारागंज हाई स्कूल, प्रयाग सदस्य चुने जायँ।

९—प्रधानमंत्रीजी ने सूचना दी कि मंगलाप्रसाद-पारितोषिक समिति के स्थानीय-सदस्य बाबू गंगाप्रसादजी उपाध्याय कोल्हा

पुर चले गये हैं। जाते हुए उन्होंने मुझसे कहा था कि बाहर रहने के कारण इस वर्ष तो मैं किसी तरह से सम्मेलन के कार्यों में योग नहीं दे सकूँगा। अतः इनके स्थान पर मंगलाप्रसाद-पारितोषिक समिति के लिए किसी अन्य सज्जन को सदस्य चुन लिया जाय तो ठीक होगा, क्योंकि गणपूरक-संख्या (कोरम) की पूर्ति न होने से समिति का कार्य रुका हुआ है।

सर्व-सम्मति से निश्चित हुआ कि मंगलाप्रसाद-पारितोषिक-समिति के लिए बाबू गंगाप्रसादजी उपाध्याय के स्थान पर चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्मा सदस्य चुने जायँ।

१२—पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी का वह पत्र उपस्थित हुआ जिसमें उन्होंने आगामी सम्मेलन के सभापतियों को साहित्य-सुधाकर, साहित्य-सागर अथवा साहित्य-सुधानिधि की उपाधि देने का प्रस्ताव किया है। सर्व-सम्मति से प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ।

१३—पं० छबीलेलालजी गोस्वामी ने प्रस्ताव किया कि वृन्दाबन-सम्मेलन को सफल बनाने के लिए अब अर्थ-संग्रह तथा प्रचार-कार्य करने के लिए एक प्रचारक की अत्यन्त आवश्यकता है। अतः निवेदन है कि प्रचारक महाशय का अर्द्ध-वेतन सम्मेलन स्वतः देना स्वीकार करे, शेष आधा वेतन स्वागत-कारिणी-समिति देगी। अन्त में प्रस्ताव बहुमत से स्वीकृत हुआ।

इसी समय सरदार नर्मदाप्रसादसिंहजी उपस्थित हुए। बाबू केदारनाथजी गुप्त कार्य-वश चले गये और उनके स्थान पर सरदार नर्मदाप्रसादसिंहजी ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

१४—पं० भागीरथप्रसादजी दीक्षित ने प्रस्ताव किया कि अदालतों में हिन्दी-प्रचार का कार्य करने के लिए एक प्रचारक की अत्यन्त आवश्यकता है। यह प्रचारक अदालतों में घूम-घूमकर वहाँ हिन्दी में कार्य करने की चेष्टा करेंगे। सम्मेलन को ऐसे प्रचारक को ५०) मासिक देने का प्रबन्ध करना चाहिए। सर्व-सम्मति से निश्चित हुआ कि एतदर्थ अगले वर्ष ५०) मासिक व्यय करने के लिए आय-व्यय-अनुमान-पत्र में ध्यान रक्खा जाय।

१५—उपर्युक्त प्रस्ताव ५ के अनुसार प्रधान मद्दों के अन्तर्गत जिन उपमद्दों में आय-व्यय-अनुमान-पत्र में स्वीकृत व्यय के अनुसार अधिक व्यय हुआ है, उनका अधिक व्यय दूसरी उपमद्द की बचत से देने का विषय उपस्थित हुआ। सहायकमंत्री ने सूचना दी कि निम्न-लिखित कार्यों में अधिक व्यय हुआ है—

पुस्तकों में—

१—द्वितीय-सम्मेलन की लेखमाला के लिये स्वीकृत ५००), व्यय ६४०॥।)।, अधिक व्यय १४०॥।)।

२—प्रथमालंकार निरूपण के लिये स्वीकृत ८०), व्यय ८६॥।=)॥ अधिक व्यय ६॥।=)॥

६—हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास स्वीकृत १५०), व्यय २०१॥≡)॥, अधिक व्यय ५१॥≡)॥

यह कुल अधिकव्यय २०२।=)। होता है। पुस्तक-प्रकाशन-समिति के मन्तव्यानुसार अब रसिक-प्रिया नहीं छपेगी। उसकी बचत ४००) है। निश्चित हुआ कि यह अधिक व्यय इसी बचत से दिया जाय।

स्टेशनरी सामान में—

फीता के लिए स्वीकृत २), व्यय ४)॥, अधिक व्यय २)॥

स्थायी समान में—

लोहे का रैक स्वीकृत ५००), व्यय ५३७।-)॥।, अधिक व्यय ३७।-)॥।

इस तरह यह विवरण अभी पेश हो ही रहा था, इस पर सभापति जी (सरदार नर्म्मदाप्रसादसिंहजी) ने कहा कि अब इस तरह इस विवरण के उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं है। आज के अधिवेशन में स्वीकृत पूर्व मन्तव्य संख्या ५ के अनुसार एक उपमद्द की बचत का उपयोग दूसरी उपमद्द में किया जासकता है। अतः उपमद्दों का यह अधिक व्यय दूसरी उपमद्दों की बचत से देना स्वीकार किया जाय। प्रधानमंत्रीजी शेष विवरण को भी उक्त मन्तव्य के अनुसार यथाविधि ठीक करलें। अर्थमंत्रीजी ने इसका

विरोध किया। अन्त में बहुमत से सभापतिजी की व्यवस्था स्वीकृत हुई।

१६—स्थायी-समिति के मिति मार्गशीर्ष शुक्ल १२ सं० १६८१ वि० के अधिवेशन में स्वीकृत ११ वें मन्तव्य के अनुसार स्थायी-समिति के अन्तर्गत उपसमितियों में से प्रचार-समिति, परीक्षा-समिति तथा पुस्तक-प्रकाशन समिति का त्रैमासिक विवरण उपस्थित हुआ। निश्चित हुआ कि विवरण अपूर्ण हैं; अतः इन्हें पूर्ण करके पुनः अगली स्थायीसमिति में उपस्थित किया जाय।

तदनन्तर सभापति महोदय को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई।

रामजीलाल शर्म्मा
प्रधान मन्त्री

पंजाब प्रांतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

दूसरे वर्ष (संवत् १९८१) का कार्य्य-विवरण

१९-२० जेठ सं० १९८१ को मुलतान में पञ्जाब प्रांतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का प्रथम उत्सव हुआ, और २०-२१ वैशाख सं० १९८२ को फ़ीरोज़पुर में दूसरा। इन ग्यारह महीनों का वृतान्त ही हमें अपने दूसरे वार्षिक विवरण के रूप में पेश करना है।

पिछले वर्ष के अन्त में मुलतान-सम्मेलन में हमने निम्न-लिखित शब्दों में इस वर्ष के लिये अपना कार्यक्रम उपस्थित किया था—

"हमारा परीक्षणात्मक जीवन बीत चुका है। पञ्जाबमें हिन्दी की इस समय सर्वत्र माँग है। अब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मज़बूत बुनियाद बनाने और उसे गम्भीरता-पूर्वक चलाने की आवश्यकता है।

(१) सब से पहले तो अब से सम्मेलन का एक स्वतंत्र और स्थायी कार्यालय होना आवश्यक है, जो केवल मन्त्री या किसी अन्य व्यक्ति पर निर्भर न हो। इसमें दो एक सौ रुपया आरम्भिक ख़र्च, और सात सौ-आठ सौ वार्षिक ख़र्च होगा।

(२) प्रचार के लिये लगातार वैतनिक वा अवैतनिक उपदेशकों का घूमते रहना भी ज़रूरी है। एक वैतनिक प्रचारक की नियुक्ति आवश्यक दीखती है।

(३) यदि वास्तव में हिन्दी-साहित्य की पंजाब में जड़ जमानी

है तो भिन्न-भिन्न ज़िलों में अपना सारा समय इसी कार्य को देनेवाले हिन्दी शिक्षकों और स्थायी प्रचारकों को नियुक्त करना आवश्यक है। यदि पञ्जाबी जनता इसका महत्व समझे तो प्रत्येक ज़िले में एक शिक्षक प्रचारक नियुक्त कर लेना उनके लिये कोई बड़ी बात नहीं है।

हमने अपने सामने लक्ष्य बहुत बड़ा रक्खा था। खेद है कि हमारा प्रयत्न उसके अनुकूल नहीं हो सका। उक्त कार्य-क्रम में दो बातें मुख्यतया उद्दिष्ट थीं। एक तो यह कि सम्मेलन का नियमबद्ध, स्वतन्त्र और स्थायी कार्यालय स्थापित हो जाय। दूसरी यह कि पंजाब में मद्रास के ढंग पर हिन्दी-प्रचार संगठित किया जाय जो इस वर्ष केवल चार ज़िलों में परीक्षणात्मक रूप से हो। पहले कार्य में थोड़े से अंश में हम सफलता पा सके, दूसरे कार्य का आरम्भ ही नहीं कर सके। पहला काय ही पूरा हो जाता तो बड़ी बात थी।

स्थायी समिति

मुलतान-सम्मेलन में स्थायीसमिति का चुनाव जिस प्रकार हुआ था, और वर्ष के अन्त तक थोड़े-बहुत रद्दोबदल के बाद उसकी जो स्थिति रही वह निम्नलिखित है—

पद	मुलतान-सम्मेलन का चुनाव	वर्ष के अन्तमें स्थिति
सभापति	स्वामी सत्यदेवजी, देहरादून	स्वामी सत्यदेवजी, देहरादेन
उपसभा-पति	(१) म० हंसराजजी लाहौर	(१) म० हंसराजजी, लाहौर
	(२) पं० दीनदयालुजी, झज्झर	(२) पं० दीनदयालजी, झज्झर
	(३) पं० गिरिधर शर्माजी, लाहौर	(३) प्रि० रघुबरदयाल जी, लाहौर
कोषाध्यक्ष	ला० लालचन्दजी (सुपरिंटेंडेंट बजट ब्रांच, पंजाब-सिविल-सैक्रेट्रियट) लाहौर	प्रो० सन्तरामजी ग्रोवर, लाहौर
आय-व्यय परीक्षक	श्रीयुत पुत्तनलालजी विद्यार्थी (जनरल आडिट एन० डब्ल्यू० आर०) लाहौर	ला० लालचन्दजी लाहौर
मन्त्री	श्रीयुत जयचन्द्र विद्यालङ्कार, लाहौर	श्रीयुत जयचन्द्र विद्यालंकार, लाहौर
सहायक मन्त्री	(१) प्रो० रामचन्द्रजी शास्त्री, लाहौर	(१) प्रो० रामचन्द्रजी शास्त्री, लाहौर

पद	मुल्तान-सम्मेलन का चुनाव	वर्ष के अन्त में स्थिति
	(२) ला० अमीरचन्दजी, लाहौर	(२) श्री मणिरामजी गुप्त लाहौर
	(३) पं० परसरामजी, लाहौर	(३) पं० परसरामजी, लाहौर
	(४) श्री० परमानन्दजी शास्त्री, लाहौर	(४) श्री० परमाननन्दजी शास्त्री, लाहौर
सदस्य	(१) डा० गोपीचन्दजी भार्गव, लाहौर	(१) डा० गोपीचन्दजी भार्गव, लाहौर
	(२) प्रो० सन्तरामजी ग्रोवर, लाहौर	(२) ला० खुशहालचन्दजी खुरसन्द, लाहौर
	(३) श्री चमूपतिजी, लाहौर	(३) श्री चमूपतिजी, लाहौर
	(४) श्री रामगोपालजी, लाहौर	(४) श्री रामगोपालजी, लाहौर
	(५) श्री सन्तरामजी बी० ए०, लाहौर	(५) श्री सन्तरामजी बी० ए० लाहौर
	(६) प्रिं० रघुवरदयालजी, लाहौर	(६) पं० ठाकुरदत्तजी वैद्यरत्न, लाहौर

मन्त्री का भ्रमण

मुलतान-सम्मेलन के बाद हमारी कुल पूँजी क़रीब ९०) थी जो कि स्वागत-समिति के पास उधार रूप में पहुँच चुकी थी। हाथ में कुछ भी न था। पिछले साल सम्मेलन का कोई स्वतंत्र कार्यालय नहीं बनवाया था। इस तरह हमें बिलकुल शुरू से ही काम करना था।

गर्मी की छुट्टियों में हमने प्रान्त में दौरा करने का निश्चय किया। अनेक स्थानों पर पत्र लिखने पर हमें अम्बाला, रोहतक, फ़ीरोज़पुर, लुधियाना, गुजरांवाला, जालन्धर, लायलपुर, मुलतान और डेराइस्माईलख़ाँ से निमन्त्रण प्राप्त हुए। लुधियाना को छोड़कर इन सब स्थानों में पिछले साल कुछ कार्य हो चुका था। पंजाब के अतिरिक्त हमें सिंध के कुछ प्रभावशाली सज्जनों की तरफ़ से सारे सिंध में दौरा करने का निमन्त्रण मिला था। समय थोड़ा होने से सिंध के सिवाय पंजाब के तीन-चार राज्यों में ही जाने का निश्चय किया। पीछे सिन्ध नदी में बाढ़ आ जाने से डेराइस्माईलख़ाँ और सिंध की तरफ़ का सब प्रोग्राम भी रद्द करना पड़ा।

१२ से १७ अगस्त तक कसूर, फ़ीरोज़पुर, अबोहर, फ़ाजिलका और लुधियाना का दौरा किया। इनमें से अन्तिम तीन स्थानों में व्याख्यान भी दिये और जनता को फ़ीरोजपुर के आगामी सम्मेलन की सूचना भी।

इसके बाद डेराइस्माइलख़ाँ, मुलतान और सिंध जाने का निश्चय था जो बाढ़ के कारण छोड़ना पड़ा और गुजरांवाला की राह ली। यहाँ श्रीमती पार्वतीदेवीजी के व्याख्यान के प्रभाव तथा ला० विहारीलालजी विज्ञ, ला० विहारीलाल चावला और पं० लक्ष्मीनारायण के परिश्रम से सम्मेलन के एक स्थायी और चालीस के क़रीब साधारण सभासद बने। अगस्त के अन्तिम सप्ताह में लायलपुर पहुँचने के लिए निमन्त्रण था किन्तु हमारे रेलगाड़ी में बैठ जाने के बाद तार पहुँचा कि वहाँ आर्यसमाजी और सनातनधर्मी एक दूसरे की सिर फुड़ौवल में लगे हैं। इस दशा में वहाँ जाना निरर्थक होगा।

लायलपुर से निराश हो अम्बाला को प्रस्थान किया। वहां इस वर्ष पं० उमाप्रसादजी स्वामी को श्री बाबूरामजी गुप्त का सहयोग मिल जाने से अच्छा काम होने लगा है। श्रीमती पारवती देवीजी ने यहांभी व्याख्यान दिया और इन दोनों सज्जनों के परिश्रम से चालीस से अधिक सम्मेलन के सभासद बने।

अम्बाला से एकाएक नाहन जाने का विचार हुआ। हिमालय की तलैटी में रेलवे-लाइन से केवल १६ मील ऊपर नाहन एक एकान्त, नीरव, शान्त, सुव्यवस्थित और सुशासित रियासत है। एक सप्ताह यहां ठहरकर हमने महाराज के और लगभग सब बड़े राज्याधिकारियों के दर्शन किये। उनकी सज्जनता के लिये हम उनके विशेष कृतज्ञ हैं। हम चाहते हैं यह रियासत हिन्दी को अपनाने में पंजाब की सब रियासतों की पथ-दर्शक बने।

नाहन से लौटकर हमने लायलपुर की यात्रा की। खेद से कहना पड़ता है कि यहाँ पिछले साल जो देवनागरी-प्रचारिणी सभा बनी थी वह कार्यकर्ताओं के अभाव से निर्जीव हो गई है। स्थानीय सहयोग के अभाव से हमें यहाँ कुछ सफलता नहीं हुई।

कार्यालय

अक्तूबर के महीने में हमारा ध्यान मुख्यतः सम्मेलन का कार्यालय बनाने में लगा रहा। पंजाब-सिविल-सैक्रेटेरियट के सुपरिंटेंडेंट ला० लालचन्दजी से, जो सम्मेलनके आय-व्यय परीक्षक हैं, इस विषय में विशेष सहायता मिली। हमें यह संतोष है कि उनकी सहायता से सम्मेलन का एक सुव्यवस्थित शृखंलाबद्ध कार्यालय स्थपित हो गया है जो अपनी नियमबद्धता में किसी भी कार्यालय का मुक़ाबला कर सकता है। रुपये की कमी के कारण केवल डेढ़ घन्टा दैनिक के लिये लेखक और चपरासी का प्रबन्ध किया गया। शेष समय में कार्यालय बन्द ही न पड़ा रहे इस विचार से स्थायी समिति ने यह निश्चय किया था कि कार्यालय ऐसे स्थान पर लिया जाय जहाँ मन्त्री की रहने की जगह भी साथ हो। किन्तु अब इस विषय में उन्नति करना आवश्यक है।

[आगामी अङ्क में समाप्य]

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के नवीन सदस्य तथा हितैषी गण

[सम्मेलन के उपदेशक पं० प्रभूदयालु शर्मा द्वारा]

सदस्य गण

१. श्रीयुत रायबहादुर बाबू सूर्य्यप्रसादजी एम्० ए० वकील, भागलपुर
२. श्रीयुत शालिग्रामलाल C/o मधुसूदन ब्रदर्स, नयाबज़ार, भागलपुर सिटी
३. श्रीयुत रायबहादुर बाबू नारायणप्रसादजी रईस कोटबाज़ार, सीतामढ़ी
४. श्रीयुत महन्त सियारामदासजी सीतामढ़ी
५. श्रीयुत गिरीन्द्रमोहन मिश्र एम्० ए०, बी एल० वकील, लहेरिया सराय, दरभंगा
६. श्रीयुत उमाशंकरप्रसाद C/o बाबू राधाकृष्णजी एम० एल० सी० ज़मींदार मुजफ्फरपुर
७. श्रीयुत रामधारीप्रसादजी विशारद स्नेह-सदन, भगवानपुर पो० कुरहनी, ज़िला मुज़फ्फरपुर
८. श्रीयुत सत्यनारायणप्रसादजी चौधरी, सरैतागंज, मुजफ्फरपुर
९. श्रीयुत शिवबक्सलालजी बैंकर और ज़मींदार मुज़फ्फरपुर
१०. श्रीयुत राधाकृष्णजी, नयाबाज़ार, मुज़फ्फरपुर
११. श्रीयुत रमाचरणजी, किशोरी-भवन, मुज़फ्फरपुर
१२. श्रीयुत बाँकेबिहारीलालजी राज तहसीलदार सदर सरकिल बेतिया (चम्पारन)
१३. श्रीयुत साह, गोपालरामजी कालीबाग, बेतिया
१४. श्रीयुत सूर्य्यमल्ल लालबाज़ार, बेतिया, चम्पारन
१५. श्रीयुत राधाकृष्णजी मोठाणी लालबाज़ार, बेतिया

१६. श्रीयु विपिनबिहारीजी वर्मा, बेतिया चम्पारन
१७. श्रीयुत मुनीश्वरप्रसाद सिंहजी वकील, छपरा
१८. श्रीयुत साँवलिया विहारीलालजी वर्म्मा एम० ए० बी० एल० वकील, मथुराभवन, छपरा
१९. श्रीयुत जगन्नाथ शरणजी बी० ए० बी० एल० वकील छपरा (सारन)
२०. श्रीयुत दयामहेश्वर दयालू ज़िला स्कूल, छपरा
२१. श्रीयुत भगवतीप्रसाद सिंहजी चौतरिया निवास रतनपुर, छपरा
२२. श्रीयुत महेन्द्रप्रसादजी बी० ए०, बिहार बैंक, छपरा

हितैषी गण

१. श्रीयुत नरसिंहप्रसाद लल्लू पोखर, मुंगेर
२. श्रीयुत दुर्गा ठाकुर स्वर्णकार, भोगोल बाजार, मुंगेर सिटी
३. श्रीयुत हरिहरप्रसादजी, सीताराम पुस्तकालय, सीतामढ़ी
४. श्रीयुत लखनलालजी, श्रीजानकी स्थान पो० सीतामढ़ी
५. श्रीयुत सेठ रामनाथ खेमका, कोटबाज़ार, सीतामढ़ी
६. श्रीयुत योगेश्वरप्रसादजी मैनेजर बैंक सीतामढ़ी
७. श्रीयुत रणधीरसहायजी महथा मैनेजर बैंक सीतामढ़ी
८. श्रीयुत शिवनाथप्रसादजी सीतामढ़ी
९. श्रीयुत मथुराप्रसादसिंहजी करकी बाज़ार, सीतामढ़ी
१०. श्रीयुत सागरमल जी, गुल्लोबाड़ा, दरभंगा
११. श्रीयुत बजरंगबिहारीलाल, गुल्ली बाड़ा, दरभंगा
१२. श्रीयुत रघुनन्दनप्रसादसिंहजी पोस्ट आफ़िस मुहम्मदपुर सूरता (मुज़फ्फरपुर)
१३. श्रीयुत रामयादरामजी, बेतिया
१४. श्रीयुत रायसाहब गोविन्दप्रसादजी वर्मा, नारद प्रेस, छपरा
१५. श्रीयुत गोविन्दशरणजी एम्० ए०, बी० एल० मुंसिफ़, छपरा
१६. श्रीयुत लक्ष्मीप्रसाद बी० ए० बी० एल० वकील, छपरा
१७. श्रीयुत गंगाप्रसादजी जायसवाल, घूँघीकटरा, मिर्ज़ापुर

नवीन वर्ष—इस अंक से पत्रिका का तेरहवाँ वर्ष आरम्भ होता है। भगवती वाग्देवी की अनन्त कृपा से पत्रिका द्वारा, आशा है, हिन्दी-साहित्य-संसार में नित्य नूतन मंगलमय संदेश पहुँचेगा। हाँ, सिवा संदेश-वहन के पत्रिका और सेवा ही क्या कर सकती है? उत्कृष्ट लेखों, ललित कविताओं या सुन्दर चित्रों का जो इसमें, एक प्रकार से, अभाव रहता है, उसका एक कारण है, जिसका उल्लेख हमने कदाचित् गत वर्ष भी किया था। कारण यह है। पत्रिकाका उद्देश मुख्यतः साहित्य-सम्मेलन-सम्बन्धिनी आवश्यक सूचनाओं या समाचारों एवं हिन्दी-जगत् की प्रगति का प्रकाशन करना है। सुंदर गद्य-पद्यात्मक लेखों की ओर तो उसका अभी ध्यान ही नहीं गया है और न सम्मेलन अभी उससे इस प्रकार की सेवा लेना चाहता है। इस कार्य के करने के लिये तो, हिन्दी के सौभाग्य से, अनेक पत्र-पत्रिकाएँ हैं। पत्रिका की इस ओर यह उदासीनता देखकर हमारे कुछ सहयोगियों ने यदा-कदा इस संबंधके कई प्रश्न हमसे किये हैं। उनकी सेवामें हमारा यही विनम्र उत्तर हो सकता है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि सम्मेलन-पत्रिका साहित्यिक लेखों व कविताओं की ओर से सदाही उदासीन रहेगी। वह यह भी कार्य करेगी, पर मुख्यतः नहीं, किन्तु गौणतः। संभव है, किसी समय सम्मेलन अपनी मुख-पत्रिका द्वारा साहित्यिक सेवा भी कर सके। पर अभी हमारी रायमें उसका पत्रिकाके उपयुक्त उद्देशकी पूर्ति करना ही कर्त्तव्य है।

बंबई में हिन्दी—"बम्बई में हिन्दी" शीर्षक एक सूचना हिन्दी के अनेक समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो चुकी है। बंबई में हिन्दी की

यह शिथिलता देखकर किस राष्ट्रभाषा-वादी को दुःख न होगा। सूचक महोदय ने बंबई में हिन्दी-प्रचार करने तथा वहाँ के स्थानीय कार्यकर्त्ताओं का इस कार्य में हाथ बँटाने के लिये सम्मेलन से अनुरोध किया है। सम्मेलन उनकी इस सलाह का आदर करता है। हमारी एक और सहयोगिनी पत्रिका में इसी प्रकार की एक सूचना प्रकाशित हुई है। बंबई-यूनिवर्सिटी में हिन्दी को स्थान दिलाने की ओर उसमें बंबई के कार्यकर्त्ताओं तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का ध्यान आकृष्ट किया गया है। सहयोगिनी ने तो, जोशमें आकर, यहाँ तक लिख डाला है कि—"हम को आश्चर्य है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ख़र्राटे ले रहा है।" खेद और आश्चर्य है कि सहयोगिनी को इस संबंध में सम्मेलन पर यहाँ तक कोप-वृष्टि करने की आवश्यकता पड़ी! सहयोगिनी की यह गांभीर्य-हीनता देखकर हमें, वास्तव में, दुःख हुआ है। जिस सम्मेलन का उद्देश समस्त भारतवर्ष में हिन्दी का प्रचार करना है और जो कई प्रांतों में इस संबंध का कार्य कर भी रहा है, क्या वह बम्बईमें हिन्दीको स्थान दिलानेकी ओर वास्तव में उदासीन है? सम्मेलन का इस ओर अवश्य ध्यान है और वहाँ हिन्दी-प्रचार के लिए कुछ-न-कुछ धीरे-धीरे वह प्रयत्न भी कर रहा है। सम्मेलन तो क्या, कोई भी भारतीय संस्था एक ही साथ सारे देश के कानों तक अपने उद्देश नहीं पहुँचा सकती। उसका कार्य क्रमशः ही हुआ करता है। मद्रास में हिन्दी-प्रचार का कार्य ज़ोरों से हो रहा है। आसाम में भी प्रचार-कार्य चल रहा है। पंजाब में प्रचार की जो गति है, वह भी अप्रकट नहीं। सिंध में भी हिन्दी-प्रचार का कार्य्य होरहा है। बङ्गाल में भी हिन्दी-प्रचार का प्रयत्न हो रहा है। देश जितना ही सम्मेलन का हिन्दी-प्रचार-कार्य में हाथ बटावेगा उतना ही वह अपने उद्देशों को सफल बना सकेगा।

मुद्राराक्षस—रचयिता—महाकवि विशाखदत्त; अनुवादक—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र; संपादक—श्रीबाबू व्रजरत्नदासजी; प्रकाशक—साहित्य-सेवा-सदन, काशी; डबलक्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ३२६; कागज़-छपाई सुन्दर; मूल्य १), सजिल्द १।)

हमें 'मुद्राराक्षस' नाटक के रचयिता और अनुवादक के सम्बन्ध में एक भी शब्द नहीं कहना है। प्रायः प्रत्येक हिन्दी-साहित्य-सेवी इस नाटक से परिचित है। हमें केवल सम्पादक महोदय के कार्य के सम्बन्ध में दो-चार शब्द लिखने हैं।

बाबू व्रजरत्नदासजी हिन्दी-साहित्य के एक ऊँचे लेखक हैं। मुसलमानी इतिहास के आप अच्छे ज्ञाता हैं। साहित्यिक जानकारी भी आपकी प्रशंसनीय है। प्रस्तुत पुस्तक पर, वास्तव में, आपने श्लाघ्य परिश्रम किया है। आप की ७५ पृष्ठ की विशालकाय भूमिका देखकर आप के परिश्रम का पता चलता है। दृश्यकाव्य, भारतीय नाटकों का संक्षिप्त इतिहास, मूल नाटककार का परिचय, अनुवादक का परिचय, नाटकीय घटना का सामयिक इतिहास ग्रन्थ-परिचय, पात्रों का विवेचन, कथावस्तु (Plot) नाटकोल्लिखित स्थानों तथा जातियों का विवरण, ग्रन्थ-निर्माण-काल, पूर्वकथा आदि विषयों का आपने बड़ी ही विवेचना और सुंदरता के साथ निरूपण किया है।

पुस्तक के अंत में एक बड़ा लम्बा-चौड़ा परिशिष्ट दिया गया है। उसमें नाटक के प्रत्येकांक में आये हुए छन्दों का स्पष्ट भावार्थ, तथा विशेषार्थ लिखा गया है। अलंकारों का भी निर्देश किया गया है। सारांश यह कि संपादक महोदय ने सभी आवश्यक

बातों पर यथेष्ट प्रकाश डाला है। ऐसी उत्तम पुस्तक के संपादन एवं प्रकाशन के लिए हम सम्पादक एवं प्रकाशक को हृदय से धन्यवाद देते हैं।

भारत में रेल-पथ—लेखक श्रीरामनिवास पोद्दार; प्रकाशक—श्री बालूराय शर्मा, आगरा; पता—आदर्श पुस्तकालय, चौक, आगरा; डबलक्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ४२८; कागज़, छपाई साधारण; मूल्य लिखा नहीं!

हिन्दी में 'रेल-पथ' पर, जहाँ तक हमें स्मरण है, यह पहली ही पुस्तक है। विषय की महत्ता और पुस्तक की उपयोगिता स्वयं स्पष्ट है। प्रस्तावना-लेखक साहित्य-रत्न पंडित श्रीकृष्णदत्तजी पालीवाल के इन शब्दों के साथ हम भी स्वर मिलाते हैं कि "प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने भारतीय रेलों के सम्बन्ध में भारत-वासियों के हृद्गत विचारों को प्रकट किया है।"

पुस्तक में सब मिलाकर १७ प्रकरण हैं। ऐतिहासिक विवरण और वर्तमान अवस्थिति, निर्माणोद्देश्य, पूँजी का प्रतिफल, विदेशी पूँजी, यात्रा की सुगमता, माल के आवागमन की सुविधा, उद्योग-धन्धे, व्यापारोन्नति आदि महत्वपूर्ण विषयों को लेखक ने विवेचना और रोचकता के साथ लिखा है। प्रत्येक राष्ट्रवादी के हाथ में इस पुस्तक का आदर होगा, ऐसी आशा है।

बाल बिलास—लेखक—साहित्यरत्न श्रीयुत पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय; प्रकाशक—हिन्दी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय, दरभंगा; पृष्ठ-संख्या ४३; कागज़ पुष्ट, छपाई सुन्दर; मूल्य ।)

प्रकाशक महाशय ने "पद्य-प्रसून" नामक पुस्तक में संकलित बाल-संबंधी कविताओं का यह एक अलग संग्रह प्रकाशित किया है। जिनके पास पद्य-प्रसून न हो; पर जो उपाध्यायजी के बाल-साहित्य को पढ़ना चाहते हैं, वह इस छोटी सी पुस्तक से ही काम चला सकते हैं। पुस्तक उपादेय है।

शान्ति-निकेतन—लेखक—श्री नवजादिकलाल श्रीवास्तव; प्रकाशक—भारती-पुस्तक-माला, २२, सरकार लेन, कलकत्ता; डबल

क्राउन १६ पेजी ; पृष्ठ संख्या २४८; काग़ज़ छपाई सुन्दर; मूल्य ११)

भारती-पुस्तक-माला का यह चौथा सुमन है। यह एक मौलिक सामाजिक उपन्यास है। पूर्व और पश्चिम के विचारों का संघर्ष इसमें दिखाया गया है। पाश्चात्य सभ्यता ग्रहण करने से भारतीय समाज कैसा छिन्न-भिन्न हुआ है इसे लेखक ने सफलता से अङ्कित किया है। वर्णनशैली और भाषा भी मनोहर और परिष्कृत है। पुस्तक पढ़ने और मनन करने योग्य है।

"साहित्यानन्द"

प्राप्ति-स्वीकार

निम्नलिखित पुस्तकें भी प्राप्त हो गईं। प्रेषक महाशयों को हार्दिक धन्यवाद !

हँसी-खुशी—लेखक—श्रीयोगीन्द्रनाथ सरकार; संपादक—श्री विश्वम्भरनाथ खत्री ; प्रकाशक वा विक्रेता—मैनेजर, सिटी बुक सोसाइटी, ६४ नं० कालेज स्ट्रीट, कलकत्ता ; सचित्र ; पृष्ठ-संख्या ३२ ; कागज़ छपाई सुंदर ; मूल्य ।-)

पंजाब-प्रांतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का प्रथम वार्षिक विवरण—(संवत् १६८०—८१ का विवरण) ; प्रकाशक—पंजाब प्रांतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, लाहौर; प्रेषक—श्री जयचन्द्र विद्यालंकार, मंत्री, पंजाब प्रांतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, लाहौर।

बलिया-हिन्दी-प्रचारणी सभा का द्वितीय वार्षिक विवरण—(संवत १६८१-८२ का विवरण); प्रकाशक—बलिया हिन्दी-प्रचारणी-सभा, बलिया

नागरी-प्रचारणी सभा बुलंदशहर का ११वां वार्षिक वृत्तान्त—संवत् १६८०—८१ का विवरण) ; प्रकाशक—नागरी-प्रचारणी सभा, बुलंदशहर।

—संपादक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्य-विवरण

तथा

लेखमालाएँ

प्रथम सम्मेलन की लेखमाला			॥।)	चतुर्दश सम्मेलनकी लेख-माला		॥)
द्वितीय	,,	,,	१)	प्रथम वर्ष का कार्य विवरण		।)
तृतीय	,,	,,	।॥)	द्वितीय ,,	,,	।)
चतुर्थ	,,	,,	॥।)	तृतीय ,,	,,	।=)
पंचम	,,	,,	॥)	चतुर्थ ,,	,,	॥)
षष्ठ	,,	,,	॥।)	पंचम ,,	,,	।॥)
सप्तम	,,	,,	॥=)	षष्ठ ,,	,,	।)
अष्टम	,,	,,	१)	सप्तम ,,	,,	।=)
नवम	,,	,,	१॥)	अष्टम ,,	,,	।)
दशम	,,	,,	।≡)	नवम ,,	,,	।=)
द्वादश	,,	,,	१॥)	दशम ,,	,,	॥)
त्रयोदश	,,	,,	१)	त्रयोदश ,,	,,	॥)

अन्य पुस्तकों के नवीन संस्करण

निम्नलिखित पुस्तकें बहुत दिनों से अप्राप्य थीं, अब उनके नवीन संस्करण छपकर तैयार हैं। जिन्हें आवश्यकता हो, तुरन्त लिखकर मँगालें—

द्वितीय सम्मेलन का कार्य-विवरण प्रथम भाग	।)
,, ,, ,, द्वितीय भाग (लेखमाला)	१)
हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	।=)
सूरदास की विनय-पत्रिका (सटिप्पण)	≡)

पता—मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

सम्मेलन-विशारद-मंडल

सम्मेलन-परीक्षा के विशारद और रत्न पदवीधारियों से निवेदन है कि, वे अपना वर्त्तमान पता और परिस्थिति का पूरा-पूरा विवरण लिखकर सम्मेलन-कार्यालय में भेज दें। साथ ही यह भी सूचित करें कि किस संवत् में इन्होंने उपाधि प्राप्त की थी; और कृपा करके अपनी क्रम-संख्या भी लिखें।

हमारा विचार है कि हम अपने सब पदवीधरों का एक संघ स्थापित करें; और यदि हमारे पदवीधर महाशयगण हमको यथोचित सहायता देंगे, तो हम वृन्दाबन के आगामी सम्मेलन के अवसर पर उनका एक विशेष अधिवेशन करने का भी प्रयत्न करेंगे।

रामरत्न अध्यापक
परीक्षा-मंत्री
लक्ष्मीधर वाजपेयी
प्रचार-मंत्री
हिन्दी-साहित्य- सम्मेलन, प्रयाग

आवश्यक सूचना

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का १६ वाँ वार्षिक अधिवेशन मिति मार्गशीर्ष कृ० ७—८—९ तथा १० सं० १९८२ वि० तदनुसार ता० ७—८—९—१० नवम्बर सन् १९२५ ई० को वृन्दाबन में होगा। हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ वयोवृद्ध विद्वान पं० अमृतलालजी चक्रवर्ती सभापति का आसन ग्रहण करेंगे। संवत् १९८१ वि० की सम्मेलन-परीक्षा के प्रथमा तथा मध्यमा के उत्तीर्ण छात्रों को वृन्दाबन में, सम्मेलन के अवसर पर ही, प्रमाण-पत्र, उपाधि-पत्र तथा पदक आदि प्रदान किये जायँगे। अतः प्रथमा तथा मध्यमा परीक्षा के गत वर्ष के उत्तीर्ण छात्र उपर्युक्त तिथियों में सम्मेलन के इस अधिवेशन में अवश्य सम्मिलित होनेका कष्ट उठावें। इसमें हमारी और उनकी, दोनों की, शोभा है।

रामरत्न अध्यापक
परीक्षा-मन्त्री
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

रजिस्टर्ड नं० ए. ६२६.

भाग १३ अङ्क ४, ५ मार्गशीर्ष-पौष सं० १९८२ वि०
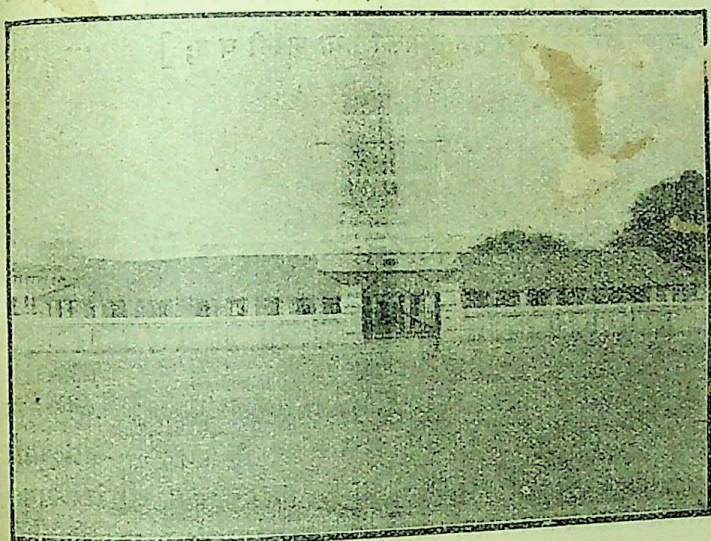
सम्पादक

लक्ष्मीधर वाजपेयी

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

वार्षिक मूल्य २)

प्रत्यंक ≡)

इस अङ्क का मूल्य ।=)

विषय-सूची

सुलभ-साहित्य-माला की पुस्तकें

हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

[लेखक—श्री० मिश्रबन्धु]

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ, उसने कौन-कौन से रूप पकड़े, किन-किन बाधाओं एवं साधनों का उसे सामना करना पड़ा, वर्त्तमान परिस्थिति क्या है, आदि गम्भीर विषयों का पता इस पुस्तक से भलीभाँति चलता है। अपने ढङ्ग की यह पहली पुस्तक है। "मिश्रबन्धु-विनोद" रूपी महासागर से मथनकर यह इतिहासामृत निकाला गया है। यह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में स्वीकृत है। तृतीय संस्करण, पृष्ठ-संख्या १०८, मूल्य ।=)

भारतगीत

[लेखक—पं० श्रीधर पाठक]

पाठकजी की रसमयी रचना से किस सहृदय साहित्य-रसिक का हृदय रसप्लावित न होता होगा? आपकी गणना वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य के महारथियों में है। आपकी राष्ट्रीय कविता नवयुवकों में जातीय जीवन सञ्चार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक पाठकजी के उन गीतों का संग्रह है, जिन्हें उन्होंने समय-समय पर स्वदेश-भक्ति की उमङ्ग में आकर लिखा है। इसकी प्रस्तावना साहित्य-मर्मज्ञ बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य ≡)

भारतवर्ष का इतिहास [प्रथम खण्ड]

[लेखक—श्री० मिश्रबन्धु]

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६०० संवत् पूर्व से ५० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है। अबतक

पता—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्टबाक्स नं० ११, प्रयाग

हिन्दी में भारतवर्ष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था। विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहाँ के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। मध्यमा परीक्षा के इतिहास विषय में यह पुस्तक निर्दिष्ट है। जिल्दवाली पुस्तक का, जिसकी पृष्ठ-संख्या ४०६ है, मूल्य केवल १॥) है।

राष्ट्रभाषा

[सम्पादक—श्री 'भारतीय हृदय']

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न उपस्थित किया था कि, क्या हिन्दी राष्ट्रभाषा हो सकती है ? इसके उत्तर में भारत के प्रत्येक प्रान्त के बड़े-बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपात-रहित सम्मतियाँ दी थीं कि निःसन्देह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने योग्य है। उन्हीं सब अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इसके विरोधियों का भी यथेष्ट खण्डन हुआ है। इस विषय के व्याख्यानों का भी इनमें सङ्कलन कर दिया गया है। हिन्दीभाषा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक प्राणस्थानीय नहीं तो क्या है ? पृष्ठ-संख्या २००, मूल्य ॥)

शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस सम्बन्धी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह। इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें। महाराष्ट्रपति शिवाजी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का यदि चित्र देखना हो, तो एक बार इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइये। शब्द एवं भाव-काठिन्य दूर करने के लिये कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलङ्कार आदि साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाली आवश्यक बातों का इसमें उल्लेख कर दिया गया है। साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है। पृष्ठसंख्या ५४, मूल्य ≡)

सरल पिङ्गल

ले०—{ श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी विशारद
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल विशारद

इस पुस्तक में पिङ्गलशास्त्र के गूढ़ रहस्यों को सरल और सुन्दर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छन्दों के उत्तम उदाहरण भी दिये गये हैं। अन्त में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्दर्शन करा दिया गया है। यह पुस्तक सम्मेलन की प्रथमा-परीक्षा के साहित्य विषय की पाठ्य पुस्तकों में स्वीकृत है पृष्ठ-संख्या ५८ मूल्य ।)

सूरपदावली (सटिप्पण)

श्री सूरदासजी के १०० अत्युत्तम पदों का अपूर्व संग्रह है। मूल्य ।)

भारतवर्ष का इतिहास [द्वितीय खण्ड]

[लेखक—श्री मिश्रबन्धु]

इसमें ५०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का वर्णन किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान-पतन के क्रम का पता इस पुस्तक से जैसा कुछ चलता है, यह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू-समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि जानने योग्य आवश्यक विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः प्राप्त हो सकता है। यह पुस्तक सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा की इतिहास-विषयक पाठ्य पुस्तकों में स्वीकृत है। सुन्दर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठ-संख्या ४४० मूल्य २।)

संक्षिप्त सूरसागर

[सम्पादक—श्री वियोगी हरि]

सूरदासजी-रचित सूरसागर से ५०० पद-रत्न चुनकर इसमें एकत्र किये गये हैं। जहाँ तक हो सका है, कई प्रतियों से पदों का

पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी गयी है। अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिये लालायित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूर कर हिन्दी-साहित्य-रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य-परिचय जोड़ा गया है। उनकी जीवनी की मुख्य मुख्य घटनाओं का पूरा-पूरा उल्लेख आगया है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएँ भी लिखी गयी हैं। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत है। एण्टिक कागज़ का जिल्ददार संस्करण, पृष्ठसंख्या ४२५, मूल्य २)

विहारी-संग्रह

[सम्पादक—श्री वियोगी हरि]

कविवर विहारीलाल की सतसई से प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह छोटा सा संग्रह तैयार किया गया है। जहाँ तक सम्भव हुआ है, इसमें शृंगाररस के दोहों का समावेश नहीं किया गया है। किन्तु ऐसे दोहों का संग्रह किया गया है, जो बिना किसी सङ्कोच के बालक-बालिकाओं को पढ़ाये जा सकते हैं। पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य ≡)

व्रज-माधुरी-सार

[सम्पादक—श्री वियोगी हरि]

इस पुस्तक का विषय इसके नाम ही से प्रकट होता है। इसमें व्रजभाषा की कविता का सार सङ्कलन किया गया है। इस संग्रह में चार विशेषताएँ हैं:—

(१) इसमें सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय सत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया गया है।

(२) इसमें कुछ ऐसे कवियों की रचनाओं का रसास्वादन भी कराया गया है जो अभी तक कहीं प्रकाशित नहीं हुई थीं।

(३) इस ग्रन्थ में यथेष्ट पाद-टिप्पणियाँ लगा दी गयी हैं, जिनकी सहायता से साधारण पाठक भी लाभ उठा सकते हैं।

(४) इसके प्रारम्भ में प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवनचरित और उसकी कविता की संक्षिप्त आलोचना भी की गई है।

पृष्ठसंख्या ६३२, मूल्य जिल्दवाले संस्करण का केवल २)

पद्मावत (पूर्वार्द्ध)

[सम्पादक—श्री लाला भगवानदीन]

यह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत का पूर्वार्द्ध है। इस भाग में पहले खण्ड से लेकर ३४वें खण्ड तक का समावेश हुआ है। सम्पादक महोदय ने इस ग्रन्थ में इतनी पादटिप्पणी लगा दी हैं कि अब इस प्राचीन काव्य का रसास्वादन करना प्रत्येक कविता-प्रेमी के लिए सुलभ हो गया है। अन्त में एक संक्षिप्त शब्द कोश भी जोड़ दिया गया है। पृष्ठ-संख्या लगभग २००; मूल्य साधारण जिल्द का १) और जिल्दवाली का १।)

सूरदास की विनयपत्रिका

[सम्पादक – श्री वियोगी हरि]

यद्यपि 'विनय-पत्रिका' नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ महात्मा सूरदासजी का नहीं है तथापि सूरसागर में विनय-सम्बन्धी जो पद मिलते हैं, उन्हीं के आधार पर सौ उत्तमोत्तम एवं मनोरम पदों का संकलन करके इसका 'विनय-पत्रिका' नाम दिया गया है। अन्त में क्रम तुलसीदासजी की विनय-पत्रिका का रक्खा गया है। अन्त में संक्षिप्त शब्दार्थ भी दे दिया है। पृष्ठ-संख्या ७४, मूल्य केवल ≡)

साहित्य-रत्न-माला

१—अकबर की राज्य-व्यवस्था

[लेखक—साहित्य-रत्न श्री० शेषमणिजी त्रिपाठी, बी० ए०]

इसमें सम्राट अकबर की राज्य-व्यवस्था का बड़ा ही मनोहर चित्र अंकित किया गया है। अकबर के राज्य-काल में भारतीय समाज, धर्म-नीति तथा जीवन की क्या अवस्था थी, वर्तमान राज्य प्रणाली, तत्कालीन व्यवस्था के मुक़ाबले में कैसी है आदि बातों का पता इस पुस्तक से भली भाँति लगता है। इतिहास, राजनीति तथा अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए यह बहुत लाभदायक है। पृष्ठसंख्या २८०, मूल्य १)

२—हिन्दी-काव्य में नवरस

[लेखक—साहित्य रत्न श्रीयुत बाबूरामवित्थरिया]

पुस्तक का विषय उसके नाम से ही प्रकट है। यह पुस्तक लेखक ने सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा देने के लिए निबन्ध (Thesis) रूप में लिखी थी। पुस्तक कितने महत्त्व की है, यह इसी से प्रकट है कि सम्मेलन की परीक्षा-समिति ने इसे मध्यमा परीक्षा के साहित्य विषय के पाठ्यग्रन्थों में चुना है। लगभग ३५० पृष्ठ की होगी। छप रही है। जल्द तैयार होगी।

सम्मेलन की अन्य पुस्तकें

सूर्य सिद्धान्त

[सम्पादक—श्री० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी]

ज्योतिष शास्त्र में सूर्य-सिद्धान्त अपने ढँग का एक ही है। इसे देखने से यह पता भली भाँति चल जाता है कि आर्यों ने उन सिद्धान्तोंका बहुत पहले साक्षात्कार कर लिया था, जिन्हें जानकर पश्चिमी पंडित आज डींग हाँक रहे हैं। इसमें खगोलविषयक

सभी बातें आ गयी हैं। सौर जगत् का पूरा-पूरा विवरण इस अपूर्व ग्रन्थ में दरशा दिया गया है। इस पर संसार की प्रायः सभी भाषाओं में टीका-टिप्पणी हो चुकी है। हिन्दी में दो तीन और टीकाएँ मिलती हैं, पर उनसे ठीक-ठीक भाव समझ में नहीं आता। श्री द्विवेदीजी ने इसके गूढ़ से गूढ़ विषय भी सरल और स्पष्ट भाषा में समझाने की पूर्ण चेष्टा की है। मध्यमा के ज्योतिष विषय में यह स्वीकृत है। सजिल्द, पृष्ठ-संख्या २३२, मूल्य १।)

इतिहास

[ले०—स्वर्गीय श्रीविष्णु शास्त्री चिपलूणकर]

यह श्री चिपलूणकर जी के निबन्ध का अविकल है। इतिहास सम्बन्धी प्रायः सभी ज्ञातव्य बातें इसमें आ गयी हैं। यह पुस्तक सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा के इतिहास विषय की पाठ्य पुस्तकों में स्वीकृत है। मूल्य ≡)

हिन्दी-भाषा-सार

[सम्पादक—श्री लाला भगवानदीन
अध्यापक बाबूरामदास गौड़ एम० ए०]

हिन्दी में क्रमशः गद्य का विकास किस-किस प्रकार हुआ, इसका पता इस पुस्तक से चल सकता है। इसमें सुयोग्य सम्पादकों ने हिन्दी के प्राचीन उत्तमोत्तम गद्य लेखकों के चुने हुए लेख दिये हैं। नीचे टिप्पणी भी लगा दी है। गद्यात्मक निबन्धों का यह एक आदर्श संग्रह है। प्रथमा परीक्षा में यह स्वीकृत है। एण्टिक कागज़ पर सुन्दर छपाई, पृष्ठ-संख्या २००; मूल्य ।||)

प्रथमालंकार-निरूपण

[ले०—साहित्याचार्य श्री चन्द्रशेखरजी शास्त्री]

प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए अलंकार विषयक ज्ञान करा देने के लिए यह 'निरूपण' बड़े काम का है। अलंकारों के लक्षण और उनके उदाहरण बड़ी ही सरलता से समझाये गये हैं। प्रथमा परीक्षा में यह स्वीकृत है। मूल्य =)

भाग १३ } मार्ग-शीर्ष, पौष संवत् १९८२ वि० { अंक ४, ५

श्रीराम-यश

कवित्त

नारायन कीन्ही मनि उर अवदात गनि,
 कमला की बानी भनि सोभा सुभ सारु है।
'केसव' सुरभि-केस सारदा-सुवेस-बेस,
 नारद को उपदेस बिसद बिचारु है॥
सौनक ऋषि बिसेषि सीरष सिखानि लेखि,
 गंगा की तरङ्ग देखि बिमल बिहारु है॥
राजा दसरथ-सुत सुनो राजा रामचन्द्र !
 रावरो सुजसु सब जग कौ सिँगारु है॥

—महाकवि केशवदास

अनुराग-वाटिका

पद

न भूलै परसौली* की बात।

भई भेंट वा दिना लाल सों, उर आनँद न समात॥
कुंजन तें रस-रंग-रँगीलो मन्द-मन्द मुसुकात।
लटकि-लटकि झूमत सो आयौ अलबेलो अँगड़ात॥
बदन-कमल विलुलित अलकावलि, मनहुँ मधुप मँड़रात।
झलकत मद भीनी अँखियन कछु कोयन छुलकत जात॥
सोभित सुन्दर सुमन-माल, त्यों कंदुक कर-जलजात।
तरल तरंग उठति नवछबि की रस-समुद्र लहरात॥
पहिले तौ कछु ठिठकि गयौ लखि, धरत पाँव सकुचात।
धायौ पुनि किलकारी दै वह अंग-अंग सरसात॥
गयौ लपटि मो हिय तें प्यारो पुलकित कोमल गात।
ध्याय-ध्याय वह मिलन-चित्र हरि नैना नाहिं अघात॥

❧❧❧
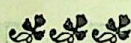
मिल्यौ वह चंदसरोवर-तीर‡।

जा मोहन की झलक झाँकिबे हो मैं निपट अधीर॥
हौं तो देखत हो तहँ टाड्यौ कपि-कुल-केलि-कलोल।
नाचि उठे हठि मोर अचानक कुहुकि-कुहुकि कल बोल॥

---

*एक गाँव, जो गोवर्द्धन पर्वत के समीप है। इसे आजकल महमदपुर कहते हैं। महात्मा सूरदासजी ने यहीं प्राण-त्याग किया था।

‡ एक कुंड, जो परसौली ग्राम के बिल्कुल समीप है। कहते हैं, श्रीकृष्ण ने, श्रीचंद्रावलीजी के प्रीत्यर्थ, इसी सरोवर पर रास-विहार किया था, और तभी से इसका नाम चंद्रसरोवर पड़ गया। इस सरोवर पर सूरदासजी प्रायः निवास किया करते थे। आज भी वह स्थान, जहां वह रहते थे, 'सूरदास की कुटी' के नाम से प्रसिद्ध है।

निरखन लागे दिन ही में कछु उत टक लाय चकोर।
लागे गूंजन मुदित मधुप मनु मत्त मरन्द-विभोर॥
इतने में तहँ लता-जाल बिच प्रगट्यौ मथन-मनोज।
नव घनश्याम चन्द नित पूरन मंजुल बदन-सरोज॥
हटके हू मान्यौ नहिं मो मन निरखि स्याम-मुसक्यान।
धाय लियौ उर लाय लाल निज रह्यौ न तनकौ भान॥
निरखि हमारो मधुर मिलन चहुँ रह्यौ प्रेम-घन छाय।
चंद-सरोवर हू पुलकित ह्वै ललकि-ललकि लहराय॥
वा दिन की वाकी उरझीली ढीली चारु चितौन।
रोम-रोम ह्वै उरझि समानी, सुरझावै अब कौन॥
बिछुरि मिलन की रीति अटपटी पीवै कोइ रस-भेद।
याकी महिमा समुझैंगे हरि कहा बिचारे वेद॥

✿✿✿
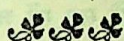
कहाँ तैं, कहाँ प्रीति की रीति!
एरे निपट निदय मन मेरे, तेरी कहा प्रतीति॥
केती बार कही तोसों हरि भरि-भरि नैननि नीर।
"भैया, मति जावौ, बिरमौ इत चन्द-सरोवर-तीर"॥
पै न सुनी तब एक लाल की, अब काहे पछितात?
वह मुख-चन्द देखिबे कों अब क्यों एतो अकुलात॥
भयौ आजु वह छिन सपनो सो, अब बियोग-फल भोग।
बार-बार हरि नाहिं मिलैगो स्याम-मिलन को जोग॥

✿✿✿

लाल की अँखियाँ रंग-रलीं।
अलसौहीं रसमसीं रँगीलीं ढीली ढरनि ढलीं॥
अनियारीं रतनारीं प्यारीं हरि जुग कमल-कलीं।
चंचल चारु चुभीलीं चोखीं, मनहुँ मदन-मछलीं॥

✿✿✿

प्रीति की रीति स्याम ही जानै ।

भूलत नाहिं कबौं निज प्यारो, भूले कों पहिचानै ॥
लोक-बेद-मरजाद मेटि सब प्रीति-रीति इक छानै ।
रस की मेंड़ बाँधि बँधि जावै, रस में ही रस मानै ॥
अपने के सँग डोलत निसिदिन, नैक न अंतर आनै ।
अपने पै अपनो चढ़ाय रँग प्रेम-सुधा-रस सानै ॥
बगसत मौज अथोर रँगीलो अपने वल्लभ-प्रानै ।
अजहुँ हरि ऐसे प्रीतम के गावत किन गुन-गानै ॥

मन की मन ही गोय रहौ ।

होनी अनहोनी निज बीती मति काहू सों कहौ ॥
अपनी बिथा-कथा कहि सब सों जग-हाँसी क्यों सहौ ।
उर उमेठि किन कसक चुभीली गहनि गहीली गहौ ॥
पीवत रहौ दरद-रस जोपै छकनि रँगीली चहौ ।
अपने कोउ प्यारे के बस ह्वै रस-प्रवाह में बहौ ॥
विषम-बियोग-उसास-अगिन तें करम-कलापनि दहौ ।
गूँगे लौं गुर खाय-खाय हरि फल जीवन कौ लहौ ॥

भये हम राजन के महराज ।

कीनों राज-तिलक सतगुरु, सिर धर्‌यौ बिरह कौ ताज ॥
पायौ बेपरवाह-परगनो, पागल-प्रजाधिराज ।
दिल-दीवान, मुसाहिब मनुवाँ, पावत मौज-खिराज ॥
मसनद, कमरी, कुचरी, तकिया, सुरति महल, सुखसाज ।
व्रत अनन्य अधिकार हमारो, हुकुम आह-आवाज ॥
नेह-निसान बजाय, सूरमा-सेना-संत-समाज ।
हरि यों हेत-खेत में जीती लोक-लाज सब आज ॥

आश्रो, अब न नाथ ! कलपाश्रो ।
मदन-मोहिनी मूरति मोहन, टुक दिखाय अब जाश्रो ॥
देखि चुके या जग के सुख-दुख अधिक न और दिखाश्रौ ।
अबतौ अपनी प्रेम-माधुरी, माधव, आय चखाश्रौ ।।
भूलि चुके हम भूल-भुलैयनि, हा हा अब न भुलाश्रौ ।
करो न नखरा मरे-मिटेन-सँग, मति अनरीति चलाश्रौ ॥
रहिये यौं कबलौं मन-मारे प्यारे ! तुमहि बताश्रौ ।
झूठे निठुर छली तुम पूरे, बस अब कछु न कहाश्रौ ॥
निज बिमुखन कौ मुख न दिखाश्रौ, रसिकन बीच बसाश्रौ ।
कलह-कलंक-कुअंक मेटि निज मुख-मयंक दरसाश्रौ ॥
सुंदर स्याम ! स्याम-रँग में रँगि जियकी जरनि सिराश्रौ ।
भूलत नाहिं बनै हरि अबतो आय हमैं अपनाश्रौ ॥

[क्रमशः]

—वि० ह०

वृन्दावन-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

वृन्दावन में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का षोड़श अधिवेशन सानन्द सकुशल समाप्त हो गया। मार्गशीर्ष कृष्ण ६ संवत् १९८२ विक्रमी तदनुसार ता० ६ नवम्बर सन् १९२५ ई० को प्रातः ९ बजे हम लोग वृन्दावन पहुँचे। स्वागत-कारिणी-समिति के कार्यकर्ता सम्मेलन को सफल बनाने के लिए तल्लीनता के साथ कार्य-संलग्न थे। दूसरे दिन प्रातःकाल ८ बजे सम्मेलन के मनोनीत सभापति श्रीमान् पं० अमृतलालजी चक्रवर्ती बी० ए०, बी० एल० सियालह एक्सप्रेस से पधारे। स्टेशन पर धूम-धाम के साथ पुष्प-वर्षा और फूल-मालाओं से उनका स्वागत किया गया। बैंड-बाजे के साथ, मोटर पर, उनका जलूस निकला। वृन्दावन नगर की परिक्रमा हुई। जलूस लौटकर ११॥ बजे मिर्ज़ापुरवाले सेठ श्री तेजपाल जमनादासजी की विशाल धर्मशाला में आया। इसी धर्मशाले में

सम्मेलन का पंडाल, विविध प्रान्तों के प्रतिनिधियों के ठहरने का स्थान, स्थायीसमिति और विषय-निर्धारिणी-समिति के लिए विशेष विशेष कोठरियाँ, कमरे तथा हाल, स्वागत-कारिणी-समिति के प्रबन्ध-सम्बन्धी विविध विभाग, प्रदर्शिनी-भवन आदि सभी कुछ था। भोजन-भजन की व्यवस्था हो जाने के बाद २॥ बजे से सम्मेलन की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। विभिन्न प्रान्तों से आये हुए लगभग १५० प्रतिनिधि उपस्थित थे। माननीय सभापति, स्वागत-कारिणी-समिति का साहित्य-सेवी-वृन्द, सम्मेलन का मंत्रिमंडल तथा स्थायीसमिति के अनेक लब्ध प्रतिष्ठि सदस्यों के अतिरिक्त निम्न-लिखित गएय मान्य साहित्य-सेवी तथा प्रतिनिधि उपस्थित थे—

श्रीयुत पं० किशोरीलालजी गोस्वामी, काशी; श्रीयुत पं० माधवरावजी सप्रे, तात्यापारा, रायपुर (मध्यप्रदेश); श्रीयुत पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी, मलयपुर (मुंगेर); श्रीयुत पं० बाबूरावजी विष्णु पराड़कर, काशी; श्रीयुत गोपालशरणसिंहजी नई गढ़ी (रीवाँ) श्रीयुत नरदेवजी शास्त्री, वेदतीर्थ देहरादून; प्रोफ़ेसर सुधाकर एम० ए०, श्रीयुत पं० नन्दकुमारदेव शर्म्मा, कलकत्ता; श्रीयुत हेमन्तकुमारी चौधुरानी, पटियाला, श्रीयुत पं० माखनलालजी चतुर्वेदी, खँडवा श्रीयुत पं० झावरमल्लजी शर्म्मा, देहली; श्रीयुत सतीशचन्द्रराय एम० ए० (ढाका, बंगाल) श्रीयुत हरमुकुन्द जी शास्त्री, जम्मू (काश्मीर) श्रीयुत पं० गोविन्दनारायण शर्म्मा आसोपा, बी० ए० जोधपुर तथा शास्त्री पं० मथुरानाथजी भट्ट, जयपुर इत्यादि।

प्रारम्भ में हरि-कीर्तन हुआ। तदनन्तर सभापति महोदय पधारे। उपस्थित प्रतिनिधियों ने उनका स्वागत, खड़े होकर, किया। सभापति महोदय मञ्च पर निश्चित स्थान पर बिराजे—गुरुकुल के पीतपटधारी कुमारों ने वेद-मन्त्रों से मङ्गलाचरण किया। तत्पश्चात् निम्नलिखित स्वागत-गान किशोरीरमण हाई स्कूल के विद्यार्थियों द्वारा गाये गये—

स्वागत-गान

[१]

स्वागत भारत माँ के लाल ! स्वागत हिन्दी-हृदय विशाल ॥
मातृ-भूमि के भाग्याकाश । जीवन-धन जीवन की आश ।
भारत-भूके विमल प्रकाश । करते हृदय-हार हम डाल ।
स्वागत हिन्दी हृदय विशाल ॥ स्वागत० ॥
विमल-वारि पीयूष समान । हिन्दी-सुरसरिका कर पान—
करनेवाले गुण-गुण गान । मिलन सुधा पीलें हम ढाल ।
स्वागत, हिन्दी हृदय विशाल ॥ स्वागत० ॥
हिन्दी-सर-साहित्य-सरोज । अमल-धवल-दल कल अति ओज ।
मधु सौरभ-छवि रुचिर-मनोज । मधुकर उसके हे प्रतिपाल ।
स्वागत, हिन्दी-हृदय विशाल ॥ स्वागत० ॥
विद्या-बुद्धि विनय-नय-खान । गुणी-रसिक-कविवर विद्वान् ।
आर्य-पारसी-यवन-किरान । हिन्दी उर गत-मनहर माल ।
स्वागत, हिन्दी हृदय विशाल ॥ स्वागत० ॥
विमल हृदय में करके वास । भोज्य मधुर वचनों की आस ।
पीकर प्रेम मिटे यदि प्यास । तो आओ हे रस-वाचाल ॥
स्वागत, हिन्दी-हृदय विशाल ॥ स्वागत० ॥
है सौभाग्य-सुभग दिन आज । सजा यहाँ सम्मेलन साज ।
पहनाएं हिन्दी को ताज । हिन्दी-मानस लुब्ध-मराल ।
स्वागत, हिन्दी-हृदय विशाल ॥ स्वागत० ॥

—भद्रजित ब्रह्मचारी "भद्र"

[२]

करें हम कैसे स्वागत नाथ ।
भोले भाले हम ब्रजवासी, कछू न जानत नाथ ।
नयन हमारे पलकन मारे, दरसनसों न अघात ॥

टप टप आँसू डारि आपके, चरनन धोवत जात।
रसना हुई अवाक् हमारी, पावत अति आनन्द॥
चाहत बोलन स्वागत में, पर मुंह के फाटक बन्द।
ऐसा हाल हवाल हो गया, फिर भोलों की भूल॥
धूप-दीप-नैवेद्य न लाये, लाये पत्र न फूल।
छमि अपराध हमारे भगवन्, करो न लाओ ध्यान॥
किये बिना ही स्वागत हमको, आशिस करो प्रदान।
भोले भाले हम ब्रजवासी, लहि आनन्द महान॥
करहिं सप्रेम छवीले-राधा चरणामृत नित प्रान।

—रामस्वरूप शर्मा "प्रेम"

[३]

स्वागत प्यारे बन्धु हमारे।
भारतमाता तुमको प्यारी, तुम भारतमाता के प्यारे।
पूरित सद्विचार मनभावन, मातृ भूमि के हिय हुलसावन।
चिरजीवहु भारत के बारे।
स्वागत सब जो आज पधारे, स्वागत हिन्दी-प्रेम पियारे।
स्वागत प्यारे बन्धु हमारे॥

[४]

हिन्दी को हिन्द में तुम, ऐ हिन्दुओ बढ़ाओ।
बचपन से बालकों को, हिन्दी ही तुम पढ़ाओ॥
मुद्दत से देशभाषा की, पूछ कुछ नहीं है।
चेतन्य हो के अब तो, इसको गले लगाओ॥
कहने को तुमने पढ़ली, सायंस और इङ्गलिश।
हिन्दी को लाभ क्या, तुम एम० ए० अगर कहाओ॥
हिन्दी को हिन्द में तुम ऐ हिन्दुओ बढ़ाओ॥

इस आरम्भिक कृत्य के पश्चात् स्वागताध्यक्ष पूज्यपाद श्रीमान् पं० राधारमणजी गोस्वामी ने अपना सुललित मौखिक भाषण दिया। इस भाषण में आपने व्रजमण्डल और विशेषकर वृन्दावन के माहात्म्य का मौखिक सांगोपांग वर्णन किया। भाषण का लिखित उपसंहार कविता में था। वह इस प्रकार है—

सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष का भाषण

आओ! आओ! बन्धुवर! दरसाओ मुखचंद।
सरसाओ साहित्य को बरसाओ आनन्द ॥१॥
एक बरस दिन से लगी तुव आगम की आस।
अहो आज पूरन भई चातक की सी प्यास ॥२॥
यद्यपि हैं व्रजभूमि के सहज सनेही लोग।
तद्यपि परदेशीन सों इन्हें प्रीति को रोग ॥३॥
परदेशी हैं प्राणप्रिय परदेशी सुखरूप।
परदेशी आये बिना * व्रज को रूप कुरूप ॥४॥
तामें वृन्दा विपिन को बङ्गालिन को सङ्ग।
बरस चार सौ से भयो मानो यमुना गङ्ग ॥५॥
गौड़ देश पावन करन प्रभू कृष्णचैतन्य।
भेजि गौड़ियन को कियो हम सब से सौजन्य ॥६॥
घर बैठे "अमृत"† मिलो धन्य हमारे भाग।
निज बचनामृत प्याइये बढ़ै अधिक अनुराग ॥७॥
गौड़ विहाररु मध्यभू कान्यकुब्ज के लोग।
अन्तर्वेदरु अवध के आर्य सुपुरुष सुयोग ॥८॥

क्षमा-प्रार्थना

परम अकिञ्चन जन सकल करत सबन परनाम।
सेवा नहिं हमसे बनी करहु छिमा गुणधाम ॥९॥

*श्री व्रजभूमि तीर्थ स्थान है, जो परदेशी को आये विना फीकी लगती है।
†सम्मेलन के सभापति श्री अमृतलालजी चक्रवर्ती।

श्रीयमुना-जल पीजिये ब्रज-रज में रहु लोट।
दरशन राधारमन के जस की बाँधहु पोट ॥१०॥

ब्रज को दिव्य-दृष्टि से देखो

दिव्य दृष्टि से देखिये, ब्रज को वैभव मीत।
वही श्याम वृषभानुजाव वही प्रेम की रीत ॥११॥
वही गऊ अरु गोप वह बछिया बछड़ा वेह।
ललित लता वेही लखो वह तरुवर वह गेह ॥१२॥
वह गोवर्द्धन, ब्रह्मगिरि वह नंदीश्वर जान।
वह मथुरा, वह कामवन, नंदगाँव बरसान ॥१३॥
वही राधिका कुसुमसर मानसगंगा देख।
वह कालिन्दी की छटा प्रेम-प्रवाह विशेख ॥१४॥
वह गोपीगण प्रेम की धुजा, वही रसरीति।
वही दान अरु मान की लीला करहु प्रतीति ॥१५॥
वही मोर शुक सारिका वही मधुप गुञ्जार।
वह मर्कट की नटखटी सांडन की धुधकार ॥१६॥
वह पावस मनमोहनी, वह हिंडोल मलार।
वह वसन्त होली रुचिर, गावत सरस धमार ॥१७॥
कुञ्जगली वे ही भलीं, सोहत सेवा-कुञ्ज।
सोही निधु नवराज है, धीर समीर सुमञ्ज ॥१८॥
श्रीवृन्दावन गोकुल धाम। कुञ्ज-कुञ्ज में राधाश्याम ॥१९॥

श्री बृन्दावन के देवालय

श्री हरिवंश प्रशंस को, राजत वंश विशाल।
तन मन धन सों सेवते राधावल्लभ लाल ॥२०॥
श्री स्वामी हरिदास के प्राण बिहारी लाल।
बांकी झांकी निरखिके छिन-छिन होहु निहाल ॥२१॥
श्री गुपालभट के रुचिर राधारमण सुलाल।
गोस्वामी सेवा करत श्री मधुसूदन लाल ॥२२॥

श्री रूप के गोविन्दजी राजा सुवृन्दा विपिन के।
हैं श्रीमदनमोहन सनातन सेव्य-कालिय दमन के॥२३॥
श्री गोपिनाथ अनाथरंजन मधुर प्रभु के राजहीं।
राधा दमोदरजी व गोस्वामी सुसेव्य विराजहीं॥२४॥
श्यामसुन्दर गोकुलानन्दादि विग्रह धारिकै।
वृन्दाविपिन गोलोक की शोभा सदा विस्तारिकै॥२५॥
श्री कृष्णचन्दरु रङ्गजी राधा गोपाल निहारिये।
शृङ्गारवट,वंशी,पुलिन,पुनि केशि तीरथ न्हाइये॥२६॥
पांच कोस वृन्दा विपिन, पिय प्यारी को धाम।
पशु पंछी अमरानटा, गावत राधाश्याम॥२७॥

व्रजभाषा

व्रजभाषा भाषा ललित कलित कृष्ण की केलि।
या व्रजमंडल में उगी ताकी घर-घर बेलि॥२८॥
ह्यीं से चहुँदिसि विस्तरी पूरब पच्छिम देश।
उत्तर दच्छिण लों गई ताकी छटा असेस॥२९॥
सूर सूर तुलसी ससी उडुगण केशवदास।
देव विहारी दयानिधि पद्माकर हरिदास॥३०॥
श्री हरिवंश हरिप्रिया, आनँदघन हरिचन्द।
ललित किशोरी माधुरी व्रजवासी अरु वृन्द॥३१॥
इन कविजन कविता करी कलि उद्धारन हेत।
कृष्ण कृपा भव-सिन्धु के उद्धारन हित सेत॥३२॥
न यद् वचश्चित्र पदमित्यादि तद्वाग्विसर्गो जनताघेत्यादि
(श्रीभागवत)

हिन्दी

कविता-कामिनि भाल में हिन्दी बिन्दी रूप।
प्रगट अग्रवन में भई व्रज के निकट अनूप॥३३॥

लाल करी जिहि अंकुरित, शिवप्रसाद है पात।
कुसुमित भारत-इन्दु ने रचना रचि विख्यात ॥३४॥

प्रार्थना

कवि, पंडित, परिजन, प्रकृति, छात्र, रसिक, रिझवार।
राजा, प्रजा, सुप्रेमवश करि हिन्दी को प्यार ॥३५॥

हिन्दी-हिन्दुस्तान की भाषा विशद विशाल।
जनम लेत सब सों कहैं "मां! मां! दा! दा!" बाल ॥३६॥

घर की औघट घाट की खेत प्रेत समसान।
हाट-वाट दरबार की भाषा ये ही जान ॥३७॥

पितु ऋण शोध सकैं सहज कठिन मातु ऋण जान।
ताही के उद्धार हित यज्ञ रची समहान ॥३८॥

जासे जो कछु बन सके मातापद अरविन्द।
भक्ति भाव से पूजिये रहहु सदा आनन्द ॥३९॥

स्वागताध्यक्षजी ने आपना अभिभाषण समाप्त करते हुए मनोनीत सभापतिजी के निर्वाचन का प्रस्ताव किया। इस प्रस्ताव का समर्थन श्रीयुत पं० किशोरीलाल जी गोस्वामी, श्रीयुत पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी, वेदतीर्थ पं० नरदेवजी शास्त्री, पं० हरमकुन्द जी शास्त्री, पं० नन्दकुमारदेव शर्म्मा तथा पं० गोविन्द-नारायणजी शर्म्मा आसोपाने किया। तदनन्तर सभापतिजी अपने आसन पर आसीन हुये और पुनः (करतल ध्वनि के साथ) आपने अपना भाषण पढ़ना आरम्भ किया। भाषण पढ़ते हुए मारे आनन्द के आप गद्गद हो उठते थे। कुछ देर बाद जब भाषण पढ़ते हुए आप कुछ थक गये तो तदन्तर श्री जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी ने आपका भाषण पढ़ सुनाया। भाषण इस प्रकार है—

सभापतिजी का सम्भाषण

साहित्य-सेवी तथा साहित्य-प्रेमी भाइयो और बहिनो,

मैं आन्तरिक धन्यवाद देता हूं कि आपने मुझको इस पद पर बिठाया, जिससे बढ़ कर मान का पद आप किसी साहित्य-सेवी को नहीं दे सकते। यदि मुझमें एक विशेषता न होती, तो मैं अपने इतने बड़े सम्मान से चकराता, जिसकी कल्पना भी मेरे जी में कभी नहीं उठी थी। वह विशेषता यही है कि हिन्दी की सेवा में बहुत दिनों से लग भग बत्तीस वर्ष से—डटा हुआ हूं। विद्यालय में सब से अधिक उपस्थित रहनेवाले विद्यार्थी को पुरस्कार दिया जाता है। इस मान को अपना उसी प्रकार पुरस्कार मान कर मैंने सानन्द इसको स्वीकार किया है। नवीन युवावस्था की सभी ऊँची अकांक्षाओं की समाधि पर अथवा साधारण पथ के पथिकों की अपेक्षा कहीं ऊँची आशा हृदय में भर कर मैं ऐसे समय में हिन्दी-लेखकों के बड़े ही तंग अखाड़े में ख़म ठोककर कूद पड़ा, जब हिन्दी-गद्य-साहित्य की कोई आकर्षण योग्य रूप तक नहीं खिला था। उन दिनों जो कतिपय इने-गिने कुछ लेखक दिखलाई देते थे, वे प्रायः अपनी-अपनी प्रान्तीयता की ढपली बजाते थे, जिनकी समष्टिका फल यह होता था कि अंग्रेज़ी बैण्डबाजे के जोड़ का परस्पर से न खपने वाला एक उत्कट कर्ण-कटु शब्द उठता था, जिसको सुन कर यह पता नहीं लगाया जा सकता था कि हिन्दी-गद्य-साहित्य की भाषा उस बेमेल के काले बादल को फाड़ कर अपनी वर्त्तमान लावण्यमयी मूर्ति में कभी उदित होगी और सम्पूर्ण भारतवर्ष को भी हृदय-भेदी बेमेल से बचाने और मधुर ऐक्य के रेशमी धागे से बाँधकर एक करने का प्रयास करेगी। हिन्दी भाषा के इस अत्यावश्यक और अनुपम उद्योग के समय मैंने अपनी अल्प शक्ति को अग्राह्य कर आग्रह के साथ ही इस अत्युच्च सम्मान का स्वीकार किया है क्योंकि मैं अपने चारों ओर के उन भाइयों का सा सौभाग्यशाली नहीं हूँ, जो जन्म-दिन से जननी की

गोद में स्तन्य पीते-पीते हिन्दी के पीयूष से कण्ठ को सरस कर वाक्शक्ति का आविर्भाव होते ही जीवन में सर्व प्रथम हिन्दी शब्द का उच्चारण कर स्वभावतः ही हिन्दी भाषा के रसिक बने हैं और अपनी मातृभाषा को भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा का गौरव देने के स्वाभाविक बलवान् स्वार्थ से उत्तेजित हुए हैं। किन्तु मैं उन भारतवासियों में हूं, जिनका हिन्दी के साथ जन्म से उस प्रकार मीठा नाता नहीं है, पर जिन्होंने हिन्दी-मातृभाषाभाषियों के उस स्वाभाविक स्वार्थ के साथ अपने स्वार्थ को केवल इसीलिए एक कर लिया है कि एक राष्ट्रभाषा के बिना सर्व भारत का परम कल्याण त्रिकाल में भी नहीं हो सकता, जिसका विरल गौरव एक हिन्दी को छोड़कर भारत की और किसी प्रान्तीय भाषा को नहीं मिल सकता। उमर पाने पर जब यह निर्णय मेरे जी में बँधा और मैंने हिन्दी की सेवा में अपने तन-मन प्राणों को न्योछावर कर दिया तो उस समय हिन्दी-गद्य-साहित्य का कोई सर्वमान्य स्वच्छ रूप न रहने से शुद्ध और सरस हिन्दी लिखने के प्रयास में मुझको परिश्रम इतना अधिक करना पड़ा, जिसकी कल्पना मेरे वे सौभाग्यवान भाई नहीं कर सकते। और तब से मैंने हिन्दी बहुत लिखी भी है इतनी कि सब एकत्र करने से शायद एक पर्वत के आकार की हो जावे। किन्तु मेरा यह खेद कभी नहीं गया कि हिन्दी की सेवा में मैं अधूरा ही रह गया। इसके मुख्य कई कारणों में प्रथम यह है कि लड़कपन ही शिक्षा का सुन्दर समय है, जब मैं हिन्दीसे वञ्चित रहा। दूसरा यह कि स्त्रियों की बोली ही सरलता का आधार होती है, जो आपने भाइयों के से जन्म लाभ का सौभाग्य न होने से मैं कभी कर्णगोचर तक न कर पाया। और तीसरा तथा सब से बढ़ कर बलवान कारण यह है कि मैं अपनी स्थिति के फेर में पढ़कर बहुत अल्प ही स्थायी साहित्य का निर्माण कर सका हूँ, जिस के बिना मेरा दृढ़ सिद्धान्त यह कि इस सम्मेलन के सभापतित्व का सम्मान कम से कम किसी साहित्य-सेवी को तो कभी नहीं मिलना चाहिए। तिस पर भी इस सम्मान को मैंने

केवल इसी लिये उत्तेजित हृदय से स्वीकार किया है कि हिन्दी मेरी मातृभाषा नहीं है और हिन्दी से सम्बन्ध रहित किसी भी भारतीय प्रान्त के मेरे सरीखे प्रतिभाहीन और टुटपूँजिये हिन्दी लेखक को भी इस अतुल सम्मान के पद पर निर्वाचित होते देखने का प्रभाव भारत के विभिन्न प्रान्तों पर अच्छा पड़ सकता है, जिस का फल राष्ट्रभाषा का सिंहासन निर्माण करने के इस अनोखे समय में स्वतःसिद्ध है।

नेताओं से निवेदन

भारतवर्ष के मनुष्य अपने को एक ही देश के निवासी कहते और मानते हैं। किन्तु एक ही देश के निवासी कहलाने के इस सर्वप्रधान लक्षण से वे सर्वथा वञ्चित हैं कि वे एक ही भाषा बोलें और उसके सहारे अनायास ही परस्पर अपने अपने मन के भावों को समझावें। इसके बदले वे परस्पर न समझनेवाली इतनी न्यारी न्यारी भाषाएँ और बोलियाँ बोलनेवाले गुटों में बँटे हुए हैं, कि केवल भूगोल की दृष्टि से एक ही देश के निवासी होने पर भी वे वास्तव में उतने ही देशों के निवासी कहलाने योग्य हैं, जितने उक्त गुटों में वे बँटे हुए हैं। अब से कोई आधी सदी पहले उक्त अलग २ गुटों के कतिपय भारतीय धीमान अंग्रेज़ी भाषा बोलने और उसके सहारे अपनी उस छोटी सी मण्डली के बीच परस्पर अपने अपने मन के भावों को समझाने की शक्ति लाभकर यह आशा करने लगे, कि अपनी उस छोटी सी मण्डली के अन्दोलन से ही वे सम्पूर्ण भारतवासियों के लिये मनुष्य मात्र के वास्तविक जन्म-अधिकार को प्राप्त कर लेंगे। किन्तु अपने किसी अधिकार को पाने के लिये मनुष्य को यह जानना होता है कि उसका वह अधिकार क्या है, कैसा है; और किस प्रकार से मिल सकता है। तदनन्तर तदनुसार उद्योग करने से ही मनुष्य अपने उस अधिकार को पा सकता है, नहीं तो अपने उस अधिकार को पाने का वास्तविक अधिकारी ही वह नहीं होता। इसके बिना अपने जन्म अधिकार को भी वह पाने का और भोगने का अधिकारी नहीं होता।

उस छोटी सी अंग्रेज़ी बोलनेवाली मंडली के महानुभाव उद्योग-कारियों ने उस अटल सत्य का अनुभव करने का कोई आभास न दिया। सब भारत के निवासियों के आगे उनके जन्म-अधिकार के भेदों को खोले बिना, सब भारतवासियों के हृदय में उनके जन्म-अधिकार को प्राप्त करने का उत्तेजन भरे बिना, उनको अपने जन्म-अधिकार के पाने का अधिकारी बनाये बिना और सब भारतवासियों के उद्यम को अपने उद्यम के साथ संयुक्त कराये बिना वे केवल अपने ही उद्योग से सब भारतवासियों को उनका जन्म-अधिकार दिलाने के लिए झूत पड़े। उनका यह उद्योग मानो इस प्रकार का हुआ कि फल के कल्प-वृक्ष को लगाए बिना वे फल खिलाने के लिए डट गए। इसका फल भी यह हुआ कि जिस समय के अन्दर भारत का पड़ोसी जापान "असभ्यता" की बद-नामी से बचकर जगत् की ज्योतिर्मय जातियों की पंक्ति में आसन पागया है, उस समय के अन्दर उन मान्य नेताओं की निष्फल चेष्टाओं के बीच भारत अपने प्राचीन से प्राचीन समुज्वल इतिहास को लेकर अब तक उसी घने अँधेरे में अघा रहा है, जिसमें इन चेष्टाओं के पूर्व वह नखसिख-निमग्न था। अवश्य ही उन महानुभाव नेताओं में अपनी चेष्टा के प्रारम्भ में यह सामर्थ्य न थी कि वे अपने ऊँचे मन के मनोहर भावों को तीस बत्तीस करोड़ भारत-वासियों में प्रचार करते और यह कहने का साहस मुझ में नहीं है कि अनेकानेक भाषाओं और बोलियों के दुर्भेद्य जाल में भारत-वासियों के फँसे रहने की विकराल स्थिति के आतङ्क ने उनके अनुभवी हृदय को उथल पुथल नहीं किया था। पर भारतवासियों को कोई ऐसी भाषा सिखलाने का बीज भी उन्होंने डालने का कोई यत्न नहीं किया, जिसके सहारे भारत के निवासी परस्पर अपने अपने मन के भावों को समझाने की शक्ति लाभ कर अपनी उस विषम जड़ता की भयङ्कर स्थिति से पार पा जाते। यदि हमारे मान्य नेता अपनी चेष्टा के प्रारम्भ में इस यत्न को करने और एक इसी यत्न के पीछे अपने समूचे उद्यम और उद्योगों को लगा देते तो उन

पुरुष-सिंहों के लगभग पचास वर्ष के एकाग्र प्रयत्न के फल से आज भारत जिस समुज्ज्वल स्थिति में आ पहुँचता, उसकी कल्पना तक करने से कलेवर रोमाञ्चित हो आता है। सब भारतवासी किसी एक भाषा को बोलते और समझते, हमारे नेता सब भारतवासियों को अपने ऊँचे मन के महद्भावों को अनायास ही समझाते रहते, तो सब भारतवासियों के हृदय में महानभाव की जाह्नवी-धारा प्रवाहित होती—बत्तीस करोड़ नर-नारियों का हृदय एक ही प्रकार भाव के सूत्र में बँधकर एक होजाता। क्या जगत् में ऐसी भी शक्ति है जो इस विराट जन-संघ के भाव के एकतर्फा सोते को कोई दीवार उठाकर रोक देती ?

पर यह तो केवल मनमोदक हैं। कल्पना ही कल्पना के निरर्थक ऊहापोह से बचकर वास्तविक घटना पर लौट आने से यह दिखलाई देता है कि प्रति वर्ष वृद्धिशील नेताओं के समाज के कतिपय महोदयों ने कुछ वर्षों से इस सत्य को हृदयङ्गम किया है कि सब भारतवासियों को एक ऐसी भाषा सिखलानी चाहिए, जिसको वे सुख से बोलकर और मज़े में समझकर उसके सहारे अपने-अपने मन के भावों को परस्पर अनायास ही विदित कर सकें। उन थोड़े से नेताओं को यह अनुभव भी हुआ है कि सब भारतवासियों को सिखलाने की वह एक भाषा न तो भारत के बाहर की कोई भी भाषा हो सकती है और न होनी ही चाहिए तथा वह भाषा भारत की प्रान्तीय भाषाओं में से एक हिन्दी को छोड़कर कोई दूसरी नहीं हो सकती। क्योंकि भारत की विभिन्न भाषाओं में से हिन्दी सब से अधिक, बारह-तेरह करोड़ मनुष्यों में, बोली जाती है। हिन्दी जिन भारतवासियों की मातृभाषा नहीं है उनमें से भी इतने अधिक मनुष्यों से किसी न किसी प्रकार से बोली और समझी जाती है, जितने अपनी मातृभाषा को छोड़कर भारत की प्रान्तीय भाषाओं में से किसी दूसरी को नहीं बोल सकते और नहीं समझ सकते। इन गुणों के उपरान्त हिन्दी भाषा में बड़े ही मार्के का यह महद्गुण भी है कि वह इतने थोड़े दिनों के अभ्यास

से किसी-न-किसी प्रकार से, उसके एक वार ही न जाननेवालों से भी बोली और समझी जाती है, जितने अभ्यास से बोली और समझी जाने का दावा पृथिवी की कोई भी दूसरी भाषा नहीं कर सकती। इसी से विदेशीय लोग भारत में आकर चाहे जिस किसी प्रान्त में क्यों न बसें, थोड़े दिनों में किसी-न-किसी प्रकार से हिन्दी में ही अपने मन के भावों को समझाने लगते हैं। हिन्दी की इस प्रकार समुज्वल गुणावली को प्रत्यक्ष कर भारत के कतिपय ऐसे नेताओं ने भी, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, यह अभिमत प्रकट किया है कि हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा होने योग्य है और होनी चाहिए। किन्तु इस विषय में हिन्दी मातृभाषा भाषियों का हाथ बँटाने में यदि उनमें से एक-दो महात्माओं को छोड़कर और किसी नेता ने वास्तविक उद्यम किया हो, तो मैं नहीं जानता। सत्य यह है कि जब राष्ट्रभाषा की अनिवार्य्य आवश्यकता विदित हुई है और जब एक हिन्दी ही अपनी विरल गुणावली से इस अत्यावश्यकता को सिद्ध करने की पूरी-पूरी शक्ति रखनेवाली प्रमाणित हुई है तो भारत के विभिन्न प्रान्तों के नेताओं को जिस एकाग्र उद्यम के साथ अपने-अपने प्रान्त में हिन्दी का प्रचार करने के लिये उद्योग करना चाहिये था, वह अभी तक बहुत थोड़े ही महोदयों ने किया है। अवश्य ही हिन्दी-मातृभाषा भाषियों की सहायता के बिना कहीं भी हिन्दी का प्रचार नहीं हो सकता। किन्तु भिन्न भाषाभाषी प्रान्तों में स्थानीय नेताओं को जहाँ हिन्दी के प्रचार के लिए अब से कितने ही पहले स्वयं उद्यत होकर अपनी सहायता पर हिन्दी मातृभाषाभाषियों को बुलाना चाहिए था, वहां हिन्दी मातृभाषा भाषी आप उद्यत होकर भी अभी तक सब नेताओं की पूरी सहायता नहीं पा सके हैं। पचास वर्ष के निष्फल-प्राय राजनीतिक उद्यम को सफलभूत करने के सर्वप्रधान उपाय पर अपने मान्य नेताओं की इस शिथिलता को जब मैं विचारता हूँ तो मेरे हृदय के कोने-कोने में असह्य खेद उमड़ आता है। सोलह वर्ष से जिस सहायता को देने के लिए हिन्दी-मातृभाषा

भाषी स्वयं जागकर अपने पड़ोसियों को जगाना चाह रहे हैं, उस सहायता को लेने के लिए अब भी तो सब भारतवासियों को जगना चाहिए।

भारत के प्रत्येक प्रान्त के प्रमुखों का जिस अत्यावश्यक विषय पर ध्यान पड़ना अबसे कितने ही वर्ष पहले सर्वथा उचित था, उस पर कम-से-कम अब से उनका पूरा पूरा आग्रह प्रकट होना परम आवश्यक है। इसलिए हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की कार्य्यावली के अन्तर्गत इसी विषय का मैं सर्व प्रथम उल्लेख करने में प्रवृत्त हुआ हूँ। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को भारतवर्ष की अन्यान्य प्रान्तीय-साहित्य-परिषदों के जोड़ का केवल प्रान्तीय साहित्य की श्रीवृद्धि का प्रान्तीय-सम्मेलन नहीं रहने देना चाहिए। सर्व भारत के अभ्युदय का जब यह बेजोड़ समारोह हो तो भारतवर्ष भर के विद्वानों के समागम और सहानुभूति से इसका परिपुष्ट होना अपार आवश्यक है। हिन्दी मेरी मातृभाषा न होने से मैं निस्संकोच चित्त से कहता हूं कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अखिल भारतवर्षीय स्वरूप को समुज्वल करने के संकल्प से विभिन्न प्रान्तों के विद्वान प्रमुख थोड़े ही दिनों में अपनी हिन्दी भाषा की अनभिज्ञता को दूर कर सम्मेलन के विचारों को अपनी विज्ञता के अभिमतों का बल पहुँचा सकते हैं। वे जितनी ही अधिक संख्या में समुपस्थित हो कर सम्मेलन के बल को बढ़ावेंगे, उतना ही अधिक प्रभाव अपने-अपने प्रान्त में हिन्दी के प्रचार के लिए डालेंगे। आगे प्रत्येक प्रान्त के नेता परस्पर परामर्श कर जिस पद्धति से अपने प्रान्त भर में हिन्दी का प्रचार कर सकेंगे उसका विस्तार के साथ वर्णन करना अनावश्यक है। यदि प्रत्येक नगर के हरएक मुहल्ले में तथा प्रत्येक ग्राम में कई-कई मनुष्य हिन्दीभाषा में निरन्तर सब के आगे बातें करते रहें, तो इसके फल से और कोई नहीं तो अपनी तुतली बोली में शब्द रटते हुए बच्चे निश्चित ही उमर पाकर हिन्दी बोलने और समझने लग जायँगे। कितने ही विद्वान् पुरुष भी यह कहते सुने जाते हैं कि जहाँ एक ही भाषा को सिखलाना कठिन है,

वहां अधिक भाषाओं को सिखलाने के चक्कर में डालकर देश के होनहारों की मिट्टी पलीत की जायगी, तो वे किसी भी भाषा के सहारे असली विद्या को नहीं सीख पावेंगे। ऐसा कहनेवाले महाशय निश्चित ही पुस्तक पढ़ाकर भाषा सिखलाने के आतंक से घबड़ाते होंगे। पुस्तक पढ़ाकर संपूर्ण भारतवासियों को हिन्दी सिखलानी हो, तो उस प्रकार आतंक का यथेष्ट कारण अवश्य ही है। किन्तु मैं तो पुस्तक का नाम भी नहीं ले रहा हूँ। बम्बई प्रान्त में, जहाँ मराठी और गुजराती दोनों भाषाएं प्रचलित हैं, हर एक बच्चा जैसे मराठी सुन-सुनकर बोलता और समझता है, वैसे ही गुजराती भी। बचपन में इन दोनों भाषाओं के बोलने और समझने में पूरे-पूरे अभ्यस्त होकर के भी किसी भी मराठी व गुजराती बालक के मगज़ की मिट्टी पलीत नहीं होती। वहाँ के विद्यार्थी इन दोनों भाषाओं के बोलने और समझने में धुरंधर होकर के भी आगे अँगरेज़ी सीखकर उसके सहारे नाना विद्याओं में वैसे ही प्रवीण होते हैं, जैसे अन्य किसी भारतीय प्रान्त के एक ही मातृभाषा के बोलने और समझनेवाले विद्यार्थी। इसलिए इस पद्धति से भारत के हरएक हिन्दी-रहित प्रांत में हिन्दी का प्रचार करने से आवश्यक हिन्दी का प्रचार हो जायगा और किसी की कोई क्षति भी न हो पायेगी। पचास वर्ष पहले जिस उद्योग को करने से आज दिन भारत अमृत का उपयोग करता उसकी नीव अब भी डालने का अनुरोध मैं स्वदेश के मान्य नेताओं के आगे अपने समूचे बल से करता हूँ।

मुसलमान नेताओं से निवेदन

भारत के सभी नेताओं से मैंने ऊपर जो विनती की है, वह विनती अवश्य ही मैंने अपने मुसलमान नेता महोदयों से भी की है। किन्तु भारत के मुसलमान नेता महाशयों का ध्यान एक विशेष बात पर मैं, इसके साथ ही साथ, आकर्षित करना चाहता हूँ। राजनैतिक विभाग से भारतवर्ष के जितने प्रान्त व प्रदेश निर्दिष्ट हुए हैं, उनमें से एक बङ्गाल को छोड़कर बिहार-उड़ीसा, अवध-आगरा,

पञ्जाब, बम्बई, मद्रास आदि सभी प्रान्तों में दो-दो भाषाओं का व्यवहार पाया जाता है। बङ्गाल में बङ्गला भाषा को छोड़कर भारत की और कोई भी प्रान्तीय भाषा प्रचलित नहीं है। बङ्गाल प्रान्त दो भाषाओं के चक्कर से ऐसा साफ़ बचा हुआ है कि बङ्गला भाषा प्रान्त भर के सभी निवासियों की जैसी मातृभाषा है, वैसी ही प्रान्त भर के प्रत्येक विद्यार्थी की प्रारम्भ में पढ़ने-लिखने की भाषा है। यह बात प्रत्येक बङ्गाली हिन्दु के लिए जिस प्रकार सत्य है उसी प्रकार प्रत्येक बङ्गाली मुसल्मान के लिये भी सत्य है। बङ्गला भाषा पर बङ्गाली हिन्दू की अपेक्षा बङ्गाली मुसल्मान का दावा और भी अधिक है; क्योंकि बङ्गाली मुसल्मान बङ्गाली हिन्दुओं से संख्या में अधिक हैं। बङ्गाली हिन्दू विद्यार्थी जैसे एकाग्र ध्यान से बङ्गला पढ़ता है, बङ्गाली मुसल्मान विद्यार्थी भी वैसे ही एकाग्र ध्यान से बङ्गला पढ़ता है। बङ्गाली हिन्दू लेखकों भी वैसी ही सबल लेखनी से बङ्गला लिखता है। हिन्दू साहित्यकों और कवियों की तरह मुसल्मान साहित्यकों और कवियों से एक निष्ठ यत्न और अक्लान्त परिश्रम से बङ्गाली भाषा की दिन पर दिन श्रीवृद्धि हो रही है और बङ्गला भाषा की सम्पद के बढ़ने का बङ्गाल-हिन्दू और बङ्गाली, मुसल्मान समान गौरव मानते हैं। इसका प्रत्यक्ष फल यह हुआ है कि भारत की आधुनिक प्रान्तीय भाषाओं में बँगला भाषा की उन्नति और प्रसिद्धि बहुत अधिक होगई है—यहाँ तक कि यूरोप में भी बँगला भाषा का समादर होने लगा है, और बंगाल के हिन्दुओं और मुसलमानों के अपने-अपने धर्म का अनुराग भारत के अन्यान्य प्रान्तों के हिन्दुओं और मुसल्मानों के धर्मानुराग से कुछ भी कम न होने पर भी वे परस्पर इतने अधिक प्रेम से एकत्र बसते हैं. जितना भारत से अन्यान्य प्रान्तों में नहीं पाया जाता। और भी कई बड़े ही मार्के का शुभ फल उन दोनों धर्मावलम्बियों की अभिन्न भाषा का बङ्गाल में प्रत्यक्ष होता है। बङ्गाल में विदेश से समागत ऊँचे कुलों के आदि-वंशी मुसल्मान निवासी उतने नहीं हैं, जितने युक्तप्रान्त आदि में। और इसके उपरान्त

अन्यान्य प्रान्तों में ऊँचे कुलों के जितने हिन्दू इस्लाम मज़हब को स्वीकार कर मुसलमान धर्मावलम्बियों की संख्या को बढ़ाते हैं, उतने बंगाल में नहीं पाये जाते। जो निम्न कुलों के हिन्दू इस्लाम मज़हब में प्रविष्ट हुए हैं, उनकी संख्या ही बंगाल के मुसलमान निवासियों में अन्यान्य प्रान्तों की अपेक्षा कहीं अधिक है। किन्तु ऊँची शिक्षा का लाभ व्यक्तिगत और सामाजिक श्रीवृद्धि-साधन आदि की शक्ति निम्न कुलवालों की अपेक्षा सर्वत्र उच्च कुलवालों में अधिक पायी जाने पर भी बंगाल के सर्वसाधारण मुसलमान निवासियों ने इस नियम के विपरीत सभी विषयों में अपनी इतनी अधिक उन्नति की है, जिसके आगे अन्यान्य प्रान्तवाली सर्वसाधारण मुसलमानों को नीचा देखना पड़ता है। एक ही भाषा का प्रान्त होने से, एक ही मातृभाषा की शिक्षा में अपने पड़ोसियों के साथ प्रतिद्वन्द्विता करने का अवकाश पाने से, बंगाल के मुसलमान प्रत्येक विषय में अपनी इतनी उन्नति करने में समर्थ हुए हैं, जितनी उनके दूसरे प्रान्त वासी भाई इस प्रकार अवकाश से रहित होकर नहीं कर पाये हैं। यह बात मुसलमान धीमानों के ध्यान देने योग्य है—यह बात हमारे मान्य विद्वान् मुसलमान नेताओं के पूरे ध्यान से विचारने योग्य है।

एक से अधिक भाषाओं के जितने प्रान्त भारत में सरकारी शक्ति से बनाये गये हैं, वे सरकारी शक्ति के बिना बदलकर एक भाषा के प्रान्त नहीं बनाये जा सकते। मैं जब केवल हिन्दी के प्रचार की आवश्यकता पर ही विवेचन कर रहा हूं, तो प्रान्तों के उस प्रवाह-परिवर्त्तन की आलोचना मेरे वक्तव्य के बाहर है। मैं अपने मान्य मुसलमान नेताओं का ध्यान केवल उन्हीं स्थलों की ओर आकर्षित करता हूँ, जहाँ हिन्दी के साथ-साथ उर्दू भाषा प्रचलित है। मेरी समझ में तो हिन्दी और उर्दू दो नहीं, एक ही भाषा है भाषा पर अपना दबाव रखनेवाला व्याकरण दोनों उर्दू और हिन्दी—का एक ही प्रकार के नियमों का है। किसी-किसी—उर्दू लेखक के लेखों में फ़ारसी और अरबी शब्दों की और किसी-किसी

हिन्दी-लेखक के लेखों में संस्कृत शब्दों की भरमार अवश्य ही पाई जाती है। किन्तु ऐसे भी हिन्दी और उर्दू के लेखक अनेक हैं, जो प्रायः एक ही तरह की भाषा क्रमानुसार नागरी और फ़ारसी अक्षरों में लिखते हैं। इसलिए दोनों भाषाओं का मुख्य भेद केवल अक्षरों का ही है। दोनों भाषाओं के उस भेद को दूर कर देने से दूसरे भेद प्रायः नाम ही नाम के रह जायँगे। अक्षरों के भेद को उठा देने के विषय में यह विचारना आवश्यक है कि अक्षर फ़ारसी हों अथवा नागरी। जिन स्थलों में फ़ारसी और नागरी अक्षर दोनों का व्यवहार किया जाता है, वहाँ नागरी अक्षर जाननेवाले फ़ारसी अक्षर जानने वालों से संख्या में कहीं अधिक हैं। यह समधिक संख्यक नागरी अक्षर जाननेवाले अकेले हिन्दू ही नहीं, पर मुसलमान भी हैं। देहातों में अक्षर जाननेवाले मुसलमान प्रायः सबके सब नागरी अक्षर ही जानते हैं। इसलिए हिन्दी और उर्दू का मुख्य भेद जिन नागरी और फ़ारसी अक्षरों का व्यवहार करने से हुआ है, उन दोनों के बदले यदि एक को स्थिर रखने का सिद्धान्त कर लिया जाय तो स्थिर रहने का दावा फ़ारसी अक्षरों की अपेक्षा नागरी अक्षरों का कहीं अधिक है। फ़ारसी अक्षरों के प्रबल से प्रबल पक्षपाती भी कभी यह कहने का साहस नहीं कर सकते कि नागरी अक्षरों की स्पष्टता के आगे फ़ारसी अक्षरों में टिकने का दम है। नागरी अक्षरों में किसी भी भाषा को लिखने से उस भाषा का न जानने वाला भी केवल अक्षरों को ही जानने की दशा में किसी-न-किसी प्रकार से उसको पढ़ लेगा, किन्तु फ़ारसी अक्षरों में किसी भी भाषा को लिखने से उस भाषा का न जाननेवाला केवल अक्षरों को ही जानने की दशा में उसको त्रिकाल में भी नहीं पढ़ सकेगा। इसलिए उर्दू व हिन्दी भाषा को नागरी अक्षरों में लिखने और छापने का लाभ सबसे बढ़कर मुसलमान जन-समूह को कितना अधिक होगा, यह मेरे मान्य मुसलमान नेता ही क्यों, पर मेरे सर्वसाधारण मुसलमान भाई भी अनायास ही समझ सकते हैं।

बङ्गाल में इस्लाम मज़हब के सभी एक से एक बढ़कर ग्रन्थ बँगला अक्षर और बंगला भाषा में छापे गये हैं। अवश्य ही मुसलमान लेखक और मुसलमान प्रकाशकों ने ही अपने मज़हबी भाइयों के परम कल्याण के लिए इस महान कर्म को किया है। इसका कल्याण भी इतना अधिक हुआ कि विचारने से दङ्ग होना पड़ता है। यदि मेरा स्मरण विचलित न हुआ हो तो सन् १८९८ ई० में कलकत्ते में निचले दरजे के मुसलमानों ने लाठियों और ढेलों से अङ्गरेज नर-नारियों पर ऐसी मार-धार जारी की थी कि तोपों, बंदूकों और संगीनों से उनको दबानेमें लगभग सात दिन लगे थे! किन्तु यह सुनकर सब लोग चकित होंगे कि वे सबके सब दंगेबाज़ मुसलमान बंगाल के बाहर के थे! दंगे में एक भी बंगाली मुसलमान शरीक नहीं हुआ था। बंगाल के निचले दरजे के मुसलमानभी अपने मज़हब के उन ग्रंथोंको ऐसे चावसे पढ़ते हैं कि उनका अपने मज़हब का ज्ञान आलिम-फ़ाज़िल मौलवियों से कम नहीं है, और उनके चेहरों में ऐसी धार्मिकता विराजती है कि उनसे किसी भी प्रकार के व्यर्थ दंगे-फ़साद नहीं हो सकते। यदि हिन्दी मातृभाषा के प्रान्तों में फ़ारसी अक्षरों के बदले नागरी अक्षरोंमें उर्दू लिखने की चाल डालकर उसकी हिन्दी से समानता कर दी जाय, तो वहाँ भी वही स्थिति उत्पन्न होगी, जो बंगाल में हुई है। वहाँ के हिन्दू और मुसलमान दोनों की श्रीवृद्धि होगी और दोनों में प्रेम बढ़कर हिन्दू और मुसलमानों के वैमनस्य का प्रश्न भी सहज में हल हो जायेगा। इन बातों से यह भी निर्णीत हो जाता है कि जो मुसलमान साहबान फ़ारसी अक्षरों को इस्लाम मज़हब के हित के नाम से स्थिर रखने के पक्षपाती हैं उनकी दलील कितनी कमज़ोर है। फ़ारसी अक्षर निचले दर्जे के मुसलमान भाइयों में मज़हबी ख़याल को फैलाने का सहारा देने के बदले फैलाने के बाधक ही होते हैं। इसलिए अपने मान्य मुसलमान नेता महोदयों से मेरा नम्र निवेदन यह है कि आज दिन जब वे स्वदेशवासी भाइयों को उनके जन्म-अधिकार से कृतकृत्य करने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं, तो उनके मूलको हिन्दी वा उर्दू मातृभाषाभाषी प्रान्तों लगाने के

लिए एक नागरी ही अक्षरों में स्थानीय भाषा को लिखने की चाल डालें। वे ध्यान से विचार कर देखें कि यदि वर्तमान जागृति के इन दिनों भी पद्मावत के रचयिता एक ही मलिक मुहम्मद जायसी सरीखे इस्लाम मज़हब के हिन्दी-कवि उत्पन्न हों, तो उनका क्या प्रभाव हिन्दुओं और मुसलमानों के हृदय पर पड़ेगा और वे देश-भाषा की उन्नति करनेके साथ-साथ परस्पर दोनों के विद्वेष को पाट कर दोनों में मैत्री की सीढ़ी बनाने का कितना बड़ा काम करेंगे !

हिन्दी की उन्नति

अब तक मैं देशवासियों के अभिमत के परिचालक-वर्ग से यह विनती करता आया हूँ कि हिन्दीभाषा चाहे उन्नत वा अवनत जिस किसी स्थिति में क्यों न हो, एक उसी में ही भारतवर्ष भरकी राष्ट्रभाषा होने की गुण-वत्ता है। इसलिए राष्ट्रभाषा की अनिवार्य आवश्यकता को हृदयंगम कर भारत के प्रान्त-प्रान्त, नगर-नगर तथा ग्राम-ग्राम में प्रत्येक नर-नारी को सर्व प्रकार गुण-विशिष्ट हिन्दी भाषा का अभ्यास कराना चाहिये। हिन्दीभाषा में राष्ट्रीय शक्ति के विद्यमान होने का अनुभव अबसे कोई तैंतालीस वर्ष पहले मेरे जी में हुआ था। उस समय जीवन में प्रथम बार प्रयाग के माघ मेले में जाकर मैंने यह प्रत्यक्ष देखा था कि भारत के विभिन्न प्रान्तों के साधु-परस्पर तथा अन्य लोगों से, एक हिन्दी भाषा में ही वार्त्ता-लाप कर रहे हैं। तब से मेरे जीवन का एक यही स्वप्न होगया कि राष्ट्रभाषा की अतुल शक्ति रखनेवाली हिन्दी की ऐसी उन्नति होनी चाहिए कि प्रत्येक प्रान्त के भारतवासी उसकी अनुपम उन्नति से ही आकर्षित होकर हिन्दी को सीखने और अपनाने में उत्तेजित हों और अब तो हिन्दीभाषा की सेवा करते-करते हिन्दी के सम्बन्ध में ऐसा अभिमान मेरे जी में आगया है कि उसकी अलौकिक उन्नति की समुज्वल छटा से स्वदेशवासियों को मुग्ध करने को छोड़कर और किसी भी हेतु से उसको अपनाने का अनुरोध स्वदेशवासियों से भी करने में मेरे जी में क्लेश होता है। राष्ट्र-भाषा के प्रचुर प्रचार के बिना जो असह्य क्षति देश को हो रही है,

वह यदि मेरे जी में बहुत न गड़ती होती तो इसको अपनाने का अनुरोध किसी से किये बिना मैं केवल अपने हिन्दी-सेवक और हिन्दी-प्रेमी भ्रातृवर्ग से यही विनती करता—"हिन्दी की उन्नति कीजिये, हिन्दी की उन्नति कीजिये।" हिन्दीभाषा की उन्नति का स्वप्न जीवन के प्रारम्भ से ही देखता हुआ मैं अपनी अक्षमता के विचार से भी इसलिए निवृत्त नहीं हुआ था कि मेरी सेवा से और कोई फल न भी हो, तो सुयोग्य पुरुषों को कुछ-न-कुछ अप्रत्यक्ष उत्तेजन तो निश्चित ही मिलेगा। अवश्य ही उस समय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी सरीखे क्षणजन्मा पुरुष की लेखनी से हिन्दी की भागीरथी धारा का निकलना नहीं बन्द हुआ था। पण्डित बद्री-नारायणजी चौधरी, पण्डित अम्बिकादत्तजी व्यास पण्डित प्रताप नारायण जी मिश्र, पण्डित बालकृष्ण जी भट्ट, पण्डित सदानन्द जी मिश्र सरीखे विद्वान लेखक भी उस चन्द्र को घेर कर नक्षत्र-पुञ्ज की तरह साहित्य के आकाश में आलोक डालते हुए हिंदी की सेवा में तत्पर थे। किन्तु उन स्मरणीय पुरुषों की लेखावली अल्प प्रचार की मेघमाला से आच्छादित होकर इतने थोड़े, मनुष्यों के दृष्टिगोचर हो पाती थी कि सर्वसाधारण लोगों में जीवन डालनेवाले तेजस्वी गद्य-साहित्य का प्रचार नहीं था, यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगी। इसलिए हिन्दी के सेवकों में स्थायी रूप से नाम लिखाकर जब सर्व प्रथम मैं दैनिक "हिन्दोस्थान" के सम्पादन में प्रवृत्त हुआ तो उसकी प्रान्तीयता के चक्कर में आप पड़कर और तात्कालिक सहयोगी वर्ग की प्रान्तीयता की भरमार विदित होने का अवकाश पाकर निरन्तर यही विचार मेरे जी में उठने लगा कि हिन्दी की यह बेड़ी कैसे कटेगी, स्वतन्त्रता की सञ्जीवनी को लेकर हिन्दी कैसे सर्वत्र घर-घर पहुँचेगी और सब नरनारियों को अपना रसिक बनाकर विद्वान पुरुषों में अपनी सेवा का उत्साह भरेगी। अनेक दिनों से अङ्गरेज़ी भाषा ही भारतवासियों के नाना प्रकार की विद्याओं के सीखने का सर्व प्रधान अवलम्ब बनी हुई है। इसलिए मेरे जी में गाढ़ी लालसा यह होती थी कि हिन्दी की भूमि के जो

पुरुष अङ्गरेज़ी भाषा में भलीभाँति प्रविष्ट होकर नाना विद्याओं में प्रवीण हुए हैं वे हिन्दी की सेवा में प्रवृत्त हों और अपनी अभ्यस्त विद्याओं की विभूति हिन्दी में डालकर उसको सर्वसाधारण की मनोहारिणी और हितकारिणी बनावें।

उस समय उन विद्वानों की बड़ी ही लज्जाजनक दशा यह थी कि वे किसी हिन्दी-पुस्तक वा हिन्दी-संवादपत्र का पढ़ना अपना अपमान समझते थे। यहाँ तक कि रेलवे का सफ़र करते समय यदि उनकी पेटी में भूल से कोई हिन्दी-पुस्तक, अँगरेज़ी पुस्तकों के साथ, रखी जाती और वे भूल से ही हिन्दी-पुस्तक को हाथ में उठा लेते थे तो बगल के सहयात्रियों से अँगरेज़ी पढ़ने के सम्मान को लाभ करने के लिए, उनकी आखें बचाकर, हाथ की हिन्दी-पुस्तक को छिपा डालते और किसी अँगरेज़ी पुस्तक को लेकर पढ़ने लगते थे। अँगरेज़ी के विद्वान स्वर्गीय राजा शिवप्रसादजी 'सितारेहिन्द' अवश्य ही उस समय आधुनिक हिन्दी की सी भाषा में अपने "इतिहास तिमिर-नाशक" को लिख चुके थे। पर वह स्कूलों की पाठ्य पुस्तक उनके समसामयिक तथा दीर्घ परवर्त्ती अँगरेज़ी विद्वानों में हिन्दी-गद्य पढ़ने-लिखने की रुचि नहीं उत्पन्न कर सकी थी। अँगरेज़ी के विद्वानों में हिन्दी लिखने का उत्तेजन भरने के लिए ही उन दिनों सिरसा निवासी स्वर्गीय बाबू काशीप्रसादजी खत्री का, तात्कालिक "प्रयाग-समाचार" के सम्पादक स्वर्गीय पण्डित देवकीनन्दनजी त्रिपाठी-प्रमुख हमारी मण्डली ने समारोह से समवेत होकर हार-तुर्रे के समादर किया था; क्योंकि उन खत्रीजी ने आधुनिक हिन्दी भाषामें अँगरेज़ी का अनुवाद कर सरकार से एक हज़ार रुपया पुरस्कार पाया था। मेरे पास इस समय यह साधन नहीं है कि मैं खत्रीजी की उस पुरस्कृत भाषा का नमूना दिखलाऊं और मेरे पूर्ववर्त्ती जो मान्य विद्वान सम्मेलन के सभापति के इस आसन को अलंकृत कर चुके हैं, वे अनुसन्धान से उस समय के हिन्दी-गद्य-साहित्य के इतने उद्धरणों की भेट सम्मेलन को दे गये हैं कि पुनरुक्ति श्रोतृवर्ग के धैर्य्य में आघात करने वाली भी हो सकती है। सारांश यह

कि उस समय के गद्य-साहित्य की स्थिति की उन्नति अँगरेज़ी के विद्वानों को साहित्य के अखाड़े में लाये बिना असम्भव समझी जाती थी। इसीलिए जिन धनवानों से मैं संवादपत्र स्थापित करा सकता था तथा जिनके संवादपत्रों में मैं सम्मिलित हो पाता था, उनसे मैं यही बिनती करता था कि हिन्दी की भूमि के जितने अधिक विद्वानों को अपने संवादपत्र में नियुक्त कर सकते हैं, उतनों को ही स्थूल वेतन से अवश्य बुलाइए। विद्वानों के प्रमुख पण्डित मदनमोहनजी मालवीय आगे जब "हिन्दोस्थान" के सम्पादन में प्रवृत्त हुए, तो उनके उस उदाहरण के प्रभाव ने अँगरेज़ी के विद्वानों की तात्कालिक मति-गति को बदलने में बड़ा काम किया। उस कार्य्य को जब उन्होंने त्याग दिया, तो उनसे मैं यही परामर्श करता था, कि किस प्रकार से संवादपत्रों के सहारे अँगरेज़ी के विद्वान मातृभाषा पर श्रद्धान्वित होकर उसकी सेवा में प्रवृत्त हो सकते हैं। पण्डितजी के जीवनव्यापी नाना उद्योगों से क्रमशः अँगरेज़ी के अनेकानेक विद्वान हिन्दी की सेवा नाना प्रकार से करने में तत्पर हुए, जिसका फल यही हुआ है कि हिन्दीभाषा सुललित होकर इन दिनों अपनी अनोखी माधुरी का विकास कर रही है।

भाषा की प्रौढ़ता का लक्षण यह है कि किसी भी भाव के प्रकाशन में कोई अड़चन न होने पावे और गूढ़-से-गूढ़ भाव भी सहजबोध्य वा अल्पायास-बोध्य तथा श्रुति-मधुर हों। दीर्घदर्शी तथा समधिक-अधीत विद्वानों को छोड़कर साधारण कोटि के लेखक अवश्य ही गूढ़ भावों का दावा नहीं कर सकते; पर भाषा की प्रौढ़ स्थिति में साधारण-से-साधारण लेखक भी मधुर भाषा ही लिखते हैं। भाषा की इस प्रार्थनीय स्थिति पर हिन्दी अब आरूढ़ हुई है। भारत की वर्त्तमान प्रचलित भाषाओं में मुझको बंगाली भाषा का कुछ विशेष अनुभव है और विदेशीय भाषाओं में एक अँगरेज़ी का ही कुछ कुछ। इन दोनों स्वदेशीय और विदेशीय भाषाओं के साथ यदि हिन्दी की इस समय की स्थिति का मिलान किया जाय, तो मुझको यही प्रतीत होता है कि वङ्गीय विद्वान समासों से संयुक्त गुरु

गम्भीर संस्कृत शब्दावली का अवलम्बन कर जो सरस भाषा लिखते हैं, उसी जोड़ की मधुर भाषा, अब हिन्दी के लेखक, उनकी अपेक्षा कहीं अधिक सरल पद्धति से लिखते हैं। और अँगरेज़ी के साथ तुलना करने पर मेरे जी में यही आता है कि उसके जोड़ की असंख्य व्यावहारिक शब्दों की अतुल सम्पति न तो बंगाली भाषा में है और न हिन्दी भाषा में ही; पर भाषा सम्बन्धी मिठास में बङ्गाली और हिन्दी इस समय अँगरेज़ी से कुछ भी न्यून नहीं है। विश्व के विशाल जल स्थल पर राज्य करनेवाले अँगरेज़ अपनी राजकीय आवश्यकता से तथा ज्ञानवृद्धि की अटल असीम प्यास से स्वतन्त्रता के मुक्त चरणों को नानाविधि क्षेत्रों में दीर्घकाल से प्रविष्ट कराते हुए अपनी भाषा को जिन अनगिने शब्दों के अमूल्य अलङ्कारों से सजाने में समर्थ हुए हैं, उनको उन सुभीतों से रहित तथा नाना कारणों के वश ज्ञान-वृद्धि की प्यास से भी बहुधा वञ्चित भारत के कोई भी प्रान्तवासी अपनी भाषा में कैसे लाते? किन्तु किसी जाति के मनुष्यों में ज्ञान-वृद्धि की प्यास का एकबार ही न रहना उस जाति की निश्चित मृत्यु का शोचनीय दुर्लक्षण है। वर्त्तमान काल की सभ्यता के शिखर पर जो जातियाँ आरूढ़ हुई हैं, वे जिस समय आदिम अवस्था के मनुष्यों के अज्ञान तिमिर में समाच्छन्न थीं, उस प्राचीन-से-प्राचीन काल में भी जिस भारतीय जाति के मनुष्यों ने ज्ञान की पराकाष्ठा लाभकर अपने उपनिषदों में इन्द्रियों के अगोचर अद्वितीय विश्वनियन्ता के चैतन्य की सर्व व्यापकता का पर्दा खोला था, और जिनकी, वर्त्तमान काल के जोड़ की, लौकिक उन्नति के भी उज्ज्वल चिन्हों को सिन्ध और पञ्जाब के भूगर्भ से निकालकर इन्हीं दिनों के दो भारतवासियों ने ही पश्चिम देशों के विद्वानों का यह पूर्व भ्रान्त सिद्धान्त बदल दिया है कि भारतवर्ष की सभ्यता सहस्रों वर्षों के अति प्राचीन काल के बदले केवल डेढ़ ही हज़ार वर्ष पहले जन्मी थी, उनके वंशवाले ज्ञान-वृद्धि की उस प्राचीन पैत्रिक प्यास से रहित—यदि एक बार ही रहित—होजाते, तो नाना प्रकार की सभ्यताओं से निरन्तर

टकराते हुए, इतने दिन जीवित रहने का अवकाश न पाकर, अबसे कितने ही वर्ष पहले पृथ्वी से मिट गये होते। किन्तु हाँ, हुआ यह है कि अवस्था के चक्र ने वर्ष पलटा खाकर, भारतवासियों के ज्ञान की गति को, अध्यात्म की ओर से लौकिक की ओर, पूर्व की अपेक्षा समधिक, लेजाने की जो गहरी आवश्यकता उत्पन्न की है, उसमें वे पूर्व संस्कार और उपस्थित अवश्यकता, इन दोनों प्रकार की बुद्धियों के बीच, उन दोनों के दो-तर्फ़ा खिचावों से, पूर्व के संस्कार को पूर्ववत् स्थिर रखने में असमर्थ होकर भी जैसा चाहिए वैसा अग्रसर हो सके हैं। राजनैतिक परतन्त्रता भी इस में विशेष बाधक हुई है।

यदि ज्ञान-वृद्धि की पूर्व प्यास इन दिनों के भारतवासियों में बची-खुची न होती, तो उक्त अपार बाधाओं तथा उनके साथ ही साथ विद्यमान और भी अनेकानेक कठिन से कठिन असुविधाओं को शरद ऋतु के बादल के तरह फाड़कर, वर्त्तमान काल के कतिपय भारतवासी अपने ज्ञान और नानाविध महिमाओं की ज्योति से पश्चिम के देशों के आधुनिक सभ्य विद्वानों को चकित करने में समर्थ नहीं होते। ज्ञान-वृद्धि की प्यास ने ही स्वर्गीय लोकमान्य पण्डित बालगंगाधरजी तिलक को "Arctic home of the Vedas" के सप्रमाण अनुसन्धान में उत्तेजित किया था; सर जगदीशचन्द्र वसु को स्थावर वृक्षों में जङ्गम जीवों की सी अनुभव-शक्ति और अचल जड़ों में चैतन्य की वेद-सिद्ध विद्यमानता होने के अखण्डनीय प्रत्यक्ष प्रमाणों से पश्चिम के वैज्ञानिकों के एक दीर्घ-निर्णीत भ्रान्त मूल सिद्धान्त का सफलतापूर्वक परिवर्त्तन कर देने में प्रवृत्त किया था; सर प्रफुल्लचन्द्र राय को गहरे अनुसन्धान से प्राचीन आर्य्य रासायनिकों की महत्वपूर्ण कीर्ति का प्रचार करने में उद्यत किया था; और उन दोनों पृथ्वी-प्रसिद्ध अध्यापकों के अनेकानेक होनहार भारतीय शिष्य-वृन्द को विज्ञान और रसायन के नाना नये-नये अविदित तत्वों की गवेषणा से पृथ्वी भर के विद्वानों की श्रद्धा लाभ करने में डटवाया है। ज्ञान-वृद्धि की प्यास ने ही महात्मा मोहनदास-करमचन्दजी गांधी को परम तपस्या से

इस अनुपम उपाय के निर्णय में उत्तेजित किया कि समूची पृथ्वी भर में एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के, एक समाज वा सम्प्रदाय के मनुष्य दूसरे समाज व सम्प्रदाय के मनुष्यों के, एक धर्म के मनुष्य दूसरे धर्म के मनुष्यों के, एक जाति के मनुष्य दूसरी जाति के मनुष्यों के—विद्वेष की, घृणा की, अक्षमा की, अप्रेम की, क्षति को और प्रभुत्व की बुद्धि का विसर्जन कर किस प्रकार से, विवाद से रहित, युद्ध से रहित, प्रेम और अनन्त सुख की शान्ति का राज्य स्थापित कर सकते हैं, जिससे जगत् के महानुभाव विद्वानों में यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि वे महात्मा हो पृथ्वी के मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ हैं कि नहीं। ज्ञान-वृद्धि की प्यास ने ही डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर को जगमान्य कवि बनाया, अध्यापक परांजपे प्रभृत्ति को सब यूरोपीय विद्यार्थियों के ऊपर सीनियर रैंगलर बनाया और सैकड़ों भारत-सन्तानों को विज्ञानादि के अध्ययन के लिए नाना विदेशों में भिजवाया था और भिजवाया है। ज्ञान-वृद्धि की प्यास ने ही स्वर्गीय नसरवानजी टाटा को तीस लाख तथा डाक्टर रासबिहारी घोष और टी० एन० पालित को दस-दस लाख रुपया विज्ञान की शिक्षा-विस्तार के अर्थ संकल्प कर देने में उत्तेजित किया और स्वर्गीय सर सैयद अहमदख़ाँ को अलीगढ़ एम० ए० ओ० कालेज और पण्डित मदनमोहनजी मालवीय को बनारस हिन्दू-यूनिवर्सिटी स्थापित करने में समुद्यत किया, और यह ज्ञान-वृद्धि की ही प्यास है जो इन दिनों की लौकिक आवश्यकता को बहुत थोड़े साधन वाली संस्कृत की पूर्व पद्धति से अध्ययन करने में तथा प्रतिवर्ष यूनिवर्सिटियों की ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी नाना सर्वोच्च परीक्षाओं को उत्तीर्ण करने में सहस्रों भारतीय विद्यार्थियों को आकर्षित कर रही है। किन्तु कठिन परिश्रम की परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही वे सुशिक्षित युवकवृन्द बहुधा प्रतिकूल स्थिति के वश में ज्ञान-वृद्धि की प्यास को मेटकर अपने से फलनेवाली स्वदेश की बड़ी भारी भविष्य आशा को प्रायः बिगाड़ देते हैं। यदि नाना ज्ञातव्य विषयों की खोज में वे अपनी उच्च शिक्षा को लगाकर सार्थक करते और

नाना तत्वों का आविष्कार कर उनको भेंट मातृभाषा को देते, तो भाषा की जो बल-वृद्धि और साहित्य की जो पुष्टि होती, उससे हिन्दी भाषा और आधुनिक हिंदी साहित्य अभी तक बंचित है। यही कारण है कि कतिपय शिक्षितों के ही उद्यम से हिंदी भाषा अब सरस, मधुर और सरल पद्धति से सब भावों के प्रकाशन की शक्ति को लाभ करके भी शिक्षितों के ही अनुद्यम से अभी तक नाना विषयों की अनेकानेक आवश्यक, अव्यहृत शब्दावली के बिना नाना मूल्यवान आभरणों से रहित, सुचारुसर्वांगी मनोमोहिनी सुन्दरी सरीखे दीन प्रतीत हो रही है और हिंदी गद्य-साहित्य बड़ी लालसा रखनेवाले निर्धन गृहस्थ की तरह नाना रत्नावली से रहित भंडार को लेकर बहुविधि विषयों के ऐश्वर्य्य की बाट देख रहा है।

सर्वोच्च परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर के भी जो युवकवृन्द प्रतिकूल स्थिति के वश में जातीयज्ञान और विज्ञान की वृद्धि करानेवाले नाना विषयों के अनुसन्धान से मातृभाषा के साहित्य को परिपुष्ट करने में असमर्थ होते हैं, उनकी सामर्थ्य को किस प्रकार से देश के समर्थ पुरुष बढ़ा सकते हैं, इसका विवेचन मैं आगे चलकर करूंगा। किन्तु जो अनुकूल स्थिति के युवक बड़े भारी परिश्रम से उच्च शिक्षा लाभ कर के भी ज्ञान की समधिक वृद्धि की तृष्णा को आगे मेटकर उतने बड़े परिश्रम की शिक्षा को नाना ज्ञातव्य विषयों के अनुसन्धान में और विभिन्न तत्वों के आविष्कार से मातृभाषा के साहित्य की श्रीवृद्धि करने में नहीं लगाते हैं, वे भूलजाते हैं कि उनके परिश्रम की संजीवनी से संजीवित होने के लिए उनकी मातृभाषा कैसी तरस तरस रही है! वे भूल जाते हैं कि उन्हीं के एकाग्र श्रम से हिन्दी साहित्य सर्व गुणों का आधार होकर हिन्दी की भूमि के बारह तेरह करोड़ नर-नारियों को उच्च मनुष्यत्व के सिंहासन पर आरूढ़ कर सकता है और सर्व भारत के बत्तीस करोड़ से भी अधिक नर नारियों को अपने शिक्षण तथा पठन-पाठनमें समुद्यत कर किसी से कुछ भी प्रार्थना किये बिना स्वतःही राष्ट्रभाषा के साहित्य का सम्मान लाभ कर सकता है। यहाँ मैं बंगाल में शिक्षा-प्रचार के अग्रगु

स्वर्गीय सर आशुतोष मुकर्जी के उस भाषण के एकांश का अनुवाद देता हूं, जो उन्होंने बंगीय-साहित्य-परिषद के सभापति निर्वाचित होकर सुनाया था।

"अंगरेज़ समूची पृथ्वी के राजा नहीं हैं, तिस पर भी अनेक स्वाधीन देशों में भी अङ्गरेज़ी भाषा का समादर पाया जाता है। इसी प्रकार रूस देश की भाषा भी ऐसे अनेक देशों में समादृत होती है, जहां के एक लाख निवासियों में एक भी रूसी नहीं पाया जाता। हमारे गर्व के आधार, भारत के गौरव की वैजयन्ती, संस्कृत का अथवा यूरोप की लेटिन और ग्रीक भाषा का आदर किस देश में नहीं है? कौन धीमान इन भाषाओं को सीख कर कृतार्थ नहीं होना चाहता? फ्रांसीसी भाषामें जो बड़े-बड़े ज्ञान-गर्भ ग्रन्थादि हैं उनको उस भाषा से विदित होकर पढ़े विना कौन धीमान आजीवन विद्यार्थी केवल उनके अनुवाद से ही परितृप्त हो सकता है? इसका कारण यही है कि उन भाषाओं में ऐसे अनेक विषय हैं, जिनको सीखे विना यह निर्विवाद नहीं माना जा सकता कि सीखनेवाला पूरा ज्ञान पा गया है। रूसी भाषा में गणित और रसायन शास्त्रों के इतने अधिक विवेचन और गवेषण हुए हैं कि उन शास्त्रों के जाननेवाले उनको देखे विना नहीं रह सकते। यदि कोई मनुष्य गणित और रसायन-शास्त्रों में वास्तविक ज्ञानी होना चाहे और ज्ञान की तृषा को संपूर्ण रूप से परितृप्त करना चाहे, तो उसको रूसी भाषा सीखनी ही पड़ेगी, नहीं तो उसकी सम्भावना नहीं है। ऐसा कौन रसिक पुरुष है, जो इंगलैण्ड के—अथवा केवल इङ्गलैण्ड के ही क्यों—सम्पूर्ण जगत् के गौरव-भाजन महाकवि शेक्सपियर की अमृतमयी लेखनी का रसास्वादन करने के लिए अङ्गरेज़ी भाषा को नहीं सीखना चाहता? राजनीतिक कारण के विना भी रूसी भाषा का और अङ्गरेज़ी भाषा का उतना आदर, उनपर ज्ञानार्थियों की उतनी बड़ी श्रद्धा केवल इसीलिए है कि उन भाषाओं में अमूल्य विषय भरे हुए हैं। यदि गणित और रसायन के विषय में रूसी भाषा उतनी सम्पतिशाली न होती अथवा न्यूटन के अद्भुत

आविष्कार से अँगरेज़ी भाषा अलंकृत न होती, तो उन देशों में, जहाँ रूसियों का और अँगरेज़ों का राज्य नहीं है, उन भाषाओं का महत्व क्या कभी उतना अधिक माना जाता? भारत के ज्ञान और विज्ञान के आधार संस्कृत भाषा का यूरोप में भी क्यों आदर है? परतन्त्र भारत की प्राचीन-से-प्राचीन भाषा का प्रभाव स्वतंत्र पश्चिमीय देशों में इतना अधिक विस्तृत होने लगा है कि जान पड़ता है कि काल पाकर ऐसा दिन आवेगा, जब पश्चिम के देशों का प्रत्येक विज्ञ जन किसी-न-किसी विषय में पूर्णत्व लाभ करने के लिए अवश्य संस्कृत भाषा का अभ्यास करेगा। न जाने कब, किस दिन कितने सौ सहस्र वर्ष पूर्व तमसा नदी के तीर में बैठकर क्रौंच मिथुन के कवि अपनी तपस्या से साधी हुई बीन पर जो झङ्कार छोड़ गये उसको सुनने के लिए उन देशों के विद्वान आज भी कान लगाकर बैठे हुए हैं।"

विद्वान-शिरोमणि स्वर्गीय आशुतोष सरस्वती का वह उपदेश यदि वङ्गीय विद्वानों का ध्येय हो, तो हिन्दी को नाना विषयों की महिमा से गौरवान्वित करने और राष्ट्रभाषा के सिंहासन पर बैठाने के लिए हिन्दी की भूमि के प्रत्येक धीमान का ध्येय अवश्य होना चाहिए।

हिन्दी की भूमि में हिन्दी का प्रचार

अभी तक आधुनिक हिन्दी-साहित्य की भाषा का हिन्दी बोलनेवाली विशाल भूमि में प्रचार इतना कम है कि अधिक-से-अधिक ग्राहकोंवाले हिन्दी साप्ताहिक संवादपत्र की भी ग्राहक-संख्या उतने हज़ार से अधिक नहीं है, जितने करोड़ मनुष्यों में उसके प्रचार की अपेक्षा है। किन्तु चार करोड़ निवासियोंके इँगलैंडमें यह सुना जाता है कि किसी-किसी दैनिक संवादपत्र की ग्राहक-संख्या दस-बारह लाख है। हिन्दुस्थान में भी हिन्दी की भूमि से कहीं कम निवासियों के अन्याय प्रान्तों में उन-उन प्रान्तों की भाषाओं के साप्ताहिक पत्र हिन्दी भाषा के साप्ताहिक पत्रों से कहीं अधिक ग्राहकोंवाले पाये जाते हैं। साप्ताहिक पत्र मराठी भाषा के बीस हज़ार से भी अधिक ग्राहकों के, गुजराती भाषा के पैंतीस-

छत्तीस हज़ार ग्राहकों के और बँगला भाषा के चालीस-पचास हज़ार तक ग्राहकों के सुने जाते हैं। इससे अवश्य ही यह पता नहीं लगता कि वास्तविक कितने मनुष्य हिन्दी भाषा के पढ़नेवाले हिन्दी की भूमि के निवासियों में हैं; पर यह अनुमान होता है कि उन-उन प्रान्तों के निवासी जितनी-जितनी संख्या में अपनी-अपनी मातृभाषा को पढ़ते हैं, उससे कहीं कम संख्या में हिन्दी की भूमि के निवासी अपनी मातृभाषा को पढ़ते हैं। और यदि उन-उन प्रान्तों के निवासियों की संख्या के साथ मिलानकर उन-उन भाषाओं के पढ़नेवालों की संख्या का औसत निकाला जाय तो हिन्दी की भूमि के निवासियों को देखते हिन्दी भाषा के पढ़नेवाले निवासियों का औसत और भी कम निकलता है। हिन्दी की भूमि के सभी निवासी निश्चित ही किसी-न-किसी रूपकी हिन्दी बोली बोलते और समझते हैं; किन्तु हिन्दी बोली बोलने और समझनेवालों के उस भाग को छोड़कर, जो हिन्दी-भाषा के साहित्य को पढ़ सकता है, प्रायः और कोई भी भाग उस साहित्य की भाषा का समझनेवाला नहीं है—अथवा हिन्दी-साहित्य की भाषा के पढ़नेवालों में भी ऐसे अनेक लोग हैं, जो उस साहित्य की भाषा को नहीं समझ सकते। यह बात पृथिवी की सभी भाषाओं के साहित्य के विषय में जिस प्रकार सत्य है, उसी प्रकार हिन्दी भाषा के साहित्य के विषय में भी सत्य है। हिन्दी-साहित्य बहुत सरल भाषा में बनाया जाता है, सही; पर सरल-से-सरल भाषा के हिन्दी-साहित्य को सभी हिन्दी पढ़नेवाले नहीं समझ सकते। एक उदाहरण से इस कथन का आशय और भी स्पष्ट हो जायेगा। कितने ही छोटे-छोटे लड़के अक्षरों को पहचानने के अनन्तर अपनी पाठ्यपुस्तकों की तथा दूसरी पुस्तकों की हिन्दी भाषा को सपाटे से पढ़ने लग जाते हैं, किंतु अपनी पाठ्य पुस्तकों की भाषा को जब वे अपने शिक्षक से समझ लेते हैं तभी वे उसके अर्थ को ठीक-ठीक समझ सकते हैं और दूसरे गहरे गहरे भावों के ग्रन्थों की हिन्दी भाषा को वे ज्यों-ज्यों भाषा में अधिक अधिक प्रविष्ट होते हैं, त्यों-त्यों क्रमशः समझने लगते हैं।

हिन्दी की भूमि के अनेकानेक हिन्दी पढ़नेवालों की स्थिति हिन्दी साहित्य की भाषा को समझने के विषय में उसी प्रकार बालकों की सी बनी हुई है। इसी स्थिति का यथासम्भव निवारण करने के लिए हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने उच्च, उच्चतर तथा उच्चतम हिन्दी भाषा के ज्ञान की परीक्षाओं का स्तुत्य प्रबन्ध किया है, तथा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष उपायों से उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन का भी वह प्रशंसनीय समुद्योग कर रहा है, जिसमें मंगलाप्रसाद-पारितोषिक के उच्च प्राण संस्थापकों ने अनुकरणीय रूप से सम्मेलन का हाथ बटा-कर और साथ ही साहित्यिकों को भी उत्तेजित कर अपने उपार्जित धन को सार्थक किया है। कवि-यश-प्रार्थी एवं उच्चतर अभीष्ट वाले सामर्थ्यवान हिन्दी-लेखक स्वरचित पुस्तकादि का प्रकाशनकर उदार धनवान दानी साहित्य की पुष्टि और श्रीवृद्धि की उन साम-ग्रियों को लोगों के नयन-पथ में लाने के सङ्कल्प से धन दान कर और व्यापार की वृद्धिवाली पुस्तकादि के प्रकाशक उत्तम, मध्यम तथा अधम नानाविधि ग्रंथादि के प्रचार कर अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार जो कुछ करते पाये जाते हैं उससे भी उस स्थितिका अल्पा-धिक निवारण हो रहा है। जन-समाज के अनेकानेक मनुष्यों की रुचि जब अधम श्रेणी की रहती है तो वे अधम श्रेणी की ही पुस्त-कादि के पढ़नेमें समधिक आकर्षित होते हैं और इसी उपायसे अपनी भाषा के ज्ञान को बढ़ाकर अपनी उस अधम रुचि से उस समय पारपा जाते हैं, जब कालान्तर में उत्तम रुचि के मनुष्यों का समधिक प्रभाव पड़कर उनके समाज की अधम रुचि का परिवर्त्तन होता है। इस प्रकार से अधम श्रेणी की पुस्तकादि भी जन-समाज की हीनावस्था में लोगों के भाषा के ज्ञान को बढ़ाने में सहायता कर जनसमाज की रुचि का सुधार होने के साथ-साथ अपने आप अप्र-चलित हो जाती हैं।

किन्तु सम्मेलन की ओर से परीक्षाओं के लेने की जो पद्धति स्थापित हुई है, प्रथम उससे और दूसरे सम्मेलन से, सम्मेलन की प्रेरणा से तथा अन्यान्य प्रकार से जो हिन्दी पुस्तकादि का प्रकाशन

हो रहा है, उनसे केवल उन्हीं लोगों के हिन्दी भाषा के ज्ञान को बढ़ाने की सहायता हो रही है, जिन्होंने हिन्दी भाषा के अक्षरों को पहचानकर हिन्दी भाषा का कुछ-न-कुछ पढ़ना प्रारम्भ किया है। अक्षरों के ज्ञान-विशिष्ट ये हिन्दी पढ़नेवाले हिन्दी की विशाल भूमि के निवासियों में इतने थोड़े हैं कि उनकी महासमुद्र के जल के आगे जल की कतिपय बूँदों के साथ यदि तुलना की जाय तो कोई गहरी अतिशयोक्ति न होगी। हिन्दी की भूमि के निवासियों में से उस अति विशाल पौने सोलह आने से भी अधिक भाग को आधुनिक हिन्दी-साहित्य की भाषा से विदित करने का कोई भी उपाय प्रचलित नहीं देखा जाता। विद्यार्थियों को जिस पद्धति से अक्षर सिखलाकर क्रमशः पोथियों के सहारे भाषा सिखलाते हैं उसका कुछ-न-कुछ प्रबन्ध अवश्य ही दिहातों में भी पाया जाता है। किन्तु वह प्रबन्ध इतना कम है कि उसी के ऊपर भरोसा करके यदि यह आशा की जाय कि तमाम लड़के किसी-न-किसी दिन आधुनिक हिन्दी-साहित्य की भाषा को समझने लग जायेंगे तो वह आशा कदाचित प्रलय-काल तक पूरी नहीं हो पावेगी। अवश्य ही आज के लड़के कभी बड़ों के अन्तर्गत होंगे, इसलिए इस समय के तमाम लड़कों और लड़कियों को यदि इस पद्धति के सहारे आधुनिक हिन्दी-साहित्य की भाषा में प्रविष्ट कराने का प्रबन्ध किया जा सकता कि काल पाकर हिन्दी की भूमि के सब स्त्री-पुरुष उस भाषा को समझने लग जाते तो बड़ा ही अच्छा होता; किन्तु तमाम लड़कों और लड़कियों को उस पद्धति से भाषा में प्रविष्ट कराना इतने बड़े ख़र्च का काम है कि हिंदी की भूमि के निर्धन निवासियों से उसका प्रबन्ध होना एकबार ही असम्भव है, और अब तक सरकार के आगे भी उस प्रबन्ध के लिए जितनी चिल्लाहटें मचायी गयी हैं वे सभी निष्फल होती आयी हैं। इसलिए यह विचारना आवश्यक है कि ऐसी किसी पद्धति से जो हिन्दी की भूमि के निवासियों की सामर्थ्य के बाहर नहीं है; उनको आधुनिक हिंदी-साहित्य की भाषा में प्रविष्ट कराना सम्भव है कि नहीं?

मेरे लघु विवेचन में ऐसी पद्धति है, जिसके सहारे इन दिनों केवल लड़के ही नहीं, पर बड़े भी उस भाषा में प्रविष्ट कराये जा सकते हैं और जिसके साथ ही उद्योगकारी सम्मानपूर्वक आजीविका निर्वाह भी कर सकते हैं। अब से कोई पैंतीस-छत्तीस वर्ष पहले व्याख्यान-वाचस्पति पण्डित दीनदयालुजी शर्मा की अध्यक्षता में उपदेशकों की एक मंडली गठित हुई थी, जो हिंदी-भाषा-भाषी नगर निवासियों को हिंदी-साहित्य की ऐसी रसीली और रोचक भाषा में हितकर उपदेशावली सुनाती थी कि श्रोता सदुपदेशों का लाभ उठाने के साथ ही साथ भाषा में भी प्रविष्ट होते थे। उन दिनों अनेक निरन्तर श्रोताओं का भी भाषा में इतना अधिक प्रवेश देखने में आया था कि वे केवल अक्षरों मात्र को पहचान लेने और पढ़ने का किंचित् अभ्यास करने से ही उत्तमोत्तम ग्रन्थों की भाषा के समझने के खासे अधिकारी होगये थे। अक्षरोंमात्र को पहचानकर भाषाको किंचित् पढ़नेका अभ्यास कर लेना तो समझदार मनुष्यों के लिए केवल कई दिवसों व कई सप्ताहों का ही काम है। और उसके विना भी जब भाषा के समझने में कोई अड़चन नहीं होती तो मानना ही पड़ता है कि चित्ताकर्षक पद्धति से श्रोता यदि आकर्षित कर आधुनिक हिंदी साहित्य की भाषा को सुनाये जा सकें तो उनमें भाषा का ज्ञान हो सकता है। इसी प्रकार किसी उपाय का अवलम्बन कर विशाल हिंदी की भूमि के भाषा के, ज्ञान के रहित, असंख्य निवासियों को भाषा का रसिक और भाषा का ज्ञान-विशिष्ट बनाना सुगम सहज स्वल्पायस में सुसिद्ध होनेवाला सदुपाय है।

उपदेशकों की वह मंडली अब शिथिल हो पड़ी है, और उसके सरीखे बलवान मनुष्यों की कोई दूसरी मंडली वा मंडलियाँ फिर नहीं गठित हुई हैं। उपदेशकों की उस मंडली का प्रायः नगरों से ही गाढ़ा सम्बन्ध था; पर फ़ी-सैकड़े ८० भारतवासियों के निवासस्थल क़स्बों, देहातों और गाँवों में उस मंडली के किसी प्रतिष्ठित उपदेशक का इतना कम प्रवेश होता था कि उन स्थलों के निवासियों को उससे भाषा के सीखने की प्रायः कभी कोई सहायता नहीं मिलती

थी। इसलिये वैसी ही मधुर भाषा में ज्ञानगर्भ उपदेश देनेवाले अनेकानेक उपदेशक यदि नगर और ग्राम सर्वत्र ही सदुपदेश करते हुए विचरण किया करें और वे ग्रामवासियों से कुल उतने ही धन की सहायता लिया करें जो उन दरिद्रों को न अखरे तो भी वे उपदेशकवर्ग सुख से आजीविका करते हुए हितकर उपदेश सुनाकर सब लोगों को आनुनिक हिन्दी-साहित्य की भाषा बड़ी सफलता पूर्वक सिखला सकते हैं। और एक प्रकार के उपदेशक हिन्दी की भूमि के किसी-किसी गाँव में भी देखे जाते हैं जो व्यासासन में बैठकर लोगों को रामायण, भागवत आदि पुराणों की कथा सुनाते हैं; किन्तु वे जिस भाषा में उपदेश करते हैं वह आधुनिक हिन्दी-साहित्य की भाषा नहीं होती। इसलिए उनके उपदेशों से और प्रकार हित होने पर भी उस भाषा के सिखलाने की सहायता नहीं होती। अवश्य ही उन्हीं उपदेशकों में उनके शिरोमणि विद्या और वाणी के अभेद रूप को अकेले प्रत्यक्ष दिखलानेवाले ग्वालियर राज्य-निवासी पौराणिक प्रवर स्वर्गीय पुरुषोत्तमजी भट्ट भी होगए हैं जिनकी अनुपम प्रतिभा दैवात ही किसी पौराणिक को प्राप्त हो सकती है, किंतु अनेकानेक पौराणिक आधुनिक हिन्दी साहित्य की भाषा का अभ्यास कर अपने मधुर कण्ठ की ललित वाणी से नगरों और ग्रामों में उस भाषा का उत्तम प्रचार कर सकते हैं। वे पौराणिक यदि बम्बई और बङ्गाल प्रांतों के पौराणिकों की पद्धति का अनुसरण करें तो श्रोताओं के हृदय को और भी अधिक सफलता पूर्वक आकर्षित कर सकते है। बम्बई प्रान्त के पौराणिकों की पद्धति पूना के दक्षिण में यह है कि पौराणिकजी खड़े-खड़े हाथ में एकतारा लेकर उसके स्वर-से स्वर को मिला कभी-कभी अनुकूल गीत गाते हुए हाव भाव कटाक्ष आदि अभिनयों के साथ कथा कहते हैं जिसमें मधुर करुण रौद्र हास्य आदि सभी भाव होते हैं—स्त्री की बोलियाँ नारी का सा कण्ठ-स्वर बनाकर नाज़ और नख़रे के साथ बोली जाती है, और स्त्री-पुरुष सभी के वाक्य साहस, भय आदि विभिन्न स्थितियों के कण्ठ-स्वर हाव-भाव प्रभृति बनाकर नासिक

बम्बई आदि नगरों में भी यही पद्धति इतने ही अन्तर के साथ है कि पौराणिकजी के हाथ में एकतारे के बदले गीत गाते समय करताल होते हैं, उनके साथ के मनुष्य हार्मोनियम और मजीरे बजाते तथा बांयां तबले की संगति करते हुए गीत के उसी पद को दुहराते रहते हैं, जो पौराणिक जी गाते हैं। इस पद्धति से गीत गाकर अभिनय की रीति से जो कथा कही जाती है उसको श्रोताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। बंगाल में पौराणिकजी व्यासासन पर बैठकर ही बिना बाजे और संगत के अकेले ही बीच-बीच में गीत गाते हुए अभिनय की रीति से आधुनिक साहित्य की ऊँची भाषा में कथा कहते हैं जिसको श्रोता चाव से सुनकर भाषा में प्रविष्ट होते रहते हैं। हिन्दी की भूमि के पौराणिक-वृन्द इनमें से किसी भी पद्धति का अथवा अलग-अलग पौराणिक अलग-अलग पद्धति का अवलम्बन कर सर्वसाधारण को आनन्द देते और नाना विषयों के उपदेश सुनाते हुए आधुनिक हिन्दी-साहित्य की भाषा में प्रवीण कर सकते हैं।

पौराणिक, सामाजिक प्रभृति नाटकों और प्रहसनों का अभिनय उन पद्धतियों की कथा की अपेक्षा साहित्य की भाषा का प्रचार करने में कहीं अधिक फल देनेवाला है। किन्तु थियेटर के नाम के अभिनय की जो पद्धति प्रचलित है, वह इतनी ख़र्चीली है कि उसका प्रबन्ध ऐश्वर्य्यशाली नगरों को छोड़कर निर्धन ग्रामों में नहीं किया जा सकता। हिन्दी के भूमि के निवासी जिन नगरों में समधिक संख्या में बसते हैं, वहाँ भी प्रायः अभी तक यह प्रबन्ध नहीं हो पाया है कि स्थायी अभिनय स्थल का निर्माण कर प्रति सप्ताह हिन्दी भाषा का प्रचार बढ़ाने योग्य किसी-न-किसी अच्छे नाटक का अभिनय दिखलाया जाय। इसलिए अस्थायी अभिनय-स्थल के सहारे भी हिन्दी की भूमि के किसी भी ग्राम में उस उद्देश्य को सिद्ध करने योग्य अभिनय दिखलाने की आशा अभी तक एक बार ही नहीं की जा सकती। किन्तु हिन्दी की भूमि के नगरों और ग्रामों में भी आज से लगभग पच्चीस-तीस वर्ष पहले इन्द्र-सभा के नाम का अभिनय

बहुत दिखलाया जाता था। वह बिना पर्दे का अभिनय पात्रों के साज-बाज और गीत-बाजे के सहारे बड़े ही कम ख़र्च में ऐसा मनोहर होता था कि उस पद्धति के अभिनय को आधुनिक समय के अनुसार उन्नत कर तथा वैसे ही पात्रों में आधुनिक हिन्दी साहित्य की भाषा के विभिन्न नाटकों की सुशिक्षा भरकर जीवित रखना सर्वथा उचित था। हिन्दी-साहित्य के सम्यक् प्रचार और देश वासियों के आनन्द तथा विभिन्न प्रकार अनुपम कल्याणों का वह साधन यद्यपि अब हितैषियों की दूरदृष्टि से कभी का मृतवत् हो गया है तथापि हितैषियों की प्रेरणा और उद्योगियों के समुद्योग से उस पद्धति का पुनुर्वार अनुकूल रीति के अनुसार सञ्जीवित होना असामान्य लाभकारी होगा। रासधारियों की अभिनय-पद्धति अब तक कुछ-कुछ प्रचलित है। किन्तु रासधारी न तो आधुनिक हिन्दी साहित्य की भाषा को बोलते हैं और न विभिन्न रुचियों के श्रोताओं के उपयुक्त अभिनय ही करते हैं। भागवत के अन्तर्गत कृष्ण-लीला का अधिक अभिनय दिखलाना ही उनको इष्ट है, जिसमें नाटकत्व इतना कम पाया जाता है कि उनका वह इष्ट भी समुचित सिद्ध नहीं हो पाता। नाटकत्व का रस उछालकर अनुभवी विद्वान यदि आधुनिक हिन्दी-साहित्य की भाषा में रासधारियों के अभिनय का संशोधन कर दें तो वर्त्तमान काल के रासधारी ही नगरों और ग्रामों में विचरने-योग्य बिभिन्न मण्डलियों को बनाकर सर्वत्र विचरते हुए सुख से अपनी आजीविका कर सकते है और अपने अभिनयों से सर्वसाधारण का अपा-रहित भी कर सकते हैं। ग्रामों के निवासी समय-समय के अभिनय भावों से उत्तेजित हुए बिना जिस प्रकार निर्जीव मृतवत् जीवन व्यतीत करते हैं, उससे भी यह आवश्यक हुआ है कि उसमें से सामर्थ्यवान अपने व्यय से होली और दिवाली सरीखे बड़े-बड़े त्योहारों पर वैसी किसी न किसी नाटक-मण्डली को बुलाकर उसके एक ही एक खेल से प्रतिवर्ष एक-एक दो-दो वार सर्व-साधारण में नवजीवन डालें। यदि समर्थों में वह उत्तेजन लाना असम्भव हो तो सर्वसाधारण में यह उछाह भरना

आवश्यक है कि हरएक गृहस्थ अपनी औक़ात को देखते हुए साल में एक-दो बार दो आने चन्दा देकर उस प्रकार आनन्द मनावें। उससे त्योहार अब से कहीं अधिक चमक जायँगे, नर-नारियों में, बालक-वृद्ध-युवकों में, नये-नये रसों की लहरें उछलने लगेंगी और आधुनिक हिन्दी-साहित्य की भाषा उनके कानों में प्रविष्ट होकर उनके हृदय के तारों को बजा-बजा कर और कण्ठों से उच्चरित हो होकर उनकी अपनी सामग्री बन जायगी। उस समय अक्षरों को सिखलाकर यदि उनसे पुस्तकों के पढ़ने का अभ्यास कराया जाय तो वे अपनी सीखी हुई भाषा को पुस्तकों से भी पढ़कर समझने में क्या कोई बड़ी देरी लगावेंगे ?

साहित्य के लेखक और प्रकाशक

भारतव्यापी "बन्देमातरम्" गीत के जन्मदाता, दार्शनिक, कवि, औपन्यासिकों के सम्राट, स्वर्गीय वङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय उपदेश देगये हैं कि साहित्य के गले मत पड़ो। अर्थात् साहित्य से आजीविका का भरोसा न करके और किसी उपाय से आजीविका करते हुए साहित्य की सेवा करो। साहित्य के भरोसे जीने वालों की दुःखजनक स्थिति पर साहित्यकों के गुरुवर्य्य महोदय के कोमल हृदय में दया उमड़ आयी होगी, जिससे उन्होंने शिष्य वृन्द को वह सदुपदेश दिया होगा और उस उपदेश का अनुसरण जिन लुभानेवाली स्थिति के सौभाग्यशालियों से हो सकता है उनको उसी के अनुसार चलकर साहित्य के ऊपर आजीविका का भरोसा करनेवालों के दुःसह दुःखों से पार पा जाना चाहिए। हिन्दी-साहित्य के भी कतिपय सौभाग्यशाली सेवक साहित्य से आजीविका का कुछ भी भरोसा न करते हुए परम सुख से हिन्दी-साहित्य की ऊँची सेवा करते पाये जाते हैं। किन्तु गुरु प्रवर के उस कथनकी पूरी श्रद्धा हृदय में लेकरके भी इस विवेचन में प्रवृत्त होना पड़ता है कि क्या सभी साहित्य-सेवियों से उस उपदेश का अनुसरण हो सकता है ? और यदि सभी साहित्य-प्रेमी एक उसी उपदेश का अनुसरण करें तो क्या साहित्य का समुचित

विस्तार और यथोचित बलवृद्धि हो सकती है? साहित्य के ऊपर आजीविका के लिए भरोसा न कर केवल चार ही श्रेणियों के विद्वान् साहित्य-प्रेमी साहित्य की सेवा कर सकते हैं एक अच्छी आय के जमींदार आदि धनवानों के सपूत, दूसरे व्यापार से अच्छी आय के करनेवाले, तीसरे अच्छी आय के सरकारी आदि नौकरियों के करनेवाले और चौथे क़ानून के पेशे से अच्छी आयके करनेवाले। भारत में, विशेषतः उसके अन्तर्गत हिन्दी की भूमि में, स्थूल आय के ज़मींदार आदि धनवानों के सपूत कम नहीं हैं, और वर्त्तमान काल में समुच्च विद्या की शिक्षा इतनी ख़र्चीली बनाई गई है कि परिश्रम करने से और किसी आयास के बिना कोई सपूत ही समुच्च विद्वान् हो सकते हैं। किन्तु प्रथम पढ़ने-लिखने में उनके बराबर श्रम करते और पढ़ना-लिखना स्थिर रखने के लिये उनकी अपेक्षा असामान्य अधिक कठिनाइयों का सामना करते हुए उनसे कहीं अल्प आय वालों के पुत्र ही कहीं अधिक संख्या में ऊँची शिक्षा लाभ करते हैं और आगे इनकी अपेक्षा समधिक संख्या और समधिक परिमाण में उन निर्धन उच्च शिक्षितों में ही साहित्य का अनुराग तथा साहित्य की सेवा का सङ्कल्प पाया जाता है। इसलिए धनवानों के जो थोड़े से सपूत उच्च शिक्षित होते हैं, उनके अन्तर्गत केवल उसी और भी थोड़े भाग पर, जो साहित्य के अनुराग से साहित्य की सेवा का सङ्कल्प कर लेता है, यदि साहित्य के विस्तार और वृद्धि का भरोसा कर दूसरे लोग साहित्य को सेवा के सङ्कल्प को अपनी छाती में दबा लें तो साहित्य का कितना विस्तार होगा, कितनी वृद्धि होगी? उन निर्धन उच्च शिक्षित साहित्यानुरागियों में से कुछ अवश्य ही व्यापार में, कुछ सरकारी आदि नौकरियों में और कुछ क़ानून के पेशे में प्रविष्ट होते हैं। किन्तु उनमें से कितने अच्छी आय के अधिकारी होने तक अपने साहित्य के अनुराग को स्थिर रखने में समर्थ होते हैं? और प्रकार साहित्य की बात को जाने दीजिये। साहित्य के अनुराग से कितने उच्च शिक्षित विद्वान् व्यापारी अभी तक व्यापार के गूढ़ तत्वोंवाले ग्रन्थों से हिन्दी

साहित्य के बल की वृद्धि करने में अग्रसर हुए हैं? कितने उच्च-शिक्षित राज-कर्मचारी राजकर्मों के विभिन्न भेदों से हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि करने में उत्तेजित हुए हैं? कितने उच्च-शिक्षित क़ानूनदां क़ानूनों, क़ानूनों की समालोचनाओं और क़ानून के मूल-तत्व की भेंट हिन्दी-साहित्य को देकर उसकी परिपुष्टि का आग्रह प्रकट कर सके हैं? साहित्य के विस्तार और वृद्धि का अन्ततः एक भाग ऐसा है, जिसका भार निर्धन उच्च-शिक्षित ही समुचित रीति से चलाने के लिए अपने कन्धे ले सकते हैं। संवादपत्रों ने हिन्दी-साहित्य के विस्तार और वृद्धि का जितना काम किया है, उतना उस साहित्य के और किसी भी भाग से अभी तक नहीं बन पड़ा है। किन्तु उस काम को नाना विधिस्वार्थों से जटित ज़मींदार आदि धनवान वा ऊँचे व्यापारी समुचित स्वतन्त्रापूर्वक चलाने का साहस नहीं कर सकते। राज-कर्मचारी तो उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकते और अपने पेशे के काम में निरन्तर दत्त-चित्त क़ानूनदां उसको यथा रीति निबाहने का अवकाश नहीं पा सकते।

इसलिए उक्त नाना कारणों से हिन्दी-साहित्य के विस्तार और वृद्धि के लिए निर्धन उच्च शिक्षितों से एक भाग की सेवा अनिवार्य्य रूप से आवश्यक है, अथवा केवल हिन्दी-साहित्य ही क्यों, पृथ्वी के सभी दूसरे साहित्य समधिक संख्यक निर्धन उच्च शिक्षित साहित्यानुरागियों की आन्तरिक श्रमपूर्ण सेवा से सदैव परिपुष्ट होते आये हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परिस्थिति भी यही सूचित कर रही है कि उसका उत्तरोत्तर विस्तार और वृद्धि कराने के लिए वैसे अनेकानेक पुरुषों की प्रगाढ़ प्रेम की सेवा को प्रचुर परिश्रम के बदले में आजीविका के उपयुक्त धन देकर स्थिर रखना अत्यावश्यक है। सेवा मातृभाषा के अटल निष्कपट प्रेम की है, मातृभाषा के मुख-सरोज को प्रफुल्लित देखने के अतुल आनन्द में लोट-पोट होने की है, देश के संख्यातीत आबाल-वृद्ध-बनिता को अनन्त सुख के क्षीर सागर में निमग्न करने की है—यह मन मोहने

वाली मधुर भावना साहित्य के नन्दन-कानन में विचरनेवाले भाषा मन्दार के मकरन्द-रसिकों के प्राणों से धनकी तृष्णा को स्वतः ही छुड़ा देती है; किन्तु साहित्य-सेवियों के हृदय का अभ्यन्तर कोमल भावों का आधार होने पर भी उनको इतर साधारण जीवों की तरह उदर भरकर जीवित रहना पड़ता है, कुटुम्ब का पालन करना पड़ता है, जन-समाज में रहकर दूसरे मनुष्यों के आचार-व्यवहारों को स्थिर रखना पड़ता है। उनको धनकी तृष्णा न रहने पर भी उतने धन की आवश्यकता है; जिसके बिना उनकी सामाजिक परिस्थित के मनुष्यों का निर्वाह नहीं होता। उतने धन से उनके चित्त में दुश्चिन्ता के प्रवेश को रोधे बिना उनके हृदय को वह मधुर भावना स्थिर नहीं रख सकती, उनके लिये साहित्य की समुचित सेवा नहीं हो सकती, दुश्चिन्ता से निर्मल मुक्त मन से साहित्यकी सेवा कर पाने से वे सुललित भाषा में अतुल परिपाटी से साहित्य के अङ्ग-अङ्ग को परिपुष्ट करनेका जो अनोखा अवकाश पाते, उसको वे नहीं पा सकते। आधुनिक सभ्यता में समधिक अग्रसर होकर जब से यूरोप के शीर्षस्थानीय इङ्गलैंड, फ्रान्स, जर्मनी और रूस ने हृदयता के विवेचन से इस सत्य को हृदयङ्गम किया है, तब से उन्होंने साहित्य-सेवियों को समुचित सम्मान और समुचित धन से समाहृत करना आरम्भ कर उनसे स्वजातीय साहित्य की कायापलट कराई जाती है। उन-उन देशों में ग्रंथादि का प्रकाशन कर जो लोग धनोपार्जन करते हैं, वे तब से अच्छी तरह से जान गये हैं, कि साहित्य-सेवियों का समुचित सम्मान और यथोपयुक्त धन से समाहृत करने से उनका स्वार्थ असामान्य रूप से सुसिद्ध होता है—उत्तमोत्तम ग्रन्थ प्रस्तुत होते हैं, जिनकी अत्यधिक खपत के मुनाफ़े से वे मालामाल होते हैं। उन देशों में ग्रन्थादि के प्रकाशन विषयक यह नियम साधारणतः प्रचलित है कि ग्रन्थादि की जितनी प्रतियां बिकती हैं, दूसरा चतुर्थांश ग्रन्थ की छपाई में लगाया जाता है, तीसरा चतुर्थांश ग्रन्थादि के प्रचार में ख़र्च किया जाता है और अवशिष्ट चतुर्थांश ग्रन्थादि के प्रकाशक की

पूँजी का मुनाफ़ा समझा जाता है, जिससे अधिक की आकांक्षा ग्रन्थादि के प्रकाशक नहीं करते। उसी से हरी भरी स्थित में रहकर निश्चिन्त मन से ग्रन्थादि के लेखक उत्तमोत्तम ग्रंथादि का निर्माण करते हुए साहित्य की श्रीवृद्धि और परिपुष्टि करते हैं; उसी से ग्रंथादि की सुन्दर-से-सुन्दर छपाई आदि होती है; उसी से ग्रंथादि का अपार प्रचार होता है और उसी से ग्रंथादि के प्रकाशक वैभव और ऐश्वर्य की पराकाष्ठा लाभकर कृतार्थ होते हैं।

हिन्दी भाषा के समधिक ग्रंथादि के प्रकाशन में अब तक जितने उद्योगी पुरुष प्रवृत्त हुए हैं इनमें से एक-दो अनुभवियों ने अपने स्वार्थ को अल्पाधिक समझाने का आभास दिया है। अवशिष्ट हिन्दी-ग्रंथादि प्रकाशक साधारणतः इस अनुभव का लक्षण अभीतक नहीं दिखला सके हैं कि उनका स्वार्थ ही हिन्दी-साहित्य के सेवकों का भी स्वार्थ है, उनका स्वार्थ ही हिन्दी-साहित्य के रसिकों, अनुरागियों और अधिकारियों का भी स्वार्थ है तथा इस लिए उनका स्वार्थ ही वास्तव में हिन्दी-साहित्य का भी स्वार्थ है। इस महत्वपूर्ण अनुभव के न रहने से ही उनमें से कोई-कोई इतनी पूँजी भी नहीं रखते कि कम-से-कम जितनी के विना किसी भी पद्धति के अनुसार वह व्यापार नहीं चलाया जा सकता। कोई-कोई सहृदयता से यह नहीं विचार सकते कि साहित्य-सेवियों के कितने परिश्रम से कैसे ग्रन्थादि प्रस्तुत होते हैं और उनका उचित पारिश्रमिक देना तो दूर की बात है, बर्त्ताव और वाक्य से मान भङ्ग तक करके भी नहीं पछताते। कोई-कोई सुन्दर मुद्रण आदि की महिमा नहीं जानते, कोई कोई प्रचार के सदुपायों से प्रायः अनभिज्ञ हैं और कोई-कोई इन सभी त्रुटियों के आधार हैं। हिन्दी-ग्रंथादि के प्रकाशकों की उक्त अक्षमता, अनभिज्ञता आदि से यदि हिन्दी साहित्य की वृद्धि और विस्तार में प्रभूत बाधा नहीं होती, तो वे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के समालोच्य न होकर वैसी ही अवज्ञा के विषय होते, जैसी अन्यान्य प्रकार व्यापारियों की कमियाँ त्रुटियाँ आदि। अथवा काल ऐसा आया है, जब विभिन्न समान

स्वार्थों के समुदाय स्वस्वार्थों के संरक्षण में उत्तेजित और उद्यत होने के लक्षण दिखला रहे हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का यह ध्येय निश्चित ही है कि हिन्दी-साहित्य के विस्तार और वृद्धि का सदुपाय करे और उसके विस्तार और वृद्धि के सभी विघ्नों और बाधाओं को दूर करदे। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के बल और प्रभाव की वृद्धि के साथ-साथ यदि हिन्दी ग्रंथादि प्रकाशकों की रजिस्ट्री की व्यवस्था की जावे तो उनकी उक्त कमियों और त्रुटियों का निवारण हो सकता है। प्रथम पूँजी की न्यूनता सम्मिलित पूँजियों के सहारे किस प्रकार से दूर कर उनकी वर्त्तमान थोड़ी पूँजी की समधिक आय की जा सकती है। इसका उदाहरण तो अन्ततः हिन्दी ग्रंथादि के एक अनुभवी प्रकाशक ने दिखला दिया है। सत्पात्रों को उपदेश और तदनुकूल सहायता दी जा सकती है। दूसरे साहित्य-सेवियों की जिस दुःखजनक स्थिति से विघल कर वङ्गीय साहित्य के सम्राट ने उनको साहित्य के गले न पड़ने का उपदेश दिया था, उस दुःख का निवारण जब हिन्दी-साहित्य की परिपुष्टि के लिए आवश्यक है, तो उसकी व्यवस्था भी की जा सकती है। साहित्यसेवियों के किस किस श्रेणियों के कितने कितने परिश्रम के लिए कम-से-कम कितना-कितना पारिश्रमिक मिलना चाहिए, उसकी भी नियमावली बना दी जा सकती है। कोई ग्रन्थादि का प्रकाशक किसी साहित्यसेवी से अथवा कोई साहित्यसेवी किसी ग्रन्थादि प्रकाशक से सौजन्य के प्रतिकूल वा अपमान-जनक आचरण करे, तो उसका समुचित न्याय किया जा सकता है, जो दोनों ओर के लिए निश्चय ही कल्याण-जनक होगा और साहित्य की समृद्धि में भी सहायता करेगा। तीसरे, ग्रन्थादि के चित्ताकर्षक मुद्रण और चौथे उनके समधिक प्रचार का भी सत्परामर्श दिया जा सकता है। ग्रन्थादि के प्रचार के लिए हमारे पाताल अमेरिका तक के मनुष्य आधी पृथ्वी की परिक्रमा कर भारत में आते हैं और नगर-नगर में विचरण करते हैं। हिन्दी की भूमि के ग्रामों तक में मनुष्यों को भेजने से ग्रन्थों के कितने अधिक

प्रचार का सुफल लाभ होता है, इसका मुझको प्रत्यक्ष अनुभव है। समधिक मूल्य के एक स्थूल ग्रन्थ की पांच हज़ार प्रतियों को छपवाने की व्यवस्था कर अब से कोई सोलह-सत्तरह वर्ष पहले पन्द्रह-पन्द्रह रुपये वेतन के दो मनुष्य उतने ही उतने भत्ते और सफ़र के खर्च से नगरों और ग्रामों में घुमाये गये थे, जो तीन महीने के अन्दर ही अन्दर पाँच हज़ार से भी अधिक क्रय प्रार्थियों के दस्तख़तों का संग्रह कर लाये थे।

पूँजी की न्यूनता आय की अनिश्चितता और किसी-किसी की व्यक्तिगत हीनता आय के अधिकारी को समुचित आय से वंचित करने में तथा उससे औद्धत्य का आचरण तक करने में उत्तेजित कराती है। नियमबद्धता से ग्रन्थों के प्रकाशकों और साहित्य के सेवकों के बीच इन सभी दोषों का निवारण हो सकता है। नियमबद्धता स्वतन्त्रता को नहीं बिगाड़ती; पर उच्छृङ्खलता को छुड़ा देती है। जगत में ऐसा कौन स्वतन्त्र जनसमाज है, जो कतिपय नियमों को माने बिना टिक सकता है ? साहित्यसेवी भी कतिपय नियमों का बन्धन परस्पर के बीच डालकर साहित्य की समधिक श्रीवृद्धि कर सकते हैं। साहित्यसेवी विश्व श्रृङ्खला के नाना विधि गुप्त भेदों का पर्दा खोल कर मनुष्य जीवन को सब अभावों से मुक्त करने के लिये उस श्रृङ्खला के सौन्दर्य्य और माधुर्य्य और उसके अधिपति के महत्व और अनुपमत्व का विकासकर मनुष्य के हृदय को उन रसों का आधार बनाने के लिये तथा उस अधिपति के नाते मनुष्यों के बीच के भ्रातृत्व को और उसके निभाने के एक-से-एक बढ़िया कौशलों को प्रकट कर मनुष्य के प्राणों को सब भ्रमों से विमुक्त, अनन्त सुख शान्ति से परम रमणीक बनाने के लिए ही लेखनी धारण करते हैं। किन्तु कोई-कोई साहित्यसेवी लेखनी-संचालन के इस गंभीर तत्व को कभी-कभी जी से भुला देते हैं और विपरीत बुद्धि के वशीभूत होकर मनुष्यों के बीच के उस प्रेम के नाते की परस्पर के बीच की मैत्री तक को जला डालने के लिए विद्वेष की वह्नि बालते हैं। साहित्य की मुद्राङ्कित विद्वेष-वह्नि इतनी द्रुत गति से फैलती

है और जातीय प्रकृति की पवित्रता ऐसी जला देती है कि जिसके साथ तुलना करने पर जड़ों को जलानेवाली अग्नि की दाहिका शक्ति तो नाम-ही-नाम को निकलेगी। अश्लीलता, व्यक्तिगत चरित्र का आक्रमण और एक सम्प्रदाय के मनुष्य से दूसरे सम्प्रदाय के विद्वेष का प्रचार निवारण करने के लिए सरकारी क़ानून है। किन्तु क़ानून से विद्वेष का प्रचार नहीं बन्द होता, यह बात साहित्य-सेवियों से बढ़कर शायद और कोई नहीं समझता होगा। क़ानून से असामान्य अधिक प्रभावशाली विद्वेष के मूल तक का उच्छेद करनेवाली महाशक्ति आजकल भारत में विराज रही है। महात्मा जी के द्वेषरहित निर्मल हृदय का प्रेरणा-प्रवाह जिनके हृदय में निरन्तर प्रविष्ट होता हुआ भी विद्वेष के बीज को दग्ध करने में असमर्थ हो रहा है, उनपर और किसी मन्त्र का प्रयोग उतना अधिक बलवान निश्चित हो नहीं होगा, तथापि अपने सम्प्रदाय वालों की नियमावली से उनको पंक्ति में अपमान का भय कुछ-न-कुछ दबाव अवश्य ही डालेगा। तीव्र-से-तीव्र समालोचना भी बिना विद्वेष की हो सकती है। सर्वसाधारण के काम में भाग लेनेवाले पुरुषों के जो कार्यकलाप, जो वाक्यावली तथा लेखकों के जो कथन, जो निर्णय सब के सम्मुख हैं, उनकी समालोचना तो होनी ही चाहिए। ऊंचे-से-ऊँचा मनुष्य भी भ्रम-प्रमादों से रहित नहीं हो सकता। किन्तु किसी का भी भ्रम, किसी का भी प्रमाद केवल उसके समुच्च पद के हेतु अथवा अन्य किसी कारण से कैसे सर्वसाधारण में फैलने दिया जाय? समालोचना अवश्य ही होनी चाहिए। विशेषतः समधिक लाभकारी मुद्रित विषयों की समालोचना सोने में सुगन्ध का काम करनेवाली होती है। किन्तु विद्वेष की बुद्धि रहने से ऐसी बातें लेखक की लेखनी से निकलती हैं जो सामने का समालोच्य विषय उसको कहने का अधिकार नहीं देता। वैसे विद्वेष से रहित तीखी-से-तीखी समालोचना कोमल चमड़ेवाले लेखकों के चमड़े को दृढ़ कर उनकी लेखनी को बहुत साधी बना देती है। बिहारी की सतसई सम्बन्धी जैसी विद्वत्तापूर्ण

रसीली समालोचना तीव्र बातों में प्रकाशित होकर हिन्दी-साहित्य की शोभा को बढ़ा रही है, वैसी समालोचनाओं की हिन्दी-साहित्यकों के हित के लिए अभी तक बड़ी भारी आवश्यकता है। नियमावलीके बन्धन से हिन्दी-लेखकोंका समाज बांधा जाय तो इस दोष का भी निवारण हो सकता है कि जो कितने ही शब्द भिन्न-भिन्न लेखकों से भिन्न-भिन्न रीति से लिखे जाते हैं वे सभी, उन्नत भाषाओं की पद्धति के अनुसार, एक ही रीति से लिखे जाने लगें। यह बहुत गहरा न जँचने पर भी दोष तो निश्चित ही है; किन्तु जब इस दृष्टि से देखा जाता है कि वह राष्ट्रभाषा के वाह्य सौन्दर्य का अभाव है तो वह किञ्चित दोष भी अधिक जान पड़ता है और उसको भी दूर करने का आग्रह अवश्य ही होना चाहिए।

अन्तिम बात—सम्मेलन का ध्येय।

"साहित्य सम्मेलन" इस नाम के व्यापक अर्थ के अनुसार भाषा के सभी ग्रंथादि इसके अन्तर्गत माने जाने पर भी इतिहास, विज्ञान, दर्शन, गणित आदि विषयों से साहित्य का पृथक अस्तित्व है। हिन्दी भाषा का यह अंश चन्द-बरदाई, तुलसीदास, सूरदास कबीर, विहारी, भूषण, विद्यापति प्रभृति प्राचीन कविवर वृन्द की लेखनी की काव्यामृत धारा से ऐसा परिपूर्ण है कि तात्कालिक पृथ्वी की अन्य सुप्रसिद्ध उन्नत भाषाओं के साहित्य के सम्मुख हिन्दी भाषा शिर को नवाये बिना खड़ी रहने की शक्ति रखती है। सुदीर्घकाल से विदेशियों के प्रचण्ड आक्रमणों की लांछनाओं को भुगतकर देश में नाट्य काव्यामोदी राजन्यवर्ग का अभाव हो जाने से ही तात्कालिक अन्यान्य भारतीय भाषाओं की भाँति हिन्दी भाषा में भी कालिदास, भवभूति, शेक्सपियर सरीखे नाट्यरस के कवीन्द्र नहीं उत्पन्न हो पाये। किन्तु जब कविगुरु बाल्मीकि की वीणा की झङ्कार समुद्र के दूसरे पार पहुँच रही है, तो कवि-कोकिल तुलसी का कलकण्ठ वहां केवल इसीलिए वैसा नहीं पहुँचा है कि एकाध ग्रियर्सन को छोड़कर और किसी ने उसकी ओर अभी तक कान लगाने का अधूरा यत्न भी नहीं किया है। आधुनिक कालमें

भारतेन्दु उन्हीं कविरवियों की आत्मा को लेकर उत्पन्न होने का परिचय दे गये और आधुनिक गद्य साहित्य की भाषा में भी कतिपय कवियों की स्वाभाविक कवि-प्रतिमा ऐसी खिली है कि उस पर पुलकित होकर के भी कवि-समाज के इस विवेचन में प्रवृत्त होने की आवश्यकता जान पड़ती है कि स्वाभाविक कवि-हृदय की भूमि में और भी अनेकानेक पुरुष उस भाषा में उनके जोड़ की तथा उनकी अपेक्षा समधिक प्रभावशाली काव्य रचने की कृतकार्य्यता क्यों नहीं प्राप्त कर रहे हैं। आधुनिक गद्य-साहित्य की भाषा में यथेष्ट काव्यरत्नावली का अभाव होने से उस भाषा की महिमा अपूर्ण रह जायगी। इसलिए उस भाषा को कविता की भी भाषा बनाने का विलक्षण आग्रह पाया जाता है। तिस पर भी हिन्दी की भूमि के कवियों के स्वाभाविक ऊंचे भाव जब उस भाषा में समुचित स्फुरित नहीं हो रहे हैं तो कविता रचने के लिए सभी प्रचलित भाषाओं की शब्दावली जिस प्रकार से कुछ-न-कुछ तोड़-मोड़ दी जाती है, इस प्रकार की परिपाटी खड़ी-बोली हिन्दी-कविता के लिए आवश्यक है कि नहीं, प्रचलित पिंगल की रीति प्रकृति का कुछ हेर-फेर हो सकता है कि नहीं, किम्वा मित्राक्षरों की पद्धति का भेद हो सकता है कि नहीं, इत्यादि-विषय भी कवि-समाज के समालोच्य हों तो सफलता की आशा की जा सकती हैं। अवश्य ही अतुल प्रतिभा सम्पन्न कवि सब बन्धनों से निकलकर अपना नया सिक्का जमा लेते हैं; किन्तु विशेषकर गद्य-काव्य के असामान्य प्रभाव के इस काल में जब उसी की रूचि साधारणतः पायी जाती है तो सब लोग मिलकर पथ को निष्कण्टक कर दें तो लाभ की हां सम्भावना प्रतीत होती है।

हिन्दी-गद्य-साहित्य का विस्तार हो रहा है। लल्लूलालजी के प्रेमसागर की रचना के बाद से वर्त्तमान काल तक को आधुनिक हिन्दी-साहित्य के जन्म और वृद्धि का समय मानने से प्रथम अनेक दिन इसकी डेगाडेगी में कटकर अवशिष्ट थोड़े दिनों में उसकी नाना प्रकार के ग्रन्थादि की जो वृद्धि हुई है वह नगण्य मानने योग्य

नहीं है। साहित्य की नानाविधि ग्रन्थादि, इतिहास की ग्रन्थावली वेद-वेदान्त, उपनिषद्, पुराण तथा धर्मशास्त्रों के ग्रन्थ, विज्ञान के कुछ ग्रंथ और अर्थशास्त्र, राजनीति, देश की आर्थिक दशा जीवनी तथा कई विषयों के खोज सम्बन्धी ग्रन्थ भी हिन्दी में प्रकाशित हुए हैं। एक महाशय लिपि-कला सम्बन्धी विभिन्न तत्वों की भेंट भी हिन्दी भाषा को देते आते हैं। मुद्राक्षर व टाइपों की भी उन्नति होने से मुद्रित विषय-पूर्व की अपेक्षा सुदृश्य और सुख से पढ़ने योग्य होने लगे हैं। विद्यालय के विद्यार्थियों को आरम्भ से धारावाहिक पद्धति के साथ पढ़ाने की अच्छी-अच्छी पुस्तकें भी प्रस्तुत होकर उस विषय की पूर्व बाधा और असुविधा को दूर कर रही हैं। उत्तम कोष भी प्रस्तुत हुआ है। पुस्तक पढ़ाकर जन साधारण की रुचि और प्रकृति को साहित्य की ओर झुकाने तथा उन्नत करने के लिये उत्तम उपन्यास बड़े काम के होते हैं। हिन्दी भाषा में अब अनेकानेक उत्तमोत्तम उपन्यास मुद्रित हुए हैं। इनका अत्यधिक भाग अनुवाद होने पर भी कई अच्छे मौलिक उपन्यास भी अब हिन्दी में बने हैं। अथवा केवल उपन्यास ही क्यों, हिन्दी भाषा की उल्लिखित ग्रन्थावली का मुख्य भाग अनुवाद है और कुछ भाग अन्य लोगों के परिचिन्तन की छाया वा संगृहीत सामग्रियों की सहायता से निर्मित हुआ है। मौलिक भाग अभी तक इतना थोड़ा है कि उसका पूरी गौरव बुद्धि से उल्लेख नहीं किया जा सकता। दूसरे लोगों के चिन्ता-प्रसूत तथा संगृहीत मणि-माणिक्यों की ज्योति से मातृभाषा के रत्न-भंडार को समुज्वल करना अवश्य ही लवलेष भी दोष की बात नहीं है। पृथ्वी की उन्नत भाषाओं में ऐसी कोई भी नहीं है जिसका भंडार उसके बोलनेवाले उद्यमशील पुरुषों के यत्न से अन्यान्य जातियों के चिन्ताशील तथा अनुसंधान-परायण व्यक्तियों के परिश्रम के सुफलों को समधिक परिमाण में अपनाकर सुसम्पन्न नहीं बना है। उन भाषाओं के साथ तुलनाकर हिन्दी भाषा में अभी तक उन दोनों ही प्रकारके उद्यमों का विशाल अभाव हृदय में विलक्षण रूप से गड़ता है। प्रथम न तो

नाना जातियों की दुर्लभ चिन्ता प्रसूत तथा दुःसाध्य अनुसंधान-सम्प्राप्त असंख्य सामग्रियों के विशेष गणनीय अंश की भेंट अभी तक हिन्दी भाषा को दी जासकी है और दूसरे न कोई हिन्दी-लेखक ही अभीतक किसी नवीन अनुपम परिवर्तन तथा असाधारण अनुसंधान के फल से अपनी मातृभाषा की ओर जगत के ध्यान को आकर्षित करने में समर्थ हुआ है।

इसलिए आधुनिक हिन्दी भाषा उन्नति के पथ में अब तक जितनी अग्रसर हुई है उसके लिए आनन्द मानने का अवसर उपस्थित होने पर भी अभी तक जगत को अपनी ओर आकर्षित करने योग्य सामग्रियों के अभाव से इतनी असम्पन्न बनी हुई है कि सन्तोष न मानने का असामान्य कारण है। समृद्धि तो उन्नति के कामों में आनन्द लाती ही है; किन्तु समृद्धि पर सन्तोष समृद्धि की इतिश्री करानेवाला होता है। इसलिए लब्ध-सम्पद की अपेक्षा अलब्ध सम्पद ही समधिक समालोच्य है। विशेषतः हिन्दी भाषा की, जिसके राष्ट्रभाषा के परम पद को सब की पूजा के उपयुक्त अतुल रत्न मण्डित बनाना है, वही समालोचना अत्यावश्यक है। अभीतक पाश्चात्य देशों के धीमान घोर चित्त के एकाग्र अनुसंधान से ज्योतिष्कों के तत्व खेचर, भूचर और जलचरों के तत्व, मानव जातियों के वृत्तान्त, वृक्ष, प्रस्तर और खनिजों के भेद तथा मनोविज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान प्रभृति विषयक जितनी अमूल्य ग्रंथावली बनाने में समर्थ हुए हैं उनके प्रायः किसी भी अंश का उल्था तक हिन्दी भाषा में नहीं हुआ है। हिन्दी की भूमि के इतने युवक अब नाना विषयों में उच्च शिक्षित हुए हैं कि यदि अवसर उत्पन्न किया जाय तो उन पुस्तकों का अनुवाद तो बहुत बड़ी बात नहीं है। उनमें से बहुतेरे स्वतन्त्र सेवा में भी प्रवृत्त होकर विभिन्न गवेषणाओं से नवीन तत्वों का आविष्कार पूर्वक देश का मुखोज्वल तथा मातृभाषा को परिपुष्ट कर सकते हैं। उनके अपने ही हिमालय के सर्वोच्च शिखर पर दूसरे देशों के मनुष्यों को आरूढ़ होने का उद्योग करते देखकर उनके हृदय में उस प्रकार अभिलाषा क्यों नहीं उमड़

आती ? उनके अपने ही देश में सरकारी बल से विदेशीय पदाधिकारी जितनी-जितनी बातों का पता लगा चुके हैं, उनको अपनी मातृ-भाषा में लाने की तथा उस प्रकार की और-और कौतूहल जनक बातों का पर्दा खोलने की उत्कण्ठा अवकाश के बिना वे छाती में दबा रखने में लाचार होते हैं। देश में जो म्युजियम तथा जन्तुशालाएँ स्थापित हुई हैं उनमें जाकर एकनिष्ठ परीक्षा-पूर्वक वे जिन अविदित तत्त्वों से मातृभाषा के कलेवर को परिपुष्टि कर सकते हैं, उसका भी सुभीता आजीविका के फेर में पड़कर वे नहीं कर पाते हैं। हिज़ एकजाल्टेड हाईनेस निज़ाम साहब ने उर्दू भाषा के निष्कपट प्रेम से उच्च-से-उच्च परीक्षाओं में केवल उसी भाषा की लगातार ग्रंथावली के सहारे विद्यार्थियों के उत्तीर्ण कराने के महत्त्वपूर्ण संकल्प को हृदय में लेकर तदनुकूल ग्रन्थावली निर्माण का जो प्रबन्ध किया है उतना भी क्या हिन्दी में नहीं हो सकता ?

हिज़ एकजाल्टेड हाईनेस का जितना प्रगाढ़ प्रेम उर्दू भाषा पर सब लोगों को विदित हुआ है, उतना ही सच्चा प्रेम हिन्दी भाषा पर निश्चित ही असंख्य हिन्दीभाषाभाषी शक्तिमान स्वतन्त्र नरेन्द्रवर्ग प्रभृति धन-कुबेरों का है, जिनकी समष्टि की अभिलाषा से हिन्दी को परिपुष्ट करने का कहीं बड़ा काम हो सकता है। प्रेम की पात्री की पूजा तो हृदय के आग्रह से ही की जाती है और प्रेम की पात्री यदि ऐसी भी हो कि उसकी पूजा किये बिना मुँह को ऊँचा कर जगत के सम्मुख खड़ा होने का उपाय न हो, तो उस की वह प्रेम की पूजा अनिवार्य रूप से आवश्यक भी होती है। हिन्दी की पूजा समग्र भारत के शक्तिमानों के लिए ऐसी ही है। विशेषतः हिन्दी की भूमि के स्वतन्त्र नरेन्द्र-वृन्द के लिए, विहार, युक्त प्रान्त प्रभृति हिन्दी की समूची भूमि के नरेन्द्र सरीखे विभव ऐश्वर्यशाली महाराजाओं, राजाओं, तालुक़ेदारों तथा ज़मीन्दारों के लिए, राजपूताने आदि हिन्दी की भूमि के और वहाँ से भारत के नाना प्रान्तों में फैले हुए धनशाली व्यापारियों के लिए उनकी प्रेम-पात्री हिन्दी की पूजा की उसी प्रकार अनिवार्य्य आवश्यकता है।

भारत के लगभग पाँच सौ स्वतंत्र नरनाथों में चार सौ से भी अधिक हिन्दी की गोद में पले हैं। हिन्दी के स्तन्यपीयूष पीनेवाले विभव शाली भूस्वामी-समूह भारत के प्रत्येक प्रान्त के भूम्यधिकारियों की ही अपेक्षा नहीं, पर उनकी सभी शेष प्रान्त वासियों की समष्टि की अपेक्षा भी, विभवशालिता में कहीं बढ़े-चढ़े हुए हैं। और भारतवासियों में हिन्दीभाषी व्यापारी समाज ही अन्य व्यापारियों की अपेक्षा धनवान है। ये तीनों श्रेणियों के धनेश्वर अपने ऊपर चढ़े हुए मातृभाषा के ऋण को चुकाने के आग्रह से अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार कुछ-कुछ धन का सङ्कल्प कर दें और वह धन इतना हो कि विभिन्न विषयों के महोच्च परीक्षोतीर्ण दो सौ युवक उदर और कुटुम्ब की सेवा के विषयों में निश्चिन्त होकर अपने तन मन प्राणों को हिन्दी की सजावट में लगादें तो दस बीस वर्ष में ही रूपवती हिन्दी अमूल्य रत्नालङ्कारों से सजकर ऐसी मनोहारिणी हो जायगी कि सारा भारत तो उसके कमलासन के आगे लोटेगा ही, साथ ही जगत् के और विद्वान् भी उसके माधुर्य्य पर मुग्ध होने लगेंगे।

दक्खिन हैदराबाद में जो काम हो रहा है, कुल उतना ही यदि उर्दू की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तारवाली तथा अपार आवश्यकता वाली हिन्दी भाषा के विषय में किया जाय तो हिन्दी-भाषा-भाषी तीन चार विशिष्ट नरेन्द्र ही परस्पर के उद्योग को सम्मिलित कर उसके भार को उठा सकते हैं। किन्तु वैसे काम के महत्व को कुछ भी अस्वीकृत न कर मैं अपना यही नम्र सिद्धान्त प्रकट करता हूँ कि किसी विषय के ज्ञान के जितने ग्रन्थ अब तक बने हैं, उन सभों का पूरा अनुवाद कर अथवा उनके आशय का अनुवाद कर उस अनुवाद के सहारे विद्यार्थियों को शिक्षा देने से वे उस विषय का अधिक-से-अधिक उतना ही ज्ञान लाभ कर सकते हैं, जितना मूल ग्रंथों का अध्ययन कर। उतने ज्ञान को यदि और भी बढ़ाना हो तो विद्यार्थियों को अपने उस ज्ञान की सहायता से नवीन-नवीन गवेषणाओं में प्रवृत्त होना पड़ता है। उस प्रकार गवेषणाओं को करते-करते उनमें से

कोई भी ज्ञानार्थी यदि उस विषय के किसी नवीन तत्व का पता पा जाता है तो उसका ज्ञान उस विषय के इतर साधारण ज्ञानियों से बढ़ जाता है। उसके ज्ञान का जगत् के ज्ञानियों में समादर होता है, उसके उस ज्ञान की प्रसिद्धि से उसकी जाति का सम्मान बढ़ता है और अपने इस पूर्व अविदित नवाविष्कृत ज्ञान को मातृभाषा में लिखकर अपनी मातृभाषा को भी वह सर्वत्र समादृत कराता है। इसी महत्व के शिखर पर हिन्दी भाषा को जब समारूढ़ करने की अपेक्षा है, तो जैसे उस प्रकार ग्रन्थानुवाद का प्रबन्ध करना पड़ेगा, वैसे ही नाना विषयों के सर्वोच्च परीक्षोत्तीर्ण युवकवृन्द के लिए उक्त प्रकार गवेषणाओं के द्वार भी मुक्त कर देने पड़ेंगे।

यदि नाना विषयों की अत्युच्च परीक्षाओं में उत्तीर्ण प्रथम एक सौ युवक अपने-अपने विषय की नाना ग्रन्थावली के अनुवाद में और दूसरे एक सौ अपने सुयोग्य परिदर्शकों की अधीनता में अपने-अपने विषय की खोज और गवेषणा में नियुक्त किये जायं तो बीस-तीस वर्ष में ही हिन्दी की वर्तमान स्थिति की काया पलट हो जायगी। सब विद्वान भारतवासी उसकी महिमा से आकर्षित होकर उसके भक्त बन जायेंगे। ऐसे भी कितने ही अब तक अविदित तत्त्व, ज्ञान के उज्वल आलोक में लाये जायँगे, जिन्हें हिन्दी भाषा को पढ़कर अथवा हिन्दी भाषा के अनुवाद से पढ़कर जानने के लिए जगत् के विद्वान् उत्कंठित होंगे। किसी विधि का अनुसरण किये बिना दरिद्र अशक्त हिन्दी-सेवकों ने केवल हिन्दी के अटूट प्रेम से असंख्य असुविधाओं का सामना करके भी लगभग इतने ही समय में जब उसको वर्त्तमान उन्नति स्थिति में पहुँचा दिया है तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वैसी विधिबद्ध प्रणाली के साथ काम होने से हिन्दी उन्नति की पराकष्ठा लाभ कर देश विदेशों में अपनी विजय की वैजयन्ती फहरायेगी। उस महाकार्य्य को कराने के लिये मासिक ५० हज़ार रुपये का व्यय ही यथेष्ट है, जो एकमुश्त में एक करोड़ रुपये संकल्प कर देने से उसकी आय से निकल सकता है। हिन्दी जिन उक्त तीन श्रेणियों के धनेश केसरियों

के परम अनुराग की मातृभाषा है, उनके हृदय में उस महान् और अतीव अपेक्षित परिणाम का आग्रह उत्पन्न करने पर उसके लिए वे अनायास ही एक करोड़ रुपया लगा सकते हैं। अमेरिका के निवासी, नीग्रो जाति के कर्मवीर, बुकर टी० वाशिङ्गटन ने दासत्व से मुक्त स्वजाति को विद्वान् करने के आग्रह से, जगत्-प्रसिद्ध हर्वर्ड यूनिवर्सिटी स्थापित करने में उद्यत होकर उन अमेरिकन गोरों से विशाल धन का संग्रह किया था, जिनकी नीग्रो जाति पर घृणा का पार नहीं है। उन्हीं बुकर साहब का कहना यह है कि धनी लोग सत्कर्म में अपने धन को लगाने के लिए सदा समुत्सुक बने रहते हैं। उनसे धन लेने के लिए केवल सुयोग्य लेनेवालों की आवश्यकता है।

उस महत्कर्म के लिए यदि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से सुयोग्य धन-संग्रहकारी नियुक्त हों तो कोई कारण नहीं है कि मातृभाषा के परम प्रेमी धनेश वृन्द से उनकी मातृभाषा की दिव्य श्री-सम्पादन के अर्थ एक करोड़ रुपया न मिले। बौद्ध सन्यासियों ने स्वधर्म प्रचार के अतुल अनुकरणीय आग्रह से असामान्य बाधा-विघ्नों के विरुद्ध अटल उद्योग और अक्लान्त श्रम का ऐसा चिरस्मरणीय उदाहरण संस्थापित किया था कि उसके सुफल को आज तक भी रोमाञ्चित कलेवर में प्रत्यक्ष करना पड़ता है। समग्र एशिया भूमि में बौद्ध धर्म का ऐसा विशाल प्रचार हुआ था कि अभी तक बचे-खुचे बौद्ध चालीस करोड़ हैं, जिस संख्या को, अपने धर्म का प्रचार करने के लिए पानी की तरह धन का प्रवाह बहाते हुए भी, असाधारण लौकिक शक्ति-सम्पन्न महाजातियाँ अभी तक नहीं पा सकी हैं। उसी प्रकार आग्रह, उद्योग और श्रम के साथ यदि हिन्दी भाषा के गौरव को पराकाष्ठा पर पहुँचाने का प्रयत्न किया जाय तो आवश्यक धन का संग्रह होकर वह बड़ी अभिलाषा अवश्य ही सुसिद्ध होगी। स्वयं सर्व-शक्तिमान भगवान अपनी करुणा की मन्दाकिनी में नहलाकर उद्योगी पुरुषों को उस मनोहर बासना की सिद्धि की अनन्त शक्ति से पुरस्कृत करेंगे। उन परमात्मा के

सर्वसिद्धि-प्रदायक पवित्र चरणों में अपने समग्र जीवन की एक उसी एकाग्र कामना की पूर्त्ति के निवेदन को पहुँचाकर, अपने निर्वाचकों को पुनर्वार धन्यवाद देता हुआ, मैं अपने इस कथन को समाप्त करता हूँ। —अमृतलाल चक्रवर्त्ती।

सभापति महोदय के इस भाषण के अनन्तर सम्मेलन के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करने-वाले सज्जनों के तार और पत्र पढ़कर सुनाये गये। तदनन्तर कर्मवीर-सम्पादक पं० माखनलालजी चतुर्वेदी ने संक्षिप्त किन्तु सुललित और सारगर्भित भाषण देकर साहित्य-प्रदर्शिनी का महत्व बतलाया और प्रदर्शिनी के उद्घाटन के लिए सभापतिजी से अनुरोध किया। सभापतिजी ने विषय-निर्धारिणी-समिति की संयोजना होने के पश्चात् प्रदर्शिनी का उद्घाटन किया। प्रदर्शिनी का स्थान मिर्ज़ापुरवाले सेठ तेजपाल जमनादासजी की उसी धर्मशाला में था, जहाँ पर सम्मेलन का समस्त समारोह केन्द्रीभूत हो गया था। पण्डित मदनमोहनजी गोस्वामी के प्रयत्न से साहित्य का यह प्रदर्शन आशातीत था। इसमें अनेक प्रकाशित, अप्रकाशित पुस्तकें भारत के सुदूर प्रान्तों से मँगाकर एकत्रित की गई थीं। प्राचीन चित्र, ताल-पत्र तथा कदली-पत्र पर भी हिन्दी-साहित्य का प्राचीन परिचय दिया गया था।

रात्रि में ८ बजे से विषय-निर्धारिणी-समिति का अधिवेशन हुआ और तदनन्तर प्रथम दिन कार्यवाही समाप्त हुई।

दूसरा दिन

आज सम्मेलन की कार्यवाही लगभग १॥ बजे प्रारम्भ हुई। कल की अपेक्षा आज प्रतिनिधियों की संख्या बढ़कर लगभग २०० होगई थी। प्रारम्भ में हारमोनियम पर तीन बालकों ने निम्नलिखित कविता पढ़ी—

मातृ-वन्दना

धरम धाम गुण खान महान, जय जय हिन्दी हिन्दुस्तान॥
सुन्दर सुखद हिमांचल केश, मुख कश्मीर मनोहर देश।

मधुर कंठ पञ्जाब सुखेश, युक्त प्रांत हिय नव रसखान ॥
जय जय हिन्दी हिन्दुस्तान ॥
गुर्जर, राज, ब्रह्म, बंगाल, चार भुजा बलवीर विशाल।
मध्यदेश कटि किंकिन जाल, जंघा उत्कल, राष्ट्र प्रमान ॥
जय जय हिन्दी हिन्दुस्तान ॥
कोमल करनाटक मद्रास, पद पङ्कज शोभाकी रास।
हरित भूमि पट सुरँग प्रकास, अँग अँग नदियन भूषण जान ॥
जय जय हिन्दी हिन्दुस्तान ।
सिन्धु सिंहासन शोभाधाम, छत्र प्रकाश नील-मणि श्याम।
जयति जननि रसरूप ललाम, विनवत राम जोर युग पान ॥
जय जय हिन्दी हिन्दुस्तान ॥

तदनन्तर श्याम-सङ्गीत-मंडली द्वारा निम्नलिखित स्वागत कविता गाई गई—

स्वागत

गुननिधि, सबसिधि, कविता-रिधि, तुम,
का विधि स्वागत कीजिये तुम्हारो प्यारे ॥गुन०।
दोहा—व्रजके भोरे ग्वारिया, गाय चरावन हार।
ज्ञानवान जानेनहीं, सूधे सरल विचार ॥
कविता-कमल रसाल कवीजन।
तन मन मधुपनमें किये अरपन ॥
विकसित मुख मधु दीजिये नैननके तारे ॥गुन०॥
दोहा—मधुर सुअमृत रस भरे, ज्ञानवान विद्वान।
प्रकृति पिरोहित कविनकों, नवहुँ जारयुग पान ॥
राम सरस अक्षर करमें धर।
अरपत है प्रेमऽञ्जुलि भरकर ॥
हरषित हिय कर लीजिये, कविराज हमारे ॥गुन०॥

इसके अनन्तर जयपुर के राजकीय गायक श्री पं० फूलचन्दजी तैलङ्ग का एक गायन हुआ। आपने "ऐसो मूढ़ता या मनकी। परिहरि कृष्ण-भक्ति सुर-सरिता आसा करन ओस कनकी।" पद बहुत

ही सुरीले और मर्म-स्पर्शी ढंग से गाया। तत्पश्चात् वृन्दावन-निवासी पं० गोविन्दरामजी शर्म्मा का गायन हुआ। आपने भी "ऐसे ही जन्म-समूह सिराने"—पद बड़ी ही मधुर ध्वनि और भावुकता से गाया। तदनन्तर तैलङ्गजी के दो गायन और हुए। तत्पश्चात् पं० रामचन्द्रजी ने निम्नलिखित कविता गा सुनाई—

मण्डप

मंडप बन्यो आज, वृन्दा विपिन मांझ।
कवि केकि कोहको बहावो सुरस राज ॥मंडप०॥
हिन्दी लता कुञ्ज व्रज गन्ध छाई।
मधुपन जहां आय शोभा बढ़ाई॥
गावहु रसिक गीता, बाजे सुयश साज ॥मंडप०॥

इसके पश्चात् सम्मेलनसे सहानुभूति रखनेवाले महानुभावों के अन्यान्य तार तथा चिट्ठियाँ पढ़ सुनाई गईं। तदनन्तर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधानमंत्री पं० रामजीलालजी शर्म्मा ने सम्मेलन के १५वें वर्ष का कार्य-विवरण पढ़ सुनाया। उसका सार यहाँ दिया जाता है—

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में आरम्भ से संवत् १९८१ के अन्त तक १५ वर्ष में ३,३५,४६४।।।≡)।।।२ की आमदनी हुई और २,४१,३७६।।।=)।।१ का ख़र्च हुआ। वर्ष के अन्त में ६४,० ८)।१ की बचत रही। बचत का ब्यौरा इस प्रकार है:—

१२७।।≡)।। परीक्षा विभाग
१०७५) पुस्तकों की लिखाई
३०६।।=)।। काग़ज़
१६६४।।)।। प्लाट भूमि खाते
५५८७।।।=) भवन खाते
४०,०००) गवर्नमेंट प्रामेसरी नोट
१३६५६।।।=)।।।१ लेहनी
३११९०≡)।। बैंकों में

१७८।॥-)।नक़द हाथ में

९४०९८) १ योग

सम्मेलन के कार्यों की प्रगति इस वर्ष अच्छी रही। इस वर्ष के महत्व-पूर्ण कार्यों में से कुछ कार्य ये हैं—

१—"हिन्दी-विद्यापीठ" का व्यावहारिक रूप देने के लिए उसके प्रबन्ध के लिए एक उपस्थिति का संगठन।

२—हिन्दी-विद्यापीठ में कृषि-शिक्षा के लिए प्रयाग के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से १०,०००) की सहायता का मिलना।

३—कलकत्ते से सम्मेलन के डेपुटेशन को १२०००) का मिलना और इसमें ५०००) हिन्दी में सुलभ-वैज्ञानिक-पुस्तक-माला के प्रकाशनार्थ प्राप्त होना।

४—पंजाब, सिन्ध और आसाम में राष्ट्रभाषा-हिन्दी और राष्ट्र लिपि-देवनागरी के प्रचार का आरम्भ।

५—अबोहर-मंडी (पंजाब) और गोरखपुर के पुस्तकालयों की भूमि आदि की रजिस्ट्री सम्मेलन के नाम होना।

सम्मेलन के सब विभागों में कार्य बढ़ रहा है। इस वर्ष बाहर से आनेवाले पत्रों की संख्या ५३५३ थी और जो कार्यालय से बाहर पत्र भेजे गये, उनकी संख्या ६५४८ रही।

इस वर्ष परीक्षा-विभाग में विशेष वृद्धि हुई। गत वर्ष परीक्षार्थियों की संख्या ८९० थी, इस वर्ष १२०७ हो गई। गत वर्ष परीक्षा शुल्क २२९४)

प्राप्त हुआ था। इस वर्ष ३१६५) आया।

बहुत से परीक्षा-केन्द्र भी नये खुले।

सम्मेलन की परीक्षाओं में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को स्वर्ण-पदक और रजत पद प्रदान किये गये। पदक-प्रदान-प्रणाली से परीक्षार्थियों में अच्छा उत्साह बढ़ रहा है।

अदालतों में नागरी-प्रचार का कार्य कई वर्षों से शिथिल सा हो रहा था। इस वर्ष अदालतों में नागरी प्रचार का विशेष यत्न किया गया। इस विषय में अभी बहुत उद्योग की आवश्यकता है।

सम्मेलन की ओर से मद्रास में हिन्दी-प्रचार का कार्य पूर्ववत् चल रहा है। मद्रास-प्रचार-कार्यालय की ओर से जो परीक्षाएँ प्रचलित हैं उनका प्रचार वहाँ दिन-दिन बढ़ रहा है। पुस्तकों के प्रकाशन और प्रचार का भी कार्य्य अच्छा हो रहा है। मद्रास में प्रचार-कार्यालय का प्रेस भी उन्नति कर रहा है। कार्यालय की ओर से इस वर्ष १२ हज़ार रुपये की पुस्तकें बिकीं। यहाँ के व्यवस्थापक पं० हरिहर शर्मा जी हैं।

भाद्र सं० ८१ से चैत्र कृ० ३० सं० ८१ वि० के अन्ततक मद्रास-प्रचार-कार्यालय में इस प्रकार आय व्यय हुआः—

आय का कुल योग ४५, २१०॥=)॥१
व्यय का कुल योग ३६, २५७-)।॥२
बचत ८६५३॥)॥ २

आन्ध्र प्रान्त में प्रचार-कार्यालय को कुछ स्वतंत्रता दे दी गई है। अब उसका संबन्ध सीधा प्रयाग से होता जा रहा है। यहाँ के व्यवस्थापक मो०सत्यनारायणजी हैं। इस वर्ष आन्ध्र कार्यालय में ७० ३६॥≡)। की आमदनी हुई और ख़र्च ६६ ३४॥) हुआ।

पंजाब और सिन्ध में हिन्दी-प्रचार का जो कार्य्य हो रहा है, उसके व्यवस्थापक श्री जयचन्द्रजी विद्यालंकार हैं। आपने सिन्ध में भी भ्रमण किया है और आपके उद्योग से सिन्ध में भी हिन्दी-प्रचार का कार्य आरम्भ हो गया है।

आसाम में हिन्दी-प्रचार-कार्यालय खुल गया। वहाँ पर सम्मेलन के विशारद पं० राममनोहर पाण्डेयजी कार्य कर रहे हैं। आसाम में और भी प्रचारक भेजने की आवश्यकता है।

इस वर्ष की मङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक दर्शन विषयक ग्रन्थ पर दिया गया। इस पारितोषिक के अधिकारी "मनोविज्ञान" नामक पुस्तक के रचयिता प्रो० सुधाकरजी एम० ए० हुए। वृन्दावन-सम्मेलन में आपको १२००) का नक़द पारितोषिक दिया गया।

सम्मेलन के उपदेशक पं० प्रभुदयालु शर्माजी भ्रमण करके

सम्मेलन के उद्देश्यों का प्रचार करते रहे। सम्मेलन-पत्रिका का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ने लगा है। सम्बद्ध संस्थाओं की भी वृद्धि होती जाती है। स्थायी और साधारण सदस्यों की संख्या भी बढ़ती जाती है सम्बद्ध संस्थाओं में आगरा और बुलन्दशहर की नागरी प्रचारिणी सभाएँ, काशी का हिन्दी-साहित्य विद्यालय, विहार प्रान्तीय हि० सा० सम्मेलन, पंजाब प्रान्तीय हि० सा० सम्मेलन बलिया की हिन्दी-प्रचारिणी सभा अच्छा कार्य कर रही हैं।

संग्रहालय में पुस्तकों का संग्रह बढ़ता जाता है। भवन बनाने के लिए धन की विशेष आवश्यकता है।

हिन्दी-विद्या-पीठ की समिति अपने कार्य में दत्त-चित्त से लगी हुई है। अगले वर्ष से विद्यापीठ सुव्यवस्थित रीति से चलने लगेगा।

सुलभ-साहित्य-माला में नवीन पुस्तकों के प्रकाशन का प्रबन्ध हो रहा है।

इस प्रकार सम्मेलन के सभी विभागों के मंत्री अपने-अपने कार्यों में पूरी तरह योग दे रहे हैं। सम्मेलन के सभी कार्य उन्नति की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं।

मद्रास-प्रचार के लिए पूज्य महात्मा गांधीजी से बड़ी सहायता मिली है, और भविष्य में भी मिलने की आशा है। श्रीजमनालालजी बजाज़ ने भी सम्मेलन के प्रचारकार्य में बड़ी सहायता दी है। आपकी सहायताओं को हिन्दी-संसार कभी विस्मरण नहीं कर सकता। विश्वास है, भविष्य में भी केवल मद्रास के ही लिए नहीं, आसाम, बङ्गाल, पंजाब और सिन्ध प्रान्तों में भी हिन्दी-प्रचार के लिए महात्माजी पूरी सहायता प्रदान कराने की कृपा करेंगे।

इसके पश्चात् सभापतिजी ने "मनोविज्ञान" नामक ग्रंथ के लेखक अध्यापक सुधाकरजी एम० ए० को दर्शन-विषयक मंगला-प्रसाद-पारितोषिक-स्वरूप १२००) की एक थैली भेंट करते हुए उसके प्रमाण में निम्नलिखित आशय का एक ताम्र-पत्र प्रदान किया—
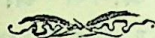
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

संवत् १९८१—८२ का

श्रीमंगलाप्रसाद-पारितोषिक

[रु० १२००]

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सोलहवें वार्षिक अधिवेशन पर

श्रीमान् अध्यापक श्रीसुधाकर एम० ए०

को

उनकी दर्शनविषयक रचना "मनोविज्ञान" के लिए

सादर दिया गया

स्थान श्री वृन्दावन
मिति मार्गशीर्ष कृ० ८
सं० १९८२ वि०

अमृतलाल चक्रवर्ती
सभापति

इसपर प्रो० श्री सुधाकरजी ने कहा—जिस समय मैंने "मनोविज्ञान" नामक इस ग्रंथ की रचना की थी, उस समय मुझे यह स्वप्न में भी आशंका न थी कि मुझे आप लोग इस पुस्तक पर यह सम्मान देंगे।.....सम्मेलन ने मेरा जो सम्मान किया है तदर्थ मैं कृतज्ञ रहूँगा। और मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं आजीवन सम्मेलन और हिन्दी की सेवा करता रहूँगा।

इसके बाद निम्नलिखित प्रस्ताव सर्व-सम्मति से उपस्थित और स्वीकृत हुए—

१—यह सम्मेलन श्रीमान् ग्वालियर-नरेश, सर एन्टिनी मेकडानेल, पं० श्रवणलालजी, पं० रविशंकरजी शर्म्मा (पं नाथूरामजी "शंकर" शर्मा के सुपुत्र) तथा बाबू शिवप्रसादजी गुप्त "कुसुम" की मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रकट करता हुआ उनके परिवार के साथ समवेदना प्रकट करता है।

[सभापति द्वारा]

२—यह सम्मेलन बालक-बालिकाओं के लिए उपयोगी साहित्य के अभाव का अनुभव करता हुआ हिन्दी के समस्त लेखकों और प्रकाशकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करता है और उनसे अनुरोध करता है कि वे हिन्दी-साहित्य के इस अभाव को दूर करने का प्रयत्न करें। [सभापति द्वारा]

३—इस सम्मेलन की सम्मति में राष्ट्रभाषा के कवि, सम्पादक, ग्रंथकार वक्ता, प्रकाशक तथा शिक्षा-संस्थाओं आदि की जानकारी के लिए प्रति वर्ष एक हिन्दी-डायरेक्टरी के प्रकाशन की अत्यन्त आवश्यकता है। अतः यह सम्मेलन स्थायीसमिति को आदेश करता है कि वह हिन्दी-डायरेक्टरी के प्रकाशन का शीघ्र प्रबन्ध करे।

प्रस्तावक—श्रीयुत पं० नन्दकुमारदेव शर्म्मा
अनुमोदक— " पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी
समर्थक— " पं० माखनलालजी चतुर्वेदी

४—इस सम्मेलन की सम्मति में जिन राष्ट्रीय विद्यालयों की शिक्षा का माध्यम हिन्दी है उनका हिन्दी का पाठ्य-क्रम सम्मेलन-

परीक्षाओं के पाठ्यक्रम से मिलता-जुलता हुआ होना चाहिए। अतः यह सम्मेलन उन राष्ट्रीय विद्यालयों का ध्यान इस ओर आकर्षित करता है और उनके संस्थापकों से अनुरोध करता है कि वे इस ओर ध्यान देने की कृपा करें।

प्रस्तावक—श्रीयुत पं० माधवरावजी सप्रे
अनुमोदक—श्रीयुत बाबू रामधारीप्रसादजी

५—इस सम्मेलन की सम्मति में व्रजमंडल में व्रजभाषा के एक ऐसे विद्यालय की अतीव आवश्यकता है जिसमें व्रजभाषा के साहित्य की शिक्षा और खोज के लिए पूर्ण प्रबन्ध हो। अतः यह सम्मेलन विशेषतः व्रजभाषा-भाषियों और साधारणतः समस्त हिन्दी-प्रेमियों का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित करता है और उनसे यह अनुरोध करता है कि वे इस आवश्यकता की पूर्ति करने का प्रयत्न करें।

प्रस्तावक—श्रीगोस्वामी श्री मधुसूदनलालजी
अनुमोदक—श्रीगोस्वामी पं० किशोरीलालजी
" " पं० लक्ष्मणाचार्य्यजी
समर्थक—प्रोफ़ेसर पं० रामाज्ञा द्विवेदी "समीर" एम्० ए०
" श्रीयुत पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी
" श्रीयुत पं० कृष्णविहारीजी मिश्र बी० ए० एल०-एल्० बी०

६—यह सम्मेलन साहित्यिक-श्रीवृद्धि के लिए हिन्दी के लेखकों के एक संगठन की आवश्यकता का अनुभव करता हुआ श्रीमान् अयोध्यासिंहजी उपाध्याय "हरिऔध" के सभापतित्व में संस्थापित अखिल भारतवर्षीय लेखक-मंडल की संस्थापना पर हर्ष प्रकट करता है, और हिन्दी की समस्त साहित्यिक संथाओं और साहित्य सेवियों से अनुरोध करता है कि वे इस लेखक-मंडल के उद्योग में सहायता करें।

प्रस्तावक—श्रीयुत पं० गिरिजादत्तजी शुक्ल "गिरीश" बी० ए०
अनुमोदक—श्रीयुत बाबू साँवलिया-विहारीलालजी वर्मा एम्० ए०, बी० एल्०

७—यह सम्मेलन संयुक्तप्रान्त आगरा व अवध की अधिकांश हिन्दी जाननेवाली जनताकी सुविधा के लिए वकीलोंसे अनुरोध करता है कि वे अदालती कार्यों में नागरी लिपि का व्यवहार करें।

प्रस्तावक—पं० अम्बिकाप्रसादजी त्रिपाठी
अनुमोदक—बाबू सूर्य्यनारायणजी अग्रवाल बी० ए०
समर्थक—बाबू नारायणदासजी, एम्० एल्-सी०
" पं० भागीरथ प्रसादजी दीक्षित विशारद
" पं० गौरीशंकरजी मिश्र बी० ए०, एल् एल् बी०

इसके पश्चात् आज की कार्यवाही समाप्त हुई।

तीसरा दिन

आज २॥ बजे से सम्मेलन का कार्य आरम्भ हुआ। प्रारम्भ में कन्या-महाविद्यालय जालंधर की ६ बालिकाओं ने सुमधुर स्वर से "जन गण अधिनायक" आदि प्रसिद्ध बंगाली गीत गाया। तदनन्तर श्रीयुत पद्मधरजी अवस्थीने प्रार्थना-मूलक दो छन्द सुनाये। तत्पश्चात् निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित और सर्व्व सम्मति स्वीकृत हुए।

८—यह सम्मेलन हिन्दी-भाषा-भाषी ताल्लुक़ेदारों, ज़मीदारों तथा सेठ साहूकारोंसे अनुरोध करता है कि वे अपना काम-काज हिन्दी भाषा और नागरी लिपि में ही करें।

प्रस्तावक—पं० भागवतप्रसादजी गँगोले विशारद
अनुमोदक—श्रीयुत त्रिभुवननाथजी ताल्लुक़ेदार
समर्थक—श्रीयुत ठाकुर गोपाल शरणसिंहजी
" श्रीयुत बाबू केदारनाथजी गुप्त

६—यह सम्मेलन निश्चय करता है कि स्कूलों और कालेजों की छोटी श्रेणियों से लेकर बड़ी श्रेणियों तकके पाठ्य-क्रमकी योजना तैयार करने के लिए नीचे लिखे सज्जनों की एक उपसमिति बनाई जाय और वह योजना सम्मेलनकी स्थायीसमितिके सामने उपस्थित हो।

१. श्रीयुत बाबू शालिग्रामजी वर्मा एम्० ए० बी० एस्-सी०, प्रयाग
२. प्रो० पं० रामाज्ञाजी द्विवेदी एम० ए०, एम० आर० ए० एस्०, कानपुर
३. श्रीयुत लाला कृष्णजसरायजी बी० ए० देहली
४. प्रो० धीरेन्द्रजी वर्मा एम्० ए० प्रयाग
५. श्रीयुत वेदव्रतजी विशारद देहली (संयोजक)

प्रस्तावक—श्रीयुत पं० वेदव्रतजी विशारद
अनुमोदक— „ पं० रामजीलालजी शर्मा
समर्थक— „ पं० गौरीशंकरजी मिश्र बी० ए०, एल्-एल् बी०

१०--(अ) सम्मेलन को यह जानकर खेद हुआ है कि बम्बई-विश्व-विद्यालयने मैट्रिकुलेशन-परीक्षा तक अन्य देशी भाषाओं को ऐच्छिक पाठ्य विषय स्वीकार करते हुए भी राष्ट्र भाषा हिन्दी को कोई स्थान नहीं दिया है। यह सम्मेलन बम्बई विश्व-विद्यालय के कार्य-कर्ताओं से अनुरोध करता है कि वे हिन्दी-को भी उचित स्थान दें।

प्रस्तावक—वेदतीर्थ पं० श्रीनरदेवजी शास्त्री
अनुमोदक—श्रीयुत बाबू शालिग्रामजी वर्मा एम्-ए० बी-एस्-सी
समर्थक—श्रीयुत जयचन्द्रजी विद्यालंकार
„ श्रीयुत पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी

(ब) सम्मेलन को यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि बंबई के म्युनि-सिपल-कारपोरेशन ने अपने स्कूलों में हिन्दी की भी प्राथमिक शिक्षा प्रारम्भ कर दी है। अन्य भाषा-भाषी स्थानों के लिए कारपोरेशनका यह कार्य आदर्श होना चाहिए। आशाकी जाती है कि इसी प्रकार अन्य म्युनिसिपलिटियाँ हिन्दी-प्रचार में सहायक होंगी।

प्रस्तावक—अध्यापक पं० रामरत्नजी
समर्थक—श्रीयुत पं० गोकुलचन्दजी शर्मा बी० ए०

इसके अनन्तर सम्मेलन के परीक्षा-मंत्री अध्यापक रामरत्नजी ने मध्यमा और प्रथमा के उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को माननीय सभापति द्वारा उपाधि-पत्र तथा प्रमाण-पत्र एवं कुमारी विद्याधरी (जालंधर) को सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में सर्व प्रथम आने के कारण श्री बम्पाबीबी-पदक तथा श्रीभट्ट-पदक (स्वर्णपदक) और पं० रुद्रदत्तजी मिश्र (कोटा) को ठाकुर कौशलसिंह-रौप्य-पदक प्रदान किये। कुमारी सुशीलादेवी (जालंधर) को भी देहरादून-सम्मेलन में सर्वोत्कृष्ट कविता पढ़ने के कारण श्रीदुलारेलाल भार्गव द्वारा प्रदत्त एक स्वर्ण-पदक दिया गया। तदनन्तर श्रीयुत पं० गौरीशंकरजी भट्ट ने, जो नागरी-अंकों में मोनोग्राम बनाने में अत्यन्त कुशल हैं, अपना एक सचित्र निबन्ध पढ़ा। आपने चित्रों द्वारा नागरी लिपि की सुन्दरता तथा उसके लेखन-कला-कौशलके नमूने दिखलाकर यह सिद्ध किया कि कला की दृष्टि से भी देवनागरी लिपि सर्वोत्तम है। इसके पश्चात् सम्मेलन में आये हुए १५ निबन्ध उपस्थित हुए। इनमें से ढाका (बंगाल) के प्रतिनिधि श्रीयुत सतीशचन्द्र राय एम० ए० ने अपना निबन्ध, जो हिन्दी-साहित्य की अवस्था पर था, पढ़ सुनाया। तदनन्तर संवत् १९८२-८३ वि० के लिए स्थायी समिति का चुनाव हुआ। निम्नलिखित पदाधिकारी तथा सदस्य चुने गये—

पदाधिकारी

सभापति—श्रीमान् पं० अमृतलालजी चक्रवर्ती बी० ए०, बी० एल्० १४४ एमहर्स्ट स्ट्रीट, कलकत्ता

उपसभापति { श्रीमान् पं० राधाचरणजी गोस्वामी, बृन्दावन
श्रीमान् बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, १२ कोर्ट स्ट्रीट, लाहौर

प्रधान मंत्री—पं० रामजीलालजी शर्म्मा हिन्दी प्रेस, प्रयाग

प्रबन्ध-मंत्री—चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्मा एम्०आर०ए०एस्० दारागंज, प्रयाग

परीक्षा-मंत्री—बाबू शालिग्रामजी वर्मा एम्० ए०, बी० एस्-सी० नं० २, प्रयाग स्ट्रीट, प्रयाग

प्रचार-मंत्री—अध्यापक पं० रामरत्नजी, रत्नाश्रम, आगरा

साहित्य-मंत्री—पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी दारागंज, प्रयाग

अर्थ-मंत्री—बाबू केदारनाथजी गुप्त सी० टी०, हेडमास्टर दारागंज-हाईस्कूल, दारागंज, प्रयाग

आय-व्यय-निरीक्षक—रायबहादुर बाबू लालबिहारीलालजी बी०ए०, एल्-एल्० बी०, सतना

सदस्यगण

गत सम्मेलनों के सभापति

१—माननीय पं० मदनमोहनजी मालवीय, ठि० हिन्दू-विश्व-विद्यालय, काशी

२—श्रीमान् स्वामी श्रद्धानन्दजी १७, नया बाज़ार, दिल्ली

३—श्रीमान् पं० श्रीधर पाठक पद्मकोट, लूकरगंज, प्रयाग

४—श्रीमान् साहित्याचार्य पांडेय रामावतारजी शर्मा एम्० ए० एक्ज़िबिशन रोड, पटना

५—श्रीमान् महात्मा मोहनदास करमचंदजी गांधी सत्याग्रह-आश्रम साबरमती, अहमदाबाद

६—श्रीमान् पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी ६०, सीताराम घोष स्ट्रीट, कलकत्ता

७—श्रीमान् बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, १२ कोर्ट स्ट्रीट, लाहौर

८—श्रीमान् बाबू भगवानदासजी एम्० ए०, सेवा-आश्रम, सिगरा, काशी

९—श्रीमान् बाबू राजेन्द्रप्रसादजी एम्० ए०, पटना

१०—श्रीमान् पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय, ठि० सेन्ट्रल-हिन्दू कालेज, कामाक्षा बनारस

११—श्रीमान् पं० माधवरावजी सप्रे बी० ए०, तात्यापारा, रायपुर

भूतपूर्व प्रधान मंत्री

१—श्रीयुत अध्यापक ब्रजराज एम्० ए०, बी० एल्-सी, एल्-एल० बी०
क्वास्थवेट रोड, प्रयाग

संयुक्त प्रांतीय सदस्य

१—श्रीयुत पं० वेङ्कटेशनारायणजी तिवारी एम्० ए०, कीटगंज, प्रयाग
२—श्रीयुत पं० गौरीशंकरजी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०, ठि० रामप्रसाद का बाग़, प्रयाग
३—श्रीयुत प्रो० पं० रामलखनजी शुक्ल बी० ए०, ७०, शिवचरणलाल रोड, प्रयाग
४—श्रीयुत प्रो० धीरेन्द्रजी वर्मा एम्० ए० हिन्दी लेक्चरर इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी, इलाहाबाद
५—श्रीयुत पं० गिरिजादत्तजी शुक्ल "गिरीश" बी० ए०, कर्नैलगंज, प्रयाग
६—श्रीयुत पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल आयुर्वेद-पंचानन, भिषङ्-मणि दारागंज, प्रयाग
७—श्रीयुत पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी, बुद्धिपुरी, ज़िला इलाहाबाद
८—श्रीयुत चतुर्वेदी पं० रामनारायणजी मिश्र बी० ए० ३१२, बादशाही मंडी, प्रयाग
९—श्रीयुत पं० गोकुलचंदजी शर्मा बी० ए०, साहित्य-सदन, अलीगढ़
१०—श्रीयुत पं० गोपीवल्लभजी उपाध्याय 'सुदर्शन'-संपादक, देहरादून
११—श्रीयुत प्रो० रामाज्ञा द्विवेदी एम्० ए०, एम्० आर० ए० एस्०, १३।५६ सिविल लाइंस, कानपुर
१२—श्रीयुत पं० रत्नाम्बरदत्तजी चंदोला, मेरठ
१३—श्रीयुत बाबू गंगाप्रसादजी जायसवाल, महामंत्री भारतवर्षीय कलवार महासभा कार्यालय, मिर्ज़ापुर सिटी
१४—श्रीयुत पं० श्रीकृष्णदत्तजी पालीवाल एम्० ए०, साहित्यरत्न, 'सैनिक'-संपादक, आगरा

१५—श्रीयुत बाबू हरिकृष्णरायजी विशारद, प्रचार-मंत्री, हिन्दी-प्रचारिणी सभा, बलिया

१६—श्रीयुत पं० श्रीनिवासजी चतुर्वेदी एम्० ए०, हेडमास्टर नानकचंद-एंग्लो-संस्कृत हाई स्कूल, मेरठ

१७—श्रीयुत पं० कृष्णविहारीजी मिश्र बी० ए० एल्-एल्० बी०, 'समालोचक'-संपादक, माडल हाउस, लखनऊ

१८—श्रीयुत पं० बाबूराव-विष्णुरावजी पराड़कर 'आज'-संपादक, काशी

१९—श्रीयुत बाबू देवीप्रसादजी सक्सेना 'प्रेम'-संपादक, वृन्दावन

२०—श्रीयुत पं० गुरुप्रसादजी पांडेय एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, साहित्यरत्न, दीवानी-मिसिल, फ़ैज़ाबाद

२१—श्रीयुत पं० गंगाधरजी मिश्र विशारद, मंत्री ज़िला कांग्रेस कमेटी, सीतापुर

२२—श्री० बाबू रामचन्द्रजी वर्मा साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, काशी

२३—श्रीयुत पं० राजमणि जी त्रिपाठी, तहसील महाराजगंज, ज़िला गोरखपुर

२४—श्रीयुत बाबू सूर्यनारायणजी अग्रवाल बी० ए०, पुराना शहर, इटावा

२५—साहित्याचार्य पं० पद्मसिंहजी शर्मा, नायक नगला, पो० चाँदपुर, बिजनौर

२६—श्रीयुत पं० नरदेवजी शास्त्री, वेदतीर्थ, ठि० महाविद्यालय, ज्वालापुर

२७—श्रीयुत पं० बाबूरामजी शर्मा, मंत्री नागरी-प्रचारिणी-सभा, बुलन्दशहर

२८—श्रीयुत पं० भागीरथप्रसादजी दीक्षित विशारद, हुसेनगंज लखनऊ

२९—श्रीयुत पं० विशेश्वरदयालुजी चतुर्वेदी विशारद, 'चतुर्वेदी'-संपादक, छिली ईंट, आगरा

३०—श्रीयुत पं० छबीलेलालजी गोस्वामी, वृन्दावन

बिहार और उड़ीसा

१—श्रीयुत अध्यापक बाबू बद्रीनाथजी वर्मा एम्० ए०, काव्यतीर्थ राष्ट्रीय महाविद्यालय, दीघाघाट, पटना
२—श्रीयुत बाबू राधाकृष्णजी झा एम्० ए०, पटना कालेज, पटना
३—साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखरजी शास्त्री, ओझा-बन्धु-कार्यालय, पटना
४—श्रीयुत बाबू कालिकाप्रसादजी बी० ए०, सी० टी० हेडमास्टर ट्रेनिङ्ग स्कूल भागलपुर
५—श्रीयुत बाबू साँवलिया-बिहारीलालजी वर्मा एम्० ए०, बी० एल्० मथुरा-भवन, छपरा
६—श्रीयुत बाबू रामानन्दसिंहजी बी० ए०, बी० एल्० वकील, छपरा
७—श्रीयुत बाबू रामधारीप्रसादजी विशारद, प्रधानमंत्री बिहार-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, मुज़फ़्फ़रपुर
८—श्रीयुत रायबहादुर बाबू रामरणविजयसिंहजी, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर
९—बाबू सूर्य्यप्रसादजी महाजन् ठि० श्रीमन्नूलाल-लायब्रेरी, गया
१०—श्रीयुत मोहनलाल महतो साहित्यालंकार, कविरत्न, ऊपरडाह, गया
११—श्रीयुत पं० सकलनारायणजी शर्मा काव्य-व्याकरण-सांख्य-तीर्थ, संस्कृत कालेज, कलकत्ता
१२—श्रीयुत मौ० लतीफ़हुसेनजी, कदंब-कुंज, मुज़फ़्फ़रपुर
१३—श्रीयुत मौ० पीरमुहम्मद मूनिस, मुहल्ला गंजनगर, बेतिया (चंपारन)
१४—श्रीयु बाबू रामेश्वरीप्रसाद 'राम' नागरी-प्रचारिणी सभा, बाढ़, पटना

मध्यप्रदेश

१-साहित्य-शास्त्री श्रीयुत पं० नर्म्मदाप्रसादजी मिश्र बी० ए०, विशारद, दीक्षितपुरा, जबलपुर

२—रायबहादुर श्रीयुत पं० रघुबरप्रसादजी द्विवेदी, हितकारिणी हाईस्कूल, जबलपुर
३—श्रीयुत पं० माखनलालजी चतुर्वेदी, 'कर्मवीर'-संपादक, खँडुवा
४—श्रीयुत पं० लोचनप्रसादजी पाँडेय, बालपुर, पो०चन्द्रपुर ज़िला बिलासपूर
५—श्रीयुत सैयद अमीरअली 'मीर' पोस्ट बिटकुली हैंडलूम-फ़ैक्टरी Via भाटापारा सी० पी० B. N. Ry.
६—श्रीयुत पं० कामताप्रसादजी गुरू, मेल नार्मलस्कूल, जबलपूर
७—श्रीयुत पं० गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री, पो० केसली, ज़िला सागर
८—श्रीयुत पं० दयाशंकरजी दुबे एम्० ए०-एल्०-एल्० बी०, ९, गगनी सुकुल तालाब, लखनऊ
९—श्रीयुत बाबू हीरालालजी बी० ए० कटनी, जबलपूर
१०—श्रीयुत पं० बालमुकुन्दजी त्रिपाठी बलदेवबाग़ (चेरी ताल), जबलपुर
११—श्रीयुत पं० सिद्धनाथ माधव आगरकर, खँडुवा

बंगाल

१—श्रीयुत सेठ सूरजमलजी जालान ठि० मेसर्स सूजमल नागरमल हरिसन रोड, कलकत्ता
२—श्रीयुत पं० लक्ष्मणनारायणजी गर्दे 'श्रीकृष्ण-संदेश'-संपादक ४, ताराचंददत्त स्ट्रीट, कलकता
३—श्रीयुत पं० बैजनाथजी चतुर्वेदी २७ ए० इजरा स्ट्रीट, कलकत्ता
४—श्रीयुत सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला १३७कैनिङ्ग स्ट्रीट, कलकत्ता
५—श्रीयुत बाबू गोकुलचन्दजो रईस ३०, बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता
६—श्रीयुत मूलचंदजी अग्रवाल बी० ए०, 'विश्वमित्र' कार्यालय १५०, हरिसन रोड, कलकत्ता
७—श्रीयुत पं० अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी, "स्वतंत्र"-संपादक मछुवा बाज़ार स्ट्रीट, कलकत्ता
८—श्रीयुत पं० नन्दकुमारदेव शर्मा, पोस्ट-बाक्स नं० ६७०४, बड़ाबाज़ार, कलकत्ता

९—श्रीयुत बाबू यशोदानन्दजी अखौरी, जनरल मैनेजर 'भारतमित्र' कार्यालय, डेकर्स लेन, कलकत्ता

१०—श्रीयुत बाबू नारायणदासजी बाजोरिया बी० ए०, ठि० शिवदयाल जगन्नाथ बैंकर्स और मिल ओनर्स ११७ हरिसन रोड, कलकत्ता

११—श्रीयुत बाबू सतीशचन्द्रराय एम्० ए०, धामगढ़, पो० बारापाड़ा, ज़िला ढाका (बंगाल)

१२—श्रीयुत बाबू महादेवप्रसादजी सेठ, 'मतवाला'-संपादक, बालकृष्ण प्रेस, ३६, शंकरघोष लेन, कलकत्ता

मध्यभारत और राजपूताना

१—श्रीयुत रायबहादुर पं० गौरीशंकर-हीराचंदजी ओझा, राजपूताना म्युज़ियम, अजमेर

२—श्रीयुत पं० श्यामसुन्दरजी शर्मा एम० ए०, डायरेक्टर आफ़-पब्लिक इन्स्ट्रक्शन, जयपुर

३—श्रीयुत भट्ट पं० मथुरानाथजी शास्त्री, कविमण्डल, नागरपाड़ा, जयपुर

४—महामहोपाध्याय पं० गिरिधरजी शर्म्मा शास्त्री, जयपुर

५—श्रीयुत अध्यापक सुधाकरजी एम० ए०, शाहपुरा स्टेट, मेवाड़

६—श्रीयुत हुकुमचन्दजी शर्म्मा, साहित्य-परिषद, करौलीराज्य

७—श्रीयुत रायबहादुर डाक्टर सरयूप्रसादजी, छावनी, इन्दौर

८—श्रीयुत क्षेमानन्दजी राहत, ठि० राजस्थान-हिन्दी-सम्मेलन, अजमेर

९—श्रीयुत बाबू लालचन्दजी सेठी, ठि० सेठ विनोदीराम-बालचन्द, झालरापाटन सिटी

१०—श्रीयुत पं० गोविन्दनारायणजी शर्मा, आसोपा बी० ए०, विद्यानिधि, विद्या-भूषण, दधिमती-दीवान व "दधिमती"-संपादक जोधपुर

११—श्रीयुत पं० झावरमल्लजी शर्म्मा 'हिन्दू-संसार'-सपादक, देहली

दिल्ली, पञ्जाब और पश्चिमोत्तर प्रान्त

१—श्रीयुत बाबू कृष्णजसरायजी बी० ए०, एफ़ टी० एस्० कश्चनी गली, काश्मीरी गेट, देहली
२—श्रीयुत पं० वेदव्रतजी बिशारद. बनारसी कृष्ण बिल्डिंग, चाँदनी चौक, देहली
३—श्रीयुत पं० हरमुकुन्दजी शर्मा शास्त्री, रानी का तालाब, जम्मू;
४—श्रीयुत भाईगोपालजी वर्मा, पावँयावाला कारख़ाना, मुल्तान शहर
५—श्रीयुत लाला रोशनलालजी बार-एट-लॉ, लाहौर
६—श्रीमती हेमन्तकुमारी देवी चौधुरानी. प्रिंसिपल विक्टोरिया-गर्ल्स-हाईस्कूल, पटियाला
७—श्रीयुत मुंशीरामजी "विचित्र" मन्त्री हरियाणा हिन्दी-प्रचारिणी सभा, रोहतक
८—श्रीयुत जयचन्द्रजी विद्यालङ्कार, व्यवस्थापक पंजाब-सिंध-प्रान्तीय-हिन्दी-प्रचार कार्यालय, लाहौर
९—श्रीयुत प्रो० घनश्याम-जेठानन्दजी शिवदासानी, हिन्दू-सभा हैदराबाद, सिन्ध
१०—श्रीयुत बख़्शी टेकचन्दजी बार-एट-लॉ, फ़ेनरोड, लाहौर

बम्बई

१—श्रीयुत पं० हरिभाऊजी उपाध्याय, 'हिन्दी-नवजीवन' कार्यालय अहमदाबाद
२—श्रीयुत पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी, ठि० सत्याग्रह आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद
३—श्रीयुत सेठ श्रीनिवासजी बजाज़, अध्यक्ष श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, खेतवाड़ी, गिरगाँव, बम्बई
४—श्रीयुत स्वामी गोविदानन्दजी 'केशरी' आफ़िस, बन्दररोड, कराँची
५—श्रीयुत सेठ शिवरतजी मोहता, कराँची
६—श्रीयुत सेठ जमनालालजी बजाज़, कालबादेवी रोड, बंबई
७—श्रीयुत सेठ श्रीहरिप्रसाद-भागीरथ, कालबा देवीरोड, बंबई

मद्रास

१–श्रीयुत पं० हरिहर शर्म्मा व्यवस्थापक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-प्रचार कार्यालय ट्रिप्लिकेन, मदरास

२–श्रीयुत सञ्जीवी कामंतजी वकील चेम्बर मद्रास-हाईकोर्ट, मदरास

३–श्रीयुत के० भाष्यम् वकील हाईकोर्ट, मदरास

स्थायी सदस्यों द्वारा चुने गये—

१–श्रीयुत बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन १२, कोर्टरोड, लाहौर

२–श्रीयुत पं० रामजीलालजी शर्म्मा हिन्दी प्रेस, प्रयाग

३–श्रीयुत पं० रामदासजी गौड़, ठि० राष्ट्रीय महाविद्यालय' दीघा-घाट, पटना

४–श्रीयुत बाबू शिवप्रसादजी गुप्त, सेवा-उपवन, नगवा, काशी

५–श्रीयुत सेठ युगुलकिशोरजी बिड़ला, बिड़ला-ब्रादर्स लिमिटेड, १३७, कैनिङ्गरोड, कलकत्ता

विशेष

१–श्रीयुत गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य्यजी, वृन्दावन

इसके पश्चात् संवत् १९८३ वि० के लिए आय-व्यय का अनुमान पत्र उपस्थित हुआ और निम्नलिखित रूप में स्वीकृत हुआ—

संवत् १९८३ वि० के लिए आय-व्यय का अनुमान-पत्र

सं० ८३ के लिए आय का अनुमान	सं० ८३ के लिए व्यय का अनुमान
	३७५४) कार्यालय
	३१४।) तारस्टांप
	३८४) सामान
	२३८) स्टेशनरी
	२५०) कागज़ छपाई
	१००) वार्षिक अधिवेशन
	४८०) किराया-भाड़ा-मरम्मत मकान
	२२५) वार्षिक-विवरण और नियमावली
	१२००) मार्ग-व्यय-डेपूटेशन
	१८००) पुस्तकालय
	५०००) भारतवर्ष का प्रमाणिक इतिहास
	३००००) संग्रहालय भवन
५०००) स्थायी कोष	५०००) स्थायी कोष
१५५०) सम्मेलन-पत्रिका	१००) फुटकर
१००५) जनरल-फ़ंड से	१५५०) सम्मेलन पत्रिका
५४५) सम्मेलन १५५०) पत्रिका	६३६१।) प्रचार
६३६१।) प्रचार (उपदेशकों द्वारा)	६००) सिंहभूमि संथाल परगना
४०००) सिन्ध तथा पंजाब प्रांत से सहायता	४०००) सिंध तथा पंजाब-प्रचार
	४००) अन्यप्रचार
२४३४) आसाम-प्रचार-सहायता से	२४३४-) आसाम प्रचार
	२०६०) बंगाल-हिन्दी-प्रचार

[सं]० ८३ के लिए आय का अनुमान

[?]०६०) बंगाल हिन्दी-प्रचार-सहायता से
[?]३७२०) मद्रास-प्रचार
[?]०३०) परीक्षा
[?]९५) पदक
[?]९५०) पुस्तक-प्रकाशन
[?]०३५९) सहायता से
[?]८००) मंगलाप्रसाद-पारितोषिक
१४००) सं० ८२ वि० के व्याज से
१४००) पिछली बचत से
[?]००) सम्पादक-सम्मेलन (जनरल फ़ंड से)

[?]२२४५=) आनुमानिक आय
११०५) जनरल फ़ंड से
८०८६४।) सहायता चाहिए

[?]५४२१४॥=) कुल योग

सं० ८३ के लिए व्यय का अनुमान

४३७२०) मद्रास प्रचार
६०३०) परीक्षा
१९५) पदक
५९५०) पुस्तक-प्रकाशन
२०३५९) हिन्दी-विद्या-पीठ अध्यापकों और कर्मचारियों का वेतन, विद्यार्थियों की छात्रवृति, सामान, स्टेशनरी, डाकख़र्च, फर्नीचर, काग़ज़ छपाई, पुस्तकालय, मकान मरम्मत, बाग का ख़र्च, यात्रा व्यय, नौकरों का भोजन, व्यय और भूमि टैक्स—

भूमि तथा मकान
८०००) १२००)

२८००) मंगलाप्रसाद-पारितोषिक
१००) संपादक-सम्मेलन

१५४२१४॥=) कुल योग

नोट—यदि विशेष सहायता से किसी मद की यथेष्ट—अथवा बिलकुल—ही पूर्ति न होगी तो उस मद्द की पूर्ति जनरल-फ़ंड से की जायगी।

विद्यापीठ के लिए सं० १९८२ वि० के लिए जो बजट स्वीकृत हुआ है यदि उसमें कुछ बचत होगी तो उसका उपयोग आगे, अर्थात् सं० १९८३ में, किया जा सकेगा।

तदनन्तर स्थायीसमिति की ओर से संवत् १९८१-८२ के अनुमान-पत्र में निम्नलिखित संशोधन करने का प्रस्ताव उपस्थित हुआ जो सर्व्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।—

मदों में संशोधन

१. काग़ज़ छपाई की मद में २५०) स्वीकृत हैं, जिसमें से २४३।।।)॥ व्यय हो चुके हैं। इस मद में ५०) और बढ़ा दिये जायँ।

२. वार्षिकविवरण की मद में १५० स्वीकृत हैं, जिसमें से १०५।=) व्यय हो चुके हैं। इस मद में १००) की वृद्धि की और आवश्यकता है।

३. स्टेशनरी की मद में स्याही, लिफ़ाफ़ा तथा काग़ज़ के लिए ७५) स्वीकृत हैं। बचत केवल १४।≡)।।। की है। इस मद की बचत में इतनी गुंजायश नहीं है कि इस वर्ष के अन्त तक की आवश्कता की पूर्ति उनकी बचत से हो सके, अतः इस मद में १५) की वृद्धि और की जाय।

निश्चित हुआ कि १६५) की यह वृद्धि स्वीकार की जाय। यह रुपया जनरल फ़ंड से दिया जाय।

साहित्य-मंत्री के अधिकार और कर्तव्य इस प्रकार होंगे—

तत्पश्चात् नियमावली के अध्याय ८ में निम्नलिखित परिवर्द्धन करने का प्रस्ताव उपस्थित हुआ, जो सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ—

(क) पुस्तकों के प्रणयन और प्रकाशन का समस्त प्रबन्ध करना।

(ख) पुस्तकों का स्टाक रखना और बिक्री का प्रबन्ध करना।

(ग) सम्मेलन-पत्रिका के सम्पादक और प्रकाशन का पूर्ण प्रबन्ध

(घ) वर्ष की समाप्ति से एक मास पूर्व आगामी वर्ष के लिए अपने विभाग का अनुमान-पत्र प्रधानमंत्री को देना।

(च) वर्ष का समाप्ति से १५ दिन के भीतर अपने विभाग का वार्षिक विवरण प्रधानमंत्री को देना।

इसके पश्चात् श्रीमती हेमन्तकुमारी देवी चौधरानी तथा श्रीयुत् पं० किशोरीलालजी गोस्वामी प्रभृति के भाषण हुए और आज की कार्यवाही समाप्त हुई।

चौथा दिन

आज हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन का अन्तिम दिन था—१२ बजे के लगभग कार्यवाही प्रारम्भ हुई। आगामी अधिवेशन के लिए गया, काशी तथा भरतपुर आदि स्थानों से निमंत्रण आये थे भरतपुर की हिन्दी-साहित्य-समिति की ओर से जो निमंत्रण आया था उसे श्री अधिकारी जगन्नाथदास प्रमुख व्यक्तियों ने अत्यन्त नम्रता-पूर्वक उपस्थित किया। यही निमंत्रणपत्र करतल-ध्वनि के साथ हर्ष प्रकट करते हुए सब प्रतिनिधियों ने स्वीकार किया। तत्पश्चात् सभापति महोदय ने अन्तिम भाषण दिया। यह भाषण बड़ा ही ओजस्वी और प्रभावशाली था। आपने कहा—

यदि आज मेरे १०० कण्ठ होते तो भी मैं उस आनन्द को प्रकट न करने पाता जो मुझे आज यहाँ हो रहा है। परन्तु आज वही आनन्द मुझे एक ही कण्ठ से कहना पड़ रहा है जो दुर्भाग्य से बंद हो गया है। परन्तु मैं अपने कण्ठ पर दया न करूँगा और जो कुछ मुझे कहना है वह अवश्य कहूँगा। अपने विचार मैं भाषण में व्यक्त कर चुका हूं। मेरा जन्म उस भूमिमें हुआ है जहाँ प्रेमका प्रवाह प्रवाहित हुआ है। उस प्रवाह से केवल बङ्ग-भूमि ही पवित्र नहीं हुई, सारा देश पुनीत हुआ है और वृन्दावन में भी उसके बहुत से चिन्ह विद्यमान है। मेरे बचपन की एक घटना है। मैंने भूल के अपने एक पड़ोसी मुसलमान को भैया न कहा था इस पर मेरे घर के लोग मुझ से खूब नाराज़ हुए थे। पर आज वह वंग नहीं है, यही नहीं, भारत में भी हिंदू-मुसलमान में विरोध फैला हुआ है—इतना ही क्यों, हिंदू-हिंदू में भी विरोध है। यह सब क्यों? अनेक लोग कहते हैं कि प्राचीन लोगों ने ऐसे व्यवहार किये जिससे यह आग फैल गई। मेरा मत इससे भिन्न है। इस आग को अँग-रेज़ी पढ़े-लिखे नवीन विचार के लोगों ने लगाया है जिसे बुझाने

के लिए हिंदी के लेखकों को अपनी लेखनी शुद्ध करनी होगी और व्रत करना होगा कि देश को प्रेम की भूमि बनाकर रहेंगे। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रत्येक व्यक्ति को काम होना चाहिए—देश के साथ यह प्रेम-सम्बन्ध करना।

इसके आगे सभापति ने अपने भाषण में बाबू नारायणदासजी, स्वागत-समिति के पदाधिकारियों और सदस्यों को धन्यवाद देते और स्वेच्छासेवकों को सम्बोधन करते हुए कहा—स्वयंसेवक भावी भारत के आशा-स्थल हैं। भारत प्रेम से देश विजय करेगा, जिसकी मूर्त्ति महात्मागांधी हैं और जिनका आदेश है--प्रेम बिना गति नहीं। महाप्रभु ने प्रेम का जो आदर्श उपस्थित किया, उसका उदाहरण महात्मा गांधी है। मेरी विनय है कि साहित्य में प्रेम के गुलालकी सुगंधि फैले जिससे हमारे हृदय सुगंधित हो जावें।

इसके अनन्तर स्वागत-समितिके सभापतिने अपने संक्षिप्त भाषण में स्वागत-कार्यकर्त्ताओं और समागत प्रतिनिधियों को धन्यवाद देकर करतल-ध्वनिके बीच सम्मेलन का कार्य समाप्त किया।

सम्पादक-सम्मेलन

रविवार ता० ८ नवम्बर सन् १९२५ ई० । को हारमोनियम पर, सुमधुर गायन-पूर्वक, सम्मेलन-पण्डाल में, "आज" सम्पादक श्रीमान् पं० बाबूराव-विष्णु-पराड़कर की अध्यक्षता में, सम्पादक-सम्मेलन का अधिवेशन लगभग ८॥ बजे से आरम्भ हुआ। सम्मेलन में हिन्दुस्तान के हिन्दी के भूत पूर्व और वर्तमान प्रसिद्ध पत्रों के ५० सम्पादकों और प्रतिनिधियों के सिवाय साहित्य-सम्मेलन में आये हुए साहित्य-प्रेमियों ने भी भाग लिया। आरम्भ में तीन ब्रह्मचारियों वेद-मन्त्रों से मङ्गलाचरण किया। इसके अनन्तर सम्पादक-सम्मेलन की स्वागत समिति के अध्यक्ष श्री आनन्द भिक्षु सरस्वती का निम्नोद्धृत भाषण आरम्भ हुआ।

सम्पादक-सम्मेलन
के
स्वागताध्यक्ष का भाषण

पूज्य माताओ और सज्जनो !

परम पिता परमात्मा की महती कृपा है कि आज हम भगवान् कृष्ण की लीला-भूमि और प्राचीन साहित्य-केन्द्र वृन्दावन में इस सम्पादक-सम्मेलन के लिए एकत्रित हुए हैं। जगदीश्वर चाहे तो आगे यह कार्य्य स्वयं एक महान् कार्य्य होके रहे और इसमें देश के अनेक हितैषियों की न केवल सहानुभूति वरन् सहयोग भी हो, परन्तु इस समय यह साहित्य-सम्मेलन का ही एक अंग है। इस प्रकार सम्मेलन की स्वागत-कारिणी को ही इसकी भी स्वागत-कारिणी मानने में कोई हर्ज़ नहीं है। प्रथा-परिपालन करने के लिए मुझे इस सम्मेलन का स्वागताध्यक्ष बना दिया गया है। अच्छा होता, यह कार्य्य दूसरे किसी अधिक योग्य सज्जन के सुपुर्द किया जाता।

सन्यासी की स्थिति में अन्य सांसारिक बातों की कमी के साथ-साथ यदि मेरे भाषण में शिष्टाचार के शब्दों और भावों की भी

कमी प्रतीत हो तो आशा है कि आपको अपनी उदारता के कारण वह अप्रिय न होगी। मैंने भी यह समझकर ही यह कार्य्य-भार स्वीकार कर लिया है कि सम्पादक दुनिया भरकी आलोचना करते-करते इतने तृप्त होंगे कि कम-से-कम वे इस अपने काम की तो बुरी आलोचना न करेंगे।

सम्पादन-कार्य का महत्त्व

यद्यपि साधारणतः सम्पादकसे मतलब अखबार निकालनेवालों से लिया जाता है, परन्तु अब ग्रन्थों और ग्रन्थ-मालाओं के भी सम्पादक होने लगे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यदि सम्पादन अच्छी तरह किया जाय तो ग्रन्थ का महत्व बहुत बढ़ जाता है। साहित्य और सम्पादन-कार्य्य का जैसा और जितना घनिष्ठ सम्बन्ध है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है। साहित्य यदि जाति का प्राण और जातीयता की जान है तो सम्पादन-कार्य्य साहित्य की संजीवनी शक्ति है।

जिस प्रसंग में हम यहाँ एकत्रित हुए हैं, उसका विशेष सम्बन्ध समाचार-पत्रों के सम्पादकों से है। यह स्पष्ट ही है कि सम्पादन-कार्य्य एक अपूर्व शक्ति है और सम्पादक का स्थान बहुत ही उच्च, पवित्र और महत्व-पूर्ण है। एक बलशाली चक्रवर्ती सम्राट अपनी प्रजा पर तोप, बन्दूक, हवाई जहाज़ और मैशीनगन इत्यादि अनेक प्रकार के विषैले अस्त्र-शस्त्र द्वारा शासन करता है, परन्तु फिर भी उसके अधिकार की सीमा अधिक-से-अधिक मनुष्य के भौतिक शरीर और चर-अचर सम्पत्ति के अन्दर ही परिमिति होकर रह जाती है। लेकिन एक सुयोग्य सम्पादक को इन मायावी चमत्कारों की शरण लेनी नहीं पड़ती। वह अपनी निर्दिष्ट नीति के अनुसार एक कोने में बैठा हुआ चुपचाप अपना काम करता जाता और बड़ी सरलता से सर्वसाधारण के तन और धन पर ही अधिकार नहीं पा लेता, बल्कि उनके हृदयासन पर भी आसीन हो जाता है। स्वर्गीय लोकमान्य तिलक को आप लोग नहीं भूले होंगे। यह कौन थे? एक सम्पादक थे, और सम्पादक से यह भारतवासियों के

हृदय-सम्राट बन गये थे। कैसे? क्या इन्होंने कोई मायावी लीला रची थी? क्या इन्हें किन्हीं भयानक हथियारों से काम लेना पड़ा था? क्या इन्होंने कोई कड़े-कड़े क़ानून बनाये थे? कहना होगा, कदापि नहीं? फिर इनमें क्या बात थी? हाँ, इनमें वही बात थी जो एक सच्चे देश-सेवक और राष्ट्र-निर्माता में होनी चाहिए। उनके हृदय में देशवासियों के प्रति अगाध प्रेम, निश्चल सहानुभूति और निष्काम सेवा-भाव था और उन्होंने अपनी कर्त्तव्य-परायणता, सत्यनिष्ठा, और आत्म-बल द्वारा अपने देशबन्धु तथा बान्धवों का मन मोह लिया था। सम्पादक एक सम्राट का स्थान अपने सहज स्वभाव से प्राप्त कर सकता है; परन्तु सम्पादक का स्थान प्राप्त करनेके लिए बड़े-बड़े प्रतिभाशाली सम्राट भी तरसते रह जाते हैं। एक विद्वान् का कहना है कि मुझे समाचार-पत्रों का सम्पादन करने दो, फिर मुझे यह देखना नहीं होगा कि शासक कौन है। निःसन्देह सम्पादन-कार्य्य ऐसे ही महत्व का कार्य्य है।

सम्पादक कैसा होना चाहिए?

यह विषय कटु है, परन्तु घर का मामला होने से कडुवा, मीठा सभी कुछ चखना होता है। साहित्य-सेवा का कार्य्य कितना ही और कैसा ही सरल हो, परन्तु उसकी सरलता अन्य कार्यों की कठिनाई से भी कठिन होती है। फिर समाचार-पत्रों के सम्पादक का काम जितना महत्व-पूर्ण है उतना ही संकटापन्न और कष्ट-साध्य भी है। पत्र-सम्पादन करना हँसी-खेल नहीं है। बड़ा नाज़ुक और ज़िम्मेदारी का काम है। परन्तु यहाँ तो अन्धाधुन्ध मचा हुआ है। महात्मा गान्धी के शब्दों में "जिसे कोई दूसरा रोज़गार नहीं मिलता वह सम्पादक बन बैठता है।" आज कल सम्पादकों में ऐसे महानुभावों की कमी नहीं है जो सम्पादक के पवित्र आसन पर अधिकार जमाये हुए हैं पर हिन्दी भी शुद्ध नहीं लिख सकते। वह इधर-उधर के समाचार और लेखों को काट-छाँटकर यथा-तथा अपना कलेवर पूरा करते हैं। फलतः बहुत से पत्रों में ऐसी समानता होजाती है कि एक का पढ़ने के बाद

दूसरे में पढ़ने के लिए कुछ रह ही नहीं जाता। बहुत से अब भी सम्पादक बनना एक सरल बात समझते हैं। सम्पादक के लिए एक क़लम, एक दवात—नहीं-नहीं मैं भूल गया; अब तो फ़ाउन्टेनपेन का फ़ैशन होगया है—कुछ काग़ज़ और कुछ बातें चाहिए और बस। वह अच्छा ख़ासा चलता-फिरता सम्पादक बन गया। सम्पादक बनने को और चाहिए ही क्या? भारतवर्ष ही नहीं, अन्य सभ्य और समृद्धिशाली देशों में भी तो सम्पादक के लिए इतनी ही सामग्री पर्याप्त होती है। हाँ, कुछ बातों में ही भेद होता है। वह "कुछ बातें" अनाप-शनाप नहीं, कुछ ख़ास और महत्व की बातें होती हैं, और उनके करने के ढंग में भी बुद्धिमानी और ख़ूबसूरती की ज़रूरत है।

सम्पादक को प्रतिभा और अगाध ज्ञान के साथ साथ सम्पादन-कार्य्य में पर्य्याप्त निपुणता तथा अनुभव की बड़ी आवश्यकता है। परन्तु सम्पादन-कार्य्य में सफलता के लिए यहीं मामला समाप्त हो जाता है। उसे देश की परिस्थिति का तथा सामाजिक आचार-व्यवहार का ज्ञान, व्यापारिक बातों और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों की अभिज्ञता और अनेक देशोपयोगी विषयों में पारदर्शिता प्राप्त होनी चाहिए। इतनाही नहीं, उसमें उदारता, निष्पक्षता, सहृदयता और सहिष्णुता आदि भी काफ़ी होना अनिवार्य्य है। और इनके साथ-साथ देश और जाति के लिए त्याग और सेवा-भाव की भी बड़ी ज़रूरत है। जो इन सद्गुणों से वञ्चित हैं और जो केवल अपनी स्वार्थ-सिद्धि या व्यक्तिगत लाभ और प्रतिष्ठा के लिए ही सम्पादन-क्षेत्र में अवतीर्ण होते हैं, उनसे देश और समाज को हानि पहुँचने के अतिरिक्त और भलाई नहीं होती। परमेश्वर इस प्रकार के देशोपकारक (!) सज्जनों से देश को जब तक बचाये रक्खे, तभी तक ग़नीमत है।

हमें दुःख से कहना पड़ता है कि आजकल कुछ सम्पादक इसी कोटि के प्रतीत होते हैं। वह अपना मतलब गाँठना चाहते हैं। उन्हें किसी की हानि और लाभ से ग़रज़ नहीं है। उनका काम

किसी की निन्दा या स्तुति से चलता है, तो उसके लिए वे सहर्ष सन्नद्ध है। इन्हें अपने स्वार्थ-साधन के लिए कोई प्रपंच या षड़यंत्र रचने की ज़रूरत पड़ती है, तो उन्हें इसमें भी कुछ मुज़ायक़ा नहीं। अपने पत्र के प्रचार के लिए किसी देशभक्त स्वार्थ-त्यागी सज्जन की अप्रतिष्ठा करने, या अपने किसी दूसरे सहयोगी पत्र को छेड़ने की आवश्यकता है तो इस काम से भी वह पीछे हटनेवाले असामी नहीं हैं। किसी दलबन्दी के अवसर पर अपनी पार्टियाँ, अपने मित्रों की झूठी-सच्ची प्रतिष्ठा बढ़ाना और अपने प्रतिद्वन्दी को नीचा दिखाना उनके बायें हाथ का खेल है। वह स्वभाव से किसी के मित्र या शत्रु नहीं होते। उन्हें अपना उल्लू सीधा करना होता है। इसके लिए वह सब-कुछ करते हैं और कर सकते हैं। उन्हें देश, धर्म और जाति की किञ्चित् मात्र परवा नहीं होती। उनको अपनी लोक-लज्जा और मान-प्रतिष्ठा की भी चिन्ता नहीं रहती।

कुछ पत्रों के सञ्चालक या प्रकाशक धनी-मानी हैं। वे साहित्य-संसार में अपनी दूकानदारी के साथ-साथ अपनी प्रतिष्ठा और ख्याति भी चाहते हैं। वह अपने यहाँ एक या एक से अधिक वेतन-भोगी सम्पादक रख लेते हैं। सम्पादन आदि का कार्य तो वह करते हैं और नाम और ख्याति होती है सञ्चालक महाशय की। यह सम्पादक अपने सञ्चालक महोदय के हाथों के खिलौने होते हैं, वह जिस उद्देश से जो काम उनसे लेना चाहते हैं, लेते रहते हैं। उन्हें अपनी कर्तव्य-परायणता या पथ-भ्रष्टता की कोई चिन्ता नहीं होती। सम्पादक का काम और उसके कर्तव्य धर्म बड़े पवित्र होते हैं। हमें इस पवित्रता की रक्षा करनी चाहिए। सम्पादक को अपनी मातृभाषा, अपने धर्म, अपनी जाति तथा जननी जन्मभूमि की सेवा के पवित्र और उच्च भावों से प्रेरित होकर ही यह पवित्र और महान उत्तरदायित्व-पूर्ण कार्य्य करना चाहिए। अन्यथा उसकी भूल-चूक से समाज में सभी छोटे-बड़े सदस्यों पर उसका बुरा प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

सम्पादक की कठिनाइयाँ और उनके दूर करने के उपाय

समाचार-पत्रों का सम्पादन-कार्य यों ही एक टेढ़ी खीर है। उस पर भी पराधीन देशों में तो यह जैसा जान-जोखिम और ख़तरे का काम है वह बतलाने की ज़रूरत नहीं। तलवार की तेज़ धार पर चलना और सम्पादक का कार्य करना एक जैसी बात है। भारतवर्ष में शासक और शासित दोनों भिन्न जातियाँ हैं। इनमें परस्पर पूर्वीय और पाश्चात्य प्रभेद है। इनके वेशभूषा, भाषा, रीति-नीति, आचार-व्यवहार सभी बातों में विभिन्नता है। यह स्वतः एक दूसरे के सुःख-दुःख, हानि, लाभ किसी बिचौलिया के बिना जानने में असमर्थ हैं। यह काम समाचार-पत्रों द्वारा अधिक उत्तमता से हो सकता है। राष्ट्रीय पत्रों से सरकार देश का रुख़ जान सकती है, इसी प्रकार सरकारी सहायता-प्राप्त पत्रों से प्रजा को सरकार के दृष्टि-कोण का ज्ञान हो सकता है। समाचार-पत्र देश और जाति के प्रतिनिधि और लोक-मत के प्रतिबिम्ब होते हैं। इनके द्वारा देश की वास्तविक परिस्थिति और प्रजा का दुःख-सुःख मालूम होता है।

समाचार-पत्रों से राजा और प्रजा दोनों का हितसाधन होता है। चाहिए तो यह था कि उन्हें अच्छी स्वतंत्रता दी जाती और उनके साथ कृतज्ञता-पूर्ण उदारता का व्यवहार किया जाता। परन्तु यहाँ का तो "बाबा आदम" ही निराला है, भाव-भंगी ही विलक्षण है। भारत के समाचार-पत्रों और सम्पादकों पर सदा शनिश्चर सवार रहता है और साल के ३६५ दिनों में राहु की क्रूर दृष्टि उनके ऊपर से हटाये नहीं हटती। उन्हें चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते अपनी स्थिति ही निश्चित नहीं प्रतीत होती। ये सदा "बीरबल के बकरे" बने रहते हैं। अधिकांश सम्पादक संसार में रहते हैं, परन्तु विदेहवत इन्हें न तो स्वतः संसार में रहने का आनन्द मिलता है और न उनके कारण से इनके निकट-सम्बन्धियों और बाल-बच्चों को ही कुछ सुख और निश्चिन्तता प्राप्त होती है। वे भी गेहूँ के साथ घुन की तरह पिस

जाते हैं। बल्कि सच पूछिए तो इन विचारों को बिना कौड़ी-पैसे मुफ़्त ही एक नई मुसीबत और सांसत बनी रहती है, और हर रोज़ एक नई सुबह और एक नई शाम देखनी नसीब होती है। ऐसी अनिश्चित परिस्थिति और दुबिधा में एक सम्पादक अपना कर्तव्य कर्म जिस प्रकार से कर सकता है, उसका जानना कठिन नहीं है। उसका मुँह बन्द रखा जाता है, ज़बान को हवा नहीं लगने पाती। हाथ-पाँव जकड़े रहते हैं और वे इस प्रकार स्वतन्त्र निष्पक्ष सम्मति देने से वंचित रहते हैं। वे देश और जाति के दुःखों और कष्टों को देखते हैं। उनके हृदय में चोट लगती है। उसकी असह्य वेदनाओं से बेचैन होकर वह रोना और चिल्लाना चाहते हैं, परन्तु इसकी आज्ञा नहीं है। वे छटपटाते हैं, तड़पते हैं, हाथ-पाँव पटकते हैं, परन्तु बन्धनों के जकड़-बन्दसे इस कशमकशमें और भी अपने शरीर और आत्मा को आघात पहुँचाकर आप-ही-आप निस्तेज और सुस्त पड़ जाते हैं। यह एक कठिनाई है, और कैसी कठिनाई है कि आप लोग स्वतः विचार और अनुमान कर सकते हैं, हम कहेंगे तो शिकायत होगी।

यह तो हुई एक ओर की बात। अब दूसरी की ओर लीजिए। सम्पादक का कार्य्य लोगों में जागृति उत्पन्न करना है। यह काम सरकार की तरफ़ से तो आशंका की दृष्टि से देखा ही जाता है। इसके अतिरिक्त समाज की तरफ़ से भी इसकी उपेक्षा और उदासीनता होती है! 'जिनके लिए शृङ्गार, उन्हीं की मार' कुछ विचित्र दुर्दशा है। भारतवर्ष में साधारणतया जैसी कुछ शिक्षा है वह आप सभी जानते हैं। सात फ़ी सदी से कम पढ़े-लिखे आदमी कहे जाते हैं। यह संख्या आटे में नमक से भी ज़्यादा सलोनी है। इनमें से जितने हिन्दी-समाचार-पत्र पढ़ते हैं, वह अँगुलियों पर गिने जा सकते हैं। किसी भी समाचार-पत्र के सम्पादक या मैनेजर से पूछ लो, वह बिना अपने ग्राहक-रजिस्टर खोले आपको उनकी संख्या बता देगा। कुछ लोगों का कहना है कि तुम्हारे समाचार-पत्र ही ऐसे होते हैं जिन्हें कोई पढ़कर क्या भर पाता है? हम इसे किसी

हद तक मानते हैं और कहनेवालों से अधिक अपनी इस त्रुटि को दुःख के साथ अनुभव करते हैं। इसमें सम्पादक का जो कुछ दोष है वह तो है ही; लेकिन क्या पाठकों की कुरुचि और उदासीनता भी इसकी थोड़ी-बहुत ज़िम्मेदार नहीं है ?

अन्य देशों में समाचार-पत्रों का यह हाल नहीं है। वहाँ पत्रों का काफ़ी आदर रहता है। लोग उन्हें पढ़ने के लिए उत्सुक रहते हैं। आबाल, वृद्ध, बनिता सभी अख़बार देखते हैं। अमीर से लेकर ग़रीब तक इसके लिए लालायित रहते हैं। एक मज़दूर मज़दूरी करता है, दुकानदार दुकान पर बैठता है। मेहतर सफ़ाई करता जाता है। लेकिन इन सब के पास पत्र मौजूद रहता है और जहां और जब समय मिलता है वे पत्र ज़रूर देखते हैं। पत्र देखना इनके स्वभाव में प्रविष्ट हो गया है। वे जहां अपने जीवन के लिए अन्य सामग्रियों का संग्रह करना अपने लिए अनिवार्य्य समझते हैं, वहाँ सामाजिक परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के अन्य साधनों में पत्रों को भी आवश्यक मानते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनके देश में समाचार-पत्रों का प्रचार काफ़ी रहता है। उनके सामने घाटे का प्रश्न नहीं आता। उनकी स्थिति और नीति स्थिर रहती है। वह एक लक्ष्य को अपने सामने रखते हैं और उससे डिगने या उसमें बार-बार परिवर्तन करने की ज़रूरत उन्हें नहीं होती। उन्हें इस प्रकार आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त रहने पर उनका हृदय अगम्य उत्साह, उच्च आकांक्षा, और देश-सेवा के परम पुनीत और सात्विक भावों से परिपूर्ण रहता है। उन्हें पत्र-प्रकाशकों और संचालकों का मुँह नहीं ताकना पड़ता। वह किसी धनी-मानी, सेठ-साहूकार, या राजे-महाराजे की प्रभुता और प्रलोभनों से प्रभावित नहीं होते। उन्हें अपने प्रेमियों और मित्रों की सहायता का मोह नहीं होता, उनको अपने पत्रों का घाटा दूर करने के लिए अपनी आत्मा और पत्र के उद्देश्य के विपरीति गन्दे और अश्लील विज्ञापन लेने की ज़रूरत नहीं पड़ती तथा जनता के आगे हाथ फैलाकर बार-बार साहाय्य की याचना भी नहीं करनी होती।

परन्तु यहाँ भारतवर्ष में ठीक इसके विपरीत अवस्था है। यहाँ पहले तो हिन्दी-सम्पादकों को वेतन ही बहुत थोड़ा मिलता है और काम बहुत अधिक। इन्हें "पीर, बबर्ची, भिश्ती, ख़र" की भाँति रजिस्टर रखना, पतों की चिट लगाना, प्रूफ़ पढ़ना, आय-व्यय का हिसाब रखना आदि विविध प्रकार का काम करना होता है। उस पर भी घाटे की ज़िम्मेदारी और आजीविका की चिन्ता उन्हें सभी कुछ करने पर विवश कर देती है। उन्हें अपने विचार, सिद्धान्त और उद्देश में पूर्ण स्वतंत्र रहने का अवसर ही नहीं मिल पाता। वह कब और किस प्रकार अँगरेज़ी या अन्य भाषाओं के सर्व गुण सम्पन्न और समुन्नत पत्रों से स्पर्धा करें! उदाहरण के लिए प्रेम-महाविद्यालय के साप्ताहिक 'प्रेम' की बात कहता हूँ। इसे आरम्भ हुए १४-१५ वर्ष हो गये। इस समय में वह दो बार बन्द हो चुका है। मुझे गत पाँच वर्षों से उसका अनुभव है। एक राष्ट्रीय अद्वितीय शिक्षा संस्था का मुख-पत्र होते हुए उसकी आन-बान और मान-मर्यादा उसके उपयुक्त कुछ और ही होनी चाहिए थी। सो तो दूर की बात रही, वह बिलकुल मामूली तरह से निकलता था, तो भी उसके संचालकों और सम्पादकों को स्थिति से निश्चित होकर कभी साँस लेने का मौक़ा नहीं मिला। फिर भी घाटा उसका गला घोंटकर ही रहा है। अब जो 'प्रेम' निकल रहा है वह कुछ व्यक्तियों के सुसाहस का फल है। घाटा और अन्य अनेक छोटी-मोटी कठिनाइयाँ एक साधारण कोटि के मामूली अख़बारों के साथ हैं। अविद्या और धर्मान्धता के कारण साहित्यिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक, और धार्मिक पत्रों की कठिनाइयाँ कुछ और प्रकार की हो सकती हैं, परन्तु उनका उपाय नहीं है, सो बात नहीं है। प्रकृति के भंडार में सभी कुछ है और मनुष्य सभी कुछ कर सकता है। केवल अपनी शक्ति का ज्ञान और उसे काम में लाने की आवश्यकता है।

संगठन की आवश्यकता

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह स्वभाव से ही संगठन की शक्तियों से लाभ उठाता है। जब तक मनुष्य की शक्तियां बिखरी

हुई रहती हैं, वे एक दूसरे की हानि-लाभ तथा दुःख-सुःख से उदासीन रहते हैं। वे किसी प्रकार की उन्नति नहीं कर सकते बल्कि पग-पग पर दुखी और अपमानित होते हैं और कुल-कलंक बनते और जाति और देश को बदनाम करते हैं। उनके सामने अपने जीवन-निर्वाह की कठिन और चिन्ता-जनक समस्या सर्वदा बनी रहती है और वह उससे उन्मुक्त नहीं हो सकते। परन्तु जहाँ उन्होंने संगठन का रहस्य समझा और संगठित होकर काम करना प्रारम्भ किया, सारी कायापलट आप से आप हो जाती है। देश और जाति में अनेक प्रकार के आन्दोलन होते रहते हैं। इन आन्दोलनों के कर्त्ता धर्त्ता—नहीं, कर्त्ता धर्त्ता ही नहीं विधाता भी—यही देश के समाचार-पत्र और सम्पादक ही होते हैं। क्या इससे भी बढ़कर कोई और आश्चर्य्य की बात हो सकती है कि जो दूसरों को बुद्धि दे, राह बतलावे, उन्हें संगठित करके सफल-मनोरथ बनावे वह स्वतः अपने लिए संगठन की आवश्यकता का अनुभव न करे।

समाचार-पत्रों में बड़ी शक्ति होती है एक सम्पादक शक्तिशालिनी लेखनी द्वारा दुनिया में हलचल मचा सकता है। संसार में महान-से-महान परिवर्त्तन कर देना वह कोई नई बात नहीं समझता। परन्तु अपनी बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित करके अपना और अपने दूसरे भाइयों का भला नहीं कर सकता, या करने का ज़रूरत नहीं समझता, यह अजीब हैरानी की बात है। हमें अबसे बहुत पहले अपने को सुसंगठित कर लेना चाहिए था। यदि यह काम अभी तक किसी विशेष कारण से नहीं हो सका तो अब तुरन्त बिना किसी विलम्ब के कर लेने की ज़रूरत है।

सम्पादक-समिति की स्थापना

यह समिति पहले पहल १८८५ ई० में प्रयाग में स्थापित हुई थी, परन्तु एक वर्षही इसकी चर्चा होकर रह गई। इसके २२ वर्ष पश्चात् फिर १९०७ ई० में इसका कुछ काम प्रयाग में ही हुआ। सन् १९१० ई० में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जन्म हुआ। इसके साथ-ही-साथ किसी-न-किसी प्रकार १९१३ ई० तक समिति के

अधिवेशन होते रहे। १६१४ ई० में लखनऊ के सम्मेलन में इसके सम्बन्ध में कुछ न हो सका। देहरादून-सम्मेलन के अवसर पर भी फिर इसकी कुछ चर्चा छिड़ी थी, परन्तु कोई बात कार्य-रूप में परिणत न हुई। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, देश और जाति में सम्पादकों का आदर और प्रतिष्ठा की रक्षा करने, अहम्मन्य संचालकों के हतकंडों और स्वार्थ-जनित बाधाओं को दूर रखने के लिए समिति को सुचारु और सुदृढ़ करने की अत्यन्त आवश्यकता है। ऐसा होने से हिन्दी-पत्र-संसार का भविष्य समुन्नत और और समुज्वल हो सकता है।

समिति का कार्य्य

समिति के उद्देश और कार्य्य क्या होंगे यह तो समिति ही निश्चित करेगी, तथापि यहाँ इसका कुछ विचार करना अनुचित न होगा।

(१) इस समय हिन्दी-भाषा की बड़ी ले-दे हो रही है। जिसे जैसा रुचता है, वैसा ही शब्दों का प्रयोग और उसी प्रकार वाक्य-रचना कर डालता है। सम्पादकों को अपनी भाषा की एक मर्य्यादा रखना चाहिए। ऐसा नहीं कि हिन्दी को अँगरेज़ी लिबास में रखने का प्रयत्न करें। किसी बड़े पत्र-पत्रिका में भी 'यह काम होने जा रहे हैं" तथा "मैंने गया था" वाक्य देखकर आश्चर्य्य और दुःख होता है। थोड़े विचार से यह दोष हट सकता है।

(२) सम्पादन-कला सीखने के लिए अमेरिका आदि देशों में विराट आयोजन हैं। यहाँ कोई व्यवस्था नहीं। दो एक पुस्तकें अवश्य इस विषय की प्रकाशित हुई हैं परन्तु उनसे ही काम नहीं चल सकता। भावी सम्पादकों की जितनी अधिक तैयारी, शिक्षण और अनुभव हो, अच्छा है और आवश्यक है। क्या सम्मेलन इस कार्य्य का मार्ग प्रशस्त करने का भार लेगा ?

(३) सम्पादकों के लिए बड़े वृहद् सामयिक (Up to date) पुस्तकालय की बड़ी आवश्यकता है, यह प्रत्येक विचारशील स्वयं विचार सकता है। खेद है, भारतवर्ष में जितने स्थानों से पत्र

निकल रहे हैं, उनमें से बहुत ही कम में समय-युक्त पुस्तकालय हैं। जो हैं उनका भी सम्पादक उपयोग नहीं कर सकते या नहीं करते। जब एक सम्पादक दूसरे अख़बारों से लेकर अपने पत्र के कालमों की पूर्त्ति करने का विचार रखे तो उसके पत्र में क्या मौलिकता और महत्व की बात होगी?

(४) पत्रों की नीति के सम्बन्ध में बहुत सी बातें संभव हैं। सब में एक मत होना भी दुस्तर है, तथापि अश्लील विज्ञापन छापना और साधारण शिष्टाचार को भी तिलांजलि देकर गाली गलौज की बातों में उतर आना और पुस्तकों की पक्षपात-पूर्ण मनमानी आलोचना करना आदि बातें ऐसी हैं जिसमें सम्पादक कहलानेवाले व्यक्ति को हाथ न डालना चाहिए। परन्तु सम्पादक-समिति का संगठन हुए बिना यह कार्य्य भी दुस्तर हो रहा है।

सभापति का परिचय

हम चाहते हैं कि अब से सम्पादक-सम्मेलन ऐसी अस्त-व्यस्त अवस्था में न रहे जैसा गत वर्षों में रहा है। हमें आशा है कि हमारी अभिलाषा पूरी होगी। इस कार्य के लिए हमें एक सुयोग्य अनुभवी विद्वान मिले हैं। श्री बाबूराव-विष्णु पराड़करजी एक महाराष्ट्र सज्जन होकर भी हिन्दी के प्रति कितनी श्रद्धा तथा भक्ति-भावना रखते हैं और तदर्थ कितनी सेवा कर चुके हैं यह पत्र-पाठकों से छिपा नहीं। सुप्रसिद्ध 'भारतमित्र' को बहुत समय तक आप के सहयोग का सैाभाग्य प्राप्त हो चुका है। आजकल हिन्दी-गैारववर्द्धक 'आज' के पाठकों,को आपकी ललित लेखनी का रसास्वादन करने का अवसर मिल रहा है। ऐसे योग्य अध्यक्ष के के सभापतित्व में सम्पादक-सम्मेलन का न केवल यह अधिवेशन सफल हो, वरन् इसे स्थायी सफलता मिले, परमात्मा से हमारी यह प्रार्थना है।

अन्त में मैं आप लोगों को धन्यवाद देता हूं। आपने यहाँ पधारने का कष्ट उठाया है। हमारे स्वागत में जो त्रुटियाँ आपके अनुभव में आवें उनकी मैं आप से क्षमा चाहता हूँ।

इसके अनन्तर भाई परमानन्दजी ने कहा—जाति के उत्थान और पतन को हम उसकी वाणी द्वारा देख सकते हैं। हमारी जाति के इतिहासका पता भी हमारी भाषा से चलता है। वाणी भाषा के साथ जाति जीवित रहती है। जब किसी जाति पर आक्रमण होता है तब भाषा पर भी आक्रमण होता है, आयरलैण्ड को अपने अधीन रखकर अँगरेज़ों ने उनकी भाषा को मिटाकर अँगरेज़ी जारी कर दी। यही हिन्दुस्तान में भी हो रहा है। पर भाषा के शैथिल्य से जातीयता भी शिथिल हो जाती है। जातीयता को ज़िन्दा रखने के लिए भाषा का ज़िन्दा होना अनिवार्य है। जो जाति ज़िन्दा रहना चाहे उसे अपनी भाषा को ज़िन्दा बनाना चाहिए। सम्पादक भाषा के आचार्य हैं उन पर इसका दायित्व है। हिन्दू जातीयता और वाणी के लिए मैं यही चाहता हूँ कि हिन्दू-सङ्गठन हो। हिन्दू-सङ्गठन को भाषा के आश्रय से बल मिलेगा। ये दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं।

इसके आगे विहार और सिन्ध के मुसलमानों के रुख़ की चर्चा करते हुए, जो अपने प्रांतों में हिन्दी के विरुद्ध फ़ारसी लिपि जारी करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं, आपने कहा हिन्दुओं को अपने हिन्दू प्रतिनिधि डिस्ट्रिक्ट बोर्ड-म्युनिसिपल बोर्डों और कौंसिल में भेजने चाहिए जो हिन्दू-जातीयता और भाषाके लिये प्रयत्न करें।

भाई परमानन्दजीने, अपने भाषणके अन्तमें 'आज' सम्पादक श्री बाबूराव विष्णुरावजी पराड़कर को सम्पादक-सम्मेलनके सभापतिके आसनपर बैठने के लिए प्रस्ताव किया, जिसका अनुमोदन श्रीयुत पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेईयोजीने किया श्रीयुत पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी ने अत्यन्त हृदयग्राही ढंग से प्रस्ताव का समर्थन किया और बतलाया कि श्रीयुत पराड़करजी ने कितने गौरव के साथ अपने सम्पादकीय दायित्व को पूरा किया है।

तदनन्तर पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी द्वारा पुनः समर्थन होने पर करतल-ध्वनि के बीच श्रीयुत पराड़करजी ने सम्पादक सम्मेलन के अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया और अपना निम्नांकित भाषण पढ़ा—

सम्पादक-सम्मेलन

के

सभापति का अभिभाषण

आदरणीय भाइयो,

जिस स्थान पर आपने मुझे बैठा दिया है, उसके लिए मैं अपने को सर्वथा अयोग्य समझता हूँ। यह केवल औपचारिक बात नहीं है जो प्रत्येक सभापति को एक-न-एक रूप में कहनी ही पड़ती है। सम्पादक का आदर्श मेरे सामने बहुत ही उज्वल और ऊंचा है तथा उससे जब मैं अपनी तुलना किया करता हूँ तब अपने को अति तुच्छ पाता हूँ। इसका अनुभव भी मुझे प्रतिक्षण मिला करता है। यही कारण है कि मैंने अपने प्रायः बीस वर्ष के सम्पादकीय जीवन में कभी सर्वसाधारण में आने का साहस नहीं किया। सभा-समितियों से भी यथा-संभव अलग ही रहने का प्रयत्न करता रहा। मेरे कतिपय गुरुजनों और मित्रों के सिवा मेरा नाम भी बहुत कम लोगों ने सुना होगा। पण्डितराज जगन्नाथ का यह उपदेश कि यदि तुम में प्रकृत काव्यशक्ति हो तो उसे प्रकट करो—"नोचेद्दुष्कृतमात्मना कृतमिव स्वान्ताद्वहिर्मा वृथाः" मैं अपने जैसों के लिए ही समझता रहा और स्वकृत पाप के समान अपने आपको ही छिपाये रखने की चेष्टा करने में कभी त्रुटि न होने दी। इसका कारण और कुछ नहीं, अपनी अयोग्यता का अनुभव ही है। जब सम्पादकों के लिए नाम प्रकाशित करना क़ानून ने आवश्यक कर दिया और मेरे मित्र श्री श्रीप्रकाशजी अनेक सार्वजनिक कार्यों से समय न मिलने के कारण "आज" के सम्पादन से अलग हो गये तब वह भार मुझ पर गिरा। तबसे मैं डरते-डरते अपना नाम प्रकाशित करने लगा। मुझे आश्चर्य तो यह था कि श्रद्धेय पण्डित महाबीरप्रसाद द्विवेदी, पण्डित माधवराव सप्रे, मेरे सुयोग्य मित्र पंडित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी तथा और अनेक कृत-कार्य सम्पादकों के रहते यह

पद ग्रहण करने का अनुरोध मुझसे क्यों किया गया। मैं समझ गया कि 'अभावे शालि चूर्णं वा" न्याय से मुझे ही यह कार्य करना पड़ेगा। इतने बड़े आदर से मुँह मोड़ना भी प्रतिभाशाली पुरुषों का ही कार्य है, वह मुझसे न हो सका। नम्रतापूर्वक आपके सामने उपस्थित हो गया। अब भरोसा केवल आप लोगों के भ्रातृप्रेम का है। आशा है, इससे निराश न होना पड़ेगा।

इस पराधीनता की अवस्था में हमारे सब काम कृत्रिम हुआ करते हैं। स्वाभाविक तो यह है कि पहले अभाव का अनुभव हो, आवश्यकता उत्पन्न हो जाय और बाद उसकी पूर्त्ति के लिये संस्था स्थापित की जाय। ऐसी संस्था देखते देखते सफल हो जाती है। इस नियम के अनुसार ही संसार में समाचार-पत्रों का जन्म हुआ था। और देशों की बात तो मैं नहीं जानता इँगिलस्तान में इसका वस्तुतः क्रम विकास हुआ है। लंडन से दूर रहनेवाले अमीर उमरा शाही दरबार के समाचार जानने के लिए वहां अपने संवाददाता रखते थे। वे उन्हें प्रति सप्ताह वा प्रति मास दरबार के समाचार लिख भेजते थे। इसकेअनन्तर इस तरह के पत्र भेजने की वृत्ति के ही कुछ लेखक उत्पन्न हो गये जो हम सम्पादकों के आदि पुरुष कहे जा सकते हैं। ये लोग एकाधिक सरदारों को पत्र भेजने लगे। इससे सरदारों को कम ख़र्च में अधिक समाचार मिलने लगे और और पत्र-लेखक किसी एक की नौकरी न करके भी अधिक धन उपार्जन करने लगे। इङ्गलिस्तान तथा यूरोप के अन्य देशों से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण सरदार लोग यूरोपीय समाचार जानने के लिए भी उत्सुक रहा करते थे। उत्साही पत्र-लेखक उन की यह इच्छा भी पूर्ण करने लगे। मुद्रा-यंत्र आविष्कार के बाद पत्र भेजे जाने लगे। अनन्तर बाजार में बेचे जाने लगे। इस प्रकार समाचार-पत्रों का जन्म हुआ। मुद्रायंत्र, तार और काग़ज़ बनाने के कारख़ानों की उन्नति के साथ पत्रों की भी उन्नति हुई। रेल, जहाज़ और डाक-विभाग से भी सहायता मिली। इसी का फल यह है कि समाचार-पत्र राज्य के चतुर्थ अङ्ग समझे जाने

लगे। इस स्वाभाविक क्रम से वहाँ समाचार-पत्रों का विकास हुआ। पराधीन भारत में उल्टी गंगा बहने लगी। इङ्गलिस्तान की नक़ल करके यहाँ पहले पत्रों की सृष्टि की गयी और बाद उनकी आवश्यकता उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाने लगा। यही कारण है कि स्वर्गवासी पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र आदि हिन्दी के आदि सम्पादकों को लेखन, कम्पोज़ और मुद्रण के सिवा कभी-कभी ग्राहकों के घर जाकर पत्र पढ़कर भी सुनना पड़ता था। यह व्यापारी ढङ्ग है। उत्साही व्यापारी जिस प्रकार नया माल बनाकर उसकी आवश्यकता उत्पन्न करता है उसी प्रकार हमें पत्र निकाल कर उसके पढ़ने की रुचि उत्पन्न करनी पड़ी। जिस ढङ्ग से यहाँ समाचार-पत्र निकले उसी ढङ्ग से सम्पादक-समिति भी स्थापित हो रही है। परमात्मा की प्रेरणा और आप लोगों के प्रयत्न से वह भी सफल हो ही जायगी।

यह युग ही परिवर्तन का है। समस्त संसार में कुछ तो क्रमशः स्वाभाविकता के साथ और कुछ हठात् बलपूर्वक परिवर्तन हो रहा है। इस समय अचल कोई नहीं रह सकता। अचल रहने की चेष्टा करना ही आत्म-विनाश कर लेना है। (अवश्य ही मैं दार्शनिकों की आत्मा की बात नहीं कह रहा हूँ) इस परिवर्तन के चक्र में हमारे समाचार-पत्र भी पड़े हैं। चाहे तो इसे वयःसन्धि कहिये। बाल्य-काल समाप्त होना ही चाहता है। यौवन की झलक दिखाई देने लग गई है, पर बाल्यकाल्य का चांचल्य और सारल्य अभी गया नहीं है। लड़कपन का काल्पनिक स्वराज्य अथवा मनोराज्य अभी कुछ अंशों में उपस्थित है, यौवन की दूरदर्शिता और अध्यवसाय अभी पूर्ण रूप से प्रकट नहीं हुआ है। अभी हम संसार की लीला समझते हैं अभी वह जीवन-मरण की जटिल समस्या नहीं बन गया है। अभी हम व्रजभूमि में हैं; मथुरा नहीं पहुँचे हैं। मथुरा दूर भी नहीं है। मथुरा के गुप्तचरों को हमारा पता लग गया है। और वे हमारे पीछे पड़ गये हैं। व्रज में ही हमें भावी जीवन की जटिलता का, कठिनता का, और क्रूरता का परिचय मिलने लग गया है। लड़कों

की भांति हम नित्य नये दुर्ग बनाते हैं और ढाह देते हैं—प्रायः वे आप ही गिर जाते हैं। गिरकर हमें रुलाते हैं; पर निरुत्साह नहीं करते। दूसरे दिन हम फिर उसी जगह और उसी रेतीली नींव पर क़िला बनाने लग जाते हैं। अनुभव से कुछ सीखते नहीं, कठिनाइयों से डरते नहीं, बिफलताओं से हताश भी नहीं होते। हम हिन्दी-सम्पादकों का सचमुच यह वयःसन्धिकाल है, उत्साहमय है; पर उद्देशहीन है। हम कुछ चाहते हैं, उस प्रिय वस्तु के लिये हृदय व्याकुल भी होने लग गया है पर मालूम नहीं, ठीक क्या चाहते हैं और वह कैसे मिलेगा। मधुकरीवृत्ति से अल्प धन-संग्रह कर दैनिक साप्ताहिक अथवा मासिक पत्र सफलता-पूर्वक चला देना हमारे होनहार सम्पादक बांये हाथ का खेल समझते हैं। अपने छोटे भाइयों का यह उत्साह देखकर हम प्रफुल्ल होते हैं पर उनका शीघ्र ही विफल होना अवश्यम्भावी जानकर मन ही मन दुखित भी होते हैं। बात यह है कि आज हिन्दी में कई अच्छे दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र चल रहे हैं। उनकी सफलता ही नये पत्रों की बिफलता का कारण होती है। वर्षों के परिश्रम और हानि के बाद जो पत्र यह श्रेष्ठ स्थान पा चुके हैं उन्होंने पाठकोंकी रुचि भी बदल दी है। अब इससे घटिया माल बिक नहीं सकता। ऐसा ही माल बनाने के लिए जिस पूँजी और संघटनकी आवश्यकता है वह मालिक-सम्पादक के पास हो नहीं सकती। थोड़ी पूंजी पर पत्र निकालनेवाले अल्प समय में ही हताश हो जाते हैं। गाँठकी खोकर हिन्दी-पाठकों के निन्दक बन जाते हैं। प्रतियोगिता का तत्त्व समझते नहीं। अपरिणामदर्शिताका फल भोगते हैं।

सब अकृतकार्य भी नहीं होते। बिफलता प्रायः उनको मिलती है जिनका उद्देश्य सत् होता है और सन्मार्ग से बिचलित न होकर ही जो सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। पत्र निकालने और वर्षोंतक उसे अपने ख़र्च से चलाने में कितने धनकी आवश्यकता है, इसका ठीक अनुमान न कर सकने के कारण वे जीवन-संग्राम में

टिकने नहीं पाते। ऐसे मालिक सम्पादकों के लिए हम सब दुःखित हैं। पर सभी विफल नहीं होते। थोड़े ऐसे भी हैं जो विपरीत अवस्था में भी कुछ सफलता प्राप्त कर लेते हैं। उनका अध्यवसाय और परिश्रम अनुकरणीय है पर उनके साधनों की प्रशंसा नहीं की जा सकती। मनुष्य स्वभाव की हीनवृत्तियों को उत्तेजन देकर, हिंसा-द्वेष फैलाकर बड़ों की निन्दा कर, लोगों की घरेलू बातों पर कुत्सित टीका-टिप्पणी कर, आमोद-प्रमोद को अभाव अश्लीलता से पूर्ण करने की चेष्टा कर तथा ऐसे ही अन्य उपायों से भी पत्र की बिक्री बढ़ाई जा सकती है। धनियों को रहस्यभेद करने की धमकी देकर, महामूर्ख धनी की प्रशंसा के पुल बाँधकर तथा स्वार्थ विशेषके लोगोंके हित-चिन्तक बनकर भी रुपया कमाया जाता है। कम्पनियाँ बनाकर हिस्सेदारों को धोखा दिया जा सकता है। देश-भक्त बनकर भी स्वार्थ-सिद्धि की जा सकती है। यद्यपि हिन्दी में ऐसे सम्पादकों की संख्या कम है; पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि कुछ ऐसे स्वार्थी भी कार्यक्षेत्र में उतर आये हैं और सम्पादन-कार्य का गौरव नष्ट करने लग गये हैं। इस नये, पर बढ़नेवाले रोग से आत्मरक्षा का प्रयत्न करते रहना हम सम्पादकों का कर्तव्य होना चाहिए। मनुष्य स्वभाव तब तक वही रहेगा जो है, तब तक ऐसे लोग भी इसमें रहेंगे। यह रोग ठहरने के लिये आया है, निर्मूल कभी न होगा। इसीसे मैंने कहा कि प्रयत्न करते रहना चाहिए। चेष्टा न करने से रोग संक्रामक हो जायगा। भावी सम्पादक समिति का यह भी एक कार्य होना चाहिये।

हमारे समाचार-पत्रों की वर्तमान अवस्था यद्यपि सन्तोष-जनक नहीं है, पर भविष्य उज्वल है। पर यही बात सम्पादकों के भविष्य के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती, इसका कारण मैं आगे चलकर बताऊँगा। पहले पत्रों का प्रचार अधिक न होनेके कारणों पर विचार करना आवश्यक है। मेरी अल्प मति के अनुसार इसके प्रधानतः तीन कारण हैं—(१) पत्रों का समाजके प्रतिबिम्ब न होना, (२) धनाभाव और (३) जनता में, विशेष कर हिंदी-भाषियों में सा-

त्वरता का अल्प प्रचार। पत्रों का समाज के प्रकृत जीवन से संबंध न होने को मैं सब से बड़ा बाधक कारण इस लिये समझता हूं कि इसके निराकरण का उपाय बहुत कुछ हमारे ही हाथ में है पर हम उधर ध्यान नहीं देते। समाचार-पत्र समाज के प्रतिबिम्ब भी होना चाहिये और उसे अपने पाठकों के सामने उच्च आदर्श भी रखना चाहिये। समाज की प्रकृति अवस्था का वर्णन, गुणदोष-विवेचन, सुधारमार्ग प्रदर्शन और मनोरंजन ये सब समाचार-पत्रों के कर्तव्य हैं। आजकल हमारे अच्छे सम्पादक आदर्श को ओर ही अधिक ध्यान देते हैं, अपने पत्र को समाज का प्रतिबिम्ब बनाने की ओर बिलकुल ध्यान नहीं देते। विदेशी और अर्द्ध-विदेशी समाचार-समितियां जो समाचार देती हैं वे ही हमारी टीका-टिप्पणियों के विषय होते हैं। समाचार-संग्रह के हमारे अपने स्वतंत्र साधन नहीं हैं। जो समाचार उपयुक्त समाचार-समितियों से मिलते हैं प्रायः वे लड़ाई-झगड़ों के ऊपरी आंदोलनों के ही होते हैं और प्रायः नौकर-शाही रंग में रँगे होते हैं। हम और गहरे जाने का प्रयत्न नहीं करते। हमारे पाठक किन-किन श्रेणियों के हैं, उनकी रहन-सहन कैसी है, उसकी जीविका के साधन क्या हैं, उनको जीवन-संग्राम में किन किन कठिनाइयों से सामना करना पड़ता है, उनका आमोद-प्रमोद क्या है, उनकी रुचि कैसी है, वे क्या सोचते हैं और क्या चाहते हैं, इन बातों का हम संपादकों को बिलकुल पता नहीं रहता। यदि मेरे किसी आदरणीय भाई को इन बातों का ज्ञान हो भी तो उसे कार्य में परिणित होते देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ है। इन बातों का हम पता लगाया करें, लोगों को वही समाचार दें जो वे चाहते हैं और उनके जीवन-संग्राम में सहायक बनने का प्रयत्न करें तो हमारे पत्रों का प्रचार देखते-देखते बढ़ जायगा; समाचार-पत्र पढ़ना लोगों के नित्य जीवन का एक अंग हो जायगा। यह अभाव केवल हिंदी पत्रों में नहीं है, इंडो-इंग्लिश, बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू आदि जिन-जिन भाषाओं के पत्र देखने का अवसर मुझे मिला है उन सबमें यह दिखाई देता है। इंडो-इंग्लिश पत्र तो केवल रौयटर

और असोसियेटेड प्रेस के तारों तथा कुछ निजी संवाद दाताओं के भेजे हुए वैसे ही समाचारों और चिट्ठियों से भरे रहते हैं और विदेशी पत्रों से लेखादि उद्धृत करके सहज में ही अपने-अपने वृहत् कलेवर भर लेते हैं। समाचारपत्रों के तार अंग्रेज़ी में ही भेजे जा सकते हैं, अधिकारियों और अधिकतर नेताओं के व्याख्यान भी अंग्रेज़ी में ही होते हैं। इससे भी उनका कार्य हमसे कहीं सहज हो जाता है। उल्था करना वैसे ही कठिन कार्य है तथा नित्य अविष्कृत होने वाले नये-नये विदेशी शब्दों, भावों और विचारों के कारण वह और भी कठिन हो गया है। इस झंझट से इंडो-इंग्लिश पत्र बचे रहते हैं। उनके सम्पादकों और उपसम्पादकों की विद्या-बुद्धि प्रकट हो जानेकी आशंका बिलकुल नहीं रहती। हम लोगों को यह भय सदा अस्थिर किये रहता है। नये-नये शब्द बनाने का प्रयत्न विशेष रूप से करना पड़ता है। अपने पत्र की भाषा और अंग्रेज़ी दोनों का अच्छा ज्ञाता हुए बिना भारतीय भाषा के पत्रों का उपसम्पादक तो क्या संवाददाता होना भी कठिन है। अंग्रेज़ी पत्रों का कार्य सहज होने पर भी वे समाज के भीतर घुसने का प्रयत्न नहीं करते। सम्भवतः उनके लिए इसकी आवश्यकता भी नहीं है। उनमें जो कुछ छपता है उसी से उनके अंग्रेज़ी शिक्षित भारतीय पाठकों के कृत्रिम जीवन की आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती हैं, वे उसी से संतुष्ट हो जाते हैं।

हम हिंदी सम्पादकों का कार्य बहुत कठिन है। गोंददानी और कैंची हमारी सहायता नहीं कर सकती। करती भी है तो बहुत कम। हमारा संबंध केवल उन लोगों से नहीं है जिन्होंने पाश्चात्य शिक्षा पाकर भारतीय समाज से, एक प्रकार से, सम्बन्धत्याग कर दिया है। उनके कृत्रिम जीवन की आवश्यकताएँ इन कृत्रिम इंडो-इंगलिश पत्रों से पूरी हो जाती हैं। हमारा संबंध प्रत्यक्ष समाज से है, और उसका चित्र हम कहीं से चुराकर नहीं ला सकते। वह हमें स्वयम् खींचना पड़ेगा। इसमें हम जितनी कुशलता दिखा सकेंगे, जितनी अधिक गहराई में जायँगे, उतनी ही अधिक सफलता प्राप्त होगी।

अंग्रेज़ी पत्रों की सहायता से, सनसनी पैदा करनेवाले समाचारों के चित्र-विचित्र आविष्कारों से, बड़े-बड़े और रोंगटे खड़े कर देने वाले शीर्षकों से कुछ सफलता अवश्य मिलती है। मेरा अनुमान है कि इन साधनोंका जितना उपयोग किया जा सकता है उतना हम कर चुके हैं, इनसे अब और अधिक सफलता की आशा नहीं जा सकती। राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक आंदोलनों से भी हम बहुत लाभ उठा रहे हैं और उठाते रहेंगे। पर इन आंदोलनों से संबन्ध रखनेवालों की संख्या अधिक नहीं है। हम जब तक साधारण समाज को न अपनावेंगे और अपने पत्रों को उसके प्रतिबिम्ब न बना सकेंगे तब तक न हमारी उन्नति ही होगी और न हम प्रकृत देश सेवा ही कर सकेंगे। अमेरिका और इङ्गिलस्तान के दैनिक पत्र देखने का अवसर मुझे मिला करता है,उन्हें देखकर आश्चर्य होता है। प्रत्येक श्रेणी के और हरेक पेशेके स्त्री-पुरुषों के काम की और मनोरंजन की बातों से वे भरे रहते हैं। वे इतने बड़े होते हैं कि एक आदमी १६ घन्टे में एक पत्र आदि से अन्त तक पढ़ नहीं सकता। अपने-अपने काम की अथवा आमोद की साधारण बातें ही पढ़कर लोग दैनिक पत्र फेंक देते हैं। हमारे पत्र भी यदि ऐसे हों तो उनके ग्राहक विलायती पत्रों के ग्राहकों की अपेक्षा दुगने हो सकते हैं। जिस भाषा के बोलनेवालों की संख्या १२ करोड़ से अधिक हो उसके एक भी दैनिक पत्रके ग्राहक पचीस हज़ार न हों, यह वस्तुतः हम सम्पादकों के लिये लज्जाकी बात है। इसके लिए पाठकों को दोष देना व्यर्थ है। समाचार-पत्र पढ़ने की रुचि उत्पन्न करना भी तो हमारा ही काम है। इस के लिए आज तक हमने जो कुछ किया है वह प्रशंसनीय है, पर हमारे प्रकृत कार्य का अभी आरम्भ भी नहीं हुआ है। यदि कुछ उत्साही लेखक और कार्यकर्ता मिलकर पहले एक ही ज़िलेका अच्छी तरह अध्ययन करें, प्रत्येक तहसील और बड़े-बड़े ग्रामों में शिक्षित और चतुर संवाददाता नियुक्त करें और ग्राम-ग्राममें पत्र पहुँचाने के साधनों का प्रबन्ध करके एक

साप्ताहिक पत्र निकालें, वह पत्र प्रधानतः अपने ही ज़िले के समाचारों को छापा करे, अपने पाठकों के सामाजिक जीवन का चित्र खींचा करे, उनके सुख-दुःख की प्रतिध्वनि किया करे, साथ-ही-साथ उन्हें थोड़े में अखिल भारतीय और जगद्व्यापी प्रश्नों का भी परिचय देता रहे, तो निस्संदेह उसका प्रचार एक ही ज़िले में इतना अधिक होगा जितना आजकल के अच्छे अच्छे हिन्दी-पत्रों का प्रचार सारे भारत में नहीं है। एक अनुभवी सम्पादक, तीन-चार सुशिक्षित और तरुण सहायकों और अनेक विश्वासभाजन तथा सूक्ष्मदर्शी संवाददाताओं का यह काम है। तीन-चार सहायकों का कार्यालय में बैठकर ही काम करना आवश्यक नहीं है। ऐसे साप्ताहिक के लिए कार्यालय में एक सहायक यथेष्ट है, अन्य सहायक भिन्न-भिन्न तहसीलों में रहें, वहां के सम्वाददाताओं का निरीक्षण भी करें, सम्पादकीय टिप्पणियां लिखें और पत्र के प्रचार में व्यवस्थापककी भी सहायता करें। इस प्रकार का संघटन करने में समय लगेगा पर सफलता भी आशातीत होगी। वह पत्र सच्चा समाचार-पत्र होगा।

संघटन में समय लगेगा और धन भी। परिश्रमी कार्य-कर्ता मिल जायँगे; पर यथेष्ट मिलना कठिन है। इसीलिये धनाभाव को मैंने पत्रों के प्रचार का दूसरा बाधक कारण बताया है। मालिक सम्पादक का समय गया। इसके लिए हम दुःखित अवश्य हैं, क्योंकि हमारी स्वतंत्रता कम हो रही है तथा और भी होगी। परन्तु हमें यह जानकर संतोष मान लेना चाहिए कि यह हमारे ही परिश्रम का स्वाभाविक फल है। पहले के सम्पादकों की तरह आज हमें कम्पोज, मुद्रण और वितरण नहीं करना पड़ता है। पत्रों का प्रचार बढ़ जाने के कारण स्वभावतः श्रम-विभाग भी हो गया और भिन्न-भिन्न लोग यह सब काम करने लग गये। पूर्व सम्पादकों के ही परिश्रम का यह फल है कि आज हिंदी में कई दैनिक पत्र सफलता-पूर्वक निकल रहे हैं। पर उनकी स्वतंत्रता हमें उस समय भी प्राप्त नहीं थी जब सन् १८०६

ईसवी में मैं "हिन्दी-वंगवासी" का सहकारी-सम्पादक बनकर कलकत्ते गया था। पत्रों की उन्नति के साथ-साथ श्रम-विभाग हो गया था। मुद्रक और व्यवस्थापककी स्वतंत्र सृष्टि हो गयी थी और इसीके परिणाम में सम्पादक परमुखापेक्षी बन गये थे। अब अधिक विभाग का समय आ गया है। पत्र निकालने का व्यय इतना बढ़ गया है कि लेखक केवल अपने ही भरोसे इसमें सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। धनियों का सहयोग अनिवार्य हो गया है। दस जगह से अर्थ संग्रहकर आप कंपनी बनावें अथवा एक ही पूंजीपति पत्र निकाल दे, सम्पादक की स्वतंत्रता पर दोनों का परिणाम प्रायः एक सा ही होता है।

अस्तु। कहने का तात्पर्य यह है कि पत्रों की उन्नति के साथ-साथ पत्रों पर धनियों का प्रभाव अधिकाधिक परिणाम में अवश्य पड़ेगा। अभी तो धनी अपने अप्रत्यक्ष स्वार्थ से अथवा क्वचित्, शुद्ध देशभक्ति से प्रेरित होकर इस काम में धन लगाते हैं। आर्थिक दृष्टि से समाचार-पत्रों की सफलता दृष्टिगोचर होते ही व्यापारी इसमें लाभ करने की दृष्टि से पड़ने लग जायंगे। यह भी हमारे ही परिश्रम का स्वाभाविक परिणाम होगा। समाचार-संग्रह के लिए जितना ही अधिक व्यय किया जायगा पत्र के ग्राहक उतने ही बढ़ेंगे। ग्राहक बढ़ेंगे पर सारा ख़र्च उनसे वसूल न हो सकेगा। वैसा करने से मूल्य की अधिकता प्रचार में बाधक होगी। व्यय बढ़ाना व्यर्थ हो जायगा। अँगरेज़ी के बड़े बड़े समाचार-पत्र, क्या भारत में और क्या भारत के बाहर, लागत से कम दाम में ग्राहक को दिये जाते हैं। हिन्दी-पत्र भी लागत की चरमसीमा तक पहुँच गये हैं। अब यह आवश्यकता हो गई है कि मूल्य लागत से कम दिया जाय। अर्थात् पत्र के व्यय और लाभ के लिए विज्ञापनों की आय पर हमें अधिकाधिक परिणाम में निर्भर रहना पड़ेगा। यह निर्भरता जितनी ही बढ़ेगी उतनी ही लेखनपटु सम्पादक की स्वतंत्रता घटेगी और कार्यकुशल व्यवस्थापक की बढ़ेगी। बड़े-बड़े विज्ञापनदाताओं की

सहायता के बिना बड़े-बड़े पत्र निकल नहीं सकते। विज्ञापनों से होनेवाला लाभ व्यापारियों के ध्यान में जितना ही अधिक आता है वे उतना ही अधिक विज्ञापन देते हैं और समाचार-पत्रों पर अधिकार जमाने का प्रयत्न भी करते हैं। अन्य व्यापार करने वाले सज्जन अपने कार्य में सहायता पाने के लिए स्वतंत्र पत्र भी निकालते हैं। कुछ दिन के बाद साधारण विज्ञापनदाताओं का अर्थात् पूंजीपतियों का इतना अधिक प्रभाव पत्रों पर पड़ता है कि उनकी सहायता के बिना पत्र निकालना सर्वथा असम्भव हो जाता है। इसका बहुत अच्छा उदाहरण लंडन का "डेली हेराल्ड" है। ब्रिटेन से सुसंघटित बहुसदस्यसम्पन्न और प्रभावशाली श्रमजीवी-दल का यह एकमात्र दैनिक पत्र है। इसके ३॥ से ४ लाख तक ग्राहक भी हैं। पर इसका ख़र्च इससे नहीं निकलता। कई बार श्रमजीवी दलने चन्दा करके अपने इस एकमात्र पत्र को अकाल मृत्यु से बचाया है। जिस पत्र के ३॥-४ लाख ग्राहक हों वह अपना व्यय आप क्यों नहीं चला सकता, यह बात सोचने की है। ब्रिटेन में लागत से कम दाम पर बेचे बिना ख़रीदार नहीं मिलते। लागत से कम में बेचने से ग्राहक बहुत होजाते हैं और ग्राहक बढ़ने से विज्ञापन मिलते हैं। ग्राहकों से होनेवाली हानि विज्ञापनों से पूरी की जाती है। "डेली हेराल्ड" को ग्राहक तो मिल गये पर विज्ञापन नहीं मिला; क्योंकि वह पूंजीपतियों का विरोधी है। इसीसे उसे बार-बार हानि उठानी पड़ी।

हम सब सम्पादक पत्रों की उन्नति चाहते हैं। पर हमें स्मरण रखना चाहिए कि इस उन्नति के साथ-साथ हमारी स्वातन्त्र्य-हानि आवश्यम्भावी है। उन्नति व्यापारी ढंग से ही हो सकती है। इसके लिए पूँजीपति और संचालक व्यवसाय की आवश्यकता है। इनके कथनानुसार और भी पत्र का संपादन करना असम्भव हो जाता है। इंग्लैण्ड और अमेरिका के पत्रों में स्पष्ट देखा जाता है कि उनके समाचारस्तम्भ, मनोरंजनस्तम्भ और व्यापारस्तम्भ जितने ही अच्छे हो रहे हैं उनके सम्पादकीय स्तम्भ उतने ही निकम्मे बनते

जा रहे हैं। लंडन के "टाइम्स" जैसे दो-तीन पत्र इसके अपवाद हैं, पर साधारण नियम वही है जो ऊपर बताया जा चुका है। एडिटर की अपेक्षा मैनेजिंग-एडिटर का प्रभाव और गौरव अधिक बढ़ गया है। भावी हिन्दी-समाचार-पत्रों में भी ऐसा ही होगा। पत्र निकालकर सफलता-पूर्वक चलाना बड़े-बड़े धनियों अथवा सुसंघटित कम्पनियों के लिए ही सम्भव होगा। पत्र सर्वाङ्ग-सुन्दर होंगे, आकार बड़े होंगे, छपाई अच्छी होगी, मनोहर मनोरंजक और ज्ञानबर्द्धक चित्रों से सुसज्जित होंगे, लेखों में विविधता होगी, कल्पकता होगी, गम्भीर गवेषणा की झलक होगी; और मनोहारणी शक्ति भी होगी, ग्राहकों की संख्या लाखों में गिनी जायगी। यह सब कुछ होगा; पर पत्र प्राणहीन होंगे। पत्रों की नीति देशभक्त, धर्मभक्त अथवा मानवता के उपासक महाप्राण सम्पादकों की नीति न होगी—इन गुणों से सम्पन्न लेखक विकृत मस्तिष्क समझे जायँगे, सम्पादक की कुर्सी तक उनकी पहुँच न होगी। वेतन-भोगी सम्पादक मालिक का काम करेंगे और बड़ी खूबी के साथ करेंगे। वे हम लोगों से अच्छे होंगे। पर आज भी हमें जो स्वतन्त्रता प्राप्त है वह उन्हें न होगी। वस्तुतः पत्रों के जीवन में यही समय बहुमूल्य है। इङ्गलैण्ड और अमेरिका के पत्रों ने उन्हीं दिनों सच्चा काम किया था। जब उनके आकार छोटे थे, समाचार कम होते थे, ग्राहक थोड़े होते थे पर सम्पादक की लेखनी में ओज था और प्राण था। उन देशों की इस उन्नति के बहुत कुछ कारण वे ही सम्पादक थे जिनसे धनी घृणा करते थे, शासक क्रुद्ध रहा करते थे, जो हमारे ही जैसा, एक पैर जेल में रखकर धर्म-बुद्धि से पत्र-सम्पादन किया करते थे। उनके परिश्रम से और कष्ट से उन्नति हुई; पर उनके वंश का लोप हो गया। अब संचालक और व्यवस्थापक सर्वेसर्वा हैं, सम्पादक कुछ नहीं हैं। इस इतिहास से हमें उपदेश ग्रहण करना चाहिए। समय रहते सावधान हो जाना चाहिए और इस अवसर का ऐसा सदुपयोग कर जाना चाहिये कि भावी पीढ़ियाँ प्रेमके साथ हमारा स्मरण करें।

मैंने पीछे कहीं कहा है कि समाचार-पत्र के दो मुख्य धर्म हैं, एक तो समाज का चित्र खींचना और दूसरे उसे सदुपदेश देना। चित्र के सम्बन्ध में मैं बहुत कुछ कह चुका। उसके बिना हमें प्रकृत सफलता मिल नहीं सकती। पर हमारा दूसरा कार्य—लोकशिक्षण हमारा सच्चा धर्म है। इसी के द्वारा हम देश की और जनता की सच्ची सेवा कर सकते हैं। जनता के विचारों पर हमारे लेखों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि हममें योग्यता हो और सचमुच हम कुछ देश-सेवा करना चाहते हों तो हमें अपने पत्रों में सदा सब प्रकार से उच्च आदर्श को स्थान देना चाहिए। सदाचार को उत्तेजन देकर कुरीतियों को दबाने का प्रयत्न करना चाहिए। पत्र बेचने के लाभ से अश्लील समाचारों को महत्व देकर तथा दुराचरण-मूलक अपराधों का चित्ताकर्षक वर्णनकर हम परमात्मा की दृष्टि में अपराधियों से भी बड़े अपराधी ठहर रहे हैं, इस बात को कभी न भूलना चाहिए। अपराधी एकाधपर अत्याचार करके दण्ड पाता है, और हम सारे समाज की रुचि बिगाड़कर आदर पाना चाहते हैं। विचार कीजिए, हम कितना बड़ा पाप कर रहे हैं। राजविधान हमें अपराधी न ठहरावे, पर राजाधिराज का विधान हमें पापी ठहराये बिना न रहेगा। भ्रातृ-भाव से मैं आप सब सम्पादकों से प्रार्थना करता हूँ कि परमेश्वर ने आपको जो बड़ा पद दिया है, उसका सदुपयोग कीजिए, और समाज को सदा उन्नत करते रहना अपना धर्म समझिए। पूर्व पुण्य-बल से ही ऐसा सुअवसर मिलता है। इसका सदुपयोग कर आप स्वयं धन्य होइए और जननी जन्मभूमि का मुख संसार में उज्ज्वल कर जाइए। इस काम के लिए अच्छे-से-अच्छे और विद्वान्-से-विद्वान युवकों की आवश्यकता है। मैं चाहता हूँ कि ऐसे युवक इस काम में आवें और जब तक सम्पादक पराधीन नहीं हो गये हैं तब तक ही इस साधन का उपयोग कर लें। समय थोड़ा है, काम बहुत है। सुशिक्षित विद्वानों की ही आवश्यकता है। आजकल जिसका जी चाहता है वह सम्पादक बन बैठता है। स्वयं कुछ भी ज्ञान न हो, संसार का उपदेशक बन

जाता है। इससे हिन्दी-पत्रों की हँसाई हो रही है। मेरे मत से सम्पादक में साहित्य और भाषा-ज्ञान के अतिरिक्त भारत के इतिहास का सूक्ष्म और संसार के इतिहास का साधारण ज्ञान तथा समाज-शास्त्र, राजनीति-शास्त्र, और अन्तर्राष्ट्रीय विधानों का साधारण ज्ञान होना आवश्यक है। अर्थ-शास्त्र का वह पण्डित न हो, पर कम-से-कम भारतीय और प्रान्तीय बजट समझने की योग्यता उसमें अवश्य होनी चाहिए। भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से निकलनेवाले पत्रों के सम्पादकों में उन भिन्न विषयों का विशिष्ट ज्ञान होना भी आवश्यक है। पर ऊपर जो विषय बताये गये हैं उनका साधारण ज्ञान प्राप्त करके यदि थोड़े से भी युवक अनुभवी सम्पादकों की अधीनता में कुछ दिन काम करें तो निःसंदेह वे अपने गुरु से आगे बढ़ जायँगे और हिन्दी-पत्रों के साथ देश की भी कुछ-न-कुछ उन्नति ही कर जायँगे।

मैं आप लोगों का अधिक समय न नष्ट करूँगा। अबतक जो कुछ कहा गया है उससे सम्पादक-समिति के कार्यों के सम्बन्ध में मेरे मतों का कुछ आभास मिल जायगा। मैं चाहता हूँ कि मेडिकल कौंसिल के समान यह समिति सम्पादन-कला को उत्तेजन देने का प्रबंध करे, सम्पादकों के साधारण धर्मों का निर्द्धारण कर उनका पालन सबसे करावे, विरुद्धाचरण करनेवाले को दण्ड भी दे। वकील, डाक्टर तथा अन्य सब पेशा के लोगों के आचरण का एक आदर्श होता है, क्या सम्पादक ही उच्छृंखल होकर संसार का अनिष्ट करते रहेंगे? हमें स्वयं ही मिलकर अपना आदर्श ठहराना चाहिए। यदि हम सब चाहें तो यह कार्य सम्पादक-समिति के द्वारा करा सकते हैं। सम्पादकों के स्वत्वों की रक्षा करना, पत्र-सम्पादन के मार्ग के विघ्न दूर करने का प्रयत्न करते रहना, आपस के झगड़े का निपटारा कर देना, विपत्ति-ग्रस्त सम्पादक की सहायता करना, डाक और तार की सुविधाएँ बढ़ाने और बाधाएँ दूर करने का प्रयत्न करना, इत्यादि अनेक काम हैं जिन्हें हम संघटित रूप से कर सकते हैं। इससे अधिक सूचना मैं भाषण में नहीं दे

सकता। आप सब मिलकर इस पर विचार करें और सम्पादक-समिति के लिए एक नियमावली तैयार करलें। प्रार्थना केवल इतनी ही है कि यदि वस्तुतः आप इसके अभावका अनुभव करते हों तो प्राणपण से इसके संघटन में लग जाइए, अन्यथा व्यर्थ परिश्रम कर उपहास्य न बनिये।

भाइयो, मुझे जो कुछ कहना था कह चुका, इसी का विस्तार बहुत किया जा सकता है। पर लेखनपटु और कार्य-कुशल सम्पादकों के सामने विस्तार करने की आवश्यकता ही क्या है? इसमें तो आप और हम सिद्धहस्त हैं। विषय का सम्पूर्ण अभाव हो और विचार का ख़ज़ाना बिलकुल ख़ाली हो गया हो तोभी जिन्हें नित्य नियमित समय पर स्तम्भ-में-स्तम्भ रँगने पड़ते हैं, उनके सामने शब्दों का जाल बिछाकर एक को भी फँसाने का दुस्साहस मैं नहीं कर सकता। जो कुछ कहना था, थोड़े में निवेदन कर दिया है। दोषों और त्रुटियों के लिए आप लोगों से नम्रता-पूर्वक क्षमा-प्रार्थना करता हूँ। जो पुण्यभूमि भारत भरके कवियों की स्फूर्तिरूपिणी है, जहाँ से निकलनेवाली निर्मल भक्ति की धारा आज भी संसार-तप-तप्तों को शान्ति प्रदान करती है, तथा कर्म और त्याग के विरोध का निराकरण कर सारे संसार को इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण का निरापद मार्ग दिखानेवाली, गीता के उपदेशक ने जिस भूमि को अपनी सुमधुर बाल-लीला से सदा के लिए पूत कर रक्खा है, उसी में यदि इस युग की दुहिता सम्पादन-कला को भी पवित्रता और अमरता प्राप्त हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। मैं इसे संभव समझता हूँ और मेरा विश्वास है कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की असीम कृपा से यह सत्य ही होगा।

मि० एड्रयूज़ का सन्देश

सभापतिजी के इस उपर्युक्त भाषण के अनन्तर भारत-भक्त मि० एन्ड्रयूज़ का निम्नलिखित सन्देश श्रीयुत पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने सुनाया—

'आज के सम्पादक, अपने मित्र श्रीबाबूराव-विष्णुरावजी पराड़कर की अध्यक्षता में हिन्दी-पत्र-सम्पादकों का जो सम्मेलन हो रहा है उसके लिए मैं एक सन्देश भेजने का साहस कर रहा हूँ। जिस समय यह सम्मेलन हो रहा होगा, मैं दक्षिण-अफ्रिका के मार्ग में हूँगा। सबसे पहले मैं हिन्दुस्तान के देशी भाषा के पत्रों के सम्पादकों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ कि उन्होंने सदैव मेरी उस अपील का, बड़े अच्छे ढंगसे, समुचित उत्तर दिया है जो मैंने प्रवासी हिन्दुस्तान की बहिनों और भाइयों की ओर से की है।

दूसरा अनुरोध मैं यह कर देना चाहता हूँ कि वे अपना उद्योग शिथिल न करें; क्योंकि दक्षिण-अफ्रिका और अन्यान्य भागों में सङ्कट उपस्थित है और उसके लिए सम्पादकों की अधिक आवश्यकता होगी।

देशी भाषा के पत्रों के लगातार उद्योग से इस विषयमें जितनी सहायता मिलेगी उतनी और किसी प्रकार नहीं। यह मेरा निश्चित मत है जो मैंने अपने अनुभव से स्थिर किया है कि और किसी साधन का वैसा प्रभाव इस विषय पर नहीं होता जैसा कि जनताके मत का, जो देशी भाषा के पत्रों से ही प्रकट होता है।

क्या मैं यह कहूँ कि मेरी यह अपील देशकी देशी भाषाओं के पत्रों में भी प्रकाशित की जायगी?'

इसके अनन्तर वेदतीर्थ पं० नरदेवजी शास्त्री ने निम्नलिखित प्रस्ताव उपस्थित किये जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए—

१—"यह संपादक-सम्मेलन सर्वसम्मति से यह निश्चय करता है कि हिन्दी-पत्रोंकी एक सुसंगठित समिति हो जिससे हिन्दी-पत्र संपादक एक सूत्र में बद्ध होकर संपादन-कलाको उत्तेजन देते हुए भारतवर्ष का हित-संपादन करें।

२—निम्नलिखित ४ सज्जनों की एक संयोजक-समिति बनाई जाय—

वेदतीर्थ पं० नरदेवजी शास्त्री, संयोजक पं० बाबूराव-विष्णु-

रावजी पराड़कर, श्रीयुत पं० हरिशङ्करजी शर्म्मा, पं० झावरमल्लजी शर्म्मा तथा श्रीयुत गोपीवल्लभजी उपाध्याय।

इसके बाद एक और प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, जिसमें सम्मेलनकी स्थायीसमिति से प्रार्थना की गई कि वह आरम्भिक व्ययके लिए १००) संयोजक-समिति को दे। सम्पादक-समिति के सदस्य होनेका शुल्क भी ५) स्थिर हुआ।

सम्मेलन का सोलहवाँ अधिवेशन] आनन्दकन्द भगवान् श्री कृष्ण-चन्द्र की लीला-भूमि—वृन्दावन—में अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सोलहवाँ अधिवेशन सकुशल और सानन्द हो गया। सम्मेलन के इस अधिवेशन को कैसी सफलता मिली, इस पर कुछ लिखना हमारा कार्य नहीं। यह जिनका कार्य्य है, उन्हीं से होना चाहिए। तदनुसार हुआ भी। हिन्दी के अनेक पत्रों ने सम्मेलन के इस अधिवेशन को सफल बतलाया और कुछ पत्रों ने उसे असफल भी। कुछ व्यक्तियों ने उसे साहित्यिक बतलाया और कुछ व्यक्तियों को उसमें त्रुटियों और अभावों से पूर्ण असफलता के विविध दृश्य दृष्टिगत हुए। इस स्थल पर, इस विषय पर, हमें कुछ नहीं कहना है। सम्मेलन अखिल भारत-वर्षीय संस्था है। उसका अधिवेशन सफल हो तो समझना चाहिए कि हिन्दी-साहित्य-जगत् की उत्तरोत्तर-वृद्धि हो रही है, उसमें किसी प्रकार की त्रुटि रह गई तो कहना नहीं होगा कि हिन्दी साहित्य-सेवी-वृन्द अपने कर्तव्य का यथाविधि पालन नहीं कर रहा है। समालोचना ऐसा विषय नहीं है जिस पर कभी, किसी भी दशा में, यह कहा जा सके कि वह यथार्थ में पूर्ण सत्य है और उसको मूल भावना में, वास्तव में, सत्य का ही निवास है। समालोचना के विषय में तो सदा मतभेद रहा है और रहेगा। हमारी धारणा है कि मत-भेद का विचार छोड़कर सेवा-कार्य में तत्पर रहने में ही सेवक का सदा कल्याण है। इसी भाव से प्रेरित होकर हम इस अधिवेशन के विषय में कुछ निवेदन करेंगे।

सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष पं० राधाचरणजी गोस्वामी तथा मनोनीत सभापति पं० अमृतलालजी चक्रवर्ती के भाषण अपनी अपनी दृष्टि से अनोखे, महत्व-पूर्ण, सार-गर्भित और उन सद्विचारों में पूर्ण हैं, जिनकी इस समय हिन्दी-साहित्य-जगत् के लिए अत्यन्त आवश्यकता है। चक्रवर्तीजी के भाषण में उन के उस समादरणीय व्यक्तित्व की छाप है जो हिन्दी साहित्य के विकास के इसयुगके लिए एकनई,किन्तु गौरव की, वस्तुहै। उनका जीवन राष्ट्रभाषा हिन्दी की अर्चना की जिस पवित्र और पूज्य भावना से ओत-प्रोत रहा है, उन्होंने अपने जीवन में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार के जिन महत् साधनों की आवश्यकता का अनुभव किया है और उन्होंने अपने जीवन की प्रत्येक श्वास में भारतीयता, राष्ट्रीयता एवं साहित्य-सेवा के जिस व्यापक भाव को अपने समक्ष-रक्खा है वह उनके शब्द-शब्द से प्रतिध्वनित होता है। वंगभूमि के इस राष्ट्र-सेवक ने हिन्दी माता के अङ्क में पलकर, उसका स्तन्य-पीयूष पान करके, आज ४०-४५ वर्ष बाद हिन्दी-संसार के आगे अपने अनुभव के अमूल्य विचार, कवित्व-पूर्ण भाषा में, प्रस्फुटित कर जो सुधा-धारा प्रवाहित की है वह वास्तव में हिन्दी-जगत् के लिए एक अनोखी और दुर्लभ वस्तु है।

स्वर्गीय पं० राधाचरणजी गोस्वामी ने अपने भाषण में ब्रजभूमि की जो महिमा वर्णन की, न केवल ब्रजभूमि के लिए, वरन् समस्त भारत के लिए, ब्रजभाषा का वह पीयूष-वर्षण, उसके एक महारथी के जीवन-नाटक का वह अन्तिम दृश्य, ऐसा मनोहर और ऐसा मर्मस्पर्शी था कि जिसने उसे अपनी आँखों से देखा है, वे धन्य हैं; जिन्होंने अपने कानों से उसे सुना है वे अब उससे अधिक मधुर, उससे अधिक मर्मस्पर्शी और उससे अधिक कवित्व-पूर्ण कुछ सुनने की आशा न करें।

प्रस्तावों के विषय में इतना लिखना पर्य्याप्त होगा कि उनमें से अनेक ऐसे हैं जिनकी इस समय अत्यन्त आवश्यकता थी। यदि

हिन्दी-संसार उन्हें कार्य का रूप देने में समर्थ हो सका तो उनकी उपयोगिता स्वतः सिद्ध हो जायगी।

प्रो० रमेशचन्द्रजी का लोहे की जंज़ीर तोड़ना, गुरुकुल के एक ब्रह्मचारी का धुनर्विधा के अनेक खेल दिखलाना, कवि-सम्मेलन, शाहजहाँ नाटक तथा रासलीला आदि से प्रतिनिधियों का ३-४ दिन खूब मनोरंजन हुआ। स्वागत-कारिणी-समिति के अधिकारियों की तत्परता, उनका आतिथ्य-प्रबन्ध तथा विनम्र व्यवहार सराहनीय एवं अनुकरणीय था।

☙ ☙ ☙

गोस्वामीजी का स्वर्गारोहण] पूज्यपाद पं० राधाचरणजी गोस्वामी स्वर्गारोहण करने से लगभग एक मास पूर्व वृन्दावन सम्मेलन का जो दृश्य दिखला गये वह हिन्दी-संसार के स्मृति-पटल पर सदा अंकित रहेगा।

हमें उनकी इस अचानक स्वर्ग-यात्रा पर आन्तरिक दुःख है। उनके निधन हो जाने से हिन्दी-संसार को जो क्षति पहुँची है उसकी पूर्ति की कामना करते हुए हमारी भगवान् से प्रार्थना है कि वह उनके पवित्र आत्मा को सद्गति प्रदान करे और प्रियवर अद्वैत-चरण गोस्वामी को अपने पितामह का यह दुखदायक वियोग सहन करने के लिए धैर्य्य।

☙ ☙ ☙

सम्पादक-सम्मेलन] षोड़श हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साथ-साथ सम्पादक-सम्मेलन का अधिवेशन अपना एक विशेष महत्व रखता है। स्वागताध्यक्ष श्रीआनन्दभिक्षु सरस्वती तथा मनोनीत सभापति श्रीयुत पं० बाबूराव-विष्णुरावजी पराड़कर ने अपने महत्व-पूर्ण भाषणों में जो विचार प्रकट किये हैं वे हिन्दी के सम्पादकीय जगत् के लिए वास्तव में उपयोगी और अनुकरणीय हैं। विशेष रूप से पराड़करजी तो सम्पादकीय जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में पूर्ण कृतकार्य्य हुए हैं। उनके गम्भीर विवेचन की जितनी प्रशंसा की

जाय, थोड़ी है। आशा है, हिन्दी-सम्पादक-संसार उनके विचारोंका यथेष्ट आदर करेगा।

सम्पादक-सम्मेलन के इस अधिवेशन में सम्पादक-समिति का संगठन हो गया है। संगठन कैसा हुआ है, यह तो उस समिति का कार्य ही बतलावेगा। पर इसमें सन्देह नहीं कि उसका यह रूप आशा जनक है।

❧ ❧ ❧

आदर्श दान] कलकत्ते के प्रसिद्ध दानवीर बिड़ला-बन्धुओं ने जो अभी काशी-विश्वविद्यालय को ५० हज़ार रुपया सब विषयों की पाठ्यपुस्तकें हिन्दी में तैयार कराने के लिए प्रदान किया है उसके लिए यह सम्मेलन दानी महोदयों को हार्दिक धन्यवाद देता हुआ आशा करता है कि काशी-विश्वविद्यालय के विधाता महोदय शीघ्र ही इस दान का उपयोग करके हिन्दी के एक अभाव की पूर्ति करने में सफल होंगे।

❧ ❧ ❧

अपनी बात] सम्मेलन-पत्रिका का यह अङ्क अनेक असुविधाओं के कारण अत्यन्त विलम्ब से प्रकाशित हो रहा है। हम इस अङ्क में कवि-सम्मेलन का कार्य-विवरण और परीक्षा-फल भी प्रकाशित करना चाहते थे; पर स्थानाभाव से यह सामिग्री इस अङ्क में नहीं दी जा सकी। माघ और फाल्गुन का अंक प्रेस में है। हम अगले इन दोनों अंकों को भी होली तक प्रकाशित करने का यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं। विलम्ब के लिए पाठक हमें क्षमा करें।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

महानुभाव,

आपने सम्मेलन के परीक्षा-विभाग की परीक्षा-सम्बंधी रिपोर्ट से मालूम किया होगा कि हमारे यहाँ मध्यमा की परीक्षा देकर उत्तीर्ण हो जाने के पश्चात् निबन्ध लिखने के कड़े प्रतिबन्ध के कारण अनेक विशारद उत्तमा परीक्षा में बैठने का साहस नहीं कर पाते हैं। मेरे विचार में हर विशारद को उत्तमा परीक्षा देने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। परीक्षा-द्वारा उसकी इस अधिकार-प्राप्ति की योग्यता भी सिद्ध हो जाती है। ऐसी अवस्था में यह प्रतिबंध हटा देना ही अच्छा मालूम होता है।

पिछले वर्ष की परीक्षा समिति की आठवीं बैठक में इस सम्बन्ध का एक मन्तव्य रखा गया था। परन्तु वह आगामी बैठक में विचारार्थ स्थगित कर दिया गया। इस बार भी परीक्षा-समिति के प्रथम अधिवेशन में मैंने उसकी चर्चा की और कार्य-क्रम पर भी वह मौजूद था; परन्तु इस बार भी वह अगले अधिवेशन में विचारार्थ रखा गया।

सम्मेलन की दिन-प्रति-दिन उन्नति के साथ परीक्षाओं का विस्तार, उनको लोक-प्रिय बनाने तथा सामयिक परिस्थिति के अनुसार उनमें हेर-फेर संशोधन आदि करने की बड़ी आवश्यकता है। प्रायः १६ वर्ष कार्य्य कर चुकने के पश्चात् परीक्षाओं को अधिकाधिक मान्य और अग्रसर बनाने का भी प्रयत्न हम लोगों के सामने उपस्थित रहना आवश्यक है। इस प्रान्त तथा अन्य प्रान्तों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी-साहित्य की परीक्षाएँ प्रचलित हो जाने के कारण यह और भी आवश्यक है कि हम इस प्रस्ताव पर प्रत्येक दृष्टिकोण से विचार कर अपना मत प्रदर्शित करें।

ऐसी अवस्था में इस पत्र-द्वारा आपकी सेवा में सविनय प्रार्थना है कि इस प्रतिबन्ध के हटाने के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कर मुझे अनुगृहीत कीजिए।

भवदीय—

शालिग्राम वर्म्मा एम्० ए०, बी० एस्० सी

परीक्षा-मन्त्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

श्रीमङ्गलाप्रसाद-पारितोषिक

श्रीमंगलाप्रसाद-पारितोषिक इस वर्ष विज्ञान विषयक सर्वोत्तम ग्रंथ पर दिया जायगा। गणित, रसायन, भौतिक शास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, कृषि-विज्ञान आदि विषय के ग्रंथ भी इस (विज्ञान) [illegible] के ही अन्तर्गत माने जायँगे। इसलिए इन विषयों के ग्रन्थों [illegible] न प्रतियाँ प्रथम चैत्र शुक्ल १५ सं० १९८३ वि० तदनुसार तारीख २९ मार्च सन् १९२६ वि० तक सम्मेलन-कार्यालय में आ जानी चाहिएँ। हिन्दी-लेखकों तथा प्रकाशकों से सादर निवेदन है कि वे कृपया उपर्युक्त विषयों के ग्रन्थ निश्चित अवधि के भीतर सम्मेलन-कार्यालय में भेजकर मुझे अनुगृहीत करें।

रामजीलाल शर्मा
संयोजक
मंगलाप्रसाद-पारितोषिक-समिति
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

आवश्यकता

सम्मेलन के साहित्य-विभाग के लिए हमें एक ऐसे साहित्यिक सहायक (Literary Assistent) की आवश्यकता है जो पुस्तकों का सम्पादन तथा प्रूफ-संशोधन के कार्य में दक्ष हो। अंग्रेज़ी में कम-से-कम मैट्रिकुलेशन तक की योग्यता अवश्य रखते हों। सम्मेलन के विशारदों के प्रार्थना-पत्रों पर अधिक ध्यान दिया जायगा। वेतन ५०) से ७५) तक योग्यतानुसार। योग्य सज्जन ही पत्र-व्यवहार करें। प्रार्थना-पत्र ३१ मार्च तक आ जाना चाहिए।

साहित्य-मंत्री
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
प्रयाग।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित
और
दीवान वंसधारीलाल द्वारा हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग में मुद्रित

तार का पता—"सम्मेलन" इलाहाबाद रजिस्टर्ड नं० ए. ६२६.

भाग १३ अङ्क २, आश्विन सं० १९८२ वि०

संपादक

वियोगी हरि

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

वार्षिक मूल्य २) प्रत्यंक ≡)

विषय-सूची

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित
सूरजप्रसाद खन्ना के प्रबन्ध से हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग में मुद्रित

सम्मेलन-पत्रिका के नियम

१—'पत्रिका' प्रत्येक मास की पूर्णिमा को प्रकाशित हो जाती है। यदि किसी मास की कृष्णा १० तक उस मास की पत्रिका न मिले, तो पत्र द्वारा सूचना देनी चाहिए।

२—'पत्रिका' का वर्ष भाद्रपद से प्रारम्भ होता है। वर्ष के बीच में, किसी भी मास में, ग्राहक होने पर उस वर्ष के पूर्व मासों के अंक अवश्य लेने पड़ते हैं। डाक-व्यय-सहित पत्रिका का वार्षिक मूल्य २=) है। २) मनीआर्डर द्वारा भेजने से अधिक सुभीता होता है।

३—यदि दो एक मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकखाने से प्रबन्ध कर लेना चाहिये, और यदि बहुत दिनों के लिए बदलवाना हो, तो हमें उसकी सूचना देनी चाहिए, अन्यथा 'पत्रिका' न मिलने के लिए हम उत्तरदायी न होंगे।

४—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें—"सम्पादक सम्मेलन पत्रिका, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र—"प्रचार-मन्त्री हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से और पत्रिका का मूल्य, विज्ञापन की छपाई आदि का द्रव्य "अर्थमंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्ट बाक्स नं० ११, प्रयाग" के पते से आना चाहिए।

५—प्राप्त कविता और लेखों के घटाने, बढ़ाने एवं प्रकाशित करने न करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक को है।

सम्मेलन-पत्रिका में विज्ञापन की दर

	१ मास	६ मास	एक वर्ष
एक पृष्ठ	५)	२५)	४५)
आधा पृष्ठ	३)	१५)	२८)

आवश्यक सूचना

६—सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की बिक्री पर कमीशन की दर निम्नलिखित है—

(क) १०) से नीचे की पुस्तकों पर कुछ भी कमीशन नहीं दिया जाता।

(ख) १०) से २५) तक की पुस्तकों पर दो आना रुपया कमीशन दिया जाता है।

(ग) २५) से ऊपर १००) तक २०) सैकड़ा।

(घ) १००) से ऊपर, २५) सैकड़ा।

(ङ) ५००) या अधिक की पुस्तकें लेने पर तृतीयांश कमीशन अर्थात् ३३।-)४ सैकड़ा।

(नोट) सम्मेलन से सिर्फ सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें बेची जाती हैं; अतः सर्वसाधारण को चाहिए कि वे सम्मेलन से केवल सम्मेलन द्वारा प्रकाशित ही पुस्तकें मगावें। अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें हमारे यहाँ नहीं मिलतीं।

सुलभ-साहित्य-माला की पुस्तकें

हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक—श्री० मिश्रबन्धु

हिन्दी भाषा और साहित्य का क्रमशः विकास कैसे हुआ, उसने कौन-कौन से रूप पकड़े, किन-किन बाधाओं एवं साधनों का उसे सामना करना पड़ा, वर्त्तमान परिस्थिति क्या है, आदि गम्भीर विषयों का पता इस पुस्तक से भलीभाँति चलता है। अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। "मिश्रबन्धु-विनोद" रूपी महासागर से मथनकर यह इतिहासामृत निकाला गया है। यह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा में स्वीकृत है। तृतीय संस्करण, पृष्ठसंख्या १०८, मूल्य ।=)

भारतगीत

लेखक—पं० श्रीधर पाठक

पाठकजी की रसमयी रचना से किस सहृदय साहित्य-रसिक का हृदय रसप्लावित न होता होगा? आपकी गणना वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य के महारथियों में है। आपकी राष्ट्रीय कविता नवयुवकों में जातीय जीवन सञ्चार करनेवाली है। प्रस्तुत पुस्तक पाठकजी के उन गीतों का संग्रह है, जिन्हें उन्होंने समय-समय पर स्वदेश-भक्ति की उमंग में आकर लिखा है। इसकी प्रस्तावना साहित्य-मर्मज्ञ बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने लिखी है। यह पुस्तक राष्ट्रीय विद्यालयों के बड़े काम की है। पृष्ठसंख्या ६४, मूल्य ≡)

भारतवर्ष का इतिहास [प्रथम खण्ड]

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

यह इतिहास प्राचीन और अर्वाचीन काल से सम्बन्ध रखता है। इसमें पूर्व वैदिक काल से सूत्र काल तक अथवा ६०० संवत् पूर्व से ५० संवत् पूर्व तक की घटनाओं का उल्लेख है। अबतक हिन्दी में भारतवर्ष का सच्चा इतिहास एक भी नहीं था। विदेशियों के लिखे हुए अपूर्ण और पक्षपातयुक्त इतिहासों के पढ़ने से यहाँ के नवयुवकों को अपने देश के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक मिश्रबन्धुओं ने बड़ा काम किया है। मध्यमा परीक्षा के इतिहास विषय में यह पुस्तक निर्दिष्ट है। जिल्दवाली पुस्तक का, जिसकी पृष्ठसंख्या ४०६ है, मूल्य केवल १॥) है।

राष्ट्रभाषा

संपादक—श्री 'भारतीय हृदय'

कुछ समय हुआ, महात्मा गांधी ने यह प्रश्न उपस्थित किया था कि, क्या हिन्दी राष्ट्रभाषा हो सकती है? इसके उत्तर में भारत के प्रत्येक

प्रान्त के बड़े-बड़े विद्वानों और नेताओं ने पक्षपात-रहित सम्मतियाँ दी थीं कि निःसन्देह हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने योग्य है। उन्हीं सब अमूल्य सम्मतियों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। इसके विरोधियों का भी यथेष्ट खण्डन हुआ है। इस विषय के व्याख्यानों का भी इसमें सङ्कलन कर दिया गया है। हिन्दीभाषा के प्रेमियों के लिए यह पुस्तक प्राणस्थानीय नहीं तो क्या है ? पृष्ठसंख्या २००, मूल्य ॥)

शिवा-बावनी

महाकवि भूषण के वीररस सम्बन्धी ५२ कवित्तों का उत्तम संग्रह। इन कवित्तों के टक्कर के छन्द शायद ही वीररस के साहित्य में अन्यत्र कहीं मिलें। महाराष्ट्रपति शिवाजी की देशभक्ति और सच्ची वीरता का यदि चित्र देखना हो, तो एक बार इस छोटी सी पोथी का पाठ अवश्य कर जाइए। शब्द एवं भाव-काठिन्य दूर करने के लिये कवित्तों की सुबोधिनी टीका, टिप्पणी और अलङ्कार आदि साहित्य से सम्बन्ध रखनेवाली आवश्यक बातों का इसमें उल्लेख कर दिया गया है। साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा में यह पुस्तक रखी गयी है। पृष्ठ-संख्या ५४, मूल्य ≡)

सरल पिङ्गल

ले०— { श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल, विशारद }

इस पुस्तक में पिङ्गलशास्त्र के गूढ़ रहस्यों को सरल और सुन्दर भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छन्दों के उत्तम उदाहरण भी दिये गये हैं। अन्त में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में दिग्दर्शन करा दिया गया है। पृष्ठ-संख्या ५८, मूल्य ।)

सूरपदावली (सटिप्पण)

श्री सूरदासजी के १०० अत्युत्तम पदों का अपूर्व संग्रह है। मूल्य ।)

भारतवर्ष का इतिहास [द्वितीय खण्ड]

लेखक—श्री मिश्रबन्धु

इसमें ५०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का वर्णन किया गया है। भारतवर्ष के उत्थान-पतन के क्रम का पता इस पुस्तक से जैसा कुछ चलता है, यह पढ़ने से ही मालूम होगा। हिन्दू-समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि जानने योग्य आवश्यक विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः प्राप्त हो सकता है। सुन्दर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठसंख्या ४४०, मूल्य २।)

पद्य-संग्रह

संपादक { श्री ब्रजराज एम० ए, बी० एस-सी., एल्-एल्० बी०
श्री गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस्-सी० }

आधुनिक खड़ी बोली के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियों की कविताओं का सुन्दर संग्रह। ये कविताएँ विद्यार्थियों के बड़े काम की हैं। संग्रह सामयिक और उपादेय है। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के साहित्य में स्वीकृत है। पृष्ठसंख्या १२८, मूल्य ।≡)

संक्षिप्त सूरसागर

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

सूरदासजी-रचित सूरसागर से ·५०० पद-रत्न चुनकर इसमें एकत्र किये गये हैं। जहाँ तक हो सका है, कई प्रतियों से पदों का पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी गयी है।अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और

सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिये लालायित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूरकर हिन्दी-साहित्य-रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य परिचय जोड़ा गया है। उनकी जीवनी की मुख्य-मुख्य घटनाओं का पूरा-पूरा उल्लेख आगया है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएँ भी लिखी गयी हैं। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत है। एण्टिक कागज़ का जिल्ददार संस्करण, पृष्ठसंख्या ४२५, मूल्य २)

विहारी-संग्रह

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

कविवर विहारीलाल की सतसई से प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह छोटा सा संग्रह तैयार किया गया है। जहाँ तक सम्भव हुआ है, इसमें श्रृंगाररस के दोहों का समावेश नहीं किया गया है, किन्तु ऐसे दोहों का संग्रह किया गया है, जो बिना किसी सङ्कोच के बालक-बालिकाओं को पढ़ाये जा सकते हैं। पृष्ठसंख्या ६४, मूल्य ≡)

ब्रज-माधुरी-सार

सम्पादक—श्री वियोगी हरि—इस पुस्तक का विषय इसके नाम ही से प्रकट होता है। इसमें ब्रजभाषा की कविता का सार सङ्कलन किया गया है। इस संग्रह में चार विशेषताएँ हैं:—

(१) इसमें सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के स्वर्गीय सत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का संग्रह किया गया है।

(२) इसमें कुछ ऐसे कवियों की रचनाओं का रसास्वादन भी कराया गया है जो अभी तक कहीं प्रकाशित नहीं हुई थीं।

(३) इस ग्रन्थ में यथेष्ट पाद-टिप्पणियां लगा दी गयी हैं, जिनकी सहायता से साधारण पाठक भी लाभ उठा सकते हैं।

(४) इसके प्रारम्भ में प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवनचरित और उसकी कविता की संक्षिप्त आलोचना भी की गई है।

पृष्ठसंख्या ६३२, मूल्य जिल्दवाले संस्करण का केवल २)

पद्मावत (पूर्वार्द्ध)

सम्पादक—श्री लाला भगवानदीन

यह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत का पूर्वार्द्ध है। इस भाग में पहले खण्ड से लेकर ३४वें खण्ड तक का समावेश हुआ है। सम्पादक महोदय ने इस ग्रन्थ में इतनी पादटिप्पणी लगा दी हैं कि अब इस प्राचीन काव्य का रसास्वदान करना प्रत्येक कविता-प्रेमी के लिए सुलभ हो गया है। अन्त में एक संक्षिप्त शब्दकोश भी जोड़ दिया गया है। पृष्ठसंख्या लगभग २००; मूल्य साधारण जिल्द का १) और जिल्दवाली का १।)

सूरदास की विनयपत्रिका

सम्पादक—श्री वियोगी हरि

यद्यपि 'विनय-पत्रिका' नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ महात्मा सूरदासजी का नहीं है तथापि सूरसागर में विनय सम्बन्धी जो पद मिलते हैं, उन्हीं के आधार पर सौ उत्तमोत्तम एवं मनोरम पदों का संकलन करके इसका 'विनय-पत्रिका' नाम दिया गया है। क्रम तुलसीदासजी की विनय-पत्रिका का रक्खा गया है। अन्त में संक्षिप्त शब्दार्थ भी दे दिया है। पृष्ठ-संख्या ७४, मूल्य केवल ≡)

भाग १३ } आश्विन, संवत् १९८२ वि० { अंक २

कृष्ण साहेब हमारा है

कवित्त

छैल जो छबीला, सब रंग में रँगीला,
बड़ा चित्त का अड़ीला, कहूँ, देवतों से न्यारा है ;
माल गले सोहै, नाक मोती सेत सोहै,
कान मोहै मन कुण्डल मुकुट सीस धारा है।
दुष्ट जन मारे, सन्त जन रखवारे 'ताज',
चित हितवारे प्रेम प्रीति कर वारा है ;
नन्द का दुलारा, जिन कंस को पछारा,
वह वृन्दाबनवारा कृष्ण साहेब हमारा है॥

—ताज

अनुराग-वाटिका

पद

अब लौं कहाँ रहे तुम प्यारे ?
एते निठुर होय हम सों क्यों रहे आजु लौं न्यारे ॥
जानत हुतो कौन, तुम औचक मिलि जैहौ निरमोही !
लैहौ इमि अपनाय आपुनो छिन में जनम-बिछोही ॥
लीनों किमि पहिचानि, लाड़िले, लाखन में यह नेही ।
आय गई कब की सुधि कैसे देखत भये विदेही ॥
दीठि मिलावत ही इत लालन, काहे भये छकेसे ?
छलकि परीं अँखियाँ रतनारी, चितवत रहे थकेसे ॥
कै अपबस या मन कों मन कौ कैसो मरम सुनायो !
रह्यौ न मन मन कौ, मनमोहन, मानत नाहिं मनायो ॥
भई भली यह भेंट, भावते, फली मनोरथ-बेली ।
कहि न जाति हरि या रस-महिमा, जानति प्रीति अकेली ॥

❧ ❧ ❧

बिसराये बिसरत नहिं वह छिन ।
ना जानै धौं कहा मोहिनी
गेरी ही, मोहन, तुम वा दिन ॥
आयो हुतो कोइ तुमरे ढिँग
बिदा माँगिबे गहि पग लालन !
वा तन चितए बिहँसि रँगीले !
दृग फँदाइ लीने रस-जालन ॥
रह्यौ ठिठकि वह चित्र-लिख्यो सो,
ललित लाहु लहि लाग्यो ललकन ।
डबडबाय आईं दोउ अँखियाँ,
मादक-रस लाग्यौ तहँ छलकन ॥

कहा मिलन औ बिछुरन कैसो,
भेद न जानि पर्‌यौ मनभावन !
कहा भयो हरि तुमहु न जानत,
गये भूलि सरबस स्यामलघन ॥

❦ ❦ ❦

लालिये लालन के पद-कंजु ।
बड़े भाग जो मिले आजु ए मृदुल मनोहर मंजु ॥
अतिसै अरुन ललित लचकीले कुसुम-कलित रसकंद ।
सदा राखिबे जोग लोयननि उदित नवल नख-चन्द ॥
क्यों न भयौ मन कौ मन मेरो मधुकर मत्त अनन्य ।
ललकि-ललकि लहि सरस-सुधा-रस ह्वै जातो यह धन्य ॥
छिन न छाँड़िये या छलिया के दुरलभ चरन-सरोज ॥
रहिये गोय रङ्क-धन ज्यों हरि रसनिधि-रमन-मनोज ॥

❦ ❦ ❦

देखौ आजु प्रेम-रस-बेली ।
परम पुरातन पुनि उलही लहलही निकुञ्ज-नवेली ॥
प्रफुलित फलित भई पुनि वैसेहि बिगलित लता हमारी ।
कितते आय गयौ एतो रस उमगि चली भरि क्यारी ॥
कहा छिरकि दीनों हिय-घट तें यापै प्रान-दुलारे ।
सरस परस कीनों यह कैसो जात कह्यौ नहिं प्यारे ॥
अब लौं कित संपुटित रही यह मादकता गरबीली ॥
दीनी डारि मोहिनी, लालन, कहा आजु उरझीली ॥
मत्त मधुप मँडरात मञ्जु मुद गुञ्जत चहुँ रस-भूले ।
बहत समीर मलय-सुरभित क्यों सबै आजु अनुकूले ॥
गोपनीय नहिं रह्यो रहसि कछु कली-कली अब फूटी ।
भली भावते भेंट भई हरि निगम-अगम निधि लूटी ॥

———

हमारे एही मौज घनी ।
जब कब देखैं मान तिहारो हो ब्रजराज-धनी ॥
तेरे या रूसन ही तें हम नीरस मोहि रहे ।
लागत मधुर मौन हू तेरो रिस-छवि जोहि रहे ॥
मिलिबो करै दरस-रस कैसेहु तेरा रंग चढ़ै ।
दरदवन्त रोगिल अँखियन की कैसेहु कसक कढ़ै ॥
तेरे मिठबोलन पै लालन कौन प्रतीति करै ।
यातें भलो रूठिबो तेरो तो सँग हरि झगरै ॥
[क्रमशः]
वि० ह०

—:०:—

सूरदास

भावति निकाई औ पदनि प्रौढताई सुद्ध
रस रुचिराई बनी ज्ञान-चित्रसारी सी ।
रीति रसवारी मानो अमीरस ढारी,
कविताई की पिटारी मन भावना हँकारी सी ।
हियके हुलास सी वियोग औ विलास लसी,
सब गुनखानि अनुप्रास-कलाकारी सी ।
सुन्दर सरस सरसुती सी प्रतच्छ दिपै,
हिन्दी-नभ माहिं सूर-कविता उज्यारी सी ।
—उदयशंकर भट्ट

मंगल-गीति

तो-गुन-गाम निवास करें नितही उठिकें बिरदावलि गामें ।
पूरन-साध-भरी यह आँजुरी छाँड़ि तुम्हैं भला का पै चढ़ामें ।
कै वुह साँवरो कै पुनि तूँ बस और न काहु सों नेह लगामें ।
कीजै कृपा वृषभानलली हम तेरी गली के गुलाम कहामें ।

मदिरा

(गीति)

अयि ! प्रवाल अधरनि पै पावन-मादकता कौ स्रोत बहै,
फेनिल-प्याले कौं जुठारि दै क्यौं सँकेत सँकोच गहै।
बन्यौ रहै तुव-मदिरा कौ मद, पुनि पीबे की बानि रहै।
भूलि जाहुँ आपुनपौ चाहै, पै तेरी पहिचानि रहै।

(२)

पियत-पियत ही पलक झुकैं अँखियनि मैं छा जावै लाली,
ल्यावौ बड़ी पुरानो मदिरा भरे जाहु मेरी प्याली।

विरहिणी

(गीति)

हे निकुंज की लता माधवी ! मैं तोसों पूछहुँ आली !!
गैल बताउ मोहिं वा लँग की ? जितै गये हैं बनमाली।
'मैं व्याकुल डोलों-ज्यों सन्ध्या; मृग बिनु देखि मृगी भय-भीत;
होति अबेर सिरान्यो जावै मानस साध-भर्‌यो संगीत।

(२)

झुकी जाति रसबस तूँ तौ अमि ! प्रीतम सँग करि रही विलास।
विनय अनसुनी करै सजनि मति, आस बाँधि आई तुव पास।
दखिन-द्वार तै आवनहारी मंद-मंद मृदु मलय समीर।
तोहिं फबति नीकी पै पिय बिनु, मोहिं बनावै परम अधीर।

(३)

पै सुहाग-मद-माती झूमै पिय-हिय बनो रुचिर-माला।
बोलि क्यों न गरबीली ! कबकी टेरति विरहुलि-व्रज-बाला।

मेरिय-गागरि सों सिंचित ह्वै पाये तैंने चिक्कन-पात ।
मोहीं सों सतराति; अहो ! दुख में निजहू ऊखिल ह्वै जात ।

(४)

कहहि मदन अयि गोप बधू ! मति बिलखि २ अँसुआ ढरकाइ ।
तेरे बन-धन यमुना जो, तटदेखु ! रहे हैं वेणु बजाइ ।
"कैसें ऊतरु देइ लता जड़ प्रानी कहा बोलि जानै,
चेत अचेतन कौ विरही जन किन्तु भेद नहिं पहिचानै"

—मदनलाल चतुर्वेदी
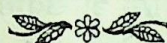
पद्य-पंचक

(१)

न्यारे कहूँ न रहे कबहूँ जबतें हम प्रेम पसार पसारे ।
माल गरे कर कै ककना निसिवासर हार हिये हरि धारे ॥
पै जबतें दग दूरि भये बहुरे न इतै मम प्रानअधारे ।
चातक लौं जल स्वाति बिना अलि जीवति हौं नित औधि सहारे ॥

(२)

हास विलास विलाय गये अरु फीके भये निसिवासर नीके ।
भाग भरे अब सारे भये वे अलीगन के उपचार अलीके ॥
वादिन तें सपनो ह्वै गये रुचि सों पहिरावन हार कली के ।
आवन की कहि कै जब ते नहिं आए इतै मम जीवन जीके ॥

(३)

पहिले अनुराग-पराग-सनी सुख सों मद मैं मदमाती रहीं ।
फिरि प्रेम-पसार पसारि पसारि सुधा-रस मैं सरसाती रहीं ॥
कबि संकर प्रीतम ध्यान धरे जप जोग समाधि लगाती रहीं ।
कबहूँ हँसि हेरि मिले न कहूँ अँखियाँ दुखियाँ ललचाती रहीं ॥

(४)

मनमोहन रूप सुधाधर कौ ह्वै चकोर किये उपवास सदाईं।
बिधि सों करि तन्त्र प्रयोग कहौ कितनी जगि कै हम रैनि बिताईं ॥
बिरहाकुल सोवत मैं कवि संकर जाति हुती मग दूरि अथाईं।
उन आय अचानक प्रीति गहे तन रोम उठे अँखियाँ भरि आईं ॥

(५)

खोरिन को हिलिबो-मिलिबो मुरली कल कूक अलापनवारी।
लोयन लोयन को लगिबो पगिबो निसिवासर नेह मझारी ॥
कालिंदी कूल तमालन तीर बिनोद भरी मुसक्यान तिहारी।
नैसुक नैन नचाय चितौननि बैननि पै बलिहौं बलिहारी ॥

—शम्भूदयाल सक्सेना विशारद
'संकर'
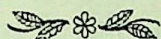
प्रिय-प्रकाश

आदि आचार्य महाकवि केशवदासजी की रचना कितनी कठिन है यह प्रत्येक हिन्दी-रस-रसिक भली-भाँति जानता है। केशव के ग्रन्थों में 'रामचन्द्रिका' और 'कविप्रिया' कितनी कष्ट-कल्पनाओं से भरी हैं यह तो वही जानता है जिसने उक्त ग्रन्थों को पढ़ा है। वस्तुतः केशवदासजी के सब ग्रन्थों में 'कविप्रिया' ही अतीव कठिन है। इसके पश्चात् 'रामचन्द्रिका' की गणना है। तीसरी 'रसिकप्रिया' तो सब से सरल है। यद्यपि उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त केशव के दो तीन ग्रन्थ और हैं, पर साहित्य-संसार में विशेष मान इन्हीं तीन का है।

पिछले सालों में श्रद्धेय लाला भगवानदीनजी 'रामचन्द्रिका' की टीका 'केशव-कौमुदी' नाम से कर चुके हैं। इस साल उन्हीं लालाजी ने 'कवि-प्रिया' की टीका 'प्रिया-प्रकाश' नाम से

की है। जो लोग लालाजी की काव्य-मर्मज्ञता जानते हैं और 'केशव-कौमुदी' देख चुके हैं वे समझ सकते हैं कि यह टीका कैसी होगी।

यद्यपि इस टीका की आलोचनाएँ हो रही हैं और आगे भी होंगी; पर मैं कुछ विशेष रूप से इस टीका के ऊपर टीका करना चाहता हूँ।

किसी कवि की कविता, लेखक का लेख अथवा अन्य किसी भी कार्य करनेवाले मनुष्य के कार्य को समालोच्य बनाने के पहले यह ध्यान देना आवश्यक है कि उसके विचार क्या और कैसे हैं। इस नियम के अनुसार आवश्यक है कि लालाजी के विचार और उनके टीका करने के उद्देश्य को भी हम अवगत कर लें। जो समालोचक उक्त बात का विचार न करके किसी कवि, लेखक या टीकाकार आदि पर क़लम चलाते हैं वे उनके साथ अन्याय करते हैं। इस प्रकार बिना विचार किये ही समालोचना करने के कारण आज दिन हिन्दी-साहित्य में भारी अनर्थ हो रहे हैं। अच्छे-अच्छे विद्वान् भी इस प्रकार की भूल कर बैठे हैं। समालोचना के जो ग्रन्थ हिन्दी में उच्च कोटि के समझे जाते हैं और जिनके प्रति लोगों का ऊँचा भाव है उन में भी यही धींगाधींगी देखकर हृदय विदीर्ण हो जाता है।

अस्तु। लालाजी का सब से मुख्य विचार जहाँ तक मैं जानता हूँ आडम्बर का बहिष्कार है। जो लोग लालाजी से परिचित हैं वे ख़ूब जानते हैं कि लालाजी आडम्बर पसन्द नहीं करते। अपनी टीकाओं में भी उन्होंने इसी विचार की छाप लगा दी है। सम्प्रति किसी पुस्तक की एक भारी भूमिका होना ही उसका महत्व समझा जाता है पर लालाजी को यह पसन्द नहीं। यही कारण है कि उन्होंने इसमें भी एक छोटी सी (३ पेज) की भूमिका लिखी है।

भूमिका में लालाजी ने स्पष्ट लिख दिया है कि "हमने बहुत से छंदों का अर्थ सरल समझकर छोड़ दिया है" ऐसा करना

ठीक ही है; क्योंकि जो लोग सरल छन्दों का भी अर्थ नहीं कर सकते वे केशव की कविता क्या समझेंगे। किन्तु एक बात मुझे अधिक खटकी। कहीं-कहीं लालाजी ने यह भी लिखा है कि इसकी टीका हम 'केशव-कौमुदी' में कर चुके हैं, 'केशव-कौमुदी' का अमुक पृष्ठ देखो। क्लिष्ट से क्लिष्ट छन्दों के विषय में जो कि 'राम-चन्द्रिका' में के हैं—लालाजी ने यही बात लिख दी है। हमें तो यह बात उचित नहीं जान पड़ी। क्योंकि जिसके पास 'केशव-कौमुदी' न होगी वह उन छन्दों का अर्थ कैसे समझेगा?

'कवि-प्रिया' की टीका करने में लालाजी ने बड़ा परिश्रम किया है। अच्छे-अच्छे विद्वान् भी 'कवि-प्रिया' में गोता खाने लगते हैं। केशव ने श्लेष से इतना काम लिया है कि यदि उन्हें श्लेष का बादशाह कहें तो अत्युक्ति नहीं। इन्हीं श्लिष्ट स्थानों का अर्थ करने में, उसे समझाने में, बड़ी अड़चन पड़ती हैं; पर लालाजी ने उन स्थलों को ऐसा स्पष्ट कर दिया है कि एक साधारण साहित्य-प्रेमी भी उसे भली भाँति समझ सकता है।

टीका की ख़बी लेख लिखने से ही अधिक स्पष्ट नहीं हो सकती जब तक उसे भली भाँति पढ़ा न जाय। लेख में हम कुछ स्थलों से उसका उदाहरण दे सकते हैं; पर 'कवि-प्रिया' एक ऐसा ग्रन्थ है कि उसमें प्रत्येक स्थान पर चमत्कार है और 'प्रिया-प्रकाश' एक ऐसी टीका है कि उसमें सब स्थानों पर अर्थ स्पष्ट है।

इस ग्रन्थ की दो टीकाएँ और हैं—एक सरदार कवि की टीका, दूसरी श्रीहरिचरणदास की। सरदार कवि की टीका अच्छी टीका है; पर स्थान-स्थान पर उन्होंने अर्थ छोड़ दिया है और कहीं-कहीं अप्रासंगिक अर्थ भी किये हैं जिसका लालाजी ने अपनी टीका में बचाव किया है। सरदार कवि ने कई स्थलों पर शङ्काएँ की हैं और उनका समाधान किया है; पर ये शङ्काएँ कहीं-कहीं इतनी भद्दी जान पड़ती हैं कि टीका बिगड़ सी गई है। हमारे कहने का अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि सरदार कवि की टीका ठीक नहीं; किन्तु भाव यह है कि उसमें यत्र-तत्र ऐसी प्राचीनता सी घुसी है कि वह भली नहीं जान पड़ती।

लालाजी की टीका में कई स्थलों पर हमें अर्थ कुछ खटका है जिसे हम पीछे लिखेंगे। यहाँ हम दो-चार स्थलों के अर्थ की बानगी पाठकों को देना चाहते हैं।

युक्ति व्यतिरेक

सुन्दर सुखद अति अमल सकल विधि,
सदल सफल बहु सरस संगीत सों।
विविध सुबास युत केशोदास आसपास,
राजै द्विजराज तनु परम पुनीत सों॥
फूले ही रहत दोऊ दीबे हेत प्रतिफल,
देत कामनानि सब मीत हूँ अभीत सों।
लोचन, बचन गति बिन इतनोई भेद,
इन्द्रतरुवर अरु इन्द्र इन्द्रजीत सों॥

राजा इन्द्रजीत को इन्द्र-तरुवर (कल्पवृक्ष) और इन्द्र के समान दिखाते हुए भी केशवदासजी ने मित्रता दिखाई है। यदि इन्द्र-जीत को इन्द्र से बढ़कर न दिखाते तो नाम क्योंकर सार्थक होता?

प्रिया-प्रकाश से—

"(नोट)—इस छन्द में केशव ने कमाल कर दिखाया है। राजा इन्द्रजीत की समता इन्द्रतरुवर (कल्पवृक्ष) से और इन्द्र से की है और व्यतिरेक से दोनों के साथ मित्रता भी दिखाई है। कवित्त के तीन चरणों में ऐसे श्लिष्ट शब्द रक्खे हैं जो तीनों पर लगते हैं, पुनः चौथे में मित्रता दिखाई है।

कल्पवृक्ष और इन्द्रजीत

"भावार्थ—दोनों सुन्दर और सुखद हैं। कल्पवृक्ष सब प्रकार निर्दोष है—राजा के सब राज्य-नियम निर्दोष हैं। कल्पवृक्ष पत्ते और फल-सहित है—राजा सेना-युक्त है और सरस-संगीत-विद्या में पारंगत है। कल्पवृक्ष अपने आस-पास तरह-तरह की सुगन्ध फैलाता है—राजा विविधि-प्रकार के वस्त्र (वास) पहने हैं और दासों से घिरे हुए हैं। कल्पवृक्ष पर सुन्दर पक्षी बैठे हैं—राजा के के पास ब्राह्मण हैं। दोनों का तन परम पुनीत है। प्रतिक्षण दोनों ही

देने के लिए उत्साहित रहते हैं, दोनों शत्रु-मित्र की कामना पूर्ण किया करते हैं; पर भेद इतना है कि कल्पवृक्ष के लोचन नहीं हैं, वह बोल नहीं सकता और चल नहीं सकता। राजा में ये तीनों बातें अधिक हैं।

इन्द्र और इन्द्रजीत

शब्दार्थ—(इन्द्र पक्ष का)—सुन्दर=महादेव। सुखद=विष्णु। अति अमल सकल=अति निर्मल कलावान चन्द्रमा। विधि=ब्रह्मा। सदल=सुर-सेना-सहित। सफल=चारों फल प्राप्त हैं जिसे। बहु सरस संगीत सों=संगीत सुनने के बड़े शौक़ीन हैं। विविधि सुवास युत=विविध प्रकार के वस्त्रों सहित हैं। केशोदास=नारायण के दास हैं। आस पास राजै द्विजराज=ब्राह्मणों-ऋषियों से घिरे हुए हैं। (राजा पक्ष का)—विधि=राज-काज-विधि। सफल बहु सरस संगीत सों=संगीत-कला में पारंगत है।

भेद यह है—

लोचन=इन्द्र के हज़ार लोचन, राजा के दो। वचन=इन्द्र देव-भाषा बोलते हैं, राजा नर-भाषा। गति = इन्द्र आकाश में विचरते हैं, राजा पृथ्वी पर चलता है।

भावार्थ—इन्द्र और राजा इन्द्रजीत दोनों बराबर हैं; क्योंकि इन्द्र शिव, विष्णु, चन्द्रमा, ब्रह्मा और सुरसेना सहित रहते हैं और राजा सुन्दर है प्रजा को सुखद हैं, राज-विधान (क़ानून) में अति निर्दोष हैं। इन्द्र को चारों फल प्राप्त हैं, और संगीत के परम रसिक हैं—राजा स्वयं संगीत-कलामें पारंगत है। दोनों विविध प्रकार के वस्त्र धारण किये हैं, दोनों नारायण के दास हैं, दोनों ब्राह्मणों से घिरे रहते हैं, दोनों के तन परम पुनीत हैं, दोनों हर समय बरदान देने में उत्साहित रहते हैं, दोनों मित्र-शत्रु की कामनाएँ पूर्ण करते हैं। पर दोनों में भेद इतना है कि इन्द्र सहस्र लोचन हैं—राजा युग-लोचन है। इन्द्र देव-भाषा बोलते हैं—राजा नरभाषा। और इन्द्र नभगामी हैं, राजा धराचारी हैं। इन तीनों बातों के सिवाय (बिन) दोनों सब तरह से बराबर हैं।

(नोट)—इसमें केशव ने श्लेष से बड़ा उत्तम काम लिया है।

दो कवित्तों का मज़मून एक ही छन्द से अदा किया है। इसी से इसका "युक्ति व्यतिरेक" नाम है। ऐसी योग्यता का छन्द हमने किसी दूसरे कवि का नहीं देखा।"

इसी प्रकार सोलहवें प्रकार के एकाक्षरी दोहे का अर्थ भी है। उदाहरण देने से लेख बढ़ जायगा। उस दोहे को यहाँ अवलोकनार्थ दिये देते हैं। इसमें एक अक्षर के शब्दों से पद-रचना की गयी है—

गा, गो, गं, गो, गी, अ, आ, श्री, धी, ह्री, भी, भा, न।
भू, ख, बि, स्व, ज्ञा, द्यौ, हि, हा, नौ, ना, सं, भं, मा, न॥

जहाँ तक हमें समझ में आता है शायद लालाजी को भी इस दोहे का अर्थ करने में कई दिन लगे होंगे। सरदार कवि ने इस दोहे का अर्थ स्पष्ट नहीं किया है। कई स्थलों को छोड़ दिया है।

लालाजी ने सब स्थलों पर प्राचीन टीकाकारों का मत या अर्थ नहीं माना है; क्योंकि उसमें आपत्ति जान पड़ी है। इसके लिए 'प्रिया-प्रकाश' के २, ८५, ३९२, ३९४ आदि पृष्ठ देखने चाहिएँ।

× × ×

निरोष्ठ के उदाहरण में केशवदासजी ने निम्न-लिखित छन्द दिया है—

"लोक लीक नीकी, लाज लीलत हैं नंदलाल,
लोचन ललित लोल लीला के निकेत हैं।
सौंहन को सोच न सकोच लोका लोकनि को,
देत सुख, ताको सखी दूनो दुख देत हैं।
केशोदास कान्हर कनेर ही के कोरक से,
वाह्य रंग राते अंग, अंतस में सेत हैं।
देखि देखि हरि की हरनता हरिननैनी,
देखत ही देखो नहीं हियो हरि लेत हैं॥

किन्तु संस्कृत-साहित्य के अनुसार "उपूपाध्मानी याना मोष्ठौ" (उ, पवर्ग प फ का उच्चारण ओंठ से होता है) "ओदौतोः

कण्ठोष्ठम्" (ओ, औ का कंठ और ओष्ठ से) "वकारस्य दन्तोष्ठम्" (वकार का उच्चारण दाँत और ओंठ से) अतएव उ, प, फ, ब, भ, म, प, फ, ओ, औ और व के उच्चारण में ओठों की सहायता अपेक्षित होगी। इससे छन्द में रेखांकित अक्षर भी इस नियम के अनुसार ओष्ठ की सहायता से उच्चरित होंगे, अतएव यह निरोष्ठ का उदाहरण ठीक नहीं है। न जानें लालाजी ने कैसे लिखा है कि इसके पढ़ने में ओंठ से ओंठ नहीं लगता। हमें तो यह केशव की भूल ही जान पड़ती है। निरोष्ठ की परिभाषा में केशव ने लिखा है कि—"पढ़त न लागै अधर सों अधर बरण त्यों मंडि।

और वरण वरणों सबै उ, प वर्गहिं सब छंडि।

इसके अनुसार भी सुख दूनो, दुख और में अक्षर उ और पवर्ग के अन्तर्गत हैं।

× × ×

पावक, फणि, विष, भस्म, मुख हर पवर्गमय आन।
देत जु हैं अपवर्ग को, पारवती-पति जान॥

इसका अर्थ लालाजी ने यह किया है कि "महादेवजी पवर्गमय हैं, अर्थात् उनके पास पावक, अणि, विष, भस्म और मुंडमाल के सिवाय और है ही क्या जो देंगे; पर वे जो मुक्ति देते हैं वह केवल पार्वती-पति होने के कारण जानो। किन्तु दोहा पढ़ने से कवि का एक और विशेष अर्थ भी देख पड़ता है; क्योंकि कवि कुछ शब्दों पर ज़ोर देता है। वे शब्द 'पवर्ग' और अपवर्ग हैं। इन शब्दों में ख़ासा विरोध है। क्योंकि पवर्गमय होने पर अपवर्ग देना कम आश्चर्य्य की बात नहीं है। हमारे जान इसका भी उल्लेख करना आवश्यक था; पर न जाने क्यों, लालाजी ने इसे छोड़ दिया। यह दोहा हमें निम्नलिखित संस्कृत श्लोक की छाया से बना सा जान पड़ता है—

"पिनाक, फणि, बालेन्दु, भस्म, मन्दाकिनीयुता।
पवर्गरचिता मूर्तिरपवर्ग-प्रदायिनी॥"

× × ×

"गजमुख, सनमुख होत ही, विघन विमुख ह्वै जात।
ज्यों पग परत पराग-मग, पाप-पहार विलात॥"

इस दोहे के "सनमुख" शब्द का अर्थ लालाजी ने अनुकूल, कृपालु और विमुख शब्द का अर्थ 'बिना मुख के हो जाते हैं (नष्ट हो जाते हैं)' किया है; पर हमें यह अर्थ असंगत जान पड़ता है; क्योंकि ऐसा मानने से उपमेय और उपमान में समता नहीं आती। गणेशजी (गज-मुख) का दर्जा कुछ नीचा देख पड़ता है। 'सनमुख' का अर्थ यदि 'सम्मुख' ही रखा जाय तो अतीव उत्तम हो; क्योंकि इससे अर्थ में उत्कृष्टता आ जाती है। अर्थात् हृदय से गणेशजी के सम्मुख हुए कि विघ्न विमुख (विगत मुख) हो जाते हैं। भाव यह कि विघ्न स्मरण करनेवाले की ओर मुख नहीं करते—उसकी ओर नहीं देखते। यदि विघ्न का नष्ट होना कहा जायगा तो असंगति यह होगी कि विघ्न नष्ट हो जाते हैं; तो फिर अभी तक उनका अस्तित्व क्यों है? विघ्न नष्ट करना लिखने से सृष्टि के नियम को तोड़ने और हत्या करने का दोष गणेशजी पर लगता है।

यह हमें कवि की सर्वोत्कृष्ट कल्पना देख पड़ती है; क्योंकि उपमेय और उपमान का समता भाव ही कविता में मज़ा देता है। यहाँ पर कवि उसे दिखाने में खूब समर्थ हुआ है। यद्यपि साधारणतया देखने से स्पष्ट नहीं ज्ञात होता; पर ज़रा विचारने से साफ़ देख पड़ता है।

सम्मुख होने से विघ्न, विमुख (विगत मुख) हो जाते हैं और पग पड़ने से पाप-पहार विलात (विगत लात) हो जाते हैं। शब्दों का ही यह विचित्र चमत्कार है जिसमें केशवदासजी बड़े पटु थे। यही समता है।

'गजमुख' शब्द भी इसमें साभिप्राय है, अर्थात् गणेशजी का 'गजमुख' नाम उस समय का स्मरण दिलाता है जिस समय उनकी गर्दन काट लेने के पश्चात् हाथी का सिर लगाया गया था

और यह आशीर्वाद दिया गया था कि इस रूप का स्मरण करने से विघ्न बाधक न होंगे। इसी कारण यह शब्द रखा गया है।

इस दोहे के नोट में लिखा है—"हाथी अपने दाँतों से पहाड़ों की टोरें खोद कर गिरा देते हैं, अतः 'गजमुख' शब्द के साथ "पाप पहार" का रूपक बड़ा मज़ा दे रहा है।" हमें यह विवरण अप्रासंगिक और अनुचित जान पड़ता है; क्योंकि 'गजमुख' और 'पाप-पहार' से किसी प्रकार का सम्बन्ध इस दोहे में नहीं दीख पड़ता। लालाजी ने ऐसा क्यों लिखा, यह हम नहीं बता सकते। वे ही जानें।

× × × ×

एक बात और कहनी है। वह यह कि पुस्तक बड़ी असावधानी से संशोधित की गयी है। कहीं-कहीं ऐसी अशुद्धियाँ हैं जो भ्रम में डाल देती हैं। यथा पेज ६१ में "हरिहय=इन्द्र" यहाँ पर इन्द्र का घोड़ा चाहिए। पेज १५ में 'वे उँगलियाँ जब गूँगे मृदङ्ग के मुख से छू जाती हैं तब वह मृदङ्ग सब प्रकार के शब्द बोलने लगती हैं'। यहाँ पर 'गूँगी मृदङ्ग' लिखना चाहिए। पेज १८ में "अनुस्वार छोड़ दी" के स्थान पर "अनुस्वार छोड़ दिया" होना चाहिए, आदि।

ऊपर के विवरण से ज्ञात हो गया होगा कि टीका कैसी है। पुस्तक पढ़ने ही योग्य है। बिना पढ़े आनन्द नहीं आ सकता; क्योंकि इस छोटे से लेख में ४२५ पृष्ठ की पुस्तक के विषय में लिखना थोड़ा है। हमारे विचार से कवि होने के इच्छुक, साहित्य-प्रेमी और समालोचकों को यह ग्रन्थ अवश्य पढ़ना चाहिए। जिसने यह ग्रन्थ नहीं पढ़ा, वह हिन्दी में अच्छी योग्यता नहीं प्राप्त कर सकता। लालाजी से निवेदन है कि हमने जो कुछ दो स्थलों के बारे में लिखा है उस पर विचारकरके यदि उचित जँचे तो अगले संस्करण में ठीक कर दें और शीघ्र ही 'रसिक-प्रिया' की टीका भी हम लोगोंके सामने रखें जिससे केशवकी कला और भी जानी जा सके।

—विश्वनाथप्रसाद मिश्र

स्थायीसमिति का सातवाँ अधिवेशन रविवार मिति कार्तिक कृष्ण २ सं० १९८२ वि० तदनुसार ता० ४ अक्तूबर सन् १९२५ ई० को, ४। बजे दिन से, सम्मेलन-कार्यालय में निम्न-लिखित सदस्यों की उपस्थिति में हुआ—

श्रीयुत पं० भागीरथप्रसादजी दीक्षित, लखनऊ
,, प्रो० पं० रामलखनजी शुक्ल प्रयाग
,, पं० गिरिजादत्तजी शुक्ल 'गिरीश', प्रयाग
,, पं० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी, प्रयाग
,, बाबू शालिग्रामजी वर्म्मा, प्रयाग
,, पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी, प्रयाग
,, चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्म्मा, प्रयाग
,, अध्यापक पं० रामरत्नजी, आगरा
,, पं० लक्ष्मीनारायणजी नागर, प्रयाग
,, पं० रामजीलालजी शर्म्मा, प्रयाग
,, पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी (सहायक मन्त्री)

सर्व्व-सम्मति से प्रो० पं० रामलखन जी शुक्ल ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

१—सर्व्व सम्मति से निश्चित हुआ कि आय-व्यय-निरीक्षक महोदय के यहाँ से आय-व्यय का हिसाब जाँचकर न आसकने के कारण आज के अधिवेशन की सूचना में प्रकाशित विचारणीय विषयों के अन्तर्गत विषय १, २, ३ तथा (विशेष कारण उपस्थित होने के कारण) विषय ५ आगामी अधिवेशन के लिए स्थगित किये जायँ।

२—षोडश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन वृन्दावन की स्वागत-समिति द्वारा प्रेषित वृन्दावन-सम्मेलन में उपस्थित होनेवाले प्रस्तावों की प्रस्तावित पांडुलिपि उपस्थित हुई और उस पर विचार हुआ। तदनन्तर सर्व्व-सम्मति से वृन्दावन सम्मेलन के लिए निम्नलिखित प्रस्ताव, पांडुलिपि रूप में, स्वीकृत हुए—

(क) यह सम्मेलन महाराजा गवालियर, सर एन्टिनी मेकडानेल, श्रीयुत पं० रविशङ्करजी शर्मा (श्रीयुत् पं० नाथूराम-शङ्कर शर्मा के सुपुत्र) तथा बाबू शिवदास गुप्त 'कुसुम' आदि (हिन्दी के पृष्ठ-पोषक, उन्नायक, कवि आदि) महानुभावों की असामयिक मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रकट करता हुआ उनके परिवार के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करता है।

(ख) यह सम्मेलन बालक-बालिकाओं के लिए उपयोगी साहित्य के अभाव का अनुभव करता हुआ हिन्दी के समस्त लेखकों और पुस्तक-प्रकाशकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करता है और उनसे अनुरोध करता है कि वे हिन्दी-साहित्य के इस अभाव को दूर करने का प्रयत्न करें।

(ग) इस सम्मेलन की सम्मति में जिन राष्ट्रीय विद्यालयों की शिक्षा का माध्यम हिन्दी है, उनका हिन्दी का पाठ्यक्रम सम्मेलन के पाठ्यक्रम से मिलता-जुलता हुआ होना चाहिए। अतः यह सम्मेलन उन राष्ट्रीय विद्यालयों का ध्यान इस ओर आकर्षित करता है और उनके संस्थापकों से अनुरोध करता है कि वे इस ओर ध्यान देने की कृपा करें।

(घ) इस सम्मेलन की सम्मति में राष्ट्र-भाषा के कवि सम्पादक, ग्रन्थकार, वक्ता, प्रकाशक तथा शिक्षा-संस्थाओं आदि की जानकारी के लिए प्रति-वर्ष एक हिन्दी-डाइरेक्टरी के प्रकाशन की अत्यन्त आवश्यकता है। अतः यह सम्मेलन स्थायीसमिति को आदेश करता है कि वह हिन्दी-डाइरेक्टरी के प्रकाशन का शीघ्र प्रबन्ध करे।

(ङ) सम्मेलन की सम्मति में व्रजमण्डल में व्रजभाषा के एक ऐसे विद्यालय की अतीव आवश्यकता है, जिसमें व्रजभाषा के साहित्य की शिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध हो। अतः यह सम्मेलन विशेषतः व्रजभाषा-भाषियों और साधारणतः समस्त हिन्दी-प्रेमियों का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित करता हुआ उनसे अनुरोध करता है कि वे इस आवश्यकता की पूर्त्ति का उपक्रम करें।

(च) यह सम्मेलन साहित्यिक श्री-वृद्धि के लिए हिन्दी-लेखकों के एक संगठनकी आवश्यकता का अनुभव करता हुआ, पं० अयोध्या सिंहजी उपाध्याय "हरिऔध" के सभापतित्व में संस्थापित अखिल भारतवर्षीय लेखक-मंडल की संस्थापना पर हर्ष प्रकट करता है; और हिन्दी की समस्त साहित्यिक संस्थाओं और साहित्य-सेवियों से अनुरोध करता है कि वे इस लेखक-मंडल के उद्योग में सहायता करें।

(छ) यह सम्मेलन संयुक्त-प्रान्त आगरा व अवध की अधिकांश हिन्दी जाननेवाली जनता की सुविधा के लिए वकीलों और मुख़्तारों से अनुरोध करता है कि वे अदालती कार्यों में नागरी लिपि का भी व्यवहार करें।

३—नियमावली के नियम १८ (इ) के अनुसार सम्मेलन के स्थायी तथा साधारण सदस्यों की नामावली से दशमांश अर्थात् ५ सदस्य चुनने का विषय उपस्थित हुआ। नियमानुसार सदस्यों के द्वारा निम्न-लिखित ५ सदस्यों का निर्वाचन स्वीकृत हुआ—

१. श्रीयुत बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन, लाहौर
२. " पं० रामजीलालजी शर्म्मा, प्रयाग
३. " बाबू रामदासजी गौड़, काशी
४. " बाबू शिवप्रसादजी गुप्त, काशी
५. " बाबू युगलकिशोरजी बिड़ला, कलकत्ता

नियमानुसार ये पाँचों सज्जन अगली स्थायीसमिति के सदस्य निर्वाचित समझे जायँगे।

४—प्रधानमंत्रीजी ने सूचना दी कि निम्न-लिखित सज्जन सम्मेलन के साधारण सदस्य होना चाहते हैं। इन्होंने नियमानुसार १२) वार्षिक शुल्क भेज दिया है। चतुर्वेदी पं० द्वारका प्रसादजी शर्म्मा के समर्थन के पश्चात् निश्चित हुआ कि ये महानुभाव साधारण सदस्य बना लिये जायँ—

१. रायबहादुर बाबू सूर्य्यप्रसादजी एम्० एस०, वकील भागलपुर
२. श्रीयुत शालिग्रामलाल c/o मधुसूदन ब्रदर्स, नया बाज़ार, भागल पुर सिटी
३. श्रीयुत रायबहादुर बाबू नारायणप्रसादजी रईस, कोट बाज़ार सीतामढ़ी
४. श्रीयुत महन्त सियारामदासजी सीतामढ़ी
५. श्रीयुत पं० गिरीन्द्रमोहन मिश्र एम्० ए० बी०एल्, वकील लहारिया सराय, दरभङ्गा
६. श्रीयुत उमाशंकर प्रसाद c/o बाबू राधाकृष्णजी एम्० एल्० सी० ज़मींदार, मुजफ़्फ़रपुर
७. श्रीयुत रामधारीप्रसादजी विशारद स्नेह-सदन, भगवानपुर, पो० फुरहनी, ज़िला मुज़फ़्फ़पुर
८. श्रीयुत सत्यनारायणप्रसादजी चौ० सरोतागंज, मुजफ़्फ़रपुर
९. श्रीयुत शिवबक्सलालजी बैंकर और ज़मीदार, मुजफ्फ़रपुर
१०. श्रीयुत राधाकृष्णजी नयाबाज़ार, मुजफ्फ़रपुर
११. श्रीयुत रामचरणजी किशोरी भवन, मुजफ्फ़रपुर
१२. श्रीयुत् बाँके विहारीलालजी राजतहसीलदार सदर सरकिल बेतिया, चम्पारन
१३. श्रीयुत गोपालरामजी साह, कासीबाग़ बेतिया
१४. श्रीयुत सूर्य्यमल्ल लालबाज़ार बेतिया, चम्पारन
१५. श्रीयुत राधाकृष्णजी दमादमबाज़ार, बेतिया
१६. श्रीयुत विपिनविहारीजी वर्म्मा बेतिया, चम्पारन
१७. श्रीयुत मुनीश्वरप्रसादसिंहजी वकील, छपरा

१८. श्रीयुत दयामहेश्वरदयालु, एम्० ए० काव्यतीर्थ ज़िला स्कूल छपरा

१९. श्रीयुत भगवतीप्रसादसिंहजी चौतारिया-निवास, रतनपुर, छपरा

२०. श्रीयुत महेन्द्रप्रसादजी बी० ए० बिहार-बैंक, छपरा

२१. श्रीयुत साँवलियाविहारीलालजी वर्म्मा एम्० ए०, बी० एल्० वकील मथुरा-भवन, छपरा

२२. श्रीयुत जगन्नाथशरणजी बी० ए०, बी० एल्० वकील छपरा सारन

५—प्रधानमंत्रीजी ने सूचना दी कि निम्नलिखित सज्जन सम्मेलन के हितैषी होना चाहते हैं। इन्होंने नियमानुसार वार्षिक शुल्क ३) भेज दिये हैं। चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसादजी शर्म्मा के समर्थन के पश्चात् निश्चित हुआ कि ये महानुभाव सम्मेलन के हितैषी बना लिये जायँ—

१. श्रीयुत नरसिंहप्रसाद, लल्लूपोखर, मुंगेर
२. श्रीयुत दुर्गाठाकुर स्वर्णकार, भोगोल बाज़ार, मुंगेर
३. श्रीयुत हरिहरप्रसादजी, सीताराम पुस्तकालय, पो० सीतामढ़ी
४. श्रीयुत लखनलालजी, श्रीजानकी स्थान, पो० सीतामढ़ी
५. श्रीयुत सेठ रामनाथजी खेमका, कोट बाज़ार, सीतामढ़ी
६. श्रीयुत योगेश्वरप्रसादजी, मैनेजर बैंक. सीतामढ़ी
७. श्रीयुत रणधीरसहायजी महथा, मैनेजर बैंक, सीतामढ़ी
८. श्रीयुत शिवनाथप्रसाद, सीतामढ़ी
९. श्रीयुत मथुराप्रसादसिंह कटकी बाज़ार, दरभङ्गा
१०. श्रीयुत सागरमलजी, गुल्लोबाड़ा, दरभङ्गा
११. श्रीयुत बजरंगबिहारीलाल, गुल्लोबाड़ा, दरभङ्गा
१२. श्रीयुत रघुनन्दनप्रसादसिंहजी, पो० आ० महम्मदपुर, सूस्ता ज़िला मुजफ्फरपुर
१३. श्रीयुत रामयादरामजी, बेतिया
१४. रायसाहब श्रीयुत गोबिन्दप्रसादजी वर्मा, नारदप्रेस, छपरा

१५. श्रीयुत बाबू गोविन्दशरण एम० ए०, बी० एल० मुंसिफ़, छपरा
१६. श्रीयुत लक्ष्मीप्रसाद बी० ए०, बी० एल० वकील, छपरा।

६—प्रधानमंत्रीजी ने सूचना दी कि बेलघाट गोरखपुर का श्याम-शारदा-सदन पुस्तकालय सम्मेलन से सम्बद्ध होना चाहता है। नियमानुसार इस संस्था का विवरण तथा सम्बद्ध-शुल्क आ गया है। तदनन्तर सर्व-सम्मति से निश्चित हुआ कि यह संस्था सम्मेलन से सम्बद्ध की जाय।

७—काशी के बाबू शिवप्रसादजी गुप्त का मिति २० भाद्रपद संवत् १६८२ वि० का वह पत्र उपस्थित हुआ जिसमें उन्होंने अब तक भारतवर्ष के प्रामाणिक इतिहास के विषय में कुछ भी कार्य न कर सकने पर खेद प्रकट करते हुए प्रमाणिक-इतिहास-समिति के संयोजक पद से त्याग-पत्र दिया है। सर्व-सम्मति से निश्चित हुआ कि श्रीयुत बाबू शिवप्रसादजी गुप्त को लिखा जाय कि वे कृपा करके उक्त समिति के संयोजक बने रहें और अब तक कुछ नहीं हो सका तो अगले वर्ष इस महत्त्व-पूर्ण कार्य को सम्पन्न करने का प्रयत्न करें।

८—स्थायीसमिति के पाँचवें अधिवेशन में निश्चित ६वें मन्तव्य के अनुसार हिन्दी-पुस्तक-एजंसी कलकत्ता की 'सभ्यता महारोग' नामक पुस्तक के विवाद का निपटारा करने के लिए, प्रधानमंत्री पं० रामजीलालजी शर्म्मा, प्रबन्ध-मंत्री चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसाद जी शर्म्मा तथा परीक्षा-मंत्री अध्यापक पं० रामरत्नजी की जो समिति नियुक्त हुई थी, उसकी रिपोर्ट उपस्थित हुई और उसपर विचार हुआ। वाद-विवाद के पश्चात् बहु-सम्मति से निश्चित हुआ कि "हिन्दी-पुस्तक-एजन्सी को २२ पंक्ति प्रति पृष्ठ के हिसाब से कलकत्ते की अधिक प्रचलित प्रथा के अनुसार 'सभ्यतामहारोग' नामक पुस्तक की अनुवाद करायी का शेष पारिश्रमिक अनुवादक को बिना किसी प्रकार की आपत्ति को देकर इस विवाद के शान्त कर डालना चाहिए।"

६—मार्ग-व्यय में भोजन-व्यय की स्वीकृति पर अर्थ-मन्त्रीजी के आपत्ति करने का विषय उपस्थित हुआ। प्रबन्ध-मन्त्री जी ने बत-

लाया कि अभी तक इस विषय में इस कार्य्यालय में आये हुए बिलों पर किसी प्रकार की आपत्ति नहीं उठायी गयी थी। अब यह नयी बात सामने आरही है। अनेक बार यही अर्थ-मंत्रीजी इस तरह के बिलोंका चुकता बिना किसी प्रकार ही आपत्ति के कर चुके हैं।

इस पर वाद-विवाद होने के पश्चात् बाबू शालिग्रामजी वर्म्माने प्रस्ताव किया कि सम्मेलन से कार्य के लिए अवैतनिक सज्जनों द्वारा प्रेषित बिलों को, जो सम्मेलन के किसी मंत्री द्वारा पास हो चुके हों तथा प्रधानमंत्री द्वारा स्वीकृत हो चुके हों, किसी निर्मूल तथा आवश्यक कारण द्वारा चुकता न करना उचित नहीं है। इस समिति का अर्थ-मंत्री महोदय से निवेदन है कि वह अपने इस नये असंतोष के निवारण के लिए एक प्रस्ताव द्वारा स्थायीसमिति से निवेदन कर उपनियम बनवाने का प्रयत्न करें, और जब तक ऐसे उपनियम न बन जावें तथा समिति द्वारा स्वीकृत न हों वे कृपाकर यथापूर्व नियमों, दृष्टान्तों तथा नज़ीरों का अनुसरण करें।

प्रस्ताव बहु-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

१०—स्थायीसमिति के पिछले अधिवेशन में पाँचवाँ तथा पन्द्रहवां मन्तव्य निश्चित हो जाने पर भी एक उपमद् की बचत का उपयोग दूसरी उपमद् में करने के विषय में अर्थ-मंत्रीजी की आपत्ति होने का विषय उपस्थित हुआ। अर्थ-मंत्रीजी ने कहा कि विचारणीय विषयों में इस विषयका उल्लेख नहीं आया है, अतः आज यह विषय यहाँ उपस्थित नहीं होना चाहिए। श्रीप्रबन्ध-मंत्रीजी ने इस विषय की आवश्यकता बतलाते हुए कहा कि इस विषय का इस अधिवेशन में निश्चित हो जाना अत्यन्त आवश्यक है। तदनन्तर मत लिये जाने पर अर्थ-मंत्रीजी को छोड़कर सर्व-सम्मति से इस विषय पर विचार करना निश्चित हुआ।

सहायक मंत्री ने सूचना दी कि इस वर्ष सहायकमंत्री के वेतन की बचत १२५) होगी। इस बचत से प्रबन्ध-लेखक को ५) मासिक वेतनवृद्धि चैत्र सं० १९८२ से इस वर्ष के अंत तक की कुल ६०) तथा अर्थ-लेखक की वेतन-वृद्धि भाद्रपद सं० १९८२

वि० से इस वर्ष के अंत तक ३) मासिक के हिसाब से २१), कुल ८१) व्यय किये जा सकते हैं। सर्व-सम्मति से प्रबन्ध-लेखक तथा अर्थ-लेखक की वेतन-वृद्धि स्वीकृत हुई। साथ ही यह भी निश्चित हुआ कि जिन उपमदों में अधिक व्यय हुआ है, या होने को है, उनकी पूर्ति किस उपमद से की जाय, उसमें कितनी बचत है, इसका पूरा विवरण सहायक मंत्री स्थायीसमिति की आगामी बैठक में उपस्थित करें।

११—साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखरजी शास्त्री का ता १०।८।२५ का वह पत्र उपस्थित हुआ जिसमें उन्होंने यह सूचित किया है कि पटना के खड्गबिलास प्रेस के मालिक रायबहादुर बाबू रामरणविजयसिंहजी ने अपने स्वर्गीय पिता बाबू रामदीनसिंहजी के स्मारक में पटना विश्व-विद्यालय की मारफ़त एक हिन्दी-रीडर-शिप की व्यवस्था की है जिसकी नियमावली में सम्मेलन से एक प्रतिनिधि लेनेकी व्यवस्था है। इस पर सर्व-सम्मतिसे निश्चित हुआ कि इस हिन्दी-प्रेम के लिए खड्गविलास प्रेस के स्वामी को धन्य-वाद दिया जाय और इसके लिए सम्मेलन से एक प्रतिनिधि देना स्वीकार किया जाय।

तदनन्तर सभापति महोदय को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई।

रामजीलाल शर्म्मा
प्रधान मंत्री

पञ्जाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

के दूसरे वर्ष का कार्य-विवरण

[गताङ्क की पूर्ति]

सभासद

इस बरस हमारी यह इच्छा थी कि सम्मेलन के पचास-साठ स्थायी तथा चार-पाँच सौ रुपया वार्षिक देनेवाले साधारण सभासद बनाये जाते। गुजरानवाला और अम्बाला में यह काम कुछ शुरू किया भी। खेद है कि काफ़ी समय और साधनों के अभाव से यह प्रयत्न पूर्ण नहीं हुआ।

पिछले वर्ष मुख्यतः लाहौर में जो सभासद बने थे उनमें से बहुतों का चन्दा इस वर्ष वसूल नहीं हुआ। इनमें से बहुत से सज्जन सम्मेलन से अपना सम्बन्ध रखना चाहते हैं, और शायद भेजने की सुविधा न होने से ही वह भेज नहीं सके।

सभासदों से पिछले वर्ष हमारा कुछ विशेष सम्बन्ध नहीं रहा था। इस वर्ष उनके पास हमारे ख़र्च पर सम्मेलन-पत्रिका भेजवाने का प्रबन्ध कर दिया गया। आगे से पत्रिका में नियम से पंजाब के समाचार भी छपते रहेंगे।

प्रचार की प्रगति

हिन्दी-प्रचार के लिये साधारण प्रयत्न पिछले साल की तरह जारी रहा। इस बरस हम केवल एक बार लाहौर में कवि-सम्मे-

लन कर सके, जो कविताओं की दृष्टि से पूर्णतः सफल हुआ।

लाहौर में पिछले साल जो कल्पित कवि-दरबार का अभिनय किया गया था, उसका पंजाब के बाहर भी विशेष आदर हुआ। देहरादून के अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में हमारे विद्यार्थियों को वही अभिनय दिखाने की फ़रमाइश हुई और वहाँ हिन्दी के धुरन्धर साहित्य-सेवियों और आलोचकों ने उसका जो आदर किया वह हमारे लिये विशेष उत्साह-जनक था।

हाल में गत ८ अप्रैल को लाहौर में फिर उसी दरबार का आयोजन किया गया।

श्रीमान् पं० माधवरावजी सप्रे ने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर देहरादून-सम्मेलनके बाद दो सप्ताहके लिए पञ्जाब आने और यहांके मुख्य मुख्य स्थानों में व्याख्यान देने का वचन दिया था। उनके आने की और हमारी तरफ़ से उनके स्वागत की सब तैयारी हो चुकी थी, परन्तु बीमार हो जाने के कारण उन्हें एकाएक हरद्वार से लौटना पड़ा। इस दुर्दैव के कारण हमें जनताके ध्यान खींचने के एक बड़े अवसर से वंचित होना पड़ा।

लाहौर के विद्यार्थियों की एक हिन्दी सभा बनाने का प्रयत्न हम पिछले साल से कर रहे थे। इस साल भी वह प्रयत्न जारी था। हमें मालूम हुआ कि सनातन-धर्म-कालेज लाहौर में कुछ और सज्जन भी वैसाही प्रयत्न कर रहे हैं। दोनों के मिल जाने से एक संस्था की नींव सी रक्खी गई है, पर अभी वह काम पूरा नहीं हुआ।

इस सभा ने भी हमारे कवि-दरबार के ढङ्ग पर एक बार कवि-दरबार का आयोजन किया। विद्यार्थियों की इस जागृति का हम हृदय से अभिनन्दन करते हैं।

सम्मेलन-परीक्षाओं का अभी तक पंजाब में केवल एक केन्द्र लाहौर में था। इस साल पं० चेतरामजी के प्रयत्न से कन्या-महाविद्यालय जालन्धर में भी उसका केन्द्र स्थापित हो गया। इस बरस की परीक्षाओं में पंजाब से जितनी लड़कियां बैठीं, सब अच्छे दर्जे में

पास हुई—जितने लड़के बैठे सब, फेल हुए ! पंजाब की ही एक कन्या इस वर्ष मध्यमा-परीक्षा में सर्व-प्रथम निकली !

पंजाब में हिन्दी की सामान्य प्रगति

चाहे बहुत धीमी गति से क्यों न हो, हिन्दी का प्रचार धीरे धीरे पंजाब में उन्नति कर रहा है। जनता की नई जागृति हमारे पक्ष में है। राजनैतिक आन्दोलन के ज्वार के बाद जब से भाटा शुरू हुआ है, समझदार लोग अनुभव करने लगे हैं कि जनता में स्थायी जागृति उत्पन्न करने के लिए अच्छे साहित्य की आवश्यकता है, और वह यह देख रहे हैं कि वह साहित्य पंजाबियों को हिन्दी में ही मिल सकता है। लेकिन पंजाब की इस उद्देश्य के लिए चेष्टा नहीं के बराबर है।

इस साल आर्यसमाज ने ऋषि दयानन्दजी के जन्म की शताब्दी मनाई। सालभर के कार्य-क्रम में एक चौमासा आर्य भाषा को सौंपा गया। डी० ए० बी० स्कूल लाहौर में हमारे उप-सभापति म० हंसराजजी के प्रयत्न से शताब्दी के उपलक्ष्य में ५०००) की लागत से एक हिन्दी-पुस्तकालय की स्थापना करना तय हुआ। हिन्दू-संगठनके आन्दोलन के नेता भी लगातार हिन्दी-हिन्दी की पुकार कर रहे हैं।

यह सब सन्तोष-जनक है, उत्साह वर्द्धक है; लेकिन कहाँ तक ? हिन्दूसभाओं ने हिन्दी के साथ मौखिक सहानुभूति काफ़ी हद तक दिखाई है। यहाँ तक कि बहुत से स्थानों में जब हम हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का संदेश लेकर पहुँचते हैं तब लोग कहते हैं यह काम हिन्दू-सभा को करने दो। लेकिन व्यवहार में हिन्दू-सभा की जितनी शक्ति म्यूनिसिपल और लोकल बोर्डों, कौंसिलों और सरकारी नौकरियों के टुकड़े लेने के प्रयत्न में ख़र्च हो रही है, उसका सौवाँ हिस्सा भी हिन्दी-प्रचार में नहीं लगने पाता। हिन्दू-सभा का लगभग सब कार्य उर्दू में हो रहा है।

आर्यसमाज ने भी इस वर्ष जो कुछ प्रयत्न किया वह उसका

शतांश भी नहीं है जो उन्हें अपने आदर्श और अपने आचार्य की शिक्षा को देखते हुए करना चाहिए था। आज पंजाब में आर्य-समाज के चालीस वर्ष के जीवन के बाद और "आर्य भाषा चतुर्मास" के सब प्रयत्न के बावजूद हज़ारों आर्यसमाजी हैं जो हिन्दी पढ़ना नहीं जानते, आर्यसमाज के अधिकांश स्कूलों में हिन्दी न तो आवश्यक भाषा है और न शिक्षा का माध्यम। तथा आर्य-समाजियों के घरेलू व्यवहार की बात तो दूर रही, ख़ास समाज की भी सब लिखा पढ़ी हिन्दी में नहीं होती।

सच बात तो यह है कि पंजाब में अभी तक हिन्दी-प्रचार का काम बिलकुल प्रारम्भिक दशा में है, और हिन्दी-साहित्य सम्मेलन को यहाँ मद्रास वा आसाम से कम मेहनत न करनी होगी। वह मेहनत शुरू होने को है, इस आशा के साथ हम नये वर्ष में प्रवेश करते हैं।

जयचन्द्र विद्यालंकार

मंत्री

पंजाब प्रांतीय-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

पंजाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

प्रचार

लुधियाना में उत्साही हिन्दी-प्रेमी म० हेमराजजी का निमंत्रण पाकर गत १३ जुलाई को श्रीमती पार्वती-देवी जी तथा प्रो० जय-चन्द्र विद्यालंकार प्रचार के लिये वहां गये। उसी रोज़ रात को पंजाब बैंक के अहाते में प्रो० महोदय तथा श्रीमती पार्वतीदेवीजी ने ५, ६ सौ की उपस्थिति में हिन्दीके सम्बन्ध में व्याख्यान दिये, जिनके प्रभाव से एक सज्जन प्रान्तीय सम्मेलन के स्थायी सभासद तथा बहुत से साधारण सभासद बने। आशा है कि अन्य शहरों के हिन्दी प्रेमी म० हेमराजजी का अनुकरण करेंगे।

एक पारितोषिक

श्रीमती हेमन्त कुमारी चौधरानी जी ने हाल ही में हमें बचन दिया है कि वे मध्यमा परीक्षा में प्रथम रहनेवाली पंजाबी परीक्षार्थिनी को एक स्वर्णपदक अपने स्वर्गीय पिता श्रीबाबू नवीनचन्द्रराय की पुण्य स्मृति में दिया करेंगी।

हमें आशा है कि पंजाब के धनी-मानी व्यक्ति श्रीमतीजी का अनुकरण कर हिन्दी के विद्यार्थियों को इसी प्रकार उत्साहित करते रहेंगे।

तुलसी-उत्सव

जून मास के आरम्भ और अन्त में प्रान्तीय सम्मेलन की ओर से लाहौर में दो कवि-सम्मेलन किये गये थे। गत २८ जुलाई को सनातन-धर्म-सभा भवन में गोस्वामी तुलसीदासजी की पुण्यस्मृति में एक सभा की गई। श्रीयुत रोशनलालजी बैरिस्टर सभापति थे। श्रीमणिरामजी गुप्त तथा पं० उदयशङ्करजी भट्ट की कवितायें बहुत अच्छी हुईं। प्रिंसिपल रघुबरदयाल तथा बाबू पुरुषोतम दास टंडन के प्रभावशाली व्याख्यान हुये। श्रीकुञ्जबिहारीजी श्री बलदेव जी और पं० दामोदरदासजी के श्रुतिमधुर संगीत से खिचकर श्रोता लोग साढ़े ग्यारह बजे तक उकताने नहीं पाये। उत्सव सफला-पूर्वक समाप्त हुआ।

जयचन्द्र विद्यालंकार
मंत्री
पंजाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,
लाहौर

अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-कवि-सम्मेलन

आजकल जनसाधारण की अभिरुचि काव्य-चर्चा की ओर अधिक आकर्षित हो रही है। सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में भी इस

सम्बन्ध में विशेष चर्चा रहती है। कवियों के प्रोत्साहन तथा जनता के काव्य-प्रेम के उत्तेजन के निमित्त कवि-सम्मेलनों का आयोजन भी हुआ करता है और उनमें पदक-पुरस्कार आदि भी दिये जाते हैं प्राचीन कवियों की कृतियोंके अन्वेषण और आधुनिक रीति सेउन के अनुशीलन तथा उन्हें सर्वसाधारण के समझने योग्य बनाने के प्रयास की ओर साहित्य-शिल्पियों का ध्यान अधिकाधिक आकृष्ट हो रहा है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के समुज्वल भविष्यके ये शुभ चिन्ह हैं। किन्तु खेद है कि इतने प्रयत्नों परभी आशातीत सफलता लाभ नहीं हो रही, बलिक उल्टे हमारे अनेक वयोवृद्ध और लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्य महारथी उदासीन होते जारहे हैं। नवयुवक साहित्य-सेवियों की जागृति जहाँ आशाप्रद और सुखमय है, तहाँ इन महानुभावों की उदासीनता हानिकर और निराशोत्पादक है। इस वैषम्य का एक मुख्य कारण संघशक्ति का अभाव है। हमारे कवियों का कोई संगठन नहीं। "अपनी-अपनी ढपली, अपना-अपना राग" की कहावत से कविता-कामिनी की दुर्दशा हो रही है और उस के सेवकों को पदे-पदे आपत्तियों का सामना करना पड़ता हैं। हिन्दी की काव्य-शैली में उच्छृङ्खलता का समावेश आरम्भ हो गया है। इन दोषों को दूर करने के लिये एक अखिल भारतवर्षीय हिन्दी कवि-सम्मेलन की आवश्यकता का अनुभव बहुत दिनों से हो रहा था।

अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के साथ ही प्रायः कवि-सम्मेलन भी होते रहे हैं; किन्तु उनमें न तो कुछ विशेषता ही होती थी और न इन अभावों की पूर्ति ही। इस बार वृन्दाबन की षोड़शी स्वागत-समिति ने सम्मेलनावसर पर अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-कवि-सम्मेलन करने की आयोजना की है। भारतवर्ष के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों और कविता प्रेमियों को आमंत्रित किया जा रहा है। हमारे नवयुवक कवि, वयोवृद्ध कवियों से विशेष लाभ नहीं उठा सकते थे तथा अनेक कवियों के दर्शन तक दुर्लभ रहते थे। अब इस आयोजना द्वारा उसकी पूर्ति हो सकेगी और नवयु

वक कवियों को इनके अर्चित ज्ञान और दीर्घ कालीन अनुभव का लाभ भी सहज ही प्राप्त हो सकेगा। इसके अतिरिक्त इस समय काव्य-मर्मज्ञों के सम्मुख अनेक विवाद-पूर्ण जटिल प्रश्न भी उपस्थित हैं, उनके निरीकरण का मार्ग भी प्रशस्त हो जायगा तथा भिन्न भिन्न स्थानों पर यदा-कदा होनेवाले कवि-सम्मेलनों को व्यवस्था और नियंत्रण भी सहज होगा और कवियों, कबिता-प्रेमियों एवं कवि सम्मेलनों के संयोजकों को जो कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं, उनका शमन भी हो सकेगा।

हम समस्त कवि महानुभावों और कविता-प्रेमियों से इस शुभ और आवश्यक कार्य में सम्मिलित होकर सहयोग-दान करने का अनुरोध करते हैं। कवि-सम्मेलन के लिये मार्गशीर्ष कृष्णा ६ संवत् १९८२ तदनुसार ता० ६ नवम्बर १९२५ का दिन नियत हुआ है। समय अत्यन्त कम है। आशा है, अखिल भारत के हिन्दी-कवि इस कवि-सम्मेलन में पधार कर हमें उपकृत करेंगे।

निवेदक

कविरत्न हरिश्चन्द्रदेव वर्मा 'चातक'

ब्रह्मचारी भद्रजित् 'भद्र'

संयोजक

श्रीयुत अमृतलालजी चक्रवर्ती

[लेखक—पण्डित बनारसीदासजी चतुर्वेदी]

लगभग पैंतालीस बरस पहले की बात है। अठारह वर्ष का एक बङ्गाली युवक एक हाट में साग बेचा करता था। उसके पास धन का अभाव था इसलिए उसने अपनी स्त्री के गले के सुनहले हार को बेचकर यह काम प्रारम्भ किया था। आज वही युवक हिन्दी-साहित्य-सेवा में वृद्ध होकर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति का आसन ग्रहण करने के लिए वृन्दावन आरहा है। निरन्तर अध्यवसाय और सच्ची लगन के द्वारा मनुष्य क्या से क्या

बन सकता है, श्रीयुत चक्रवर्तीजी का जीवन इस बात का एक अच्छा दृष्टान्त है।

आपका जन्म सन् १८६३ में ज़िला चौबीसपरगना के नावरा नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम था श्रीयुत आनन्द-चन्द्र चक्रवर्ती और माता का नाम था श्रीमती इच्छामयी देवी। पिता पुराने ढर्रे के ब्राह्मण थे।

५ वर्ष की अवस्था में आपने बोदरा के छात्रवृत्ति-विद्यालय में पढ़ना प्रारम्भ किया। ११ वर्ष की उम्र तक आप उसी विद्यालय में पढ़ते रहे। फिर घर पर ही संस्कृत पढ़ने लगे। जब आपकी अवस्था १२ वर्ष की हुई आपके मामा जो गाज़ीपुर में अफीम की कोठी में काम करते थे, आपको संस्कृत पढ़ाने के वायदे पर गाज़ी-पुर लेगये, लेकिन गाज़ीपुर पहुँचने पर आपको संस्कृत न पढ़ाई, और वे अङ्गरेज़ी पढ़ने के लिये विक्टोरिया स्कूल में भर्ती कर दिये गए। साल भर मामा के यहाँ रहे; फिर मौसी के यहाँ, जो उसी नगर में रहती थीं, चले गये। आपके मौसेरे भाई विद्वान् थे। उन्होंने पढ़ने की अच्छी व्यवस्था की। पहले कुछ दिन तक फ़ारसी पढ़ाई। एक दिन मौलवी साहब ने क्रोध में आकर बेंत मारा। आपने उनका क्लास छोड़ दिया और हिन्दी पढ़ने लगे। ६ महीने तक हिन्दी पढ़ी। फिर आपके मौसेरे भाई ने आपको विक्टोरिया स्कूल में छठवीं श्रेणी में भर्ती करा दिया। सन् १८७९ ई० में आपने अङ्गरेज़ी मिडिल की परीक्षा पास की। मिडिल पास करके जब सैकिएड क्लास में पहुँचे तो पिता बीमार पड़े। कुछ उपार्जन करना आवश्यक होगया। विद्यार्थियों को प्राइवेट तौर से पढ़ाकर पच्चीस रुपये महीने कमाने लगे। उसी समय के पढ़ाये हुए विद्यार्थियों में एक इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज जस्टिस लाल गोपाल मुकर्जी हैं।

सन् १८८१ के दिसम्बर में एएट्रेन्स की परीक्षा होने वाली थी, सितम्बर में पिता जी बीमार होगये और उनकी मृत्यु भी होगई। आप स्वयं भी बीमार पड़ गये। हैडमास्टर ने ख़र्च भेजकर बुलाया, पर परीक्षा में बैठ नहीं सके। तदनन्तर आप नौकरी की खोज में

कलकत्ते आये; पर बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी कहीं नौकरी न मिली। उन्हीं दिनों आपने अपनी स्त्री के गले के सुनहले हार को बेचकर साग बेचना शुरू किया था। आपके गाँव से ५ मील पर भांगड़ नामक स्थान में प्रति सप्ताह हाट लगती थी। उसीमें आप साग बेचकर चार पाँच रुपये कमा लेते थे और इस प्रकार अपना जीवन निर्वाह करते थे। आपके गाँव के लोग इस बात से बड़े क्रुद्ध थे, वे आपकी बदनामी करते थे और जाति-च्युत करने की धमकी भी देते थे।

जब आपके पास ६०-७० रु० जमा हो गये तो आप अपने कुटुम्ब के साथ गाज़ीपुर चले आये। सन् १८८२ में एक सज्जन ने २०) मासिक और कुटुम्ब भर के लिये अन्न देने का वचन देकर आपको अपनी प्रयाग की दूकान पर भेज दिया। वहीं आपने बुक कीपिङ्ग सीखा। सन् १८८३ में दुकानके दुर्व्यहार के कारण आपने यह काम छोड़कर रेल के लोकोमोटिव डिपार्टमेण्ट में नौकरी कर ली। २० रु० मिलते थे। एक दिन साहब से झगड़ा हो गया इसलिये आपने यह काम भी छोड़ दिया और ट्यूशन करके अपनी गुज़र करने लगे।

उन दिनों ऐण्ट्रेंस पास किये बिना ही क़ानून की परीक्षा दी जा सकती थी। आपने क़ानून पढ़ना शुरू किया। उन्हीं दिनों आप की परिचय प्रयाग-समाचार के सम्पादक पं० देवकीनन्दन त्रिपाठी के साथ हुआ। आप उनके पत्र के लिये लेख लिखने लगे। सन् १८८४ में पब्लिक प्रासीक्यूटर के यहाँ हाईकोर्ट में क्लार्की का काम करने लगे। वेतन ४०) मिलता था। प्रयाग में रहते हुए आप हिन्दू-सभा में सम्मिलित हुए। सभापति थे पं० आदित्यराम भट्टाचार्य (संस्कृत अध्यापक म्योर सेण्ट्रल कालेज) पण्डित मदनमोहन मालवीय जी इसके सदस्यों में से थे। सभा के वार्षिकोत्सव में कालाकांकर के राजा रामपालसिंह जी आये। वहाँ चक्रवर्तीजी का भाषण सुन कर उन्होंने आपको 'हिन्दुस्थान' पत्र के सम्पादन का काम स्वीकार करने के लिये कहा। हाईकोर्ट की नौकरी छोड़कर आप राजा

साहब के यहाँ चले गये। उस समय पब्लिक-प्रासिक्यूटर हिल साहब ने आप से कहा—"थोड़े दिन बाक़ी हैं। क़ानून की परीक्षा पास कर लो। मुंसिफ़ बना दूँगा।" मगर पत्र-सम्पादन के प्रति रुचि होने के कारण आपने उनकी बात न मानी। राजा साहब आनरेरी मजिस्ट्रेट थे। चक्रवर्तीजी उनके फ़ैसले लिखा करते थे। सन् १८८६ में आप यह काम छोड़कर घर चले आये। एंट्रेंस की परीक्षा की तैयारी करने लगे, राजा साहब ने बहुत बुलाया; पर आप नहीं गये। एंट्रेंस की परीक्षा पास की और "भारतमित्र" में सम्पादन का काम करने लगे। सुबह-शाम को "भारतमित्र" के आफ़िस में काम करते थे और मैट्रोपोलिटन इन्स्टीट्यूट (विद्यासागर कालेज) में पढ़ते भी थे। सन् १८८८ में एफ़० ए० की परीक्षा पास की। सन् १८९० में आनर्स के साथ बी० ए० हुए।

सन् १८८९ ई० में हरीसन रोड बनती थी। "भारतमित्र" के मेनेजिंग डाइरेक्टर थे जगन्नाथ खन्ना, जो म्यूनिसिपल कमिश्नर भी थे। सड़क बनते समय बड़ाबाज़ार का एक मन्दिर टूटने लगा। "भारतमित्र" में चक्रवर्त्तीजी ने इसका घोर विरोध किया। खन्नाजी बिगड़े और उन्होंने कहा "आप अपनी भूल को सुधारिये और "भारतमित्र" में खेद प्रकाशित कीजिये।" चक्रवर्त्तीजी इस पर राज़ी न हुए? खन्नाजी को कोई दूसरा आदमी नहीं मिला, इसलिये उन्होंने चक्रवर्त्तीजी को नौकरी पर बना रहने दिया। उन्हीं दिनों चक्रवर्त्तीजी ने बंगवासीवालों से महाभारत का अनुवाद निकालने को कहा। वे तैयार हो गये और ६०) रुपये मासिक पर उनके यहाँ काम करना प्रारम्भ किया। सन् १८९० में "हिन्दी-बंगवासी" आपके ही कहने से निकाला गया था और आपही सन् १९०० तक उसके सम्पादक रहे। इस बीच में सन् १८९४ में आपने बी० एल० की परीक्षा भी पास की थी। "बंगवासी" में रहते हुए आपने कई पुस्तकें लिखीं; पर उनपर आपने अपना नाम नहीं छपाया। सन् १९०० ई० में आपने (Orber supply) सामान भेजने का काम किया, तत्पश्चात् फिर बालमकुन्दजी गुप्तके साथ "भारतमित्र" का सम्पादन करने लगे।

इसके कुछ वर्ष बाद आप "श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार" का सम्पादन करने के लिए बम्बई गये। फिर भारतधर्म-महामण्डल के मेनेजर और "निगमागमचन्द्रिका" के सम्पादक भी रहे।

सन् १९०६ में आप घर आये और मोदी की दूकान खोली। स्वदेशी-आन्दोलन का युग था। उसमें आपने .खूब काम किया।

सन् १९०९ में "भारतमित्र" में फिर आ गये। सन् १९१२ में अलग हुए। नारियल की सब सामिग्री को रासायनिक अनुसंधान द्वारा काम में लाने के लिये कारख़ाना खोला; पर पूँजी बिना वह न चल सका। आप ऋण-ग्रस्त हो गये।

सन् १९१३ में ब्यावर राजपूताने के सेठ दामोदरदासजी राठी ने आपको अपने यहाँ बुला लिया। वहाँ आप उनकी मिल के सेक्रेटरी और मैनेजर हो गये। यदि आप वहाँ रहते तो आपकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी हो जाती; पर आपके हिन्दी प्रेम ने आप को वहाँ नहीं रहने दिया। आप सीधे बम्बई पहुँचे और वहाँ "श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार" में काम करने लगे। पीछे श्रीदामोदरदासजी राठी भी वहाँ गये। आप से ब्यावर को लौट चलने के लिये अनुरोध किया। आपने उत्तर दिया "माफ़ करो, हिन्दी लिखे बिना नहीं रहा जाता"।

सन् १९१४ में श्रीवेङ्कटेश्वर का दैनिक संस्करण आप के ही सम्पादकत्व में निकला। इसके बाद अनबन होने के कारण आप "कलकत्ता-समाचार" में चले आये। सन् १९१९ में एक बार फिर "वेङ्कटेश्वर-समाचार" में गये। फिर बम्बई के प्रसिद्ध धनेश्वर गोस्वामी गोकुलनाथजी को पढ़ाते रहे। सन् १९२२ ई० तक आप वहीं रहे। सन् १९२३ में स्वर्गीय देशबन्धु दास के पत्र "फ़ारवर्ड" में ३००) रु० मासिक पर नियुक्त हुए। हिन्दू-मुस्लिम-बैक्ट के विषय पर मतभेद हो जाने पर आपने उससे अपना सम्बन्ध छोड़ दिया। फिर बिड़ला-ब्रादर्स के यहाँ "श्री सनातन-धर्म" नामक साप्ताहिक पत्र में काम करने लगे। आजकल आप उन्हीं के लिये महाभारत की कथाएँ लिख रहे हैं।

इस प्रकार षोड़श हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के मनोनीत सभापति ने अपने जीवन में अनेक व्यवसाय और अनेक काम किये हैं; पर आपकी प्रवृत्ति हिन्दी-पत्र-सम्पादन की ओर ही रही है। आपकी जीवन-परिधि का केन्द्र जर्नलिज़्म ही रहा है। सन् १८८५ से लेकर, जब कि आप 'हिन्दुस्थान' के सम्पादकीय विभाग में काम करने के लिए कालाकाँकर गये थे, सन् १९२५ तक यानी इन चालीस वर्षों में आपने हिन्दी-जर्नलिज़्म का खूब अनुभव प्राप्त किया है। मातृभाषा बँगला होने पर भी राष्ट्रभाषा हिन्दी की जो सेवा आपने की है उसके लिये हम सब आपके ऋणी हैं। महात्मा गान्धीजी, माधवरावजी सप्रे और अमृतलालजी चक्रवर्ती को जिनकी मातृभाषायें क्रमशः गुजराती, मराठी और बँगला हैं, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति निर्वाचित कर हिन्दी-जनता ने अपनी कृतज्ञता का परिचय दिया है। हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने का इससे उत्तम प्रणाम और क्या मिल सकता है?

(नोट—इस लेख का सारा मसाला 'उपन्यास-तरंग' के श्रीयुक्त र० च० त्रिपाठी से मिला है। वस्तुतः यह लेख उन्हीं का है—बनारसीदास)

सभापति का निर्वाचन—सम्मेलन के सभापति का निर्वाचन हो चुका है। निर्वाचन भी जैसा चाहिये वैसा हुआ है। विद्या-वयोवृद्ध पंडित अमृतलालजी चक्रवर्ती इस वर्ष सम्मेलन के सभापति का आसन सुशोभित करेंगे। चक्रवर्तीजी ने, बंगाली होते हुए भी, राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा आजीवन प्राण-प्रण से की है। आप हिन्दी के उन पुराने कर्णधारों में से हैं जिन्होंने साहित्य-सेवा करना ही अपने जीवन का एक मात्र लक्ष्य माना है। सिद्धहस्त लेखक ही नहीं, आप एक कुशल संपादक भी हैं। आपकी संपादन-कला में मौलिकता का अधिक आदर रहा है। लेखन-शैली भी ख़ूब मनोहारिणी है। भाषा में भी मिठास और ज़ोर कम नहीं है। दो शब्दों में, चक्रवर्तीजी की साहित्य-सेवा पर उनकी निज की छाप है। सब से बड़ी बात तो यह है कि आप के हृदय में राष्ट्रभाषा के लिये बड़े ही उदार और विशद विचार हैं। राष्ट्रभाषा के ऐसे उत्कृष्ट उपासक को सम्मेलन का सभापति निर्वाचित कर हिन्दी-संसार ने, वास्तव में, एक श्लाघ्य कार्य किया है। स्वगताध्यक्ष श्रद्धेय राधाचरण गोस्वामी और सभापति मान्यवर अमृतलाल चक्रवर्ती—यह सोने में सुगन्ध नहीं तो क्या है? हमें बिश्वास है कि इस मणिकांचन-योग से हिन्दी-जगत् निश्चय ही असीम लाभ उठाएगा।

सम्मेलन और ब्रजभाषा—सम्मेलन, इस वर्ष, ब्रज में हो रहा है। माधुर्य-रूप वृन्दावन में, अब की, साहित्य-सुधा की पुनीत धारा बहेगी। निकुंज-विहारी की क्रीड़ास्थली में साहित्य-रस-माधुरी, बड़े भाग्य से, चखने को मिलेगी। ऐसा सुअवसर बार-बार आने का नहीं। यदि ब्रज-वृन्दावन न होता, तो आज हमारे साहित्य का

यह रम्य रूप न देख पड़ता। रस का कहीं पता भी न चलता। विहारी यह दोहा क्यों कहने जाते कि—

सघन कुंज छाया सुखद सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना के तीर॥

धन्य ब्रज! धन्य ब्रजभाषा!! अहा—

बरनन को करि सकै भला तिहि भाषा कोटी,
मचलि मचलि माँगी जामें हरि माखन-रोटी!

उसी रस-भूमि पर साहित्य का पीयूष-वर्षण होगा! कितने आनंद की बात है!

तो क्या हम यह सुख-स्वप्न देखने के अधिकारी नहीं हैं कि अब की बार सम्मेलन में ब्रजभाषा के प्राचीन एवं लुप्तप्राय ग्रन्थों के उद्धार की कोई ऐसी योजना तैयार की जायगी, जिससे साहित्य-सरोज के रसिक मधुकरों को फिर वही स्वर्गीय पराग पान करने को मिलेगा? आशा तो है कि यह सम्मेलन ब्रज के रस-पूर्ण प्रभाव से अछूता न रहेगा। नंदनंदन ब्रजचन्द्र भी अपने इस बचन का पालन करने में कुछ उठा न रखेंगे।

ब्रजवासी बल्लभ सदा मेरे जीवन प्रान।
इन्हें न नैक बिसारिहौं नंद बबा की आन॥

पंजाब प्रांतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन—पंजाब प्रांतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के मंत्री श्रीयुक्त जयचंद्र विद्यालंकार ने हमारे पास सम्मेलन का प्रथम वार्षिक विवरण भेजा है। यह संवत् १९८०—८१ वि० का विवरण है। विवरण देखने से पंजाब में हिन्दी-प्रचार की प्रगति का पता चलता है। बड़े संतोष और आनंद का विषय है कि इतने ही स्वल्प समय में पंजाब प्रांतीय सम्मेलन ने बहुत कुछ उन्नति कर ली है। इस का श्रेय राष्ट्रभाषा के अनन्य उपासक जयचंद्रजी को है।

३० चैत्र, संवत् १९७९, को पंजाब प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी विधि-पूर्वक स्थापना हुई थी। उसी दिन स्थायी समिति बनाई गई। समिति ने यथाशक्ति कार्य किया, फिर भी उसके सदस्यों

का जितना मनोयोग होना चाहिए था उतना उत्साहजनक नहीं रहा। पर समिति की आरंभिक दशा देखकर हमें निराशा नहीं हुई। कई संस्थाओं ने सम्मेलन के साथ अपना नियमपूर्वक संबंध किया। मुख्यतः लाहोर में और गौणतः डेराइस्माइल खाँ, मुलतान, फ़ीरोज़पुर, रोहतक आदि स्थानों में प्रचार-कार्य किया गया। कार्य की प्रगति सामान्य रही। पंजाब-सम्मेलन ने एक बिलकुल ही नया कार्य किया है। वह है 'कवि-दरबार'। यह कल्पना लोगों को बहुत पसन्द आई है। पर अभी इसमें बहुत कुछ संशोधन की आवश्यकता है।

यह संक्षिप्त विवरण संवत् ८०८१ का है। तबसे सम्मेलन बहुत कुछ उन्नत हो गया है। पंजाब जैसे उर्दू के मज़बूत क़िले में हिन्दी का इतना प्रवेश मामूली बात नहीं है। हम हिन्दी-भाषा-भाषियों में यदि ऐसा ही उत्साह रहा तो पंजाब में कुछ ही दिनों में राष्ट्रभाषा का आशातीत प्रचार हो जायगा। राष्ट्रभाषा में क्या सनातनी, क्या आर्य समाजी, क्या सिक्ख, क्या मुसलमान—सभी पंजाब-निवासियों को एक सा हाथ बटाना चाहिए। इस महत्व-पूर्ण प्रश्न में तो कोई धर्मगत या जातिगत मत-भेद होना ही न चाहिए।

गंगा-पुस्तक-माला का प्रकाशन-कार्य—हिन्दी-संसार प्रतिक्षण उन्नति के मार्ग की ओर अग्रसर हो रहा है, इसमें संदेह नहीं। कुछ वर्ष पहले हमारे यहाँ शायद एकाध ही ऐसा प्रकाशन-कार्यालय था, जहाँ से शुद्ध संस्कृत एवं सुसंपादित पुस्तकें प्रकाशित होती थीं। आज हम वैसे कई प्रकाशन-कार्यालय देखकर फूले नहीं समाते हैं। उनमें एक कार्यालय गंगा-पुस्तक-माला लखनऊ का है। इसे स्थापित हुए अभी बहुत थोड़ा समय हुआ है। पर इतने ही थोड़े समय में उसने कल्पनातीत उन्नति कर ली है। इसका सारा श्रेय उसके सुयोग्य संचालक श्रीदुलारेलाल भार्गव को है। हिन्दी की ऊँची मासिक-पत्रिकाओं में "माधुरी" का अच्छा स्थान है। साहित्य-सेवा करने में वह जन्म से ही दत्तचित्त है। गंगा-पुस्तक-

माला की कई पुस्तकें हमें ऊँची जँची हैं। उपर्युक्तमाला के अतिरिक्त इस कार्यालय ने और भी कुछ मालाओं का गूँथना आरम्भ किया है। प्रत्येक का भार एक-एक प्रवीण मालाकार को सौंप दिया गया है। उन मालाओं के भी कुछ कुसुम सुन्दर और सौरभमय हैं। संपादन कई पुस्तकों का अच्छा हुआ है। छपाई चित्ताकर्षिणी है ही। मूल्य भी अत्यधिक नहीं रहता है। लोकप्रियता में भी उपर्युक्त कार्यालय से प्रकाशित पुस्तकें कम नहीं हैं। फिर और क्या चाहिए?

हम गंगा-पुस्तक-माला-कार्यालय की हृदय से उन्नति चाहते हैं। अन्य पुस्तक-प्रकाशकों को भी, कई महत्वपूर्ण बातों में, उक्त कार्यालय का अनुकरण करना चाहिए।

पंजाब में श्रीटंडनजी—प्रायः ३.४ मास से सुप्रसिद्ध हिन्दी-साहित्य-सेवी श्रीपुरुषोत्तमदासजी टंडन लाहौर में हैं और वहाँ आप, जहाँ तक हमें ज्ञात है, वर्ष-दो-वर्ष रहेंगे। पंजाब को इस सौभाग्य से लाभ उठाना चाहिए। हमें विश्वास है कि श्रद्धेय टंडन जी पंजाब में हिन्दी-साहित्य की प्रगति में यथेष्ट योग-दान देंगे। हमारे उत्साही कार्यकर्त्ता श्री जयचंद्रजी विद्यालंकार टंडनजी को पंजाब में शायद ही अवकाश लेने दें!

भारतीय इतिहास का भौगोलिक आधार—लेखक—श्रीजयचंद्र विद्यालंकार; प्रकाशक—हिन्दी भवन लाहौर; डबलक्राउन १६ पेजी; पृष्ठ-संख्या ११०; कागज़, छपाई साधारण ; मूल्य ॥।)

श्रीजयचन्द्रजी विद्यालंकार एक अच्छे हिन्दी-साहित्य-सेवी हैं। इतिहास के तो आप विशेषज्ञ हैं। प्रस्तुत पुस्तक विद्यालंकारजी ने एक अनूठे ढङ्ग की लिखी है। यह विषय हिन्दी में प्रायः अछूता था। विदेशी इतिहासकारों एवं भूगोल लेखकों ने हमारी प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री का अधिकांश कैसी भ्रान्ति में डाल रखा है, यह किसी पुरातत्त्व-प्रेमी से छिपा नहीं। इतिहास लिखते समय उन सज्जनों ने भौगोलिक आधार पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। इन्हीं कारणों से आज हमें अपने प्राचीन गौरव का पता नहीं चलता और न राष्ट्रीयता की जड़ ही मज़बूत होती है। लेखक ने, संक्षेप में, इस ओर यथेष्ट ध्यान दिया है। मनुष्य और प्रकृति, भौमिक परिवर्तन, भारतवर्ष के भाग, विन्ध्य मेखला, दक्षिण भारत, हिमालय और पश्चिमोत्तर की पर्वतमाला तथा समुद्र-तट आदि विषयों पर लेखक ने गवेषणा-पूर्व विचार किया है, और बहुत-कुछ पते की बातें दी हैं। कहीं-कहीं पर तो पढ़ते-पढ़ते हिन्दू-वीर-संस्कृति का चित्र प्रत्यक्ष हो जाता है। शैली बड़ी ही मनोरंजनी है। भाषा में पर्याप्त मिठास है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा के पाठ्यक्रम में इस उत्कृष्ट पुस्तक को स्थान दिया गया है। पुस्तक है भी आदरणीय।

एक बात खटकती है। वह यह कि पुस्तक में प्रेस-संबन्धिनी अगणित अशुद्धियाँ रह गई हैं। ऐसी पुस्तक तो बड़ी सावधानी से

छपनी चाहिए थी। आशा है, इसका दूसरा संस्करण शुद्ध और सुन्दर प्रकाशित होगा।

क्रूर वेण—लेखक-श्रीहरद्वारप्रसाद जालान; प्रकाशक—श्रीहरद्वारप्रसाद जालान, श्रीनवरंगलाल तुलस्यान, चौक, आरा (विहार) डबलक्राउन १६ पेजी; पृष्ठ-संख्या ११२; कागज़; डबल पुष्ट, छपाई सुन्दर; मूल्य ।॥)।

यह एक पौराणिक रूपक है। अत्याचारी राजा वेण का आख्यान नाटक के साँचे में ढाला गया है। अप्रत्यक्ष रूप से देश की वर्तमान अवस्था की इतनी अधिक कल्पनाओं से काम लिया गया है कि प्राचीन आख्यान एक दम विकृत-सा हो गया है। कहीं-कहीं तो बिलकुल ही हलकापन आ गया है। नाटक खेलने योग्य तो अवश्य है, पर उन्हीं स्टेजों पर, जिनका आजकल ख़ूब आदर हो रहा है। हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि यह नाटक, पारसी कम्पनियों में खेले जानेवाले नाटकों की तरह, हीन श्रेणी, का है; पर हाँ, हिन्दी में जैसे मौलिक नाटकों की माँग है, उसकी पूर्ति करने में, दुःख के साथ लिखना पड़ता है, यह बहुत असमर्थ है। शैली और भाषा में गंभीरता और जान नहीं है। कविताएँ भी साधारण हैं। फिर भी नवयुवक लेखक का प्रयास व्यर्थ नहीं है।

प्रेम-साम्राज्य—लेखक—श्रीसत्यदेवनारायण साही; प्रकाशक—बाबू कृष्णदेवनारायण साही, कबीरचौरा, काशी; डबलक्राउन १६ पेजी; पृष्ठ-संख्या ७५, काग़ज़ और छपाई सुन्दर; मूल्य ॥)

पुस्तक देखकर हम यह साहस के साथ कह सकते हैं कि सहृदय लेखक ने प्रेम-साम्राज्य की सीमा छूने का जो प्रयत्न किया है उसमें उसे आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। प्रेम पर क्या लिखा जा सकता है! वह मस्तिष्क और तर्क का विषय तो है नहीं। वह तो हृदय की सम्पत्ति है, जिसकी रक्षा भावों से होती आई है। प्रेम-साम्राज्य के आगे सभी साम्राज्य तुच्छ हैं, इसी महान् सत्य-मूलक

सिद्धान्त को हृदयंगम करने एवं कराने की लेखक ने चेष्टा की है। शैली बड़ी ही सुन्दर और चित्ताकर्षिणी है। भाषा-माधुर्य भी आस्वाद्य है। लेखक ने जहाँ-तहाँ प्रसंगानुकूल प्रेमी महात्माओं और कवियों के जो पद्य उद्धृत किये हैं उनसे पुस्तक की शोभा दूनी हो गयी है। हम प्रेमास्पद साहीजी को इस सत्कृति पर उन्हें हार्दिक बधाई देते हैं!

—'आलोचक'

मुनि अनन्तकीर्ति दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमाला के पाँच पुष्प

संसार के समस्त देशों में भारतवर्ष एक विलक्षण ही देश है। इसकी अनेक विलक्षणताओं में से एक यह है कि यहाँ प्राचीन काल में जितने धर्म-प्रवर्तक हुए हैं उतने संसार के अन्य किसी भी भूभाग में नहीं हुए। इसी से जिन्होंने इस देश के प्राचीन इतिहास का अध्ययन किया है उन्होंने इसे अनेक धर्मोत्पादक देश (A land of religions) की संज्ञा दी है। इन धर्मों में से कुछ ऐसे धर्म हुए हैं, जिन्होंने इस देश के ही नहीं किन्तु संसार के इतिहास में चिर-स्थायी स्थान प्राप्त कर लिया है। ऐसे धर्म तीन हैं। हिन्दू, जैन और बौद्ध। हिन्दू-धर्म की इस देश में ऐसी पक्की नींव पड़ी है कि शताब्दियों के इहदेशिक और वैदेशिक आघातों और आपत्तियों का सहकर भी आज वह अचल रूप से स्थित है। बौद्ध धर्म इस देश के इतिहास में एक अमर-जीवन प्राप्त कर यहाँ से लुप्तप्राय हो गया; पर अन्य देशों में वह अब भी इस प्राबल्य से प्रचलित है कि उसकी गणना संसार के सब से अधिक व्यापक धर्मों में की जाती है। जैन-धर्म न तो आज बौद्ध-धर्म के समान इस देश के बाहर प्रचलित है और न हिन्दू-धर्म के समान इस देश में उसकी भारी प्रचुरता ही है। पर उसमें कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके बल से उसका अस्तित्व अच्छे रूप से बना हुआ है और जिनके कारण वह संसार के धर्मों में आदरणीय है। भारतवर्ष पर इन तीनों धर्मों की गहरी छाप लगी हुई है। इसलिए इस देश के विषय में किसी प्रकार का भी ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन तीनों धर्मों का

साहित्य अवलोकन करना अत्यन्त आवश्यक है। इन तीनों धर्मों के साहित्य अपनी अपनी विशेषताएँ रखते हैं, जिनमें से एक विशेषता यह है कि वे भारत की तीन भिन्न-भिन्न भाषाओं में रचित हैं। हिन्दू धर्म-ग्रंथों की भाषा संस्कृत है, बौद्ध ग्रंथों की पाली और प्राचीन जैन-ग्रंथों की मुख्यतः प्राकृत। अतएव जैन-साहित्य उसके आन्तरिक गौरव के अतिरिक्त उसके बाह्यरूप अर्थात् भाषा की दृष्टि से भी बड़े महत्व का है। वर्तमान में हिन्दू-ग्रंथों का प्रचार और पठन-पाठन ख़ूब है। विदेशी विद्वानों के विद्या-प्रेम और तथ्यान्वेषण में अभिरुचि के कारण बौद्ध ग्रंथों की भी खोज-बीन अच्छी हुई है, और अधिकांश ग्रंथ छप भी चुके हैं, पर जैन ग्रंथों की न तो अब तक पूरी-पूरी खोज हुई है और न वे संतोषजनक मात्रा में प्रकाशित ही हुए हैं। इसका मूल कारण यह है कि जैनियों में कुछ लोगों की अब तक ऐसी धारणा है कि पवित्र धर्मग्रंथों को प्रेस के हवाले करना उनकी अविनय करना और पाप है। इस असमयोचित दुराग्रह के फलस्वरूप अपरिमित और महत्वपूर्ण जैन साहित्य आज चूहों और दीमक का भोजन बन रहा है। हर्ष का विषय है कि जैन समाज का एक अंग समय की आवश्यकताओं को समझकर सचेत हो गया है। उसके प्रयत्न से धीरे-धीरे हज़ारों ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं और कई ग्रंथमालाएँ स्थापित हुई हैं। वर्तमान में बम्बई से प्रकाशित होनेवाली माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैन-ग्रंथमाला द्वारा अनेक प्राचीन जैनग्रंथों का उद्धार हो रहा है। लगभग छह वर्ष से एक मुनिअनंतकीर्त्ति-दिगम्बर-जैन-ग्रंथमाला प्रकाशित हो रही है। इस माला के निम्नलिखित पाँच पुष्प इस समय हमारे सम्मुख समालोचनार्थ प्रस्तुत हैं :—

१. अष्ट पाहुड़—स्वामी कुन्द-कुन्दाचार्य कृत।
२. मूलाचार—स्वामी वट्टकेर कृत।
३. आप्तमीमांसा—समन्तभद्राचार्य कृत।
४. प्रमेय रत्नमाला—अनन्तकीर्त्ति सूरिकृत।
५. सामयिक पाठ।

इन ग्रंथों का परिचय प्राप्त करने से प्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि वर्तमान में जैन-समाज तीन सम्प्रदायों विभाजित है। दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानक वासी। व्यवहार में इन तीन सम्प्रदायों में यह अन्तर है कि दिगम्बर सम्प्रदायवाले नग्न मूर्त्ति की पूजा करते हैं, श्वेताम्बर उन्हीं प्रतिमाओं को आभूषण-युक्त कर पूजते हैं और स्थानक-वासी मूर्त्ति-पूजा को नहीं मानते। इन तीनों के तत्व-ज्ञान सम्बन्धी ग्रंथों में बहुत थोड़ा अन्तर है। उपर्युक्त पाँचों ग्रंथ दिगम्बर सम्प्रदाय के हैं।

१—अष्टपाहुड़ : कुन्दकुन्दाचार्य कृत

जैन-साहित्य में कुन्दकुन्दाचार्य के ग्रंथों का स्थान सर्वोपरि है। जैन पदावलियों के अनुसार इन आचार्य का समय विक्रम की प्रथम शताब्दी निश्चित होता है। इनके अबतक 'पञ्चास्तिकाय' 'समयसार' "प्रवचनसार" 'नियमसार' 'द्वादशानुप्रेक्षा' और 'अष्टपाहुड़*' ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। सभी ग्रंथ प्राकृत गाथाओं में हैं और अध्यात्मरस-पूर्ण हैं। इनमें जैन-फ़िलासफ़ी का बहुत सुसंस्कृत और वैज्ञानिक शैली से विवेचन किया गया है। प्रस्तुत ग्रंथ आठपाहुड़ अर्थात् स्फुट रचनाओं का संग्रह है। कहा जाता है कि कुन्दकुन्दाचार्य ने और भी अनेक पाहुड़-ग्रंथों की रचना की थी। पर अबतक इनके आठ ही पाहुड़ उपलब्ध हुए हैं जो उपर्युक्त ग्रंथ में संगृहीत किये गये हैं। इन आठ पाहुड़ों के नाम ये हैं—दर्शन पाहुड़, सूत्र पाहुड़, चरित्र पाहुड़, बोध बाहुड़, भाव पाहुड़, मोक्ष पाहुड़, लिंग पाहुड़ और शील पाहुड़। इनमें जीव, परमात्मा, इहलोक, परलोक, मोक्ष, गृहस्थ-धर्म व मुनि-धर्म के विषय में जैन-मत क्या कहता है इस सब का यथास्थान विवरण आया है। जैन-धर्म जीवात्मा की ही परमशुद्ध परमोत्कृष्ट अवस्था को परमात्मा मानता है। इस प्रकार प्रत्येक जीव अपनी आत्मा को शुद्ध कर परमात्मपद

---

*पृ० १८+६+४१६; मू० १।≈)

प्राप्त कर सकता है। अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनन्त शक्ति आदि आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं जो कर्मफल से आच्छादित रहने के कारण पूर्णतः विकसित नहीं होने पाते। कर्म-फल को हटा देने से ही ये लक्षण प्रादुर्भूत होते हैं। कर्म-फल से छुटकारा पाने का नाम ही मोक्ष है। इसका उपाय सच्ची धार्मिक श्रद्धा और सच्चे तत्व-ज्ञान-पूर्वक सदाचरण ही है। यह विषय इस ग्रंथ के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है। अष्ट पाहुड़ प्राकृत गाथाओं की संस्कृत छाया और विस्तृत हिन्दी टीका-सहित छपा है। इसकी हिन्दी खड़ी बोली नहीं, जयपुर की शास्त्री भाषा है। इसके कर्त्ता गत शताब्दी के एक बड़े जैन पंडित जयचंद्रजी छावड़ा हैं।

२—मूलाचार : बट्टकेर स्वामी कृत

बट्टकेर स्वामी के ग्रन्थ दिगम्बर सम्प्रदाय में आचार के विषय पर सर्वोपरि प्रमाण माने जाते हैं। इन आचार्य का समय विक्रम की तीसरी-चौथी शताब्दी अनुमान किया जाता है। उक्त ग्रन्थ १२४३ प्राकृत गाथाओं में समाप्त हुआ है। इसमें मुनिधर्म की सब क्रियाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। प्रत्येक क्रिया किस सिद्धान्त के ऊपर अवलम्बित है इसका भी खुलासा ग्रन्थ में पाया जाता है। आजकल जैन-मुनियों की क्रियाओं के विषय में अजैन भाइयों को बहुत से भ्रम हैं जिनको इन भ्रमों के निवारण करने की इच्छा हो वे इस ग्रन्थ का अवश्य परिशीलन करें। ग्रन्थ मूल गाथा, संस्कृत छाया और प्रचलित हिन्दी अर्थ-सहित छपा है।❀

३—आप्तमीमांसा : समन्तभद्राचार्य कृत

समन्तभद्राचार्य का समय भी विक्रम की तीसरी-चौथी शताब्दी अनुमान किया जाता है। ये बड़े भारी जैन-नैयायिक और संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् थे। जैन-ग्रंथों और कुछ शिला-लेखों में

❀ पृ० ३६+४३२; मू० ३॥)

इनके विषय में वर्णन पाया जाता है कि इन्होंने काञ्ची, दशपुर, वाराणसी, पाटलिपुत्र, ढक्क, मालव, सिन्ध, विदिशा करहाटक आदि भारत के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थानों और नगरों में हिन्दू और बौद्ध विद्वानों से शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त की थी। इनके अभी तक पाँच ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं जो प्रायः सभी न्यायविषयक हैं। आप्तमीमांसा आपकी सर्वोत्तम कृति है। यह ऊपर से तो एकसौ पन्द्रह श्लोकों की देव-स्तुति है; पर इसमें सारा जैन-न्याय गर्भित है। जैनियों के जिस स्याद्वाद न्याय के विषय में स्वामी शंकराचार्यजी ने भी धोखा खाया है, उसका इस ग्रंथ में अच्छा बिवेचन किया गया है। न्याय से रुचि रखनेवालों को इसका अवलोकन करना चाहिए। मूल ग्रंथ संस्कृत श्लोकों में है। इसकी विस्तृत हिन्दी-टीका उपर्युक्त पंडित जयचंद्रजी की लिखी हुई है।❀

४—प्रमेय रत्नमाला अनन्तवीर्य कृत

माणिक्यनंदि आचार्य प्रणीत 'परीक्षा मुख' सूत्र की अनन्तवीर्य कृत संस्कृत टीका का नाम 'प्रमेय रत्नमाला' है। यह भी जैन-न्याय का बहुत अच्छा ग्रन्थ है। इसी संस्कृत टीका का स्वतंत्र हिन्दी-अनुवाद पंडित जयचन्द्रजी का लिखा हुआ मूल संस्कृत सूत्रों सहित प्रस्तुत ग्रन्थ में छपा है। जैन-न्याय का पूरा परिचय प्राप्त करने के लिये यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है।†

५—सामयिक पाठ

इसमें जैनियों की संध्याविधि का विवरण है।‡ कैसी शुद्ध भावनाओं को लेकर जैनियों को संध्या करने का आदेश है यह इस पुस्तक

❀पृ० १२+११८, मू० ॥=)
†पृ० २२+२२३; मू० १)
‡पृ० १६+६५; मू० ।-)

के अवलोकन से ज्ञात हो सकता है। पुस्तक मूल संस्कृत प्राकृत पाठ और मंत्रों की हिन्दीटीका-सहित छपी है।

उपर्युक्त पाँचों ग्रन्थों की छपाई, काग़ज़ और जिल्द बँधाई आदि बहुत संतोषप्रद हैं। ये सब ग्रन्थ 'जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग़, बम्बई से मिल सकते हैं।

—हीरालाल जैन

सुकवि-संकीर्तन—लेखक—श्रीयुत पंडित महाबीरप्रसाद द्विवेदी; प्रकाशक—गंगा-पुस्तक-माला-कार्यालय, २९-३०, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या – १७०; छपाई सुन्दर, काग़ज़ पुष्ट; मूल्य १।), सजिल्द १॥)

लेखक के विषय में कहने के लिए हमारे पास शब्द नहीं। वक्तव्य-लेखक के इस वाक्य के साथ हम पूर्णतः सहमत हैं कि आधुनिक हिन्दी-साहित्य के निर्माण में द्विवेदीजी की प्रभाव-शालिनी लेखनी ने बहुत बड़ा काम किया है। द्विवेदीजी महाराज ने 'सरस्वती'-पत्रिका में समय-समय पर कवि-कोविदों के जो सरस चरित्र लिखे हैं उन्हीं का यह एक सुन्दर संग्रह है। सब मिलाकर इसमें १३ सज्जनों के चरित्र संकलित किये गये हैं। हिन्दी, बंगला, संस्कृत आदि कई भाषाओं के कवियों को स्थान दिया गया है। राजा रामपालसिंह, विजयधर्म्मसूरि आदि कोवियों और विद्या-विशारदों से संबंध में, जो यह शंका उठती है कि क्या ये लोग भी 'कवि' थे, उसका समाधान स्वयं लेखक ने, निम्न-लिखित श्लोक देकर, कर दिया है—

विद्वान् विपश्चिद्दोषज्ञःसन्सुधीः कोविदो बुधः;
धीरो मनीषीज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पंडितः कविः।

माना कि यह सब 'कवि' शब्द के अन्तर्गत आ जाते हैं, तथापि 'रूढ़ शब्दों का तिरस्कार नहीं हो सकता। 'कवि' शब्द जिस विशेष अर्थ में रूढ़ हो गया है, विद्वत्समाज उसीको ग्रहण करेगा; विद्वत्समाज न सही तो जनसाधारण तो अवश्य ही उसे स्वीकार करेगा। अस्तु ! पूज्य द्विवेदीजी ने जिस शैली पर इन निबन्धों को

लिखा है, उसकी सरसता, मनोज्ञता और गंभीरता की प्रशंसा नहीं हो सकती। ऐसी ही पुस्तकें विश्व-साहित्य में स्थायित्व का दावा कर सकती हैं, इतना ही लिखकर हम सन्तोष करेंगे।

अद्भुत आलाप—लेखक—श्रीयुत पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी; प्रकाशक—गंगा पुस्तकमाला-कार्यालय २९-३०, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या—१५६; छपाई सुन्दर, काग़ज़ पुष्ट; मूल्य सादी जिल्द १), रेशमी जिल्द १॥)

यह आश्चर्यजनक एवं कौतूहलवर्द्धक निबन्धों का संग्रह है। सब मिलाकर २१ निबन्ध हैं, जिनमें एक के लेखक पंडित मधुमंगल मिश्र हैं। परलोकवाद भारतवर्ष का तो एक प्राचीन विषय है ही, कुछ दिनों से भौतिकवादी पाश्चात्य देशों में भी इस विषय पर बड़े-बड़े मनीषी अच्छा अनुशीलन कर रहे हैं और उन्हें इस संबन्ध में अनुभव भी खूब हुए हैं और नित्यप्रति हो रहे हैं। अधिकांशतः इस सुन्दर संग्रह में उन्हीं निबन्धों का संकलन किया गया है, जो पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अनुभूत अद्भुत चमत्कारों के आधार पर लिखे गये हैं। एक योगी की साप्ताहिक समाधि, परलोक से प्राप्त हुए पत्र, एक ही शरीर में अनेक आत्माएँ, मंगल-ग्रह तक तार, भयंकर भूतलीला आदि निबन्धों के पढ़ने के चित्त, सचमुच ही, एक अद्भुत चक्कर में पड़ जाता है। परलोकवाद के प्रेमियों के लिये तो यह छोटी सी पुस्तक बड़ी कौतूहल-वर्द्धक होगी। पूज्य द्विवेदीजी की प्रतिभाशालिनी लेखनी ने पुस्तक को और भी चित्ताकर्षक बना दिया है। पुस्तक उपादेय है।

[विशेष—'सुकवि-संकीर्तन' और 'अद्भुत आलाप' जैसी पुस्तकें प्रकाशित कर प्रकाशक महोदय ने एक आदर्श उपस्थित कर दिया है। द्विवेदीजी—जैसे साहित्य-महारथियों के बिखरे हुए रत्नों की माला गूँथकर सुयोग्य प्रकाशक ने जो स्तुत्य कार्य किया है, उसका अन्य प्रकाशकों को अनुकरण चाहिए।]

—'साहित्यानन्द'

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्य-विवरण

तथा

लेखमालाएँ

थम सम्मेलन की लेखमाला		॥।)	चतुर्दश सम्मेलनको लेख-माला		॥)
द्वितीय ,,	,,	१)	प्रथम वर्ष का कार्य विवरण		।)
तृतीय ,,	,,	।॥)	द्वितीय ,,	,,	।)
चतुर्थ ,,	,,	॥।)	तृतीय ,,	,,	।=)
पंचम ,,	,,	॥)	चतुर्थ ,,	,,	॥)
षष्ठ ,,	,,	॥।)	पंचम ,,	,,	।॥)
सप्तम ,,	,,	॥=)	षष्ठ ,,	,,	।)
अष्टम ,,	,,	१)	सप्तम ,,	,,	।=)
नवम ,,	,,	१॥)	अष्टम ,,	,,	।)
दशम ,,	,,	।≡)	नवम ,,	,,	।=)
एकादश ,,	,,	१॥)	दशम ,,	,,	॥)
त्रयोदश ,,	,,	१)	त्रयोदश ,,	,,	॥)

अन्य पुस्तकों के नवीन संस्करण

निम्नलिखित पुस्तकें बहुत दिनों से अप्राप्य थीं, अब उनके नवीन संस्करण छपकर तैयार हैं। जिन्हें आवश्यकता हो, तुरन्त लिखकर मँगालें—

द्वितीय सम्मेलन का कार्य-विवरण प्रथम भाग	।)
,, ,, ,, द्वितीय भाग (लेखमाला)	१)
हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	।=)
सूरदास की विनय-पत्रिका (सटिप्पण)	≡)

पता—मंत्री, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

५०) का पारितोषिक

सम्मेलन ने श्रीमती यशोदा देवी की ओर से बाल-साहित्य विषय पर प्रकाशित सर्वोत्तम पुस्तक पर ५०) का जो पारितोषिक देने का निश्चय किया था, उसके सम्बन्ध में ८ पुस्तकें [illegible] उन पुस्तकों में श्रीयुत पं० रघुनन्दनजी शर्म्मा की लिखी हुई "दशाखल" नामक पुस्तक सर्वोत्तम समझी गयी। अतएव ५०) का यह पारितोषिक श्रीयुत रघुनन्दन शर्म्मा को दिया जायगा।

प्रधान मंत्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

घर-बैठे वृन्दाबन-सम्मेलन का दृश्य देखिए !

सम्मेलनाङ्क

प्रति वर्ष की भाँति इस बार भी 'सम्मेलन-पत्रिका' का सम्मेलनाङ्क निकलेगा। यह अंक मार्गशीर्ष और पौष का संयुक्त अंक होगा। इसमें सम्मेलन के समारोह का रोचक वर्णक स्वागताध्यक्ष की वक्तृता, सभापति का भाषण और कवि-सम्मेलन की उत्तमोत्तम समस्या-पूर्त्तियाँ रहेंगी। इसके अतिरिक्त सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्ताव, स्थायीसमिति के पदाधिकारियों और सदस्यों की सूची एवं अन्य आवश्यक बातों का भी उल्लेख रहेगा। हो सका तो संवत १९८२ वि० की सम्मेलन-परीक्षाओं का परीक्षा फल भी इसमें प्रकाशित किया जायगा। जो सज्जन किसी कारण वश वृन्दाबन-सम्मेलन में सम्मिलित न हो सकेंगे उन्हें सम्मेलन पत्रिका के इस सम्मेलनाङ्क में ही वहाँ का सुन्दर दृश्य देखने को मिल जायगा। इस अंक का मूल्य होगा।≈)

प्रचार-मंत्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

सरल पिङ्गल

ले०—{ श्री पुत्तनलाल विद्यार्थी विशारद
श्री लक्ष्मीधर शुक्ल विशारद

इस पुस्तक में पिङ्गलशास्त्र के गूढ़ रहस्यों को सरल और सुन्दर [भा]षा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। छन्दों के उत्तम उदाह[रण] भी दिये गये हैं। अन्त में संस्कृत छन्दों का भी संक्षेप में [दि]ग्दर्शन करा दिया गया है। यह पुस्तक सम्मेलन की प्रथमा-[प]रीक्षा के साहित्य विषय की पाठ्य पुस्तकों में स्वीकृत है पृष्ठ-[सं]ख्या ५८ मूल्य ।)

सूरपदावली (सटिप्पण)

श्री सूरदासजी के १०० अत्युत्तम पदों का अपूर्व संग्रह है। [मू]ल्य ।)

भारतवर्ष का इतिहास [द्वितीय खण्ड]

[लेखक—श्री मिश्रबन्धु]

इसमें ५०० संवत् पूर्व से १२५० संवत् तक की घटनाओं का वर्णन [कि]या गया है। भारतवर्ष के उत्थान-पतन के क्रम का पता इस [पु]स्तक से जैसा कुछ चलता है, यह पढ़ने से ही मालूम होगा। [हि]न्दू-समाज की उन्नति और अवनति, इस देश में स्वदेशी और विदेशी भावों का आविर्भाव तथा धार्मिक जीवन की महत्ता आदि जानने योग्य आवश्यक विषयों का ज्ञान इससे पूर्णतः प्राप्त हो सकता है। यह पुस्तक सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा की इतिहास-विषयक पाठ्य पुस्तकों में स्वीकृत है। सुन्दर छपाई, कपड़े की जिल्द, पृष्ठ-संख्या ४४० मूल्य २।)

संक्षिप्त सूरसागर

[सम्पादक—श्री वियोगी हरि]

... कम ... ञ्चित सूरसागर से ५०० पद-रत्न चुनकर इसमें लक्षण और ... । जहाँ तक हो सका है, कई प्रतियों से पदों का ... प्रथमा परीक्षा ...

... य-मन्त्रे-सम्मेलन ...

पाठ शुद्ध किया गया है। प्रत्येक पद की पाद-टिप्पणी भी लगा दी गयी है। अब तक सब के अनुशीलन करने योग्य सूरसागर का सुन्दर और सुलभ संस्करण नहीं निकला था। लोग इसके रसास्वादन के लिये लालायित हो रहे थे। सम्मेलन ने इस अभाव को दूर कर हिन्दी-साहित्य-रसिकों की पिपासा शान्त करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तक के अन्त में लगभग १०० पृष्ठ की सूरदासजी की जीवनी तथा काव्य-परिचय जोड़ा गया है। उनकी जीवनी की मुख्य मुख्य घटनाओं का पूरा-पूरा उल्लेख आगया है। पदों में आई हुई अन्तर्कथाएँ भी लिखी गयी हैं। यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा में स्वीकृत है। एण्टिक काग़ज़ का जिल्ददार संस्करण, पृष्ठसंख्या ४२५, मूल्य २)

विहारी-संग्रह

[सम्पादक—श्री वियोगी हरि]

कविवर विहारीलाल की सतसई से प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह छोटा सा संग्रह तैयार किया गया है। जहाँ तक सम्भव हुआ है, इसमें श्रृंगाररस के दोहों का समावेश नहीं किया गया है। किन्तु ऐसे दोहों का संग्रह किया गया है, जो बिना किसी सङ्कोच के बालक-बालिकाओं को पढ़ाये जा सकते हैं। पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य ≡)

व्रज-माधुरी-सार

[सम्पादक—श्री वियोगी हरि]

इस पुस्तक का विषय इसके नाम ही से प्रकट होता है। इसमें व्रजभाषा की कविता का सार सङ्कलन किया गया है। इस संग्रह में चार विशेषताएँ हैं:—

(१) इसमें सूरदासजी से लेकर आधुनिक काल के [illegible] सत्यनारायणजी तक की भावपूर्ण कविताओं का [illegible] गया है।

(२) इसमें कुछ ऐसे कवियों की रचनाओं का रसास्वादन भी कराया गया है जो अभी तक कहीं प्रकाशित नहीं हुई थीं।

(३) इस ग्रन्थ में यथेष्ट पाद-टिप्पणियाँ लगा दी गयी हैं, जिनकी सहायता से साधारण पाठक भी लाभ उठा सकते हैं।

(४) इसके प्रारम्भ में प्रत्येक कवि का संक्षिप्त जीवनचरित और उसकी कविता की संक्षिप्त आलोचना भी की गई है।

पृष्ठसंख्या ६३२, मूल्य जिल्दवाले संस्करण का केवल २)

पद्मावत (पूर्वार्द्ध)

[सम्पादक—श्री लाला भगवानदीन]

यह हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत का पूर्वार्द्ध है। इस भाग में पहले खण्ड से लेकर ३४वें खण्ड तक का समावेश हुआ है। सम्पादक महोदय ने इस ग्रन्थ में इतनी पादटिप्पणी लगा दी हैं कि अब इस प्राचीन काव्य का रसास्वादन करना प्रत्येक कविता-प्रेमी के लिए सुलभ हो गया है। अन्त में एक संक्षिप्त शब्द कोश भी जोड़ दिया गया है। पृष्ठ-संख्या लगभग २००; मूल्य साधारण जिल्द का १) और जिल्दवाली का १।)

सूरदास की विनयपत्रिका

[सम्पादक—श्री वियोगी हरि]

यद्यपि 'विनय-पत्रिका' नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ महात्मा सूरदासजी का नहीं है तथापि सूरसागर में विनय-सम्बन्धी जो पद मिलते हैं, उन्हीं के आधार पर सौ उत्तमोत्तम एवं मनोरम पदों का संकलन करके इसका 'विनय-पत्रिका' नाम दिया गया है। [illegible] क्रम [illegible] लि[illegible]सजी की विनय-पत्रिका का रक्खा गया है। अन्त में लक्षण और उनके [illegible]ची दे दिया है। पृष्ठ-संख्या ७४, मूल्य केवल ≡)

प्रथमा परीक्षा में यह [illegible]

[illegible]त्य-सम्मेलन [illegible]

[illegible]—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, पोस्टबाक्स नं० ११, प्रयाग

साहित्य-रत्न-माला

१—अकबर की राज्य-व्यवस्था

[लेखक—साहित्य-रत्न श्री० शेषमणिजी त्रिपाठी, बी० ए०]

इसमें सम्राट अकबर की राज्य-व्यवस्था का बड़ा ही मनोहर चित्र अंकित किया गया है। अकबर के राज्य-काल में भारतीय समाज, धर्म-नीति तथा जीवन की क्या अवस्था थी, वर्तमान राज्य प्रणाली, तत्कालीन व्यवस्था के मुक़ाबले में कैसी है आदि बातों का पता इस पुस्तक से भली भाँति लगता है। इतिहास, राजनीति तथा अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए यह बहुत लाभदायक है। पृष्ठसंख्या २८०, मूल्य १)

२—हिन्दी-काव्य में नवरस

[लेखक—साहित्य रत्न श्रीयुत बाबूरामबित्थरिया]

पुस्तक का विषय उसके नाम से ही प्रकट है। यह पुस्तक लेखक ने सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा देने के लिए निबन्ध (Thesis) रूप में लिखी थी। पुस्तक कितने महत्त्व की है, यह इसी से प्रकट है कि सम्मेलन की परीक्षा-समिति ने इसे मध्यमा परीक्षा के साहित्य विषय के पाठ्यग्रन्थों में चुना है। लगभग ३५० पृष्ठ की होगी। छप रही है। जल्द तैयार होगी।

सम्मेलन की अन्य पुस्तकें

सूर्य सिद्धान्त

[सम्पादक—श्री० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी]

ज्योतिष शास्त्र में सूर्य-सिद्धान्त अपने ढँग का एक ही है। इसे देखने से यह पता भली भाँति चल जाता है कि आर्यों ने [illegible] सिद्धा-न्तोंका बहुत पहले साक्षात्कार कर लिया था, [illegible] पश्चिमी पंडित आज डींग हाँक रहे हैं। इसमें [illegible]

[illegible] पोस्ट [illegible]

सभी बातें आ गयी हैं। सौर जगत् का पूरा-पूरा विवरण इस अपूर्व ग्रन्थ में दरशा दिया गया है। इस पर संसार की प्रायः सभी भाषाओं में टीका-टिप्पणी हो चुकी है। हिन्दी में दो तीन और टीकाएँ मिलती हैं, पर उनसे ठीक-ठीक भाव समझ में नहीं आता। श्री द्विवेदीजी ने इसके गूढ़ से गूढ़ विषय भी सरल और स्पष्ट भाषा में समझाने की पूर्ण चेष्टा की है। मध्यमा के ज्योतिष विषय में यह स्वीकृत है। सजिल्द, पृष्ठ-संख्या २३२, मूल्य १।)

इतिहास

[ले०—स्वर्गीय श्रीविष्णु शास्त्री चिपलूणकर]

यह श्री चिपलूणकर जी के निबन्ध का अविकल है। इतिहास सम्बन्धी प्रायः सभी ज्ञातव्य बातें इसमें आ गयी हैं। यह पुस्तक सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा के इतिहास विषय की पाठ्य पुस्तकों में स्वीकृत है। मूल्य ≡)

हिन्दी-भाषा-सार

[सम्पादक—श्री लाला भगवानदीन
अध्यापक बाबूरामदास गौड़ एम० ए०]

हिन्दी में क्रमशः गद्य का विकास किस-किस प्रकार हुआ, इसका पता इस पुस्तक से चल सकता है। इसमें सुयोग्य सम्पादकों ने हिन्दी के प्राचीन उत्तमोत्तम गद्य लेखकों के चुने हुए लेख दिये हैं। नीचे टिप्पणी भी लगा दी है। गद्यात्मक निबन्धों का यह एक आदर्श संग्रह है। प्रथमा परीक्षा में यह स्वीकृत है। एण्टिक कागज़ पर सुन्दर छपाई, पृष्ठ-संख्या २००; मूल्य ।||)

प्रथमालंकार-निरूपण

[ले०—साहित्याचार्य श्री चन्द्रशेखरजी शास्त्री]

प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए अलंकार विषयक ज्ञान करा देने के लिए यह 'निरूपण' बड़े काम का है। अलंकारों के लक्षण और उनके उदाहरण बड़ी ही सरलता से समझाये गये हैं। प्रथमा परीक्षा में यह स्वीकृत है। मूल्य =)

भाग १३ } फाल्गुन संवत १९८२ वि० { अङ्क ७

प्रार्थना

सवैया

साँझ समै तुलसी बन तें निकस्यौ बनि बेनु बजावत चारु है।
नीरज नील से नैन बड़े ससि आनन रूप सुधा सुख सारु है॥
गोल कपोलनि कुण्डल लोल अमोल हिये मुकुतानि को हारु है।
तीनिउ ताप नसावत आवत सोभित यों ब्रज नन्द कुमार है॥

—समनेस कवि

कविता में मिथ्याभाषण

किसी ने कहा है—

बैद, चितेरा, जोतिषी, हरकारा औ कब्ब ।
इन्हें नरक पहले मिलै औरन को जब तब्ब ।

यह कथन प्रलाप मात्र है ? अथवा इसमें कुछ तथ्य भी हैं। कोई कहावत ऐसे ही, बिना किसी आधार के नहीं चल पड़ती है। उसका कोई न कोई कारण अवश्य होता है और वह ध्यान देने योग्य होता है। जो लोग यह कहावत कहते हैं वे इसका भेद भी बताते हैं। उनके कहने का सारांश यह है कि जो जो लोग उक्त कहावत में गिनाये गये हैं ये सबके सब दोषी हैं। वैद्य कहता है कि मैं रोगी को बचा ही लूंगा, यद्यपि उसका बचना न बचना अदृष्ट के हाथ है, चितेरा अंट संट तस्वीरें बनाता है, जिसको चाहे बुरा बना दे जिसे चाहे अच्छा। चाहे चित्र ठीक न बना हो पर यह कहता है कि देखो मानो वही खड़े हैं। हरकारा बहुत झूठ सच बना, बढ़ाकर कहता है—ज्योतिषी झूठ मूठ भविष्य-वक्ता होने का दावा करता है, कहता है ऐसा हो ही जावेगा और कवि जिसको बढ़ाने लगे उसे आकाश पर चढ़ा देते हैं, और जिसे घटाने लगे उसे पाताल में पहुँचा देते हैं। झूठी प्रशंसा आदि करना इनका नित्य का काम है। इससे इन लोगों को नरक होगा। जिनका व्यवसाय ही झूठ है वे भला नरक गामी न होंगे तो कौन होगा ? कवियों की ओर से इसका क्या जवाब हो सकता है ? वे क्यों दूसरों के मनोरञ्जन के लिये ज़मीन आसमान एक किया करते हैं ? क्यों अंट संट की उत्प्रेक्षाएँ, अतिशयोक्तियां किया करते हैं।

हमारा तो कहना है कि कवि को सत्यान्वेषी होना चाहिये। परन्तु प्रश्न यह है कि कवि होते क्या हैं ? इसमें सन्देह नहीं कि

यदि कवि का आदर्श ऊंचा न हो तो मिथ्या भाषियों का शिरोमणि हो जावेगा। सूर, तुलसी के पश्चात् के मध्यकालीन कवियों को लीजिये। अपने अभिभावक राजाओं के यशो वर्णन में उन्होंने कुछ नहीं छोड़ा, एक ने तो यहां तक कह दिया कि अमुक राजा साहब ने इतने हाथियों का दान कर दिया और करते जाते थे कि डरकर गिरिजा गणेश को अपनी गोद से नहीं उतारती कहीं इसे भी हाथी जानकर दान न करदे। इसके अतिरिक्त विरह वर्णन में कितना कमाल दिखाया गया है। एक आह से सारा संसार जल सकता है—वियोगिनी की देह इतनी गरम है कि उससे ऋतु परिवर्तन हो जाता है, दिन ग्रीष्म में परिणत हो जाता है। किसी वीर की प्रशंसा करने लगे तो उसे त्रिलोक में एक ही कर दिया-किसी के यश-विस्तार के सामने चन्द्रमा की लोकव्यापिनी चन्द्रिका को फीकी बता दिया। यह सब क्या है?

तुलसीदास जी कहते हैं:—

कीन्हें प्राकृत जन गुण गाना, सिर धुनि गिरा लागि पछताना।

इसका अर्थ यह हुआ कि सांसारिक कवियों के उक्त प्रलापों के वे भी विरुद्ध थे। नर-काव्य क्यों बुरा, इसलिये कि उसमें यदि कवि उच्छृङ्खल हुआ, तो वह झूठ अवश्य बोलेगा यदि ईश्वर का गुण गान करना हो तो उसके गुणों तक कोई भी अतिशयोक्ति नहीं पहुँच सकती, इसीलिये भगवद्गुण गान में आप खूब उच्छृङ्खलता कीजिये, झूठ बोलने का डर नहीं रहेगा हां चरित्र चित्रण न बिगड़ जावे।

कुछ लोगों का कहना है कि जो बढ़ाकर बात न कही जावे तो कविता क्या हो, वह तो साधारण बात चीत हो जावे। उनकी राय में कविता में अतिशयोक्ति का अर्थ यह है कि छोटी से छोटी वस्तु को किसी युक्ति से बड़ी सिद्ध कर दिखाओ। साधारण सी स्त्री के मुख को चन्द्रमा नहीं चाहे जिससे उपमा दे दो; उत्प्रेक्षा का अर्थ यह है कि किसी वस्तु की किसी क्रिया में चतुरता पूर्वक किसी चमत्कार पूर्ण समान क्रिया की कल्पना करलो। वे

समझते हैं कि कविता कल्पना ही कल्पना है, उसमें सत्य की आवश्यकता क्या ? अर्थात् सारांश यह हुआ कि जो जितनी ही सुन्दर रीति से जितना ही अधिक मिथ्याभाषण कर सके वह उतना ही बड़ा कवि है। यदि इस मत के पोषकों की राय मान लें तो सब यहीं समाप्त होगया। दोषारोपियों से कहदें, कि हाँ कवि झूठे हैं— महाझूठे हैं— परन्तु वे बड़ा सुन्दर झूठ, बड़ी ही मनोहर और मनोरञ्जक झूठ बोलते हैं। इस लिये उनके मिथ्याभाषण की ओर न जाइये, उनमें जो मिथ्या भाषण की समुन्नत कला और ईश्वर प्रदत्त शक्ति है उसके सामने शिर नवाइये परन्तु यह प्रकृत कवियों—संसार के शिक्षकों—सुधारकों या ईश्वर के दूतों के साथ घोर अन्याय होगा। उसका सारा बड़प्पन मिट्टी में मिल जावेगा। यदि आप महलकी पच्चीकारी को ही महल कह सकते हों—गहनों को ही सुवस्त्रसज्जिता जीती जागती नारी मूर्त्ति कह सकते हों और मनुष्य जाति के निठल्ले मनोरञ्जन प्रेमियों को ही सारी मनुष्य जाति की पदवी दे सकते हों, तो उक्त लक्षणों से विभूषित कवि नामधारियों को कवि और कविता के उक्त दोषों को ही उत्कृष्ट कविता-कला कहिये।

अब हमें देखना है कि प्रकृत कवि झूठ बोलता है या नहीं ? प्रकृत कवि जहाँ उपमा देता है वहाँ जिस दृश्य का वर्णन कर रहा है उसका सच्चा, जीता जागता चित्र खींचने के लिये देता है। उपमा के लिये उपमा नहीं देता। दार्शनिक जगत में जो काम उदाहरण का है वही काव्य जगत में उपमा का है। मालो-पमा देना— पंक्तियां बढ़ाने के लिये—पाद पूर्ति में उपमा देना तुक्कड़ों का काम है कवियों का नहीं। साधारण उपमा रीति से वहाँ दी जाती है जहाँ वही अर्थ सम्यकता से, उसी सुन्दरता से और उसी जोर से उसके बिना नहीं प्रकट किया जो सकता है। और बड़े कविका लक्षण है कि वह उपमा वहाँ देता है जहाँ अभीष्ट अर्थ दे और किसी प्रकार से वही भाव उसीध्वनि के साथ नहीं प्रकट किया जा सकता। उत्प्रेक्षा इसी लिये है कि वह किसी सामान्य क्रिया में किसी विशेष शिक्षा-

प्रद, मनुष्य मनको ऊँचा उठाने वाली क्रिया की कल्पना करे। ऐसी उत्प्रेक्षा बिडम्बना है जो केवल चतुरता-प्रदर्शन के लिये हो जैसेः—

अञ्जन धोय अँगोछि तनी लगि बाहर बैठि के बार निचोरन,
मानहु चन्दको चूसत नाग अमीरस च्वैचल्यौ पूंछ के छोरन।

इस उत्प्रेक्षा का अभिप्राय सिर्फ़ कवित्व दिखलाना है। अतएव इसको मिथ्या भाषण कह सकते हैं। यह कवित्व नहीं उसका उलटा है। यह लड़कियों का यह कहना है कि गुड़ियां इसलिये गिर पड़ी कि हमारे व्यवहार से वह रुष्ट हो गईं। अतिशयोक्ति है अनन्त का आभास करने के लिये; जिसके आगे मानव-कल्पना-शक्ति बढ़ नहीं सकती उसी पर अतिशयोक्ति करने का अधिकार है। अथवा किसी रस की विशेष पुष्टि के लिये किसी गुणपर विशेष ध्यान दिलाने के लिये उपयुक्त अतिशयोक्ति की जानी चाहिये।

प्राचीन रीति-आचार्यों ने उपमाएं परिमित कर रक्खी हैं। उसके रूप वर्णन की विभिन्नता पर पानी फिर गया। यदि सबके सब अंग एक ही प्रकार की उपमाओं से वर्णित किये जायँगे तो कोई विशेष चित्र मनुष्य के नेत्रों के सामने खड़ा ही नहीं हो सकता; पर वे तो आचार्य थे जिन्होंने सब के भाव, नाक, कान आदि एक ही सांचे में ढाल दिये। उनसे कौन ज़बान भड़ावे।

रूप वर्णन वस्तुतः बड़ी ओछी बात है। जहां पर किसी को रूप-मोह होना बताया जावे-रूप के कारण ही प्रेम उत्पन्न किया जावे, वहां उसमें वर्णन की कुछ सार्थकता है। परन्तु वहां कमल के समान आँख थी और ऐसे भुज थे, ऐसी जंघा थी आदि कह देने से काम न चलेगा। उस सौन्दर्य का जिसपर कोई मुग्ध होने जा रहा है कुछतो सच्चा आभास देना ही होगा। परन्तु अन्य अवस्थाओं में स्वरूप वर्णन गर्हित है। एक तो वह वर्णन मिथ्या काल्पनिक एवं कुरुचि पूर्ण होता है, दूसरे वह नितान्त ही व्यर्थ होता है। कोई मनुष्य अपनी कन्या, स्त्री, माता या पुत्र को इसलिये नहीं प्यार करता कि वे सुन्दर हैं, वरन इसलिये कि वे उसके कोई

हैं। गुण दोष का भी ध्यान नहीं रक्खा जाता तो फिर रूप को कौन पूछेगा कविवर रवीन्द्र नाथ ठाकुर कहते हैं:—

मेरा है बच्चा अच्छा या बुरा,
मुझे पूरा संतोष।
मूल्य परखते तुम तो उसका,
करते हो गुण-दोष-विचार।
फिर क्या समझ सकोगे उसको,
मैं करता हूं कितना प्यार!

फिर किसी का रूप वर्णन—क्यों यदि सुन्दर है तो कह दो किसका है बस होगया। मनुष्य मात्र मनुष्य को इसलिये प्रिय है कि वह मनुष्य है इसलिये नहीं कि वह ऐसा है और वैसा है। अतएव हमको किसी के रूप से क्या? चाहे वह जैसा हो। हमको तो चरित्र चित्रण चाहिये; उसके स्वभाव से उसका व्यक्तित्व हम पहचानेंगे। कमल लेकर यदि उसके समान आँख ढूंढ़कर किसी को पहचानना चाहें तो कैसे पहचानेंगे। रूप का चित्र उस प्रकार खड़ा करना चाहिये—यह बात ऐसी बतानी चाहिये कि जैसे कालिदास ने मेघ के बताई थी। जिससे यदि मेघ में पहचानने की शक्ति होती—इंद्रियां होतीं तो वह सीधा यक्षकी प्रेयसी के पास पहुँच जाता।

दूसरी बात यह ध्यान में रखनी चाहिये कि सौन्दर्य्य प्रत्येक मनुष्य की रुचि के अनुसार उसके रूप में ही स्थित रहता है। आपको कमलसी आँखें अच्छी लगती हैं तो लगे, मुझे तो आम की फाँकों की आकार की आँखें चाहिये अथवा कदाचित किसी को गोल गोल बिच्छू की सी आँखें भा गईं तो उसे वेही अच्छी लगेंगी इस दृष्टि से तो सौन्दर्य्य वर्णन और भी हास्यास्पद हो जाता है सौन्दर्य का वर्णन हो भी तो उस सौन्दर्य का जो रुचि विभिन्नताओं से ऊपर उठकर मानव-हृदयमात्र को स्वीकृत हो ऐसा सौन्दर्य भावों में ही होता है स्थूल पदार्थों में नहीं। उदारता का भाव किसी में दिखाइये, सभी का हृदय उसको पसन्द करेगा।

इन सब बातों की वहाँ अधिक आवश्यकता है जहाँ चरित्र की सृष्टि की जाती है। वहाँ यदि आप किसी पात्र को सुन्दर बनाना चाहते हैं तो विशेष कर भीतर से सुन्दर बनाइये, बाहर से भी सुन्दर हो तो हुआ करे—वह गौण बात होगी। उसका आप जैसा चरित्रचित्रण करना चाहते हैं वैसा कीजिये—यदि आपने जीती जागती मूर्ति खड़ी कर दी—चाहे वह सुन्दरहो चाहे असुन्दर तो उतना ही बहुत बड़ा काम हो गया। यह काल्पनिक मूर्ति संसार की किसी सच्ची मूर्ति से कम महत्वपूर्ण न होगी। अतएव एक यह काल्पनिक मूर्ति भी सच्ची के बराबर हुई।

जहाँ वाह्य स्वरूप का वर्णन नहीं करना है, जहाँ किसी की झूठी प्रशंसा का पुल नहीं बाँधना है, वहाँ कवि के मिथ्याभाषण का प्रश्न ही नहीं उठता। जहाँ वह काल्पनिक पात्रों की सृष्टि किसी अभीष्ट सिद्धि के लिये करता है वहाँ भी झूठ बोलने का कोई प्रश्न नहीं है, क्योंकि उनको तो वह जैसा बनाना होगा वैसा ही बनावेगा। इष्ट पात्र का इष्ट चरित्रचित्रण न करना भी मिथ्याभाषण नहीं वरन् असफलता कहा जावेगा। अतएव प्रकृत कवि के कार्य में मिथ्याभाषण की गुञ्जाइश नहीं—प्रसंग ही नहीं है—न उसका कोई प्रश्न ही है। रही अलंकारिक कविराजों की बात—तो ये ही अनर्थ करते हैं। नरकाव्य में, वाह्य वर्णन में, किसी मतलब से या अर्थ प्राप्ति के लिये, किसी की प्रशंसा करने में, किसी से अपमानित होकर या कुछ प्राप्ति न होने पर उनकी निन्दा करने में ; जैसा कि अनेकानेक मध्यकालीन कवि पुंगव करते आये हैं; झूठ बोलने का अवसर आता है। वहीं कवि नामधारी अकवि अलंकार प्रेमी तुक्कड़ या भाट लोगों ने मिथ्याभाषण कर करके कवियों के पवित्र नाम को कलंकित किया है।

मध्यकालीन व्रजभाषा के साहित्य में (अर्थात् सूर तुलसी के पश्चात्) कबीर आदि सन्त महात्माओं को छोड़कर सभी कवियों ने अपनी नायिकाओं का विविध रूपेण सौन्दर्य वर्णन किया है। किसी की बाला-परी है, किसी की चन्द्र-परी है, किसी की बिम्बाधरी

है। बड़े बड़े कवियों ने हृदय को तिलांजुलि दे दी है। उदाहरणार्थ—

छुटी न सिसुता की झलक, यौवन झलक्यौ अंग।
दीपति देह दुहून मिलि, दिपत ताफता रंग॥

क्या जाने सभी बालाओं का रंग उस अवस्था में ताफता रंग हो जाता है या नहीं (मैंने तो एक का भी रंग वैसा नहीं पाया) अथवा उस रंग को देखने के लिये विहारी का चश्मा लगाना पड़ेगा। यह तो ज्ञात नहीं पर इतना कह सकते हैं कि हमारे महाकवि केवल शारीरिक परिवर्तन का दिग्दर्शन करा गये हैं; रवीन्द्र जो कहते हैं कि "किशोरावस्था के साथ साथ आदर कराने की, प्यार किये जाने की, अभिलाषा उत्पन्न होती है" उससे हमारे प्राचीन महाकवि को कोई मतलब नहीं था। यह कौन कहे कि उन्हे हृदय की बात सूझी ही नहीं। कहना नहीं होगा कि जिन्हे इस प्रकार एक एक नायका लेकर उनके रूप की डफली पीटना है—कुछ भी असम्भव से असम्भव बात अपनी वाक्यचातुरी और कल्पना की पहुँच दिखाने के लिये उनके सम्बन्ध में कहना है उनके लिये सिवाय मिथ्याभाषण के और कुछ रह ही नहीं जाता है। फिर जब वे कवियों में और महाकवियों में गिने जावेंगे, तो कवि नाम क्यों न बदनाम होगा।

अन्त में हम इतना और कह देना चाहते हैं कि एक तो कविता कल्पना ही कल्पना नहीं है वरन उसके अतिरिक्त बहुत ऊंची वस्तु है; जिसे हम किसी विगतांक के 'कवि और कविता' शीर्षक लेख में बता आये हैं। इसी कल्पना का उपयोग यह है कि कवि उसके द्वारा अपने को सभी अवस्थाओं में रख के उनका अनुभव कर सके। कल्पना का परमध्येय है सत्यान्वेषण में सहायक होना। असंभव प्रान्तों में विचरण करना उसका काम नहीं। यदि ऐसाही होता तो चन्द्रकान्ता-संतति से बढ़कर काव्य और कोई न हो सकता।

सारांश यह है कि कवि लोग मिथ्याभाषण नहीं करते वरन कवि नाम धारी अधिकांश में जो अकवि हैं वे ही ऐसा करते हैं और

उन्हीं के कारण परम पवित्र कवि शब्द बदनाम हो रहा है; कवियों का कार्य संसार को उच्च तम संदेश देना, परम सत्य को खोजना उनका एक मात्र ध्येय है। कल्पना के द्वारा वे यही किया करते और अपने पाठकों से यही कराया करते हैं।

आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव

पद्य-पञ्चक

नलिनी ! मन माहिं अधीर नहो भ्रमरै लखि कै उड़ि जात सबेरे।
रस के मिस चाखन दे विष-बेलिन पाचन दे बन-कुंज घनेरे॥
झक मारन दे हठि द्वारहिं-द्वार तबै सरिहैं प्रिय कारज तेरे।
परिहै फिर आपुहि बंदि के फंद दृढ़ाइ कै प्रीति ह्व प्रेम के चेरे॥

रस-रंग-तरंग उमंगन सों अभिलाष के मंदिर में सिरनाय।
प्रिय ! प्रेम की डार में झूलन दै सुचि हास- विलास की पैग बढाय॥
अनुराग भरे एक चुंबन पै जग होन दै दौरि निछावर आय।
मिलि जान दै कोकनि रैनिहि में मन की सुवियोग विथा बहिजाय॥

राति दिना न विराम लहैं छुनहूं नहिँ सीखहिं सीख कहीं।
बौरी सी दौरी फिरैं इतते उत चन्द-चकोर सी हेरतहीं॥
बैठि रहैं न कबौं कल सौं बरसात के बारिद लौं उमहीं।
कैसी करौं सजनी ! अखियाँ अँसुवान के बूँदन जाति बहीं॥

लाजन ही मुरिकैं हँसि हेरिबो होठन में मुसुकाय चितैबो।
देखत हू दिख साधभरे मदमाते सनेह सों नैन लड़ैबो॥
आइबो निहारन कौं अति चाव सों झाँकि झरोखन सों फिरिजैबो।
भूलौ किधौं दिन द्वैकहि में मधुरी बतरानि अमीरस नैबो॥

चम्प-प्रसून पै नेम निवारि के बैठे हैं ये अलि ना सुखमाने।
ना बिधि-बाल धरे युग जामुन कंचन-कंदुक पै रससाने॥
चाहत हैं न गिरो गिरि से सर में नव खंजन नैन नहाने।
कामना के फल द्वै हैं फले भले कामिनि की कुच-कोर बहाने॥

शम्भूदयाल सक्सेना 'विशारद'

ध्रुवाष्टक

रीवाँ राज वंश में सदैव से साहित्य सेवी, भगवद्भक्त और वीर होते चले आये हैं वहां के कई महाराजे उच्च कोटि के कवि होगये हैं।

आज महाराजा विश्वनाथ सिंह जूदेव की कुछ कविता पाठकों के विनोदार्थ उपस्थित की जाती है। उक्त महाराजा साहब ने यों तो बहुत से ग्रंथ रचे हैं जिनमें से कई ग्रंथछप भी चुके हैं। जिनका जनता में अधिक आदर है। मैं अभी हाल ही में रीवाँराज्य में अन्वेषणार्थ गया था वहाँ पर राजकीय पुस्तकालय का भी अवलोकन किया था। उसमें हिन्दी और संस्कृत की ३००० से ऊपर हस्त लिखित पुस्तकें हैं बहुत से ग्रंथ अपूर्व हैं आज उसमें से प्राप्त महाराजा विश्वनाथ सिंह कृत ध्रुवाष्टक का कुछ वर्णन पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। यह एक नीति ग्रंथ है जिसका मूल स्रोत उक्त महाराजा साहब कृत ८ सवैये हैं जिनकी व्याख्या भी महाराजा साहब ने स्वयं ही पद्य में की है और इस प्रकार यह ७००—८०० पृष्ठ का एक वृहत ग्रंथ बनगया है।

इस ग्रंथ से महाराजा साहब के शुद्ध गम्भीर और विस्तृत अनुभव का पता चलता है साथ में राजनीतिक दक्षता का भी पूरा परिचय मिल जाता है महाराजा विश्वनाथ सिंह का राज्य काल संवत १८९० से १९११ वि० तक था। आपके राज्य काल में रीवाँ राज्य की सर्व-प्रकारेण अच्छी वृद्धि हुई थी और राज-प्रबंध बहुत उत्तम था।

मत्तगयंद सवैया

[महाराज विश्वनाथ सिंह जी रीवां नरेशकृत]

जो विन कामहिं चाकर राखत, पैन अनेक वृथा बनवावै।
आमद ते अधिकै करि खर्च, ऋनै करि ब्यौहरै ब्याज बढ़ावै॥

बूझत लेखा नही कछु वै, नहि नीति की रीति प्रजान चलावै ।
भाखत है विसुनाथ ध्रुवै, अस भूपति के घर दारिद आवै ।।

(२)

निहचै करि धर्म बिचार गयो, दवि भाइन भृत्यन नाहिं चलावै ।
मंत्रिय आदि सुलच्छन हीन, औ आलसी होहि सलाह बहावै ॥
मानि सँकोच करै व्यवहार, वृथाही इनाम की रीति बढ़ावै ।
भाखत हैं विसुनाथ ध्रुवै, अस भूपति ना कबहूँ कल पावै ॥

(३)

नारिन की जो सलाह करै, अरु भाइन मंत्री स्वतंत्र बनावै ।
वैर के चाकर राखे रहै, औ अधर्म की रीति सदा मन भावै ॥
मंत्री कह्यौ हित मानै नहीं, अरु शाह को शासन ना मन आवै ।
भाखत है विसुनाथ ध्रुवै, कछु काल में सो नृप राज गँवावै ॥

(४)

झूँठी सुनै तहकीक करै नहीं, ओछिन संगति में मन लावै ।
रीझि पचावै डरै रन को, व्यसनौ जे अठारह खूब बढ़ावै ॥
ठट्ठा में प्रीति कुपात्र में दान, कवीन द्विजानि गुमान जनावै ।
भाखत है विसुनाथ ध्रुवै, अस भूपति ना कबहूँ जस पावै ॥

(५)

चाकर दै धन बांचे जोरै, अठयों तेहि भागहिं धर्म लगावै ।
शाह लियो धरै सातयों भाग, छठौं सुता ब्याह हितै रखवावै ॥
पाँच ते वित्त बढ़ै धरि चौथहिं, तीन ते खर्च कै रत्ते बढ़ावै ॥
भाखत हैं विसुनाथ ध्रुवै, नहिं भूपति के घर दारिद आवै ॥

(६)

भाइन भृत्यन विष्णु सो रैय्यत, भानु सो शत्रुन काल सो भावै ।
शत्रु बली सों वँचै करि बुद्धि, औ शास्त्र सु धर्महि नीति चलावै ॥
जीतन को करै केती उपाय, औ दीरघ दृष्टि सदा फैलावै ।
भाखत है विसुनाथ ध्रुवै, कलसो रहि भूपति राज बढ़ावै ॥

(७)

होइ नहीं कबहूं बस काहू, सबै सबमें निज भाव जनावै।
राखै रहै हुकुमैं सब पै, काहू यार बनाय न तेज गँवावै॥
साम औ दाम औ दंड औ भेद की, रीति करै जो सबै मनभावै।
भाखत है बिसुनाथ ध्रुवै, नृपसो कबहूं नहिं राज गँवावै॥

(८)

जो नृप आन्हिक में मनलाय, करैनृप आन्हिक स्मृति गावै।
मानै सबै प्रभु को यह है, प्रभु रूप सबै निज किङ्कर भावै।
देह तें आपुहिं भिन्न गनै, करि शासन भक्त प्रजान बनावै।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै, दुहुँ लोक में भूपति सो सुख पावै।

अन्त में व्यसनों का वर्णन और उससे हानि संबंधी घनाक्षरी दे कर इस लेख को समाप्त करता हूँ।

१८ व्यसन

अतिहीं शिकार, जुवां, द्रोह, मद्यपान कीवो,
निन्दा, दिन सोइवो, सनेह अति नारी को।
नाचिवो औ गाइवो, बजाइवो, वृथा हीं खर्च,
चुगुली, क्षमा, विचार-हीन, देव गारी को।
दोष रोप गुण में, अदंडिन को दंड दीवो,
त्योंही अर्थ दूषन, अनंत दुखकारी को।
काम-क्रोध जन्य जानौ व्यसन अठारहौं ये,
राजा जो न छांड़ै तो छुड़ावै राज भारी को।

—∞—

नोट—ये छन्द पं० अम्बिकाप्रसाद जी भट्ट 'अवधेश' राज कवि रींवा राज्य द्वारा प्राप्त हुए।

सम्पादक

कवि 'ग्रे' कृत 'एलिजी'*

(१)

होत बतै दिन के अवसान पैं,
घंट घने घन सौं घहरावै
गोधन को दल राँभत हार तैं,
दूब चरैं हरुएं-हरैं धावै ॥
भूमि लटी-पटी डारि डगें,
मग-मादौ किसान चल्यौ घरैं आवै।
त्यौं दुख दायनी कारी कसाइनी,
जामिनी की चहूँ धुंध सी छावै ॥

(२)

सौंहीं पाछाहूँ के बादर में अब,
धूमिल ह्वै सविता मुरझावै।
त्यौं छिति मण्डल पैं लखौ पौन,
भरी गहरी थिरता गहे जावै ॥
छाँड़ि बितै जितै भौंर की भीर,
चहूँधा भिरे भरे भाँवरी धावै।
औ बजि जात हैं खोड़ मैं घण्ट
अजा जब औंधि गरे कौं झुकावै ॥

*अँगरेज़ी कवियों में 'ग्रे' का स्थान बड़ा ऊंचा है। उन्हीं कवि की रची हुई प्रसिद्ध रचना "एलिजी" का यह बृजभाषानुवाद है। कविता में ग्रे महोदय ने, किसानों और गरीबों के विषय में विदग्धता भरे करुन छंद कहे हैं। यह सम्बद्ध रचना नहीं वरन; जो विचार हृदय में आया उसी को कवि ने लेखनी बद्ध किया है। —लेखक।

(३)

बेलि छुए गिरजानि के गुम्बज,
ऊँचे अकाश चढ़ाई करैं।
मोखनि तैं तिनके सई साँझ तैं,
घोख घुघू के सुनाई परैं ॥
सोई सुधाधर कौं दै उराहनौ;
भीखि हिए अतुराई धरैं।
कै कोऊ चालन हारे बटोहिया,
आहट कै थिरताई हरैं ॥

(४)

धूरि के ढेर दियैं ढये घासतैं,
मौरसिरी औ सिरीस के नीचैं।
छोर छुए छिति कौ जहाँ छाँह में,
गाछ की डारैं अनंद उलीचैं।
गाम निवासिनु के पुरिखा तहाँ,
भोरे विचारे परे दृग मीचैं।
सोवैं सदा कौं सबै निज साँकरी,
लै सुख नींद—समाधि के बीचैं ॥

(५)

सौंधी प्रभात की सीरी समीर,
सुगंध सनी चलि आवै कछार तैं।
कूजै भली-धुनि मैं भलैं धौरई,
भोरई तैं फिर ह्वै कै उसार तैं।
त्यौं चरनायुध की खरी कूक औ,
हूक कढ़ी तुरही-धुधुकार तैं।
हाइ ! तिन्हैं न जगाइ सकै कछू,
मीचु के आसन तीखे खुमार तैं।

(६)

उन हित अब नहिं धक-धकात अगिहाने जरि हैं।
जनी विहँसि बतराइ न अब उन तन स्रम हरि हैं॥
काज निरत घरवारी ब्यारी नहिं सँजोइ हैं।
और न पिय आवन की सन्ध्या बाट जोइ हैं॥
होड़नि कनियां चढ़ि चुम्बनहित पितु अगिमानी।
बालक दौरि न करि हैं बुलिहैं तुतरी बानी॥

(७)

लाँग लपेटि मुखै बिरहा कहि,
खेती खरी है बकानि तैं काटी।
फार की धार सौं बार अनेकनि,
छार करी उन हार की माटी॥
चौगुनौ चाव चढ़ाइ चितै,
हर जोतियो बैलनि मारि कै साँटी।
केतिक बार कुठार की हूलनि,
डारैं घने बिरवानि कैं छाँटी॥

(८)

सूधे सुभाइ अनंद भरे; कबैं,
पाय कैं पंक वे भूलि फँसैं नहीं।
काल बितीत करैं अवसेरि हूँ,
भाग-अभाग पै दोष कसैं नहीं॥
मोटे-खरे तिन के वे निवाह,
उपाइनै लालची-लोग हँसैं नहीं।
समरत्थ सुनैं हरहार की गाथ पैं,
नाक सिकोरि विन्हैं क्लिसैं नहीं॥

(९)

कुल कुलीन अभिमान सान सत्ता की सेखी।
रूप-रासि धन-धूम-धाक अरु बलहु बिसेखी॥

जोवै हैं मग-मीचु अवश्यंभावी दिन कौ।
काल-गाल में होइ अन्त वैभव के पथ कौ॥

(१०)

नीकी नकासी खिची-छति-छेद औ,
ह्वै गिरजागृह भीति के कोरैं।
ऊँची चढ़ै जितै गम्मति गूंजि,
कढ़ैं बिनती-पद की बढ़ैं रोरैं॥
थापैं हितू जुपे जैत के थम्ब ना,
ऐसे सुठौर समाधि के धोरैं।
खोरि न दीजई धौं गरबीले,
सुनौ गवँईं के गरीब निहोरैं॥

(११)

गाथा-लिखी-सिला औ जीवित सी प्रतिमूरति।
कहा करि सकै बहुरि देह में प्रान संचरित?
उनके गुन गावन अरु चटुकारी की बतियाँ।
तोषि सकैं का सुत्त-धूरि-मृत जन की छतियाँ?

(१२)

चोखे घने मनि मानिक जाल,
बड़े दुतिवन्त कहाँ लौं गनामें।
डारे अनंत अदीठ अँधेरी,
अथाह पयोधि गहीर गुहा में॥
केते प्रसून पराग बिखेरि कैं,
त्यौं बन बीच वृथा मुरझा में।
फूली अफूली सबै मधु माधुरी,
जो कभूँ काहु के काम ना आमैं॥

(शेष फिर)

मदनलाल चतुर्वेदी

बोधी कवि

स्कृत तथा हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थों की कितनी दुर्दशा हुई है यह बात नये सिरे से बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं। हमारे असंख्य प्राचीन ग्रन्थ लुटेरों के द्वारा लूट लिये गये। पुस्तकों को जला देना भी उन लोगों ने पराक्रम प्रदर्शित करने की एक कसौटी समझी। रुपये तथा जवाहिरातों का लुट जाना आज हमें उतना नहीं अखर सकता, जितना कि उन ज्ञान की कुञ्जियों का नष्ट होना अखर रहा है। रुपये पैसे की पूर्ति परिश्रम करने से हो सकती है पर उन पुस्तकों के रिक्त स्थानों की पूर्ति करना तो दूर रहा उन की गहराई तक का भी पता लगाना आज असम्भव सा प्रतीत होता है। पर हमारे पूर्वजों के पास इतनी अक्षय ज्ञान राशि थी कि उसके बचे खुचे टुकड़े से भी आज हम संसार के किसी भी साहित्य के साथ सन्मान पूर्वक प्रतियोगिता कर सकते हैं। अब भी हमारे साहित्य में ऐसे ऐसे रत्न पड़े हैं जिनका अब तक किसी को ज्ञान नहीं है। आज हमें एक ऐसे ही रत्न को हिन्दी प्रेमियों के सन्मुख उपस्थित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वह रत्न 'बोधी' कवि कृत 'रामसागर' नामक ग्रंथ है। हिन्दी संसार आज 'बोधी' कवि से सर्वथा अपरिचित है। मेरी जान में हिन्दी में आज तक उन की कोई भी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है। मुझे भी रामसागर के अतिरिक्त उन की और कोई पुस्तक देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है। आज मैं बोधी कवि तथा रामसागर का संक्षिप्त परिचय पाठकों को देना चाहता हूँ।

यदि रामसागर के विषय पर सूक्ष्म रीति से विचार किया जाय तो उसका विषय 'दर्शन' के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। उस के प्रत्येक अध्याय में 'वेदान्त' के तत्व कूट कूट कर अत्यन्त सरलता पूर्वक भरे हुए हैं। उसमें चौबीसों अवतारों की

कथायें वर्णित हैं। उन्हीं कथाओं के आधार पर दार्शनिक तत्वों को मीमांसा की गई है। बोधी ने 'भोला' नामक शिष्य के आग्रह से यह पुस्तक बनाई थी। यह पुस्तक दोहा, चौपाई, सोरठा तथा अन्य छन्दों में रची गयी है। पुस्तक पाँच खण्डों में विभक्त है, और प्रत्येक खण्ड में बीस-पचीस अध्याय हैं। प्रथम खण्ड के पहले अध्याय में एक स्थान पर कवि लिखते हैं—

"संवत सहस्र सै सतासी। अगहन मास कथा प्रकासी।"

यदि इसेपुस्तक के प्रस्तुत होने का समय माना जाय तो इस हिसाब से पुस्तक को प्रस्तुत हुए आज लगभग आठ सौ वर्ष होते हैं। पर पुस्तक की शैली को देख कर मेरे कतिपय विद्वान् मित्र इस बात पर सन्देह करते हैं कि पुस्तक आठ सौ वर्ष की पुरानी है या नहीं। पुस्तक की भाषा तुलसी कृत रामायण की भाषा से कुछ मिलती जुलती है। पर कहीं कहीं ऐसे शब्दों का भी प्रयोग पाया जाता है जिससे रामायण की भाषा से बहुत अन्तर हो जाता है। जब कवि ने अपने समय को स्वयं लिख दिया है तब उस पर सन्देह करना कुछ बेढ़ब सा प्रतीत होता है। हाँ, इस स्थल पर यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत प्रति में लेखक की भूल के कारण संवत् विषयक गड़बड़ी आ गयी है। पर यहाँ पर यह स्मरण रखना होगा कि लेखक की भूल के कारण एक आध शब्द तोड़े मरोड़े जा सकते हैं समूची पंक्ति नहीं, साथ ही शब्दों के उलट फेर होने के कारण उस की सारी मधुरता जाती रहेगी, अर्थ का अनर्थ हो जायगा और साहित्य विषयक अशुद्धियाँ तो अवश्य ही हो जायगी पर उपर्युक्त पंक्ति में मधुरता की किसी प्रकार कमी नहीं है, अर्थ भी ठीक ठीक बैठ जाता है; और (साहित्य विषयक अशुद्धियों के बदले) अनुप्रास की बहार तो देखने ही योग्य है। ऐसी स्थिति में लेखक की भूल का सहारा लेना नितान्त असंगत है।

मेरे विचार में तो केवल शैली की दुहाई देकर बोधी के समय पर सन्देह करना निराधार है। जिस प्रकार रामसागर सदृश पुस्तक से हिन्दी संसार आज तक अपरिचित रहा है उसी प्रकार

कोई आश्चर्य्य नहीं यदि उस समय की भाषा का भी हमें विस्तृत ज्ञान न हो। सम्भव है कि उस समय भी किसी प्रान्त विशेष में इस प्रकार की भाषा प्रचलित हो और बोधी भी उसी प्रान्त के निवासी हों। बोधी कविप्रथम खण्ड के प्रथम अध्याय में रामसागर के विषय में इस प्रकार लिखते हैं।

भोला तुम प्रसन्न सुख दाई, पूछेहु कथा रसिक की नाई।
बूझि परा तो प्रश्न विभागा, हरि चरित्र तोहि अति प्रिय लागा॥
कथा पुरातन पुरवहि भाषा, मुनिन्ह सकल निज कृत करि राषा।
तेहि प्रश्न मैं करौं बखाना, यथा हृदय मम मति अनुमाना॥
मो सो प्रश्न कियेहु तुम जैसे, लछमन प्रश्न राम सो तैसे।
संवत सहस्र सै सत्तासी, अगहन मास कथा प्रकासी॥
सौ संम्बाद मैं करौं निरूपा, सुनहु स्रवन दै रसिक अनूपा।
कथा राम भाषा है नामा, ज्ञान विराग भक्ति रस धामा॥
हरि चरित्र हरि पद रत देनी, गतिक्रमादि हरि लोक निसेनी।
दोहा—अपर कथा को अपर फल, पढ़ै सुनै जो कोय।
हरि सम्बन्धी कथा यह, हरि सम्बन्धी होय॥

यदि रामसागर का आठ सौ वर्ष पुराना होना किसी प्रकार युक्ति संगत न समझा जाय तो 'संवत सहस्र...प्रकाशी' वाली चौपाई का सम्बन्ध राम तथा लक्ष्मण के संबाद से किया जा सकता है। तुलसीदास ने भी रामायण के बालकाण्ड में इसी प्रकार की एक चौपाई कही है।

वीते संवत सहस सतासी, तजी समाधि सम्भु अविनासी।
(शिव-पार्वती संवाद)

इसी प्रकार बोधी कीभी इस चौपाई का अर्थ लगाया जा सकता है पर इस प्रकार का अर्थ करने से बोधी के समय का पता लगाना हम लोगों के लिये असम्भव सा हो जायगा आगे चल कर मैं रामसागर का कुछ अंश उधृत करूँगा जिसे पढ़कर विज्ञ पाठक गण स्वयं बोधी की भाषा की परीक्षा कर इस विषय पर अपनी सम्मति स्थिर कर सकेंगे।

वोधी ने अपने विषय में कहीं भी कुछनहीं बतलाया है। अतएव उनके स्थान तथा जाति आदि का पता लगाना कठिन है। हाँ, रामसागर के पढ़ने से इतना अवश्य ज्ञात होता है कि वोधी वैष्णव सम्प्रदाय के मानने वाले थे। प्रस्तुत प्रति दरभंगा ज़िले में मिली है। उसी ज़िले के 'नया नगर' नामक ग्राम में बीस-पचीस वर्ष पहले इसकी एक और प्रति थी। पर दुर्भाग्यवश वह प्रति किसी प्रकार खो गई। एक ही स्थान में दो प्रतियों के प्राप्त होने से बोधी का उस स्थान से सम्बन्ध बतलाया जा सकता है। पर रामसागर की भाषा पर मैथिली भाषा का कोई प्रभाव नहीं मालूम पड़ता। अतएव इन्हें मिथिला निवासी कहना किसी प्रकार उचित न होगा। इनकी भाषा अवधी व ब्रज भाषा मिश्रित जान पड़ती है। इसलिये और प्रमाणों के अभाव में इन्हें संयुक्त प्रदेश निवासी मान लेना कुछ अनुचित न होगा।

प्रस्तुत प्रति साठ वर्ष पुरानी है। यह प्रति किस पुस्तक से की गई है। कुछ पता नहीं चलता। यह प्रति कैथी में लिखी हुई है। इस कारण बहुत सी अशुद्धियाँ आ गई हैं। मात्राओं की भी अच्छी हजामत बनाई गई है। लेखक ने तो कहीं २ पर पुस्तक की शोचनीय दशा कर दी है। बहुत से शब्दों के पढ़ने में अनुमान का सहारा लिये बिना काम नहीं चलता। प्रस्तुक प्रति का लेखक पुस्तक के अन्त में लिखता है "एेति श्री राम भाखा पोथी संमपुरन समापते जो देखा सो लीखा ममे दोख न दी जाते पंडित जन सो मीनीती मोरी छुटल आखर पढ़ब सभ जोरी......।"

जब लेखक को स्वयं अपने लेखनकला पर इस प्रकार का सन्देह हो रहा है, वह अपनी कमजोरी का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा है तब उसने पुस्तक की कैसी दयनीय दशा की होगी इसका अनुमान विज्ञ पाठक गण स्वयं कर सकते हैं। "छुटल आखर पढ़ब सभ जोरी" वाली बात लेखक ने जो कही है वह अक्षरशः सत्य है। इसका अनुभव पुस्तक के पहले ही पृष्ठ से आरम्भ होजाता है।

कैथी में लिखी जाने के कारण प्रस्तुत प्रति में संयुक्ताक्षर तो बहुत ही कम है और साथ ही 'स, श, ष, 'र ड़' ; 'ख, ष, तथा 'च, ज' आदि अक्षरों की भयंकर गड़बड़ी हो गयी है। इस पुस्तक की एक और प्रति की खोज मैं कर रहा हूँ। यदि इस की दूसरी प्रति मिल जाय तो इसे हिन्दी प्रेमियों के सन्मुख उपस्थित करने में विशेष सुगमता हो। आशा है कि हिन्दी के विद्वान 'बोधी' कवि की ओर विशेष ध्यान देंगे और इसके विषय में प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

अब विज्ञ पाठकों के विनोदार्थ मैं रामसागर का कुछ अंश अविकल रूप से उद्धृत करता हूँ। हाँ, कैथी अक्षरों को नागरी अक्षरों में लिखने के कारण कहीं २ पर मुझे विवश होकर एक आध अक्षरों तथा मात्राओं का उलट फेर अवश्य करना पड़ा है।

प्रथम खण्ड

अध्याय—९

सांख्य योग

चौपाई

भोला जब हरि निधि कृत वासा, नृप ऋषिचितवे एकरनौ आसा।
दृढ़ प्रभु यचन हृयय वीस्वासा, होत लालसा ब्रह्म विलासा॥
कब ऐहैं उह काल विधाता। पुनि देखिहै। निज इष्ट विख्याता॥
एहि विधि पंथ चितावसभागा। छिन छिन मच्छ रुप अनुरागा॥
गत कछु काल सो समय तुलाना। संवत तरनी तजि निज प्रमाना॥
लिये। झाँपि अखिलो भुम्रवारी। चहुँ दिशउमड़ीउदधिअधिकारी।
यह चरित्र जब नृप ऋषि देखा। जानि समय उर हर्ष विसेखा॥
तब सत ब्रत सप्त ऋषि जुता। चढ़े पोत लै विश्व विभुता॥
प्रलय तरंग उठत विपरीता। देखि एकारनौ ऋषि जौ भीता॥
मीन रूप द्रुमरे तत्काला। शेष सहित प्रगटे किरपाला॥

प्रीस्ट रिन्ह प्रभु के अस भावा, । कसी गुण शेष तब नाथ्यौ नावा॥
सुमीरत प्रगट भये भगवाना । देखि सपत ॠषि अचरज माना ॥
पुनि उर समुझी भगति प्रभाऊ । दासन पर एहि भाँति पसाऊ ॥
करत बिहार एकारनौ माँहि । प्रभु रच्छा संशय कछु नाहिं ॥

दोहा

समुझि समय सो सत्यव्रत प्रभु धानी चित्त भाव ।
जोरि पानि ॠषि सपत सों प्रश्न कियो सदभाव ॥

चौपाई

हे प्रभु एक मम सुनहु विनंता । जब भये प्रगट मच्छ भगवन्ता ॥
कहा नाथ मोहि करि प्रसादा । एकारनौ ॠषि सपत सम्बादा ॥
सांख्य योग अरु ब्रह्म विवादा । तब तुम्ह लहिहौ मुक्त अनादा ॥
ताते अनुकम्पा करि देवा । कहिये सांख्य एक रस सेवा ॥
कहिये ज्ञान विज्ञान को अंगा । कही प्रेम भगति प्रसंगा ॥
बहु श्रम जामो करै न परई । सहज भेद ते भवनिधि तरई ॥
सो सब कथा कहहु करि छोहू । जा सुनि विगत अविद्या मोहू ॥
लछुमन सुनत राजॠषि बानी । बोले सप्त ॠषेश्वर सानी ॥
अहो तात तब प्रश्न अनूपा । सुनहु विश्वहित शान्ति निरुपा ॥
जो कोई चाहै मुक्ति पद सारा । करै प्रथम सो तन्तु विचारा ॥

छन्द

करै तन्तु विचार नित्य अनीत्य हृदय विभाग कै ।
धोषे न्यारा गहत जिमि हिरन कंकर त्याग कै ॥
इमि देह देही संग दीखै प्रथम कर्म निसि जाग कै ।
तेजि अनित्य ही सुपत बाढ़ै नित्य यो मिज लाग कै ॥
प्रकृत अंश अनित्य तन मन बुद्धि ईन्द्री आदि है ।
नित्य है यह आतमा सो पुरुष अंश अनादि है ॥
ज्ञान दृष्ट पर पृष्ट अन्तर दीप अध्यतम वारि कै ।
पृथक पृथक करि अर्थ पुरुष प्रकृति अंश निहारि कै

जन्म मृत्यु यह देह वृद्ध धरै सुख दुख खान मो।
मोह शोक कोप मन को छुधा पिपास थान मो॥
सकल चिन्ता चित्त करावै बुद्धि तृष्णा धावही।
होत श्रम सब इन्द्रियन कह आतमा नहि आवही॥

दोहा

अविद्या वश होय मूढ़ धृत लेत आय कह मान।
आतम स्यो रथ एक रस गुन कृत माँह भुलान॥
जिमि सपने मो होत है जन्म मृत्यु बहु कर्म।
ईमि भव नाश विषमता गुण कृत आतम भर्म॥

चौपाई

आतम एक रस एक सरूपा। द्वीतिया विषय नहिं ऋषि भूपा।
अस्यो ब्रह्म अखण्डित। तोहं पुरुष मद्र सर कोई॥ (?)
कर्म मात्र ते जीव कहावा। भिन्न भिन्न गुण कृत सुभावा।
जिमि स्फटिक स्वच्छ प्रकाशा। दीसे विविध रंग सँग वासा॥
इमि आतम निर्मल रस एका। नानाधीस गुण कर्म अनेका।
सुनहु तात अब सो सद्भावा। ब्रह्मजीव यह जेही अनुभावा॥
यह संसार विटप अनुसारी। कर्त्ता तासु माया अधिकारी।
पाप पून्य द्वौ बीज लगाई। मेथुनी कृत यह विटप प्रगटाई॥
जाते यह तरुनाईन वाधा। अपित वासना मूल अगाधा।
पंच भूत असकन्ध वो धारा। त्रिगुन नाल रचित तरु सारा॥

दोहा

एकादश इन्द्रिय पंच दश साखा पत्र अपार।
वात पित्त अखलेखमा तरु चर्म त्री प्रकार॥

चौपाई

दोये पंछी ताहा नीड लगावा। ब्रह्म जीव जाकह श्रुति गावा।
तीन्ह के लक्ष्मण करौं बखाना। पृथक पृथक दोऊ रहत सुजाना॥
एक तरु पर युग खग वासी। एक असकत एक रहत उदासी॥
दुख सुख तामें एक फूल लागा। कहवे को युग नाम को भागा॥

यथा गरल कह मीठा कहही। कथन मात्र सुख ईमि दुख अहही॥
पंछी एक दुख फूल लवधाना। जिमि सीमर फल कीर भूलाना॥
ईमि यह देखि विश्व फल फूला। करत भोग केवल दुख मूला।
है दुख परम लेत सुखमानी। गृह मेधी सो जीव अज्ञानी॥

दोहा

गृह मेधी सो गीध खग कामी विषय सोहात।
दुख फल स्वारथ जानि रत तरु असक्त दिन रात॥

विश्वनाथ सिंह शर्म्मा

———

पं० विश्वनाथ सिंह शर्मा ने 'बोधी' कवि पर एक लेख भेजा है आप इसे ८०० वर्ष पूर्व सं० ११८७ वि० का रचा मानते हैं परन्तु उसकी भाषा इतनी स्पष्ट और आधुनिक ढंग की है कि बारहवीं शताब्दी की रचित कहना असंगत सा प्रतीत होता है फिर भी भाषा विज्ञ पंडितों और अन्वेषक महानुभावों के विचारार्थ इसे पत्रिका में स्थान देना उचित प्रतीत होता है।

मेरे विचार से उसकी क्रियाएँ, विभक्ति तथा शब्दों के विकास का रूप अठारहवीं शताब्दी का सा प्रतीत होता है अतः वह ग्रंथ भी अठारहवीं शताब्दी में ही रचागया होगा। आशा है विद्वत्समाज अपनी सम्मति प्रदान कर अनुगृहीत करेगा।

—सम्पादक

———

हिन्दी की अवहेलना

एक सज्जन प्रताप में कुल पहाड़ के स्याह नवीस की जो कि मुसलमान हैं शिकायत करते हैं कि वह हिन्दी में भरे हुए फीस के फ़ार्म नहीं लेता । अधिकारियों को ध्यान देना चाहिये । मुसलमान उचित और अनुचित सभी साधन हिन्दी को गिराने के लिये कार्य में ला रहे हैं ।

राष्ट्रभाषा हिन्दी का अपमान

आज कल हिन्दी पत्रों में बनारस म्युनिस्पल बोर्ड में हिन्दी का प्रस्ताव गिरने से बड़ी हलचल मच गयी है । आज, केसरी भारत मित्र, हिन्दू संसार, प्रताप, अभ्युदय आदि सभी पत्रों ने इस कार्य की तीव्र निंदा की है कार्य भी ऐसा ही हुआ है हिन्दू मेम्बरों ने इस संबंध में अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया । यह उनके लिये ही नहीं हिन्दू जाति भर के लिये लज्जा का स्थान है ।

एक उदार कार्य

चौतरिया, रतनपुरा (छपरा) के रईस बाबू भगवती प्रसाद सिंह जी ने हिन्दी-विद्या पीठ के एक छात्र को एक बर्ष पर्य्यन्त ५) मासिक की छात्र वृत्ति देने की उदारता की है । इसके लिये उन्हें धन्यवाद ।

जिला और म्युनिसिपल बोर्डों को धन्यवाद

आगरा नागरी प्रचारिणी सभाकी प्रार्थनापर आगरेके डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने सभाको २००) वार्षिक देना स्वीकार किया है । आगरा के

म्युनिसिपल बोर्ड ने भी २५०) वार्षिक देना मंजूर कर लिया था किन्तु कई महीने बीत जानेपर भी रुपये मिलनेमें गड़बड़ हो रही थी। हालमें बोर्डके वायस चेरमैन और एक्जीक्युटिव आफिसर बा० रामप्रसाद गोयल एवं ठा० हरनाम सिंह चौहान की कृपा से १९२५ के २५०) में से १००) मिल गये हैं। शेष १५०) भी शीघ्र ही मिलने वाले हैं। २०) मासिक की सहायता भी म्युनिसिपल बोर्ड की ओर से मिल रही है। इन सहायताओं के लिये उक्त दोनों बोर्ड धन्यवाद के पात्र हैं।

इंगलैण्ड का इतिहास भाग १ और २। लेखक डाक्टर प्राणनाथ विद्यालङ्कार और प्रकाशक गंगा पुस्तक माला लखनऊ। प्रथम भाग का मूल्य २) और द्वितीय भाग का १॥)। पहिले भाग में रानी इलिज़बेथ तक का और दूसरे में स्टुअर्ट वंश से रानी विक्टोरिया के शासन तक का विवरण दिया गया है। हिन्दी में अभी तक इने गिने जितने इतिहास निकले हैं उनमें प्रस्तुत इतिहास उत्तम मालूम होता है। विद्यालंकार जी ने बड़े खोज और परिश्रम से इस इतिहास को लिखा हैं। अंगरेजी नाम अंगरेज़ी लिपि में भी प्रत्येक जगह हिन्दी के सामने कोष्ट में लिख दिये जांय तो उत्तम है।

समालोचनार्थ पुस्तके

सम्मेलन पत्रिका में समालोचनार्थ आने वाली पुस्तकों की सूची आगामी मास से निकला करेगी। उनमें से क्रमशः उत्तम उत्तम पुस्तकों की समालोचना भी योग्य विद्वानों द्वारा करवाकर प्रकाशित की जाया करेगी।

समालोचनार्थ पुस्तकें भेजने वालों से निवेदन है कि प्रत्येक पुस्तक की दो दो प्रतियां भेजने का कष्ट उठाया करें क्योंकि एक पुस्तक समालोचक महाशय के पास भेज दी जाती है। अतः सम्मेलन के संग्रहलय में कोई प्रति नहीं रह जाती। आशा है प्रकाशक व सम्पादक इस पर ध्यान रक्खेंगे।

समालोचना

बीसल्देव रासौ—कवि नरपति नाल्ह रचित सब से पहला हिन्दी काव्य है यह सन् १२१२ में रचा गया था अर्थात् पृथ्वीराज रासौ से भी ३० वर्ष पूर्व का है इसका सम्पादन स्वर्गीय बाबू जगत्मोहन वर्मा के सुपुत्र बाबू सत्यजीवन वर्मा एम्० ए० ने किया है। वर्माजी सुयोग्य पिता की सुयोग्य संतान है। आपका यह प्रथम प्रयास होने पर भी रासौ का सम्पादन आपने बड़ी योग्यता से किया है। प्रारम्भ में ४६ पृष्ट की एक विवेचना पूर्ण भूमिका है जिस में वीसलदेव रासौ के प्राप्त होने का इतिहास, उस का व्याकरण और भाषा की शैली पर विचार तथा उसका कथानक बड़ी उत्तमता से गवेषणा के साथ दिया है। साथ में पाद-टिप्पणीं भी पर्याप्त संख्या में दी गयी हैं यह ग्रंथ गुजराती में वहुत काल पूर्व ही छप चुका है क्योंकि गुजरात वाले इसे अपनी भाषा का आदि काव्य मानते हैं जिस प्रकार बगाली विद्या पति ठाकुर को अपना आदि कवि कहते हैं। यथार्थ में ये दोनों ही हिन्दी के कवि हैं। वर्मा जीने उसका उल्लेख नहीं किया संभवतः आपको वह प्रति प्राप्त न हुई होगी।

नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी ने अपनी वाला बख़्श चारण राजपुत ग्रंथमाला में इसे प्रकाशित किया है सजिल्द लगभग १७५ पृष्ट की पुस्तक का मूल्य ॥।) भो साधारण ही है छपाई, सफाई कागज़ सब बढ़िया है।

नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी से बड़ी उत्तम उत्तम पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। प्रकाशकों को इसी शैली का अनुकरण करना चाहिये। इस पुस्तक की विस्तृत समालोचना अवकाश मिलने पर फिर की जायगी।

हम साहित्य-सेवियों से इस प्राचीन ग्रन्थ के पढ़ने का साग्रह अनुरोध करते हैं।

दुर्गावती

पं० बदरीनाथ जी एक प्रतिभा शाली कवि और सिद्ध हस्त नाटककार हैं आपके रचे कई नाटक उच्च श्रेणियों में पढ़ाये जाते हैं दुर्गावती आपकी सर्वोत्तम और मौलिक रचना है यह नाटक एक ऐतिहासिक आधार पर लिखा गया है।

इस नाटक में अकबर बादशाह की मक्कारी तथा दुर्गावती और उसके मंत्री की बहादुरी का अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है और देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता के भावों से संश्लिष्ट है। देश-द्रोहियों से राष्ट्र को कितनी हानि पहुँच सकती है इसका इसमें अच्छा चित्रण किया गया है। भाषा महावरेदार और कविता बड़ी सरस और चुटीली है। ऐसे नाटकों की हिन्दी साहित्य में बड़ी आवश्यकता है। इस श्रेणी के नाटक हिन्दी साहित्य में बहुत कम प्राप्त हो सकते हैं।

(१) मूल्य १) रु० कुछ अधिक जंचता है;

'प्रताप' से विदित हुआ कि 'विपूति' नामक मासिक पत्र आज़मगढ़ से प्रकाशित होने लगा है पर हमें उसके दर्शन नहीं हुए।

मोहन—नामक मासिकपत्र इसी मास से मथुरा से सरस्वती आकारके २४ पृष्ठों होने लगा है निकला है इसके सम्पादक है पं० छबीलेलाल गोस्वामी और राधा कृष्ण जी भार्गव। वार्षिक मूल्य २) रु०

भ्रमर—पं० सतीशकुँवर बी० ए० के सम्पादकत्व में रायल आठ पेजी के ५६ पृष्ट में सचित्र निकलता है चैत्र का अँक हमारे सामने है कविता और लेख सुपाठ्य और मनन करने योग्य है। हम हृदय से इसकी उन्नति चाहते हैं यह बरेली से प्रकाशिक होता है मूल्य ३) वार्षिक।

हृदय—होली से 'हृदय' नामक साप्ताहिक पत्र नन्दलाल थपयाल के संपादकत्व में मेरठ से प्रकाशित हुआ है और लेख विचारणीय और कविताएं सभी सुन्दर हैं। हिन्दू संगठन का प्रबल पोषक है वार्षिक मूल्य ३॥) रु० हम इसकी उन्नति के अभिलाषी हैं।

काशी म्यूनिस्पैलिटी में हिन्दी—काशी संस्कृत विद्या का केन्द्र और हिन्दू जाति का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। वहाँ की म्यूनिस्पैलिटी में हिन्दू मेम्बरों की संख्या मुसलमान सदस्यों से दुगुने से भी अधिक है हिन्दू विश्वविद्यालय तथा नागरी प्रचारणी सभा काशी का भी पर्याप्त प्रभाव है। ८०% से अधिक जनता हिन्दू ही है।

इस विश्वनाथ पुरी की प्रधान संस्था म्यूनिस्पैलिटी का सारा कार्य विदेशी लिपि उर्दू में किया जाय यही आश्चर्य है!

अभी हाल में एक सज्जन ने प्रस्ताव किया था कि जनता की सुविधा के लिये म्यूनिसिपैलिटी की कार्य वाही हिन्दी में की जाया करे हमें दुख से लिखना पड़ता है कि हिन्दू मेम्बरों की फूट के कारण यह उपयोगी प्रस्ताव बहुमत से रद्द हो गया। उन हिन्दू मेम्बरों की जिन्हों ने विपक्ष में वोट दिये अथवा अपने कर्तव्य पालन में अवहेलना की; जितनी निन्दा की जाय थोड़ी है। ऐसे सज्जनों के विषय में अधिक क्या कहा जाय। चाहिये तो यह था कि इस प्रान्त के मुसलमान भारतीयता के नाते राष्ट्रभाषा और इस प्रान्त की मातृभाषा हिन्दी व लिपि नागरी को स्वीकार कर विदेशी लिपि को हटाने का स्वयं प्रयत्न करते। परन्तु मुसलमानों पर तो रंग ही दूसरा चढ़ा हुआ है। उन से इस प्रकार की आशा करनी दुराशा मात्र है। हिन्दुओं का कर्तव्य अवश्य प्रेरित करता है कि वेही संगठित रूप से मातृभाषा और राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा नागरी लिपि के लिये उद्योग करें।

परन्तु उनकी पतिता वस्था अभी दूर नहीं हुई। बात नहीं इन

को कब चेत होगा। बाबू महादेव प्रसाद जी जैसे सज्जन और हिन्दू सभ्यताभिमानी की चेयर मैन शिप में इस प्रस्ताव का गिर जाना और भी लज्जा की बात है।

आशा है काशी म्यूनिसपैलिटी के हिन्दू सदस्य शीघ्र अपने इस पाप का प्रायश्चित कर डालेंगे।

अदालतों में हिन्दी—अदालतों में हिन्दी का कार्य कहीं कहीं प्रारम्भ हो गया है। आगरा फतहपुर, बहरायच, फ़ैजाबाद, बनारस, इलाहाबाद, बुलन्द शहर, सीतापुर, आदि स्थानों में कुछ वकील अंशतः कार्य नागरी लिपिमें करने लगे हैं। पं० जीवाराम दीक्षित आगरा जैसे उत्साही वकील अभी प्रान्त में बहुत थोड़े हैं। दीक्षित जी अपना सारा अदालती कार्य नागरी ही में करते हैं आपके उद्योग से ४—५ वकीलों ने और भी अपना कार्य नागरीलिपि में करना प्रारम्भ कर दिया है। इसके लिये सम्मेलन ने भी नियमित रूप से आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया है।

प्रत्येक स्थान की नागरी प्रचारणी सभाओं तथा उत्साही हिन्दी प्रेमियों को अदालतों के हिन्दी प्रचार में भाग लेना चाहिये तथा सम्मेलन को सहायता देना चाहिये। प्रत्येक जिले में जो कुछ कार्य हो रहा है तथा होगा उसकी सूचना सम्मेलन पत्रिका द्वारा पाठकों को यथा समय मिलती रहेगी प्रत्येक संस्था वा उत्साही युवकों को चाहिये कि अदालत सम्बन्धी विवरण प्रतिमास सम्पादक-पत्रिका के पास भेजते रहें।

कहीं कहीं से शिकायत सुनी जाती है कि सम्मनों के फार्म फिर उर्दू ही में भरे जाने लगे हैं इस पर भी हिन्दी प्रेमियों को ध्यान रखना चाहिये यदि एक पर्त हिन्दी में न लिखा होतो तुरंत सम्मेलन को सूचित कर दें ताकि उस सम्बन्ध की उचित कार्य वाही की जा सके।

सम्मेलन की सामयिक अवस्था—वृन्दावन-सम्मेलन के पश्चात से ही कुछ सम्मेलन पर अदृष्ट सा आया हुआ है।

पत्रों में जो उसपर घृणित और मिथ्या आक्षेप किये गये वे

किसी से छिपे नहीं हैं उनमें कितना तत्य और सत्य भाव था यह भी पाठकों से अनिदित नहीं है।

इधर कई मास से लगातार सम्मेलन के प्रधान मन्त्री पं० रामजीलाल जी शर्मा रोग शय्या पर पड़े हुए हैं और अभी तक निरोग नहीं हो पाये है अब आप लखनऊ के अस्पताल में इलाज कराने गये हुए हैं प्रचार मन्त्री पं० रामरत्न जी अध्यापक भी पिश्च्युला रोग से पीड़ित हैं उनका आपरेशन लखनऊ के किंग जार्ज अस्पताल में हुआ था परन्तु कई मास हो गये अभी तक उनका घाव नहीं भरा है और आजकल आगरे में उसका इलाज करा रहे हैं। इन्ही कारणों से सम्मेलन के कार्य में भी बाधा होती रही तथा हो रही है। परमात्मा से प्रार्थना है कि दोनों महानुभावों को शीघ्र निरोगता प्रदान करें ताकि सम्मेलन की सेवा में पूर्व बत् दत्त चित्त से लग कर यथाचित् संचालन करने में समर्थ होसकें।

संप्तदशा हिन्दी सहित्य सम्मेलन, भरतपुर) भरतपुर से सम्मेलन की स्वगत समित के प्रकाशन मंत्री सूचित करते हुए शिकायत करते हैं कि हिन्दी पत्रों में ४-५ को छोड़ कर शेष ने सम्मेलन को सफल बनाने की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जितनाउन्हें देना चाहिये।

राज पूताना प्रान्त हिन्दी का केन्द्र है वहाँ पर राजा से लेकर प्रजा तक सब की भाषा हिन्दी है।

सम्मेलन सब का है अतः उसको सफल बनाने के लि अभी से पूर्ण-प्रयत्न होना चाहिये सम्मेलन की सफलता पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रीति से पत्रों पर भी प्रभाव बिना पड़े नहीं रहता। अतः सम्पूर्ण हिन्दी पत्रों से साग्रह अनुरोध है कि वे अपनी लेखनी द्वारा सम्मेलन को सफल बनाने का अभी से उद्योग करें। मुख्यतः राजपूताने के पत्रों का तो यह प्रधान कर्तव्य होना चाहिये।

अन्य राजपूताने से संबंधित पत्रों को भी इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

हिन्दी विद्यापीठ प्रयाग

राष्ट्रभाषा हिन्दी के पक्षपाती, हिन्दी के प्रेमी देशभक्तों को यह आनन्द सन्देश सुनकर बड़ी ही प्रसन्नता होगी कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनांन्तर्गत जिस हिन्दी-विद्यापीठ के पुनः उद्घाटन की सूचना हिन्दी पत्रों में दी गई थी, उसी हिन्दी विद्यापीठ का उद्घाटन विगत बसन्त पञ्चमी ता० १८ जनवरी २६ से हो गया है, शिक्षा का कार्य नियमित रूप से चल रहा है, विद्यार्थियों की संख्या भी बढ़ती ही जा रही है, इस वर्ष केवल २५ विद्यार्थी ही विद्यापीठ में प्रविष्ट किये जावेंगे, योग्य तथा प्रतिभाशाली कुछ एक विद्यार्थियों को ५) से लेकर १०) तक छात्रवृत्ति भी दी जा सकेगी। विद्यापीठ के आश्रम का मासिक व्यय १५) से घटा कर १०) कर दिया गया हैं। विद्यार्थियों के निवास तथा भोजन का बहुत ही सुन्दर प्रबन्ध है, हिन्दीविद्यापीठ का शिक्षणालय तथा छात्रावास दोनों ही प्रयाग की बस्ती-नगर से दूर यमुना के तट पर विशुद्ध वायु मण्डल में है। विद्यापीठ एक बड़े ही रम्य तपोवन के समान प्रतीत होता है, विद्यापीठ के सुन्दर अञ्चल में ही श्यामवसना यमुना अपनी चञ्चल गति से वह रही हैं, विद्यापीठ का तपोवन तो प्रायः सभी ऋतुओं में ही सब प्रकारसे सुखप्रद बना रहता है। विद्यापीठ का जल-वायु अत्यन्त स्वास्थ्य प्रद तथा जीवन शक्ति को बढ़ानेवाला है। हिन्दी विद्यापीठ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से स्वीकृत प्रथमा, मध्यमा तथा उत्तमा परीक्षा की पढ़ाई होती है अर्थात् राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम के द्वारा हिन्दी-संस्कृत

साहित्य, गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, ज्योतिष, आयुर्वेद एवं अन्यान्य सभी आवश्यक विषयों की शिक्षा दीजाती है। हिन्दी-विद्यापीठ में अन्यान्य विषयों के साथ साथ विद्यार्थियों को स्वावलम्बी बनाने के लिये "कृषिशिक्षा" भी सर्वथा अनिवार्य रक्खी गयी है, कृषि के सिवाय अन्य जीवनोपयोगी कला-कौशल की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया जा रहा है, जिससे हिन्दी-विद्यापीठ से निकल कर इस दीन-हीन भारत के लालों को जीविका के लिये दर दर भटकना न पड़े और दासत्व की बेड़ियों से अपने अमूल्य जीवन को जकड़ कर गँवाना न पड़े। विद्यापीठ का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को स्वस्थ, बलिष्ट, दीर्घजीवी, देशभक्त तथा स्वावलम्बी बनाना है। विद्यापीठ में किसी वर्ण, जाति तथा सम्प्रदाय का भेदभाव नहीं रक्खा गया है; सभी प्रकार के विद्यार्थी स्वतन्त्रता-पूर्वक विद्याध्ययन कर सकते हैं; सभी प्रकार के विद्यार्थियों के साथ समान वर्ताव किया जाता है।

हम राष्ट्रभाषा हिन्दी के पक्षपाती, हिन्दी के प्रेमी देशभक्तों से सप्रेम अनुरोध करते हैं, अपील करते हैं कि वे अपने प्यारे पुत्रों को हिन्दी-विद्यापीठ में प्रविष्ट करके अपनी सन्तति को दीर्घजीवी तथा स्वावलम्बी बनाते हुए राष्ट्रभाषा हिन्दी की उन्नति में सम्मेलन का हाथ बटावें।

हम अपने होनहार विद्यार्थियों से भी साग्रह अनुरोध करते हैं कि वे भी इस शुभ अवसर को हाथ से न खोयें और यथासम्भव शीघ्र विद्यापीठ के पवित्र वातावरण में रह कर अपने अमूल्य समय तथा जीवन के लाभों को उठायें।

भवदीय

व्यावस्थापक-हिन्दी विद्यापीठ

साधारण सदस्य

इस मास में नये सदस्यों की सूची

१—श्री युत बल्लभ दास जी कोठारी मुनीम दूकान श्री सेठ वंसीलाल अबीरचन्द्र जी भदेलपुर सी० पी०;

२—श्रीयुत सेठ दयालभाई इंदर जी रेहरू, गोलबाजार, जबलपुर;

३—श्रीयुत बा० कृष्ण प्रसाद जी वर्मा एम० ए०एसिस्टेंट कमिश्नर, इनकम टैक्स, जबलपुर;

४—श्रीयुत बा० ओंकार प्रसाद जी मिश्र,जज खफीफा, जबलपुर;

५—श्रीयुत पं० गजाधर प्रसाद जी पटेरहा रईस गोलाबाजार, जबलपुर;

६—श्रीयुत पं० हर प्रसाद जी पाण्डेय,बी० ए० एल-एल० बी, वकील निमार्डगंज, जबलपुर;

७—श्रीयुत व्योहार राजेन्द्र सिंह जी रईस, तालुकेदार साठिया कुंआ, जबलपुर;

८—श्रीयुत बा० प्रभात चन्द्र जी बोस, एम० ए० एल-एल बी वकील, जबलपुर;

९—श्रीयुत पं० द्वारका प्रसाद जी रईस, बैंकर, लार्डगंज, जबलपुर;

१०—श्रीयुत बा० जमनादास जी रईस हनुमान ताल, जबलपुर;

११—श्रीयुत बा० मनोहरकृष्ण गोलबलकर, वकील, लार्डगंज, जबलपुर;

१२—श्रीयुत मोतीलाल जी मुरा दूकान श्री मान सेठ चौधमल चांदमल जी जबलपुर;

१३—श्रीयुत पं० लक्ष्मी नारायण जी शर्मा, 'कृपाण' कवि कृपाण कार्य्यालय, भिवानी;

१४—श्रीयुत काली प्रसाद जी बाढ़जि० पटना;

प्रचार मन्त्री

परीक्षा विभाग में कई नये केन्द्र खुल रहे हैं। परीक्षार्थियों के आवेदन पत्र भी आरहे हैं उत्तमा का पाठ्य-क्रम ठीक करने के लिये एक उपसमिति बना दी गयी है । जिसमें योग्य विद्वानों द्वारा पाठ्य क्रम का संशोधन किया जा रहा है।

उत्तमा से निबंध का प्रतिबन्ध हट जाने से बहुत से विशारद उत्तमा में बैठने का विचार कर रहे हैं। विशारदों को इससे पूरा लाभ उठाना चाहिये।

साहित्य विभाग—बारहवें सम्मेलन की निबन्ध माला छप रही है जिसमें व्योपार संबन्धी कई उत्तम निबन्ध हैं जो शीघ्र छप कर तय्यार हो जायगी।

पं० बाबूरामजी वित्थारिया का 'नवरस' नायक निबन्ध जो ५०० पृष्ठके लगभग है सजिल्द छपकर शीघ्र तय्यार होने वाला है।

हिन्दी विद्यापीठ की नियमावली का पाठ्यक्रम छप कर तय्यार है जिन सज्जनों को चाहिये ‑) के टिकट भेजकर मँगवा सकते हैं।

हिन्दी विद्यापीठ—इसमें श्रीयुत पं० अवध उपाध्याय जी गणिताध्यापक होकर आगये है। आप गणित के माने हुए विशेषज्ञों में है।

प्रचार-विभाग

अध्यापक पं० रामरत्न जी प्रचार मंत्री की बीमारी के कारण जैसा कि अन्यत्र लिखा जा चुका है कुछ कार्य में शिथिलिता आ गयी है। फिर भी कार्य उत्साह से चल रहा है।

सम्मेलन की ओर से पञ्जाब प्रान्त में पं० जयचन्द्र जी विद्यालङ्कार बड़े उत्साह से कार्य कर रहे हैं वे प्रान्तीय सम्मेलन के मन्त्री भी हैं। लाहौर मेंप्रान्तीय सम्मेलन का वृहत अधिवेशन २२, २३, २४ मई को होना निश्चित हुआ है स्वागत समिति बन चुकी है इसके सभापति रा० ब० रामसरनदासजी और मंत्री प्रिंसिपल रघुवरदयाल जी एम० ए० हैं। इसका विशेष विवरण पाठक आगामी अंक में पढ़ेंगे।

सिंध में भी सम्मेलन की शाखा उक्त विद्यालङ्कार जी के उद्योग से खोली जा चुकी है वहां भी कार्य बड़ी तत्परता से हो रहा है। आसाम में कई वर्ष से पं० राममनोहर पाण्डेय सम्मेलन की ओर से

प्रचार करते थे अब वे वापिस आगये हैं और उनके स्थान में पं० अवध विहारीजी शर्मा प्रचारार्थ पहुँच गये हैं वहां के प्रचार का प्रधान केन्द्र डिब्रूगढ़ है। और हिन्दी सिखाने के लिये रात्रि पाठशाला खोल दी गई है। आसपास के स्थानों में व्याख्यनादि द्वारा प्रचार किया जा रहा है।

कुछ प्रचारक शीघ्र ही और भी भेजे जा रहे हैं आसाम के उत्साही युवकों को भी इसमें योग देना चाहिये। इस वर्ष कांग्रेस भी वहीं हो रही है अतः उस पर प्रभाव डालने के लिये अधिक उत्साही कार्य कर्ताओं की बड़ी आवश्यकता है। आन्ध्र प्रान्त (मद्रास) के प्रचार का केन्द्र वैजवाड़ा है इसके सूत्रधार मो० सत्यनारायण जी हैं इसके अन्तर्गत काबूर, मछली-पट्टम, राजमहेन्द्री, धवलेशरम्, कानु मोलुगुड़िवाड़ा, वड़मूड़ि, तिरुपति, नेल्लूर, और गण्टूर में कार्य हो रहा है इस समय ४०० के लगभग विद्यार्थी सम्मेलन की ओर से स्थापित संस्थाओं में हिन्दी का अध्ययन कर रहे हैं एक प्रचारक सज्जन तो हिन्दी विद्यापीठ प्रयाग में अध्ययनार्थ आये हुए हैं इनके अतिरिक्त अन्य साधनों से भी प्रचार कार्य हो रहा है।

तैमिल प्रान्त के प्रचार का प्रधान कार्यालय ट्रियलीकेन मद्रास में है उसके व्यवस्थापक श्री हरिहर शर्मा हैं इसके अन्तर्गत अडयार, ट्रिवेंडम, पेरुम्पालम, वालरामपुरम, नेट्टासेरी, कुडमालूर, बंगलोर, मैसूर, धारवार, तेरुपेरम्बूर, तूतीकोरन, तँजौर, सेलम, फेरएडहिल, कुम्ब कोनम, और त्रिचना पल्ली में प्रचार कार्य हो रहा है जिनमें इस मास में १६११ विद्यार्थी अध्ययन कर रहे हैं।

यहाँ से एक 'हिन्दी प्रचारक' नामक मासिकपत्र भी निकलता है जिसके सम्पादक उत्साही युवक पं० हृषी केश जी शर्मा हैं

इस प्रकार प्रचार कार्य बड़ी ही सुसंगठित दशा में हो रहा है।

हिन्दी प्रेमियों और राष्ट्रभाषा के भक्तों को इसमें पूर्ण योग देकर इसके संचालन में सहायता देनी चाहिये।

हिन्दी हितैषिणी सभा

हिन्दी हितषिणी सभा लालगंज (मुजफ्फर पुर) द्वारा श्री शारदा सदन पुस्तकालय, गांधी वाचनालय और मिलन मन्दिन नामक संस्थायें चला रही हैं।

यह सम्मेलन से संबन्धित संस्था अति उत्तम कार्य कर रही है। पुस्तकालय में ८९७ पुस्तकें पूर्व वर्ष में थीं इस वर्ष २२४ पुस्तकें और बढ़ गयी तथा १३७५ व्यक्तियों ने पुस्तकालय से पुस्तकें व पत्रादि लेजाकर अध्ययन किया।

गांधी वाचनालय में २३ पत्र पत्रिकायें आती हैं। वाचनालय से ३१३६ व्यक्तियों ने लाभ उठाया; कई पत्र उनके संचालकों द्वारा मुफ्त भेजे जाते हैं तदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं। मिलन मंदिर की १३ बैठकें हुई इनमें समस्या पूर्ति, लेख, व्याख्यान तथा साहित्य-संगीत आदि कार्य हुए। इस वर्ष कवि-सम्मेलन भागलपुर के श्री मुनेश्वर प्रसाद सिंहजी के सभापतित्व में बड़ी धूमधाम से सम्पादित हुआ।

और इसका वार्षिकोत्सव श्री रामेश्वर प्रसादसिंह जी बी०, एल० के सभापतित्व में बड़ी सफलता से हुआ बाबूजगन्नाथ प्रसाद जी मंत्री चुने गये और इस वर्ष २९५॥-) आय तथा २९०॥-) व्यय हुआ। सभा के संचालकों का यह कार्य प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय है।

अन्क संस्थाओं को भी अपना कार्य विवरण भेजते रहना चाहिये।

हरियाना प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन

हरियाना प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन २३-२४-२५ जनवरी सन् २६ को विद्या भार्तण्ड पं० सीतारामजी शास्त्री के सभापतित्व में सानन्द समाप्त हो गया।

महामान्य मालवीय जी महाराज तथा सभापति महोदय का बड़ी धूमधाम से स्वागत किया गया और शहर में हाथी पर जलूस निकाला गया।

उपस्थित सज्जनों में पूज्य मालवीय जी महाराज के अतिरिक्त डाक्टर गोकुल चंद नारंग, भाई परमानन्द जी, व्याख्यान वाचस्पति पं० दीनदयाल जी शर्मा, पं० नेकीरामजी शर्म्मा और जयचन्द विद्यालंकार विशेष उल्लेखनीय हैं कवि सम्मेलन भी हुआ तथा कई उपयोगी प्रस्ताव पास हुए। जिनमें म्यूनिस्पल व डिस्ट्रिक्टबोर्डों में हिन्दी को समुचित स्थान देने और हिन्दूमात्र व उनकी संस्थाओं में प्रारंभिक शिक्षा हिन्दी में देने का अनुरोध किया गया।

सम्मेलन बड़ी सफलता पूर्वक समाप्त हुआ इसके मंत्री महाशय मुंशीरामजी 'विचित्र' चुनेगये आगामी वर्ष अधिवेशन भिवानी में होगा।

साहित्य-समिति का द्वितीय अधिवेशन

साहित्य-समिति का द्वितीय अधिवेशन रविवार मिति द्वितीय चैत्र शुक्ल ८ सं० १९८३ वि० तदनुसार ता० २१ मार्च सन् १९२६ई० को ३ बजे से सम्मेलन कार्य्यालय में निम्न लिखित सदस्यों की उपस्थिति में हुआ—

श्रीयुत अध्यापक ब्रजराज जी, प्रयाग
श्रीयुत बाबू केदार नाथ जी गुप्त, प्रयाग
श्रीयुत बाबू शालिग्राम जी वर्मा, प्रयाग
श्रीयुत चतुर्वेदी पं० द्वारका प्रसाद जी शर्मा, प्रयाग
श्रीयुत अध्यापक रामरत्न जी, आगरा
श्रीयुत पं० लक्ष्मीधर जी वाजपेयी, प्रयाग

प्रो० रामाज्ञा द्विवेदी एम० ए०, आनर्स तथा प्रो० रामलषन जी शुक्ल बी० ए० दर्शक रूप में उपस्थित थे।

१—सर्व्व-सम्मति से अध्यापक ब्रजराज जी ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—साहित्य-समिति के प्रथम अधिवेशन का कार्य विवरण पढ़ा गया और सर्व्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

३—पञ्चम सम्मेलन का कार्य विवरण (प्रथम भाग) तथा सूर पदावली, इन पुस्तकों के पुनर्मुद्रण का विषय उपस्थित हुआ।

निश्चित हुआ—

(अ) सूर पदावली की १००० प्रतियाँ छपा ली जायँ। इसके छपाने के लिये १२५) व्यय स्वीकृत हुआ।

(ब) पंचम सम्मेलन का कार्य विवरण छपाना अभी स्थगित किया जाय।

४—साहित्यिक सहायक पद के लिए आये हुए सब आवेदन पत्रों पर विचार किया गया। अन्त में सर्व्व-सम्मति से निश्चित हुआ कि साहित्य-विभाग में साहित्यिक सहायक पद पर श्रीयुत पं० भगीरथ प्रसाद जी दीक्षित नियुक्त किये जाँय अभी उन्हें ५०) मासिक दिया जाय। यह भी निश्चित हुआ कि यह विषय स्थायी समिति के सामने सूचनार्थ उपस्थित कर दिया जाय।

५—तत्पश्चात् सहित्य-मन्त्री जी ने साहित्य-विभाग में होने वाले सब कार्यों का ब्योरा उपस्थित किया। तदनन्तर सभापति महोदय को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई।

ल० ध० बाजपेयी
साहित्य मन्त्री

परीक्षा-समिति का तीसरा अधिवेशन

परीक्षा-समिति का तीसरा अधिवेशन रविवार मिति प्रथम चैत्र शुक्ल ८ सं० १९८३ बि० तदनुसार ता० २१ मार्च सन् १९२६ ई० को ४॥ बजे से निम्न लिखित सदस्यों की उपस्थिति में हुआ—

श्रीयुत अध्यापक पं० रामलखन जी शुक्ल बी० ए०, प्रयाग

श्रीयुत पं० जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल आयुर्वेद पंचानन भिषङ्मणि, प्रयाग

श्रीयुत अध्यापक धीरेन्द्र जी वर्मा एम०ए० प्रयाग

श्रीयुत बाबू केदार नाथ जी गुप्त — प्रयाग

श्रीयुत अध्यापक रामरत्न जी, आगरा
श्रीयुत पं० लक्ष्मीधर जी, वाजपेई प्रयाग
श्रीयुत चतुर्वेदी पं० द्वारका प्रसाद जी शर्मा
श्रीयुत बाबू शालिग्राम जी वर्मा प्रयाग (परीक्षा मन्त्री)

इनके अतिरिक्त प्रो० बृजराज, प्रो० रामाज्ञा द्विवेदी तथा पं० इन्द्र नारायण जी द्विवेदी दर्शक रूप में उपस्थित थे।

१—सर्व सम्मति से अध्यापक पं० राम लखन जी शुक्ल बी० ए० ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—पिछले अधिवेशन का कार्य विवरण पढ़ा गया और सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ।

३—श्री परीक्षा मन्त्री जी ने प्रस्ताव किया कि उत्तमा परीक्षा में सम्मिलित होने के लिये निबन्ध लिखने का प्रतिबन्ध आवश्यक होने के कारण हमारे बहुत से 'विशारद' उत्तमा परीक्षा में सम्मिलित नहीं हो सकते, इस लिये विवरण पत्रिका के अध्याय ८ की धारा २ निकाल दी जाय और आगे की धाराओं का क्रम ठीक कर दिया जाय इस विषय पर स्थायी समिति के कुछ सदस्यों, हिन्दी के अनेक विद्वान् लेखकों तथा पत्र सम्पादकों कीं आई हुईं सम्मतियां पढ़ी गईं। श्रीयुत अध्यापक धीरेन्द्र जी वर्मा ने इस प्रस्ताव का समथन किया। प्रस्ताव वाद विवाद के अनन्तर सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ।

४—प्रथमा तथा मध्यमा परीक्षा के परीक्षकों के निर्वाचन का विषय उपस्थित हुआ। निश्चित हुआ कि इसके लिये निम्न लिखित महानुभावों की एक उपसमिति बनादी जाय।

५—अध्यापक पं० रामरत्न जी व चतुर्वेदी पं० द्वारका प्रसाद जी शर्मा, तथा परीक्षा मंत्री जी ने सूचित किया कि हमारे पास इस वर्ष कुछ केन्द्रों के संबंध में कुछ कुव्यवस्था होने की उपालम्भ पूर्ण चिट्ठियां आई हैं निश्चित हुआ कि परीक्षा मंत्री जी इसकी समुचित व्यवस्था करें।

६—बिना प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण किये हुए मध्यमा परीक्षा में सम्मिलित होने वाले परीक्षार्थियों के आवेदन पत्रों पर विचार करने का विषय उपस्थित हुआ। निश्चित हुआ कि निम्न-लिखित परीक्षार्थियों को मध्यमा परीक्षा में सम्मिलित होने का अधिकार दिया जाय—

१—श्रीयुत रामकरणराव, हरदा
२—पं० रामाधार जी शुक्ल, कानपूर
३—श्री गगाधर जी ठाकुर, भागलपुर
४—श्री शिवचरन जी झा, दरभंगा
५—श्री चन्द्रशेखर जी त्रिपाठी, जौनपुर
६—श्री शंकरनाथ जी साधु, इन्दौर
७—श्री रामेश्वर शर्मा, मंडवारिया (सिरोही)
८—श्री चन्द्रशेखर जी शर्मा रायपुर (रीवां)
९—श्री वारेलाल जी हूका, देवरी
१०—श्री सूर्यनारायण, बरलीघा
११—श्री राजाराम जी पांडे, देवरी
१२—श्री अवधराम, बिलासपुर
१३—श्री माता प्रसाद जी गुप्त, प्रयाग
१४—श्री कृष्ण कुमार जी सक्सेना, काशी
१५—श्री हरिश्चन्द्र दत्तजी पटना
१६—श्री गोविन्द प्रसाद जी चतुर्वेदी, जबलपुर
१७—श्री नन्दकिशोर जी, गया
१८—श्री देवीराम जी शर्मा, आगरा
१९—श्री जंगबहादुर जी सक्सेना (ग्वालियर)
२०—श्रीयुत रामनगीना जी पाण्डेय, कलकत्ता
२१—श्री राममोहन जी, मछलीपट्टम
२२—श्री देवदूत जी, धारवाड़
२३—श्री पं० ज्वालाप्रसाद जी त्रिपाठी, झाँसी

२४—श्री सूर्यप्रतापसिंह जी, सुलतानपुर

२५—श्री रामरथ जी पांडे, इलाहाबाद

७—निम्नलिखित परीक्षार्थियों के आवेदनपत्र उपस्थित हुए निश्चित हुआ कि इनके आवेदन पत्रों पर जिन महानुभावों ने मध्यमा में बैठने का अधिकार दिलाने की सिफारिश की है, उनसे आवेदकों की गणित की योग्यता के विषय में पूछा जाय। यदि उनकी गणित की योग्यता बर्नाक्यूलर फाइनल के गणित विषय के पाठ्य क्रम के समान भी हो तो उन्हें परीक्षा मंत्री जी मध्यमा में बैठने का अधिकार दे दें।

१—श्री राधाकृष्ण जी नेवटिया, कलकत्ता
२—श्री पन्नालाल जी गुजराती ,,
३—श्री चतुर्भुज राय ,,
४—श्री नरसिंह जी उपाध्याय ,,
५—श्री किशोरी प्रसाद सिंह जी ,,
६—श्री छन्नूलाल जी शर्मा ,,
७—श्री बुलाकी चन्द जी नाथूराम व्यास, हरदा
८—श्री चुन्नीलाल जैन, उज्जैन
९—श्री सूरतनरायण जी द्विवेदी, सेवरेजी
१०—श्री धनराज जी शर्मा, चाँदबावड़ी-जोधपुर
११—श्री साधु शरण जी शर्मा, पटना
१२—श्री विभूति भूषण द्विवेदी, गया

८—प्रथमा तथा मध्यमा परीक्षा की अप्राप्य पुस्तकों के स्थान पर अन्य पुस्तकों के निर्वाचन का विषय उपस्थित करते हुए परीक्षा मंत्री जी ने सूचित किया कि प्रथमा तथा मध्यमा परीक्षा में कुछ पुस्तकें अप्राप्य हैं। उनके स्थान पर अन्य पुस्तकों के निर्वाचन की अतीव आवश्यकता है इस पर सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि अप्राप्य पुस्तकों के विषय में निम्नलिखित संशोधन स्वीकार किया जाय और इसका विवरण विवरणपत्रिका में प्रकाशित कर दिया जाय।

संशोधन

(प्रथमा)

१—धर्म शिक्षा साहित्य सम्मेलन द्वारा अभी तक प्रकाशित नहीं हो सकी है। इस लिये इसकी जगह पर निम्नलिखित पुस्कें धर्म शास्त्र के पाठ्य क्रम में पूर्ववत् जारी रहेंगी।

(क) सदाचार और नीति [तरुण भारत ग्रंथावली] दारागंज, प्रयाग

(ख) बालमनुस्मृति [इंडियन प्रेस, प्रयाग]

२—निम्नलिखित पुस्तकें नहीं मिलती हैं। इस लिये इनमें से प्रश्न नहीं दिये जावेंगे।

(क) गुप्त निबन्धावली

(ख) शालोपयोगी भारतवर्ष

(मध्यमा)

१—निम्निलिखित पुस्तकें नहीं मिलती है। इस लिये इनमें से प्रश्न नहीं दिये जावेंगे।

(क) शिवसिंह सरोज

(ख) यूरोपीय दर्शन

२—ज्योतिष ! शास्त्र (बाबू दुर्गाप्रसाद जी कृत) नहीं मिलता इसके स्थान पर निम्नलिखित पुस्तक पढ़ानी चाहिये।

(क) ज्योतिर्विनोद [नागरी प्रचारिणी सभा, काशी]

३—निम्नलिखित पुस्तकें मेसर्स मेकमिलन एन्ड को, नं २ प्रयाग स्ट्रीट, प्रयाग के पते से भी मिल सकती हैं।

1—wilsons' Essays

2—Smile's Charactor

3—woodrw wilsons' The State

4—winchestens' Principles of Literary criticism.

९—उत्तमा परीक्षा के परीक्षार्थी पं० राम भरोसे जी वाजपेई का ता० १२।३।२६ का पत्र उपस्थित हुआ जिसमें उन्होंने "आत्मा" नामक पुस्तक पुनर्संशोधनार्थ देने की प्रार्थना की है सर्व सम्मति से निश्चित हुआ कि पुस्तक लेखक को संशोधनार्थ देदी जाय।

१०—श्रीयुत विष्णु स्वरूप जी के उस आवेदन पत्र पर विचार करने का विषय उपस्थित हुआ जिसमें उन्होंने लिखा है कि स्वास्थ रक्षा का प्रश्न पत्र केन्द्र में न आ सकने के कारण मैं इस वर्ष प्रथमा परीक्षा में उत्तीर्ण होने से रह गया। श्री परीक्षा मन्त्री जी ने सूचित किया कि इस परीक्षार्थी ने शेष विषयों में अच्छे अंक पाये हैं इस पर सर्व सम्मति से निश्चित हुआ कि इस परीक्षार्थी को प्रथमा में पास समझ कर मध्यमा परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जाय।

११—श्री अवधशरण जबलपुर का ता० २१—१—२६ का वह पत्र उपस्थित हुआ जिसमें उन्होंने सं० १९८३ की परीक्षा के लिये शुल्क सुरक्षित किये जाने की प्रार्थना की थी। परीक्षा मन्त्रीजी ने सूचित किया कि यह परीक्षार्थी सं १९८१ वि० का है। सम्वत् १९८१ वि० में जबलपुर में प्लेग होने के कारण परीक्षा नहीं ली जा सकी थी और सम्वत् १९८२ की परीक्षा में यह व्यक्तिगत कारणों से बैठ नहीं सके। सर्व सम्मति से निश्चित हुआ कि इस दशा में इनका शुल्क सुरक्षित नहीं हो सकता। नवीन केन्द्र स्थापित करने के विषय में निम्न लिखित महानुभावों के पत्र उपस्थित हुए। निश्चित् हुआ कि नियमानुसार निश्चित् संख्या में सशुल्क आवेदन पत्र आने पर परीक्षा मन्त्री जी इन महानुभावों को स्वीकृत पत्र भेजदें।

प्रस्तावकः—

१—श्री सरयू शरण सिंह वर्मा बी० ए० बी० एल० विशारद
(मध्यमा का केन्द्र)　　पो० सरीन मुजफ्फरपुर

२—श्रीरामप्रसाद मन्त्री श्री गांधी पुस्तकालय राष्ट्रीय विद्यालय, दानापुर
(प्रथमा का केन्द्र)

३—श्रीयुत हरिहर नाथ जी टंडन ९/९८ प्रथम होस्टल हिन्दी साहित्य सभा हिन्दू विश्व विद्यालय, काशी

४—श्रीयुत शुकदेव प्रसाद मैनेजर चम्पारन डिस्ट्रिक्ट बोर्ड प्रेस, मोतीहारी

५—श्रीयुत सुकदेव नारायण वर्मा बी० ए० बी० एल वकील, गोपालगज जिला सारन

१३—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रचार कार्यालय ट्रिप्लिकेन मद्रास के परीक्षा मन्त्री पं० हृषीकेशजी शर्मा का पौष शु० ६/७ का वह पत्र उपस्थित हुआ जिसमें उन्होंने परीक्षा समिति से यह प्रार्थना की है कि जिन विद्यार्थियों की मातृभाषा दक्षिणी (तामिल तैलगू) आदि है, उन्हें सम्मेलन में केवल साहित्य तथा इतिहास में उत्तीर्ण होजाने पर विशारद की उपाधिप्रदान की जाय। प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्थगित किया गया तदनन्तर सभापति महोदय को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई।

अन्य स्फुट विषय

कवि सम्मेलन

अभी हाल ही में मुझे अन्वेषणार्थ रीवाँ राज्य में भ्रमण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था उसी अवसर पर महाराज कुमार मार्तण्ड सिंह जू महोदय का तृतीयाजन्म दिन उत्सव मनाया गया था उसी उपलक्ष में 'वेंकटभवन' पैलेस में एक कवि सम्मेलन भी हुआ था। जिसकी एक समस्या 'उदोत मार्तण्डको' थी।

राज्य के बहुत से उत्तम उत्तम कवि महाशय एकत्र हुए थे। मुझे भी इस कवि सम्मेलन में दर्शक रूप से उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था; रीवाँ नरेश महोदय ने सभापति का आसन ग्रहण किया था। राज्य के और भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध अधिकारी व जागीरदार उपस्थित थे। रीवां नरेश स्वयं भी काव्य मर्मज्ञ हैं और उत्तम कविताओं पर साधुवाद कहते हुए हर्ष प्रकट करते जाते थे। जो कविताएं उत्तम थी उनमें से दो तीन कविताएं पाठकों के विनोदार्थ यहां प्रस्तुत की जाती है पाठक स्वयं अनुभव करें कि वे कविताएं कितनी श्रेष्ठ है अंतिम कविता की कवि समुदाय में अधिक प्रशंसा की गयी थी :—

'समस्या उदोत मार्तण्ड'

[अम्बिका प्रसाद भट्ट राजकवि रीवां]

फैलि रह्यो पूरन प्रताप पुहुमीं में पूरि,
परम प्रमोद प्रभा प्रगटि प्रचण्डको।
दीनन की दीनता ह्वै छीणता छपा सों छिपी,
उड़गण हीनता गनीमन विहण्डको।
भूपति गुलाब उर कञ्ज सो खिलन लाग्यो,
मिलत मलिन्द मोद गुनिन अखण्डको

आनन्द को स्रोत, संत चक्रवाक गोत होत,
बांधव उदयगिर उदोत मारतण्डको

[पं० मधुर प्रसाद जी शर्मा—रीवां]

द्वादस दिवाकर सुनाई देत बेदन में,
'मधुर' दुनी में तम हरत अखण्डको।
प्रगटत दुरत प्रकाश होत थोरो घनो,
त्रास होत सिंहका के सुवन उदण्डको।
देखी कुछ कालते विचित्र एक बालक मैं,
परम प्रकाशी जो सदा बघेलखण्डको।
प्राची बांधवेश्वरी विशाल गोद भासमान,
जानो परै तेरहीं उदोत मारतण्डको।

[पाण्डेय रामेश्वर प्रसाद जी—रीवां]

अश्रुत, अदृष्ट, निपुनाई साथ एक करि,
कीधौं चारि देवन के अंशन अखण्डको।
कीधौं ब्रह्मण्ड ही चकित करिबे के हेत,
करि मूर्तिमान तेज तड़ित प्रचण्डको।
नभ मार्तण्ड में विलोकि अस्त दोष कीधौं,
आगम अगस्त अनुमानि आर्य्य खण्डको।
विधि ने अनस्तता, अनष्टता से मण्डित कै,
कीन्ह्यौ विंध्य पीठ पै उदोत मार्तण्ड को।

भ्रम संशोधन

अन्य पत्रों के आधार पर पंजाब प्रान्तीय सम्मेलन की तिथियां २२—२३—२४ मई लिख दी गयी थीं यथार्थ में यह उत्सव २८-२९-३० मई को होगा।